अग्रजों एवं साथियोंको

जिनकी पगडंडियोंके कलेजोंमें
समीक्षाके प्रशस्त पथकी
अँगड़ाइयाँ
उभर-उभर उठती हैं

—सुमन—

दो शब्द

मिर्जा या मीरजा ग़ालिब उर्दू काव्यके सबसे अधिक विवादास्पद कवि है। उनके जीवन-कालमें कुछने उनपर फब्तियाँ कसीं, कुछने श्रद्धासे उनके आगे सिर झुकाया। आजतक वही हालत है। कुछ कहते है, उर्दू क्या, किसी भारतीय भाषामे उनकी समता नही; कुछ उन्हे दुर्बल अनुभूतियाँ लेकर कल्पनाके गगनमे उड़नेवाला एक सामान्य कवि मानते है।

जो हो, गालिबकी हस्तीमें एक कशिश है। विरोध करो या अपनाओ, पर उसे छोड़ नही सकते। इसीलिए गालिबपर इतना लिखा गया है और इतने प्रकारसे लिखा गया है कि वह एक भूल-भुलैया बनकर रह गया है। पाठक समझ नही पाता, उलटे उलझकर रह जाता है।

हिन्दीमे भी उनका दीवान, दो एक जगहसे निकला है—सभाष्य भी और मूल रूपमे भी। पर एक भी उनके बहुरंगी व्यक्तित्वको स्पष्ट नहीं करता। उनमे अशुद्धियाँ भी है। उनके दीवानके एक अच्छे भाष्यकी आवश्यकता आज भी है। गालिबका सम्पूर्ण काव्य भी हिन्दीमे नही निकल पाया है।

इस पुस्तकमे गालिबके काल, व्यक्तित्व, काव्य तथा उसकी मानसिक पृष्ठभूमिके साथ उनके काव्यके चुने हुए अंश दिये गये है। चुनाव करते समय उनके दीवानेतर काव्यका भी ध्यान रखा गया है। चेष्टा की गयी है कि गालिबको तथा उनके काव्यको सर्वांगीण दृष्टिसे देखने-परखनेमे हम पाठकके लिए कुछ उपयोगी हो सकें।

बस इतना ही।

—श्री रामनाथ 'सुमन'

कृतज्ञता-ज्ञापन

पुस्तक लिखनेमे निम्नलिखित पुस्तको एवं पत्रिकाओसे सहायता ली गयी है। लेखक इनके रचयिताओके प्रति आभार प्रकट करता है।

१. अहवाले गालिब : मुख्तारउद्दीन अहमद
२. जिक्रे गालिब : मालकराम
३. यादगारे गालिब : हाली
४. ग़ालिब नामः : मुहम्मद इकराम
५. 'गालिब' : लाइफ़ एण्ड क्रिटिकल एप्रीसियेशन आफ हिज उर्दू पोएट्री : सय्यद अब्दुल लतीफ
६. नक़्दे गालिब : मुख्तारउद्दीन अहमद
७. फिलसफ : कलामे गालिब : शौकत सब्जवारी
८. नक्शे आजाद : गुलाम रसूल मेह्र
९. मुहासिन कलामे गालिब : अब्दुर्रहमान बिजनौरी
१०. गालिबकी शाइरी : मिर्जा अस्करी
११. उर्दू शाइरीपर एक नजर : कलीमउद्दीन अहमद
१२. गालिब : गुलाम रसूल मेह्र
१३. अर्मुगाने गालिब : इकराम
१४. इन्तख़ावे गालिब : मुमताज हुसेन
१५. तलाम्ज-ए गालिब : मालक राम
१६. दीवाने गालिब : मालक राम
१७. दीवाने गालिब : शफीउद्दीन नैयर
१८. दीवाने गालिब : वह्र इलाहाबादी
१९. दीवाने गालिब : आगा मुहम्मद ताहिर
२०. दीवाने गालिब मय शरह : नज्म तबातबाई
२१. मरातुलगालिब : वेखुद देहलवी
२२. दीवाने गालिब मय शरह : जोश मल्सियानी
२३. बयाने ग़ालिब : आगा मुहम्मद बाकर

॰२४. मोमिन व गालिब	:	अजीज यार जंग
२५. मुतालए गालिब	:	असर लखनवी
२६. शरह कलामे गालिब	:	आसी
॰२७ सरगुजश्ते गालिब	:	सय्यद मुहीउद्दीन कादरी
२८. रूहे गालिब	•	सय्यद मुहीउद्दीन
२९. दीवाने गालिब उर्दू		इम्तियाज अली अर्शी
॰३०. दीवाने गालिब	.	सरदार जा'फ्री
॰३१. दीवाने गालिब मुसव्विर		चगताई
३२ उर्दू-ए मुअल्ला	.	गालिब
३३. ऊदे हिन्दी	:	गालिब
३४ अदबी खुतूते गालिब	:	मिर्जा अस्करी
३५. नादिराते गालिब	:	आफाक हुसेन आफाक
३६. मकातीबे गालिब	:	इम्तियाज अली अर्शी
॰३७. आबे हयात	:	आजाद
॰३८ लाल किलअकी एक झलक	:	नासिर नजीर 'फिराक'
॰३९ देहलीका आखरी साँस	:	हसन निजामी
॰४०. गदर देहलीकी सुबह शाम	:	हसन निजामी

हिन्दी पुस्तकें :

४१ गालिब	:	दयाकृष्ण गजूर
४२ दीवाने गालिब	:	मुगनी अमरोहवी एव नूरनबी अब्बासी
४३ गालिबकी कविता	:	कृष्णदेव प्रसाद गौड
४४. महाकवि गालिबकी गज़ले	:	रामानुज लाल श्रीवास्तव

पत्र-पत्रिकाएँ :

अदब लतीफके विशेषाक
॰आजकलके विशेपाक एव सामान्य अंक
नया दौरके कई अंक

—श्री रामनाथ 'सुमन'

विषय-तालिका

जीवन-भाग [१७–२०३]

१. ग़ालिब : जीवन-रेखा··· ··· ··· ··· १९–१२५

[उर्दू और दिल्ली; उर्दूका यौवन; आगराकी देन; वंश-परम्परा; दादा और पिता; गालिबका जन्म और बचपन; शिक्षण; अब्दुस्समद ईरानीका प्रभाव; बौद्धिक वातावरण; तस्वीरका दूसरा रुख; काव्यकी सुप्तधारा; विवाह; आगरा और देहलीका असर; प्रारम्भिक काव्य; फजलहक खैराबादीका प्रभाव; काव्यपर आक्षेप; अर्थकष्टका आरम्भ; ग़ालिबकी मुसीबतें; झगडेका मूल; कलकत्ता जानेका निश्चय; लखनऊमें; अन्य स्थानोकी यात्रा; बुतोंके नगर बनारसमे, बनारसकी गंगा एवं प्रभात, कलकत्ता; कलकत्ताकी साहित्यिक कुश्तियाँ; गुले राना; कलकत्ता-यात्राका परिणाम, गालिबका दावा; लोहारूका झगड़ा; फ्रेजरका कत्ल और शम्सुद्दीनखाँको फाँसी, सीधी पेंशन और नया प्रार्थनापत्र, अन्तिम निर्णय; सलीम और जफर; लखनऊकी ओर दृष्टि 'मयखानए आर्जू'; प्रोफेसरीसे इन्कार, जुएकी लत, गिरफ्तारी; अजीजों और दोस्तोंकी तोताचश्मी; सजा; जेलमें; गहरा प्रभाव; किलेकी नौकरी; युवराजके गुरु, मोमिन एवं आरिफकी मृत्यु, जौकसे छेडछाड़, चंदरोज़ा खुशहाली; बहादुर-शाह एवं ग़ालिब; एक रोजा नही; दुनियादारी एवं व्याव-

हारिकता, गदर; चोटपर चोट; हिन्दू मित्रोकी सहायता; मुसलमान हूँ पर आधा, मिर्ज़ा यूसुफका अन्त, उस जमाने-की हालत; मिर्जाके दोस्तो एवं परिचितोकी हालत; शेफ्ता; मुफ्ती सदरउद्दीन; मौ० फजलहक, असीम कष्टों-की घटाएँ, रामपुरसे सम्बन्ध; पेशनकी चिन्ता; रामपुरसे मासिक वृत्ति; रामपुरसे, पेशनकी बहाली, ख़िलअतकी बहाली; नई दर्खास्त; नवाब यूसुफ द्वारा आदर, रामपुरकी दूसरी यात्रा; निराशा, प्रसिद्धि, शाहगौससे घनिष्टता; उर्दू किस किताबकी अच्छी है ?, बुरहान क़ातअका सघर्ष; विरोधका बवण्डर; तेगे-तेज़; विरोधका कारण, हंगामए दिल आशोब, तेगेतेजतर, शमशीर तेजतर; शरीरका निरन्तर ह्रास; चर्मरोगसे कष्ट, लम्बी बीमारी, विलग्रामीका चित्र; अजीज द्वारा लिखित विवरण; आर्थिक चिन्ताएँ, रामपुर दरबारसे निराशा, मृत्युकी आकाक्षा; वह करुणाजनक पत्र; अन्तकाल; अन्तिम क्रिया; पारिवारिक सुखके लिए तड़पते ही रहे, पत्नी एव पोषित बच्चे, बाकरअली एवं उनकी संतति, हुसेनअली, उमराव बेगम]

२. **ग़ालिबका जीवन : रहन-सहन, स्वभाव और आचरण** ··· १२६–१४२

[व्यक्तित्व, वस्त्र-विन्यास और भोजन; निवास; नौकर; अध्ययन; पत्र-लेखन, काव्य-रचना; शिष्टता एवं मित्र-परायणता; उदारता, आत्माभिमान, धार्मिक औदार्य, दूसरे कवियोके प्रशंसक; पारिवारिक जीवन, मौलिकता एवं नवीनताके प्रति आकर्षण]

३. **ग़ालिब : दाम्पत्य-जीवन** ··· ··· १४३–१५६

[टकरानेके लिए मिलन, उमरावका बचपन; एक अन्तर, अपना सोचा कहाँ होता है ? दिलोके बीच खाई बढती गयी, दूसरी औरतका आकर्षण, उमरावकी गूढ वेदना; सन्तानके

अभावकी व्यथा; दूरी पैदा करनेवाली निराशा; खोखले हास्यके पीछे भयानक चेहरा, नोंक-झोंक]

४. ग़ालिबका जीवन : हाज़िरजवाबी तथा व्यंग-विनोद-वृत्ति···· १५७–१६८

[लखनऊ एवं दिल्लीकी जवान; पुल्लिग या स्त्रीलिंग ? गोरेकी कैद बनाम कालेकी क़ैद; "आधा मुसलमान हूँ"; वागी कैसे गिना गया ?, ख़ुदा या आप ?; गाली देनेकी भी कला होती है; तुम सौदाई हो; शैतानकी कोठरी; आमो पर नाम, बेशक गधा नही खाता; पीडामे भी विनोद; शराबीको और क्या चाहिए ?; जाडेमे भी ?; धोखेमे नजात मिल गयी; वहाँ कौन पकडेगा ?, मेरे पीपलके पत्ते क्यों न खा लिये ?, चीलके घोसलेमे माँस कहाँ ?; शैतान गालिब है !, कर्जकी शराब, पत्नी या फाँसीका फन्दा ?, मियाँ तोते ! तुम्हे क्या फिक्र है ?, आपसे बढकर भी बला है ?]

५. ग़ालिब : जीवन एवं काव्यकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि··· १६९–२०३

[साम्राज्योकी श्मशान-भूमि, राजमार्गपर बढते ब्रिटिश चरण, नैतिक विशृङ्खलता; बे-ताजोतख्त शाहआलम; अंग्रेजोके संरक्षणमे, दिल्लीमे; अकल्पनीय यन्त्रणाओका जीवन; अकबर द्वितीय, सबसे प्रिय पुत्र तथा भृत्यकी बढती हुई शक्ति, अंग्रेजोके साथ संघर्ष; बादशाहकी मर्यादाका सवाल, इग्लैण्डके सम्राट्को स्मृतिपत्र, राजा राममोहन राय द्वारा बादशाहका प्रतिनिधित्व; नियतिका उलटा चक्र; हास्यजनक स्थिति; किलेकी हालत, सम्राट्की ऊपरसे भरी पर अन्दरसे खोखली जिन्दगी; कहानी खतम हो गयी; गालिबके जीवन-कालकी राजनीतिक स्थिति; नजा हुआ मुर्दा; मुगलकालीन सामाजिक अवस्था, मुगलोका पतन, रईस-

जादोंकी हालत; भ्रष्टाचार; काव्यका समादर एवं उर्दूका संरक्षण; आत्मरोदन; जन-जीवनके स्तर एवं उनकी झाँकी; निराशाका युग; चेतनाके दो रूप, अंग्रेजोंमे भी दो वर्ग; शाप या वरदान, इससे तो टूट जाना अच्छा, ऐतिहासिक आवश्यकता; सब दृष्टियोसे भारतीयोको समत्वका अधिकार देना अच्छा है; साम्प्रदायिक वैमनस्यका अभाव; वातायन जिससे जीवनकी वायुके झकोरे आते रहे; दो प्रवृत्तियाँ; सार्वभौमिकताके तीन प्रतिद्वन्द्वी, मराठा शक्तिकी त्रुटि; मराठा शक्तिका अन्त; आत्मगौरव और आत्मसुधारकी दो धाराएँ, उच्च वर्गोमे शिक्षणका रूप; उर्दूका जन्म, नवीनका आकर्षण; आत्मवेदना ही नही, युग-वेदना भी, प्राचीनके बीच नवीनकी पकड़—यह थे गालिब; विधवा-सी उपहासका साधन दिल्ली, मिटते प्राचीनमेसे फूटता नवीन; गालिबका कार्य; अंग्रेजोको इन्कार करना जमानेको इन्कार करना होता ।]

समीक्षा-भाग [२०५–३५७]

१. गालिब : मानसिक पृष्ठभूमि और मानवीय संवेदनाएँ···२०७–२२६

[मानवकी वह बुभुक्षा और प्यास; अन्तर्विरोध व्यक्ति और युग दोनोके अन्तर्विरोध है; अन्तर्विरोधोको समतल करनेवाला तत्त्व, वह जमाना !; खुशहालीके पीछे झाँकती यतीमी; निर्बाध जीवनकी डगरपर, स्थायी पतझडका जीवन, जीवनकी प्यास; रोदनको मुसकराहटकी गोदमे उछालनेवाला इंसान; अर्शपर उछालनेवाला गम नही; वह गम भी नही जो कभी दूर न हो, दुनियासे मुहब्बत सिखानेवाला गम; मुगलका रंग, यह अदम्य प्यास ही जीवनका उत्स और काव्यका प्राण है; जीवन गति है; गमोको

चीरकर बहते हुए सुख और हास्यके झरने; यह विश्वास ही गालिबका ऐश्वर्य है; जहाँ गम गम नहीं, सुखकी सीढ़ी है; गालिब और मीरके मानसिक निर्माणमे अन्तर; गालिबकी कुंजी; क्या उसकी माशूका बाजारू है ?; मानवी प्रेयसी; वातावरण और सगति; वासना ही जीवनका सत्य है; तीव्र आसक्तियोके मूलमे एक अनासक्ति भी है; राहसे वेखबर पर नवीनका स्वागत करनेको उत्सुक; एक मानवमे अनेक मानव ।]

२. ग़ालिबके काव्यमें दर्शन २२७–२५४

[क्या गालिब दार्शनिक थे ? दार्शनिकका कार्य; कविका कार्य; जीवन दर्शन देनेवाले कवि; ग़ालिब उनमे नही; गजलगो शाइरकी मर्यादा; बन्धनोको चुनौती देनेवाला कवि; एक अर्थमे दर्शनशास्त्री है; संसारमे मचलता सौन्दर्य; आसमान; जहान, वयावान और समुद्र; जगत्का रूप; संसार उसीका आईना है; दरिया और कतरा; संसार माशूकके हुस्नका जल्वा है; 'प्रसाद'से साम्य; हमारा मुँह उसीका मुँह है; अभेद तत्त्व; तब अन्तर्विरोध क्या है ?; मलिनताकी पृष्ठभूमिपर प्रकाशका गौरव; सब कुछ उसका है, दृष्टिका पर्दा; दुःख-दर्द माशूककी अदाएँ है; हर चीज प्यारके क़ाविल है; तुम्हारी कृपा हमे लूट लेगी, मिट्टीके पर्देमे मचलता प्रलय; मानव; अबाध कामनाका कवि, कामना ही माशूकसे जोड़ती है; उनके जीवनकी जड़ें इसी संसारकी धरतीमे गहरी गयी है; जन्नतका लोभ हेय है; विहिश्तके तसव्वुरमे कलेजा मुँहको आता है, मंजिलका नही राहका; तृप्तिका नही तृष्णाका कवि; हँसीमे रोदन, रोदनमे हँसी; जिसमे आसक्तियाँ अनासक्तिकी गोदमे सो जाती है; मूढ परम्पराओंसे ऊपर; तत्त्ववेत्ता न होकर भी तत्त्ववेत्ता; ज़िन्दगी और कामनाकी अगणित भंगिमाएँ उसके काव्यमे मचलती है;]

३ ग़ालिबकी रचनाएँ २५५–२६६

[फ़ारसी पद्य : कुल्लियाते नज्म फारसी, अब्रे गुहरबार, सबदे-चीन; सबद बाग़े दोदर, दुआए सबाह। फ़ारसी गद्य : पंच आहंग, मेह्र नीमरोज; दस्तबू; कुल्लियाते नस्र; कातअ बुरहान; दुरक्श कावयानी; मआसिर गालिब; मुतफर्रकाते गालिब। उर्दू पद्य : दीवाने गालिब; नुस्ख़ हमीदिय:, अर्शी-सम्पादित दीवाने गालिब। उर्दू गद्य : ऊदे हिन्दी, उर्दूए मुअल्ला, मकातीबे गालिब; नादिराते ग़ालिब, ख़ुतूते गालिब; नकाते ग़ालिब; नामए ग़ालिब]

४ ग़ालिबका काव्य—१ : विकास-रेखा २६७–२८३

[इन आलोचनाओंमे प्रकाश उतना नही जितना अन्धकार है, यह अन्धपूजा, प्रारम्भिक काव्य : बेदिलका प्रभाव; कृत्रिमताका आधिक्य; खूबसूरत लाशानी कविता, इस जंगलमे प्राणोन्मादक फूल भी है; भावीकी झलक। मध्ययुगका काव्य : उर्फी और नजीरीका रंग, ज्योतिर्मयी कल्पना; संशोधनकी कलाका निखार। प्रौढ़युगका काव्य : शिल्प और सौन्दर्यकी पराकाष्ठा। उत्तरकालिक काव्य :]

५ ग़ालिबका काव्य—२ : लोकप्रियताका रहस्य २८४–२९०

[उर्दूका सबसे जिन्दा शाइर; विविधताका कवि, राहमे चलते चलो, अनेक रूपरूपाय; अनेक शैलियाँ, गहरी मानवीय अपील,]

६ ग़ालिबका काव्य—३ : प्रेम और सौन्दर्य २९१–३०७

[प्रेम जीवनका उत्स है, फारसी काव्यकी जमीन; प्रेमीकी मुसीबतें, ईरानका गुल है, भारतका कमल नही; आँख और दिलका खेल, दृष्टि सौन्दर्यका आधान है; लज्जतपरस्ती; उपासनापूर्ण

प्रेमपर व्यंग; कामनाका डक है, इन्द्रियलुब्धता नही; अहं जो समर्पणमे बाधक है; शाश्वत जलन वाली तृष्णा;]

७. ग़ालिबका काव्य—४ : काव्य-शिल्प ३०८–३३२

[जबान; छन्द-सोमाका विस्तार; व्यंजनाका प्रवाह; अंगसौष्ठव और चित्राङ्कन; चित्रकारी; वेदना और तड़प; प्रकृतिके चित्र; चिन्तन एवं अनुभूतिका सन्तुलन; भावना एवं अनुभूतिकी विविधता; नवीन उपमाएँ; रूपक, उत्प्रेक्षाएँ; शोखी; व्यंग-विनोद; अर्थ-वैचित्र्य; प्रेम-दर्शन; तसव्वुफ; वेदनाविह्वलता और आर्द्रता; निराशा; मुहाकात; मुआमिल:बदी; उलटवासियाँ; दोष ।]

८. ग़ालिब तथा अन्य कवि : तुलना ३३३–३५७

[**मीर और ग़ालिब :** जीवन-दृष्टिकी भिन्नता; इसी धरतीके पथिक; दिल्ली और शीराजका वातावरण; गालिबकी जटिलता; प्रेम-सौन्दर्यकी धारणामे अन्तर, मीरका प्रभाव । **ग़ालिब और मोमिन :** समता; गालिबकी विशेषता । **ग़ालिब और दाग़ :** दागकी तड़प, भिखारीका तर्ज । **ज़ौक़ और ग़ालिब :** उर्दू क़सीद:का सीमित क्षेत्र । **सौदा और ग़ालिब । अन्य कवि । ग़ालिब और फ़ारसी कवि ।**]

व्याख्या-भाग [३५९–३९५]

कुछ शेर—व्याख्या-सहित ३६१–३९५

काव्य-भाग [३९७–४७६]

१. दीवाने गालिब (चयन गजले) ३९९

२. क़सीदे ,, क़सीदे ४५२

३. ,, मस्नवी ४५६
४. ,, कते ४५९
५. ,, रुबाइयाँ ४६१
६. सेहरा ४६२
७. मर्सियः ४६४
८. स्फुट ४६५
९ चयन नुस्ख़. हमीदियःसे ४६६
१० अप्रकाशित काव्य ४७४

परिशिष्ट-भाग [४७७–५११]

१. परिशिष्ट १ : गालिबके कुछ शागिर्द ४७९
२. परिशिष्ट २ : गदर और बादके ज़मानेकी दिल्ली ५०७

जीवन-भाग

ग़ालिब : जीवन-रेखा

उर्दू साहित्य, विशेषतः काव्य, के अभ्युदयमे दिल्ली और उसके बाद लखनऊका स्थान माना जाता है। उर्दू पैदा तो दिल्लीमे ही हुई थी पर बचपन उसका दक्षिणमे बीता; होश सँभालनेपर वह फिर दिल्ली आई और यही ब्याही भी गयी।

उर्दू और दिल्ली

उसका मायका चाहे दिल्लीको मानें या दक्षिणको, उसकी ससुराल तो दिल्ली ही थी और है। हाँ, तरुणाईकी अल्हड़ उमंगोसे भरी राते उसकी लखनऊमे भी बीती—यौवनकी एक लम्बी रात जो अठखेलियों, शोख़ियों, कटाक्षों और मोहक हाव-भावसे पूर्ण है; जिसमे यौवनकी वह लोच है जिसपर शत-शत प्राण निछावर; उसमे वह अदा है जिसके चरणोंमे दिल सिजदा करता है और जिसमे अगणित आलिङ्गनोका स्पर्श है। लखनऊ जो भी हो पर उर्दूके प्राण दिल्लीमे ही बसते रहे; उसका कण्ठ वही फूटा। मुग़लोकी दिल्ली, शक्तिहीन दिल्ली, षड्यन्त्रोका केन्द्र दिल्ली, बार-बार लुटी हुई दिल्ली, पददलिता और भूलुण्ठिता दिल्लीके प्रति विद्वानों, लेखकों, कवियों, पर्यटकों, लुटेरों, सेनाधिपोका आकर्षण सदा ही बना रहा और आज भी बना है। मजारोंकी भूमि, अगणित राज्योका यह श्मशान दिल्ली, जहाँ जवानी और मृत्यु गलबहियाँ दिये खेलती रही है और खेलती है, कला और काव्यके लिए भी उपजाऊ भूमि रही है।

यों हम देखते है कि रेख़ता या उर्दूका बचपन चाहे दक्षिणमे बीता हो पर उसका शिक्षण और पालन-पोषण दिल्लीमे हुआ। यह अल्हड़ दिल्लीकी गलियोमे घूमती फिरी; जामा मस्जिदकी सीढ़ियोपर सोई,

महलोमे उसके स्वरालाप गूँजे, बागोमे वह लाला व गुलसे उलझी, नर्गिस को आँखे दिखाती फिरी। मज्लिसोमे साकी बन उसने जाम पिये-पिलाये और देखते-देखते सौन्दर्य और जवानी उसमे ऐसी फट पडी कि या अल्लाह ! फिर तो उसने अपने अकमे लखनऊको भर लिया और जिधरसे गुजरी उधर ही दीवाने पैदा कर दिये, शत-शत प्राण उसपर निछावर हो गये। मीर, सौदा और नासिख, मोमिन, मीर, दर्द और इशा, जौक और गालिबने उसे क्या-क्या इशारे दिये कि उसका कण्ठ यौवनकी मस्तीमे फूटा तो फूटा और आज वह लाखोके दिल और दिमागपर छा गयी है।

उर्दू का यौवन

जिन कवियोके कारण उर्दू अमर हुई और उसमे 'वहारे वेखिजाँ' आई उनमे मीर और गालिब सबसे अधिक प्रसिद्ध है। मीरने उसे घुलावट, मृदुता, सरलता, प्रेमकी तल्लीनता और अनुभूति दी तो गालिबने उसे गहराई, बातको रहस्य बनाकर कहनेका ढंग, खमोपेच, नवीनता और अलङ्करण दिये।

आश्चर्य तो यह है कि दिल्ली (उस समय शाहजहानाबाद) मे उर्दू फूली-फली पर जिन दो सर्वोत्कृष्ट कवियो—मीर और गालिब—ने उर्दू काव्यको सर्वोत्तम निधियाँ प्रदान की, वे दिल्लीके नही, अकबराबाद (आगरा) के थे। यह ठीक है कि उनका अभ्युदय दिल्लीमे हुआ, उनकी सस्कृति दिल्लीकी थी पर उनको जन्म देनेका श्रेय तो अकवरावाद (आगरा) को है ही।

आगराकी देन

ईरानके इतिहासमे जमशेदका नाम प्रसिद्ध है। यह थिमोरसके बाद सिहासनासीन हुआ था। जश्ने नौरोज़का आरम्भ इसीने किया था जिसे आज भी, हमारे देशमे, पारसी लोग मनाते है। कहते है, इसीने द्राक्षासव या अगूरीको जन्म दिया था। फारसी एव उर्दू काव्यमे 'जामे-जम' (जो 'जामे जमशेद'का

वंश-परम्परा

संक्षिप्त रूप है)* अमर हो गया है। इससे इतना तो मालूम पड़ता ही है कि यह मदिराका उपासक था और डटकर पीता-पिलाता था। जमशेदके अन्तिम दिनोंमे बहुतसे लोग उसके शासन एवं प्रबन्धसे असन्तुष्ट हो गये थे। इन बागियोका नेता जहाक था जिसने जमशेदको आरेसे चिरवा दिया था पर वह स्वयं भी इतना प्रजा-पीडक निकला कि सिहासनसे उतार दिया गया। उसके बाद जमशेदका पोता फरीदूँ गद्दीपर बैठा जिसने पहली बार अग्नि-मन्दिरका निर्माण कराया। यही फरीदूँ गालिब वंशका आदि पुरुष था।

फरीदूँका राज्य उसके तीन बेटों एरज, तूर और सलममे बँट गया। एरजको ईरानका मध्य भाग, तूरको पूर्वी तथा सलमको पश्चिमी क्षेत्र मिले। चूँकि एरजको प्रमुख भाग मिला था इसलिए अन्य दोनो भाई उससे असन्तुष्ट थे; उन्होंने मिलकर षड्यन्त्र किया और उसे मरवा डाला पर बादमे एरजके पुत्र मनोचहरने उनसे ऐसा बदला लिया कि वे तुर्किस्तान भाग गये और वहां तूरान नामका एक नया राज्य कायम किया। तूर-वश और ईरानियोमे बहुत दिनों तक युद्ध होते रहे। तूरानियोके उत्थान-पतनका क्रम चलता रहा। अन्तमे ऐबकने ख़ुरासान, इराक़ इत्यादिमे सैलजूक राज्यकी नींव डाली। इस राज-वंशमे तोगरलबेग (१०३७–१०६३ ई०), अलप अर्सलान (१०६३–१०७२ ई०) तथा मलिकशाह (१०७२–१०९२ ई०) इत्यादि हुए जिनके समयमे तूसी एवं उमर

---

* जामेजम = कहते है, जमशेदने एक ऐसा जाम (प्याला) बनवाया था जिससे ससारकी समस्त वस्तुओं और घटनाओका ज्ञान हो जाता था। जान पड़ता है इस प्यालेमे कोई ऐसी चीज पिलाई जाती होगी जिसे पीनेपर तरह-तरहके काल्पनिक दृश्य दीखने लगते होगे। जामेजमके लिए जामे जमशेद, जामे जहाँनुमाँ, जामे जहाँबी इत्यादि शब्द भी प्रचलित है।

खय्यामके कारण फारसी काव्यका उत्कर्ष हुआ। मलिकशाहके दो बेटे थे। छोटेका नाम बर्कियारुक (१०९४–११०४ ई०) था। इसीकी वंश-परम्परामे 'गालिब' हुए।

जब इन लोगोका पतन हुआ, खान्दान तितर-बितर हो गया। लोग किस्मत आजमाने इधर-उधर चले गये। कुछने सैनिक सेवा की ओर ध्यान दिया। इस वर्गमे एक थे तर्समखाँ जो समरक़न्दमे रहने लगे थे। यही गालिबके परदादा थे।

तर्समखाँके पुत्र कौकान बेगखाँ, शाहआलमके जमानेमे, अपने बापसे झगड़कर हिन्दुस्तान चले आये। उनकी मातृभाषा तुर्की थी; हिन्दुस्तानीमे बड़ी कठिनाईसे चन्द टूटे-फूटे शब्द बोल पाते थे।

दादा और पिता

यह कौकानबेग गालिबके दादा थे। वह कुछ दिन लाहौर रहे, फिर दिल्ली चले आये और शाहआलमकी नौकरीमे लग गये। ५० घोडे, भेरी और पताका इन्हे मिली और पहासूका पर्गना रिसाले और अपने खर्चके लिए इन्हे मिल गया। कौकानबेगके चार बेटे और तीन बेटियाँ थी। बेटोमे अब्दुल्लाबेग और नसरुल्लाबेगका वर्णन मिलता है। यही अब्दुल्लाबेग गालिबके पिता थे।

अब्दुल्लाबेगका जन्म दिल्लीमे ही हुआ था। जबतक पिता जीवित रहे मजेसे कटी पर उनके मरते ही पहासूकी जागीर हाथसे निकल गयी।

गालिबकी रचनाएँ—कुल्लियाते नस्र और उर्दू-ए-मोअल्ला—देखनेसे मालूम होता है कि उनके बाप अब्दुल्लाबेगखाँ, जिन्हे मिर्जा दूल्हा भी कहा जाता था, पहिले लखनऊ जाकर नवाब आसफउद्दौलाकी सेवामे नियुक्त हुए। कुछ ही दिनों बाद वहाँसे हैदराबाद चले गये और नवाब निज़ाम अलीखाँकी सेवा की। वहाँ ३०० सवारोके रिसालेके अफसर रहे। वहाँ भी ज्यादा दिन नहीं टिके और अलवर पहुँचे तथा राजा बख्तावर सिहकी नौकरीमे रहे। १८०२ मे वही गढीकी लड़ाईमे इनकी मृत्यु हो गयी। पर बापकी मृत्युके बाद भी वेतन असदउल्लाखाँ (ग़ालिब) तथा उनके

छोटे भाईको मिलता रहा। तालड़ा नामका एक गाँव भी जागीरमे मिला। इसप्रकार इनका वंश-वृक्ष यों बनता है:—
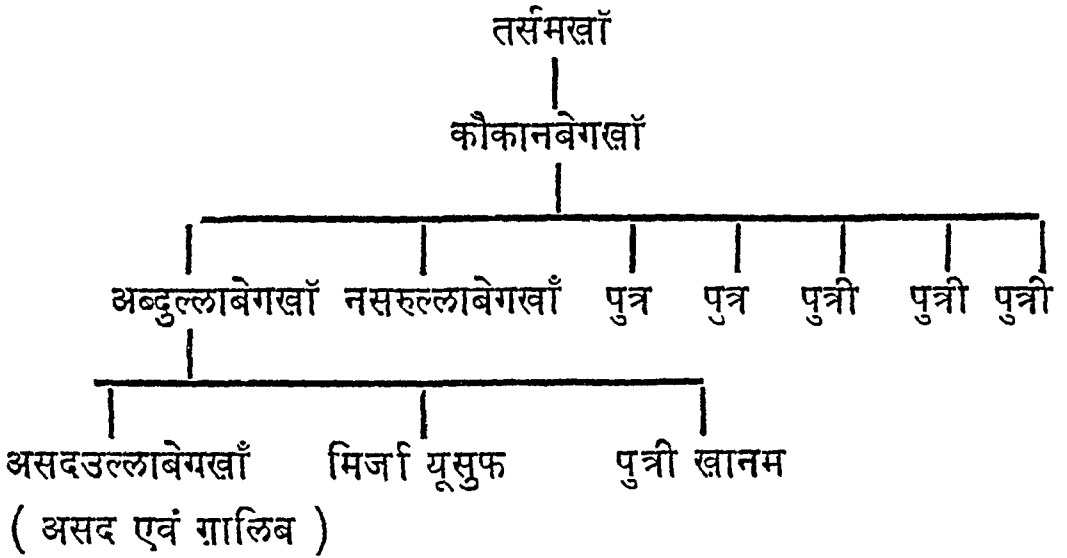
अब्दुल्लाबेगकी शादी आगरा (अकबराबाद) के एक प्रतिष्ठित कुलमे ख़्वाजा ग़ुलामहुसेनख़ाँ कमीदानकी बेटी इज्जतउन्निसाके साथ हुई थी। गुलामहुसेनख़ाँकी आगरामे काफी जायदाद थी। वह एक फ़ौजी अफसर थे। इस विवाहसे अब्दुल्लाबेगको तीन सन्तानें हुई—मिर्जा असदउल्लाबेगखाँ, मिर्जा यूसुफ और सबसे बडी ख़ानम।

गालिबका जन्म और बचपन

मिर्जा असदउल्लाख़ाँका जन्म ननिहाल, आगरामे ही २७ दिसम्बर १७९७ ई० को, रातके समय, हुआ। चूँकि पिता फ़ौजी नौकरीमें इधर-उधर घूमते रहे इसलिए ज्यादातर इनका पालन-पोषण ननिहालमें ही हुआ। जब यह पाँच साल-के थे तभी पिताका देहावसान हो गया। पिताके बाद चचा नसरुल्लाबेगख़ाँने इन्हे बड़े प्यारसे पाला। नसरुल्लाबेग मराठोकी ओरसे आगराके सूबेदार थे पर जब लार्ड लेकने मराठोंको हराकर आगरा पर अधिकार कर लिया तब यह पद भी टूट गया और उसकी जगह एक अंग्रेज़ कमिश्नरकी नियुक्ति हुई। किन्तु नसरुल्लाबेगखाँके साले लोहारूके नवाब फ़ख़्रुद्दौला अहमदबख़्शख़ाँकी लार्ड लेकसे मित्रता थी। उनकी

सहायतासे नसरुल्लाबेग अंग्रेजी सेनामे ४०० सवारोके रिसालदार नियुक्त हो गये। रिसाले तथा इनके भरण-पोषणके लिए १७०० रु० तनख्वाह तय हुई। इसके बाद मिर्जाने स्वयं लडकर भरतपुरके निकट सोंक और सोसाके दो परगने होलकरके सिपाहियोसे छीन लिये जो बादमे लार्ड लेक द्वारा इन्हे दे दिये गये। उस समय सिर्फ इन परगनोसे ही लाख डेढ लाखकी सालाना आमदनी थी।

पर एक ही साल बाद चचाकी मृत्यु हो गयी। *लार्ड लेक द्वारा नवाब अहमदबख्शखाँको फीरोजपुर झुर्काका इलाका पचीस हजार सालाना कर पर मिला हुआ था। नसरुल्लाखाँकी मृत्युके बाद उन्होने यह फैसला करा लिया कि 'पचीस हजारका कर माफ कर दिया जाय। इसकी जगह ५० सवारोका एक रिसाला रखूँ जिसपर पन्द्रह हजार सालाना खर्च होगा और जो आवश्यकता पडनेपर अंग्रेज़ सरकारकी सेवाके लिए भेजा जायगा। शेष १० हज़ार नसरुल्लाखाँके उत्तराधिकारियोको वृत्ति-रूपमे दिया जाय।' †यह शर्त मान ली गयी।

---

*किसी लडाईमे लड़ते हुए हाथीसे गिरकर १८०६ मे इनका देहावसान हुआ था।

† न जाने कैसे, इसके एक मास बाद ही ७ जून १८०६ ई० को, गुप्त रूपसे, नवाब अहमदबख्श खाँने अंग्रेज सरकारसे एक दूसरा आज्ञापत्र प्राप्त कर लिया जिसमे लिखा था कि नसरुल्लाबेगखाँके सम्बन्धियोको पाँच हजार सालाना पेंशन निम्नलिखित रूपमे दी जाय—

१ ख्वाजा हाजी (जो ५० सवारोके अफसर थे)—दो हजार सालाना।

२ नसरुल्लाबेगकी माँ और तीन बहिने—डेढ हजार सालाना।

३ मीरजा नौशा और मीरजा यूसुफ (नसरुल्लाके भतीजों) को डेढ हजार सालाना, इस प्रकार १० हजारसे ५ हजार हुए और ५ हजारमे भी सिर्फ ७५०-७५० सालाना गालिब और उनके छोटे भाईको मिले।

॰यह ठीक है कि बापकी मृत्युके बाद चचाने इनका पालन किया पर शीघ्र ही उनकी मृत्यु हो गयी और यह अपनी ननिहाल आ गये। पिता स्वय घर-जमाईकी तरह, सदा ससुरालमे रहे। वही उनकी सन्तानोका भी पालन-पोषण हुआ। ननिहाल खुशहाल था। इसलिए गालिबका बचपन ज्यादातर वही बीता और बडे आरामसे बीता।॰ उन लोगोके पास काफी जायदाद थी। गालिब खुद अपने एक पत्रमे 'मफीदुल खलायक' प्रेसके मालिक मुशी शिवनारायणको, जिनके दादाके साथ गालिबके नानाकी गहरी दोस्ती थी, लिखते हैं :—

"हमारी बडी हवेली वह है जो अब लक्खीचन्द सेठने मोल ली है। इसीके दरवाजेकी सङ्गीन बारहदरीपर मेरी नशस्त थी।§ और पास उसीके एक 'खटियावाली हवेली' और सलीमशाहके तकियाके पास दूसरी हवेली और काले महलसे लगी हुई एक और हवेली और इससे आगे बढकर एक कटरा कि वह 'गडरियोवाला' मशहूर था और एक कटरा कि वह 'कश्मीरनवाला' कहलाता था, इस कटरेके एक कोठे पर मै पतङ्ग उडाता था और राजा बलवान सिहसे पतङ्ग लड़ा करते थे।"

---

§ ॰"यह बडी हवेली.......अब भी पीपलमण्डी आगरामे मौजूद है।॰ इसीका नाम 'काला' (कलॉ ?) महल है। यह निहायत आलीशान इमारत है। यह किसी जमानेमे राजा गजसिहकी हवेली कहलाती थी। राजा गजसिह जोधपुरके राजा सूरजसिहके बेटे थे और अहदे जहाँगीरमे इसी मकानमे रहते थे। मेरा ख्याल है कि मिर्जाकी पैदाइश इसी मकानमे हुई होगी। आजकल (१९३८ ई०) यह इमारत एक हिन्दू सेठकी मिल्कियत है और इसमे लड़कियोका मदरसा है।"—'जिक्रे ग़ालिब' (मालिकराम), नवीन सस्करण, पृष्ठ २१।

मतलब ननिहालमे मजेसे गुज़रती थी। आराम ही आराम था। एक ओर खुशहाल परन्तु पतनशील उच्च मध्यमवर्गकी जीवन-विधिके अनुसार इन्हे पतङ्ग, शतरञ्ज और जुएकी आदत लगी, दूसरी ओर उच्चकोटिके बुजुर्गोंकी सोहवतका लाभ मिला। इनकी माँ स्वय शिक्षिता थी पर गालिवको नियमित शिक्षा कुछ ज्यादा नही मिल सकी। हाँ, ज्योतिष, तर्क, दर्शन, सङ्गीत एवं रहस्यवाद इत्यादिसे इनका कुछ न कुछ परिचय होता गया। फ़ारसीकी प्रारम्भिक शिक्षा इन्होने आगराके उस समयके प्रतिष्ठित विद्वान् मौलवी मोहम्मद मोवज्ज़मसे प्राप्त की। इनकी ग्रहण शक्ति इतनी तीव्र थी कि वहुत जल्द वह ज़हूरी जैसे फारसी कवियोका अध्ययन अपने आप करने लगे वल्कि फारसीमे गज़ल भी लिखने लगे।

शिक्षण

इसी ज़माने (१८१०–१८११ ई०) मे मुल्ला अब्दुस्समद ईरानसे घूमते-फिरते आगरा आये और इन्हीके यहाँ दो साल तक रहे। यह ईरानके एक प्रतिष्ठित एवं वैभवसम्पन्न व्यक्ति थे और यज्दके रहनेवाले थे। पहिले जरतुस्त्रके अनुयायी थे पर वादमे इस्लामको स्वीकार कर लिया था। इनका पुराना नाम हरमुज्द था। फारसी तो उनकी घुट्टीमे थी। अरवीका भी उन्हे वहुत अच्छा ज्ञान था। इस समय मिर्जा १४ सालके थे और फारसीमे उन्होने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। अव मुल्ला अब्दुस्समद जो आये तो उनसे दो वर्ष तक मिर्जाने फारसी भाषा एवं काव्यकी वारीकियोका ज्ञान प्राप्त किया और उनमे ऐसे पारङ्गत हो गये जैसे खुद ईरानी हों। अब्दुस्समद इनकी प्रतिभासे चकित थे और उन्होने अपनी सारी विद्या इनमे उँडेल दी। वह इनको वहुत चाहते थे। जव वह स्वदेश लौट गये तब भी दोनोंका पत्र-व्यवहार जारी रहा। एक-वार गुरुने शिष्यको एक पत्रमे लिखा—"ऐ अजीज़! च. कसी? कि

अब्दुस्समद ईरानीका प्रभाव

बाई हमऽ आजादेहा गाह गाह बख़ातिर मी गुजरी।"* इससे स्पष्ट है कि मुल्लासमद अपने शिष्यको बहुत प्यार करते थे।

काजी अब्दुल वदूद तथा एक-दो और विद्वानोंने अब्दुस्समदको एक कल्पित व्यक्ति बताया है। कहा जाता है कि मिर्जासे स्वयं भी एकाध बार सुना गया कि 'अब्दुस्समद' एक फ़र्जी नाम है। चूँकि मुझे लोग बे-उस्ताद कहते थे, उनका मुँह बन्द करनेको मैंने एक फ़र्जी उस्ताद गढ लिया है।"§ पर इस तरहकी बातें केवल अनुमान और कल्पनापर आधारित है। अपने शिक्षणके सम्बन्धमे स्वय मिर्जाने एक पत्रमे लिखा है—

"मैंने अय्यामे दबिस्ता नशीनीमे[1] 'शरह मातए-आमिल' तक पढ़ा। बाद इसके लहवो लईव[2] और आगे बढकर फिस्क व फ़िजूर[3], ऐशो इशरतमे मुनहमिक[4] हो गया। फ़ारसी जबानसे लगाव और शेरो-सखुनका जौक फ़ितरी व तबई[5] था। नागाह एक शख्स कि सासाने पञ्जुमकी नस्लमे से····मन्तक व फ़िलसफामे[6] मौलवी फ़जल हक़ मरहूमका नजीर मोमिने[7] मूहिद व सूफी-साफी[8] था, मेरे शहरमे वारिद[9] हुआ और लताएफ[10] फ़ारसी····और गवामजे[11] फ़ारसी आमेख्ता ब अरबी इससे मेरे हाली हुए। सोना कसौटीपर चढ गया। जेहन माऊज न था। जबाने दरीसे पैवन्दे अजली और उस्ताद बेमुबालगा····था। हकीकत इस जबानकी दिलनशीन व ख़ातिरनिशान[12] हो गयी।" ×

---

* 'यादगारे गालिब' (हाली)—इलाहाबादी संस्करण पृष्ठ १४–१५।

§ 'आदगारे ग़ालिब' (हाली)—इलाहाबादी संस्करण पृष्ठ १३।

१. पाठशालामे पढ़नेके दिनोमे, २. खेल-कूद, ३. दुराचरण, ४. तल्लीन, ५. प्राकृतिक, स्वाभाविक, ६. तर्कशास्त्र व दर्शन, ७. धर्मात्मा, ८. सन्त, ९. प्रविष्ट, १०. विशिष्टताएँ, ११. समीक्षा, १२. हृदयमे बैठना।

× यह इशारा मुल्ला अब्दुस्समदके लिए ही है।

पर इनमे उच्च प्रेरणाएँ जागरित करनेका काम इस शिक्षणसे भी ज्यादा उस वातावरणने किया जो इनके इर्द-गिर्द था। जिस मुहल्लेमे वह रहते थे वह (गुलाबखाना) उस जमानेमे फारसी भाषाके शिक्षणका एक उच्च केन्द्र था। रूमके भाष्यकार मुल्ला वली मुहम्मद, उनके बेटे शम्सुल जुहा, मौ० बदरुद्दिजा, आजमअली आजम तथा मौ० मुहम्मद कामिल वगैरा फारसीके एक-से-एक विद्वान् वहाँ रहते थे। वातावरणमे फारसीयत भरी थी इसलिए यह उससे प्रभावित न होते, यह कैसे सम्भव था?

बौद्धिक वातावरण

पर जहाँ एक ओर यह तालीम-तर्बियत थी तहाँ ऐशो-इशरतकी महफिले भी इनके इर्द-गिर्द बिखरी हुई थी। दुलारे थे, पैसे-रुपयेकी कमी न थी, बाप एव चचाके मर जानेसे कोई दबाव रखनेवाला न था। किशोरावस्था, तबीयतमे उमङ्गे, यार-दोस्तोंके मजमे, खाने-पीने, शतरञ्ज, पतङ्गबाजी, यौवनोन्माद सबका जमघट। आदते बिगड़ गयी। 'शोरे सौदाए परीचेह्रगाँ'ने आकर्षित किया। हुस्नके अफसानोंमे मन उलझा, चन्द्रमुखियोंने दिलको खींचा। ऐशो-इशरतका बाजार गर्म हुआ। २४–२५ साल तक ख़ूब रङ्गरलियाँ की पर बादमे उच्च प्रेरणाओंने इन्हे ऊपर उठनेको बाध्य किया। ज्यादातर बुरी आदते दूर हो गयी पर मदिरा-पानकी जो लत लगी सो मरते दम तक न छूटी।

तस्वीरका दूसरा रुख़

इनकी काव्यगत प्रेरणाएँ स्वाभाविक थी। बचपनसे ही इन्हे शेरो-शायरीकी लत लगी। इश्कने उसे उभारा—गो वह इश्क बहुत छिछला और बाजारू था। जब यह मोहम्मद मोअज्जमके मकतबमे पढते थे और १०–११ सालके थे तभीसे इन्होने शेर कहना शुरू कर दिया था। शुरूमे बेदिल एवं शौकतके रङ्गमे कहते थे। बेदिलकी छाप इनपर बचपनसे ही पड़ी। २५ सालकी

काव्यकी सुप्त धारा

उम्रमें दो हजार शेरोंका एक दीवान तैयार हो गया। इसमें वही चूमा-चाटी, वही स्त्रैण भावनाएँ, वही पिटे-पिटाये मजमून थे। एकबार उनके किसी हितैषीने इनके कुछ शेर मीर तक़ी 'मीर'को सुनाये। सुनकर 'मीर' नें कहा—"अगर इस लडकेको कोई कामिल[1] उस्ताद मिल गया और उसने इसको सीधे रास्तेपर डाल दिया तो लाजवाब शायर बन जायगा वर्ना महमिल[2] बकने लगेगा।" 'मीर'की भविष्यवाणी पूरी हुई। सचमुच यह महमिल बकने लगे थे पर अन्तःप्रेरणा एवं बुजुर्गोंकी कृपासे उस स्तरसे ऊपर उठ गये। 'मीर'की मृत्युके समय गालिब केवल १३ वर्षके थे और दो ही तीन साल पहिले उन्होने शेर कहने शुरू किये थे। प्रारम्भमे ही इस छोकरे कविकी ग़जल इतनी दूर लखनऊमे 'खुदाए-सखुन' 'मीर'के सामने पढ़ी गयी और 'मीर'ने, जो बड़ों-बड़ो को ख़ातिरमे न लाते थे, इनकी सुप्त प्रतिभाको देखकर इनकी रचनाओंपर सम्मति दी, इससे ही जान पड़ता है कि प्रारम्भसे ही इनमे उच्च कविके बीज थे।

विवाह

जब यह सिफ तेरह सालके थे इनका विवाह लोहारूके नवाब अहमदबख़्श खॉ (जिनकी बहिनसे इनके चचाका ब्याह हुआ था) के छोटे भाई मिर्जा इलाहीबख़्श खॉ 'मारूफ'की लड़की उमराव बेगमके साथ ९ अगस्त १८१० ई० को सम्पन्न हुआ था। उमराव बेगम ११ सालकी थी। इस तरह लोहारू राजवंशसे इनका सम्बन्ध और दृढ हो गया। पहिले भी वह बीच-बीचमे दिल्ली जाते रहते थे पर शादीके २-३ साल बाद तो दिल्लीके ही हो गये। वह स्वयं 'उर्दू-ए-मोअल्ला' (पृ० ३८१ पर एक खत) मे इस घटनाका जिक्र करते हुए लिखते है :—

"७ रज्जब १२२५ हिजरीको मेरे वास्ते हुक्म दवामे हब्स[3] सादिर[4]

---

१. योग्य, समर्थ, २. निरर्थक, ३. स्थायी क़ैद, ४. जारी।

हुआ। एक वेड़ी (यानी बीवी) मेरे पाँवमें डाल दी और दिल्ली शहरको ज़िन्दान[1] मुकर्रर किया और मुझे इस ज़िन्दाँमे डाल दिया।"

मुल्ला अब्दुस्समद १८१०-११ ई०मे अकबरावाद आये थे और दो वर्षके शिक्षणके वाद असदउल्ला खाँ (गालिव) उन्हीके साथ आगरासे दिल्ली गये। दिल्लीमे यद्यपि वह अलग घर लेकर रहे पर इतना तो निश्चित है कि ससुरालकी तुलनामे इनकी अपनी सामाजिक स्थिति बहुत हलकी थी। इनके ससुर इलाहीवख्श खाँको राजकुमारोका ऐश्वर्य प्राप्त था। यौवन-कालमे इलाहीवख्शकी जीवन-विधिको देखकर लोग उन्हे 'शहजादए गुलफ़ाम' कहा करते थे। इससे अन्दाज लगाया जा सकता है कि उनकी वेटीका पालन-पोषण किस लाड़-प्यारके साथ हुआ होगा। असदउल्ला खाँ शक्ल-सूरतसे वडा आकर्पक व्यक्तित्व रखते थे; उनके वाप-दादे फ़ौज़मे उच्चाधिकारी रह चुके थे इसलिए ससुरको आशा रही होगी कि असदउल्ला भी आला रुतवे तक पहुँचेंगे एवं वेटी ससुरालमे सुखी रहेगी पर वह न होना था, न हुआ। अखीर तक यह शेरो-शाइरीमे पड़े रहे और उमराव वेगम, वापके घर वाहुल्यके वीच पली, लडकीको ससुरालमे वे सव सुख सपने हो गये।

मिर्जाके ससुर इलाहीवख्श खाँ न केवल वैभवशाली थे वरं चरित्रवान्, धर्मनिष्ठ तथा अच्छे कवि भी थे। वह जौक़के शिष्योमे थे। ससुरालका वंश-वृक्ष देखनेसे ही उसकी श्रेष्ठता एवं वैभवका पता चलता है। श्री-मुहम्मद अकरामने 'आसारे-गालिव' मे इनकी ससुरालका निम्नलिखित वंशवृक्ष दिया है :—

---

१. कारागार।

ख़्वाजा अब्दुर्रहमान
आलमजान
आरिफ़जान
क़ासिमजान
नवाब अहमद बख़्शख़ाँ
पुत्री (ग़ालिबके चचा नसरुल्लाबेग़से विवाहित)
इलाहीबख़्शख़ाँ 'मारूफ़' (ग़ालिबके ससुर)
नबीबख़्श
अकबर अलीख़ाँ
बहूख़ानमसे
बेगमजानसे
उमराव बेगम (ग़ालिबकी पत्नी)
बुनियादी बेगम (नवाब ग़ुलामहुसैनसे विवाहित)
शमसुद्दीन अहमद
नवाब बेगम (ज़ैनुलआब्दीनख़ाँ अहमद 'आरिफ़' से विवाहित)
अमीनुद्दीन
ज़ियाउद्दीन अहमद
कुदरतउल्ला बेग
मुहम्मद बख़्श
फ़ैज़उल्लाख़ाँ
फ़तहउल्ला बेग
नवाब ग़ुलामहुसैनख़ाँ 'मसरूर'
मुहम्मद हुसैन
मुईनुद्दीन
ज़ियाउद्दीन अहमद ख़ाँकी पत्नी
ज़ैनुल आब्दीन 'आरिफ़'
हैदरहुसैन
बाक़र अलीख़ाँ
हुसेन अलीख़ाँ
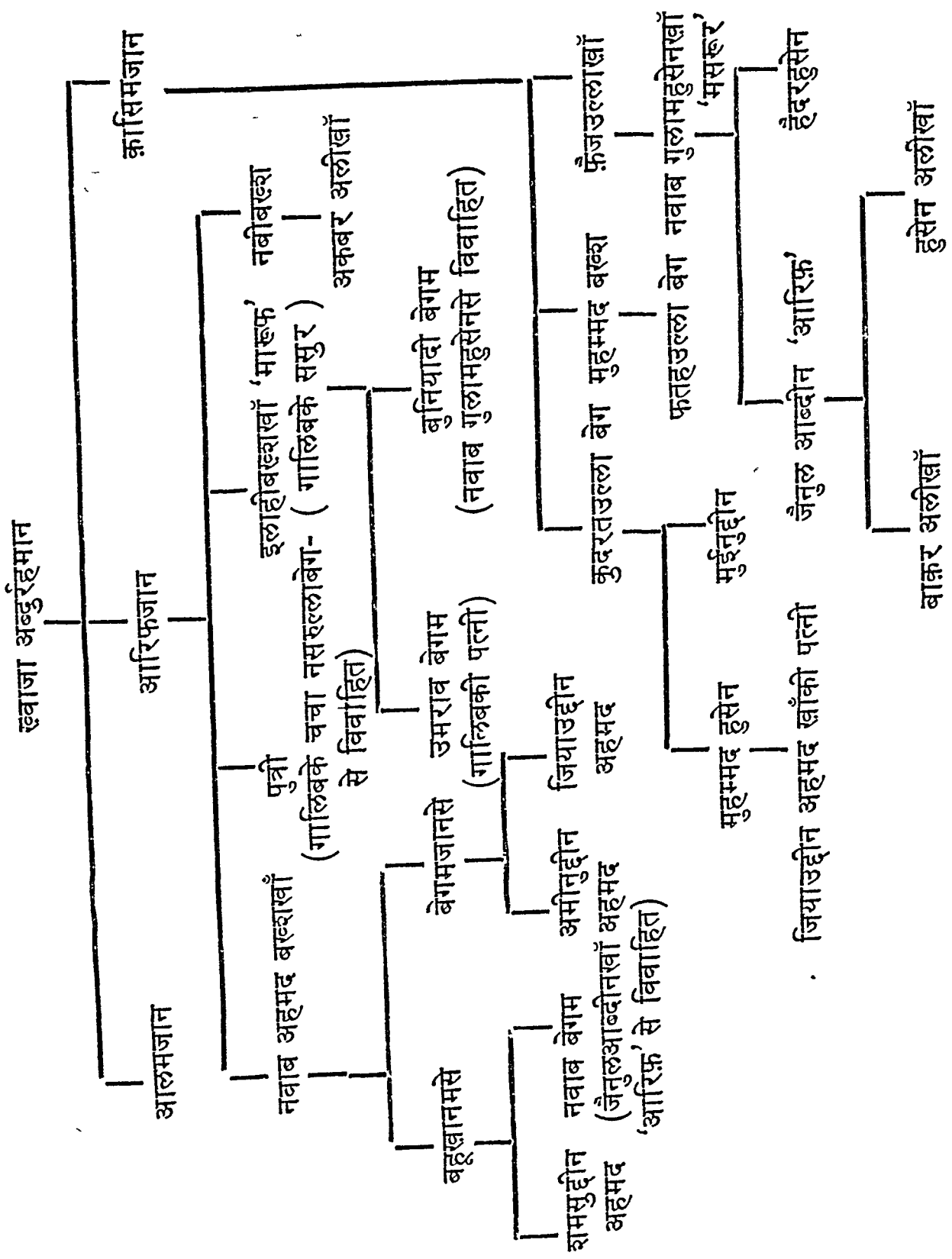
०विवाहके दो-तीन साल बाद मिर्जा स्थायी रूपसे दिल्ली आ गये और उनके जीवनका अधिकाश भाग दिल्लीमे ही गुजरा। गालिबके पिताकी अपेक्षा उनके चचाकी हालत कही अच्छी थी और उनका सम्मान भी अधिक था। पिताका तो अपना घर भी न था; वह जन्म भर इधर-उधर

आगरा और देहलीका असर

मारे-मारे फिरते रहे; जबतक रहे घर-जमाई रहे।० घर-जमाईका ससुरालमे प्रधान स्थान नही होता क्योकि उसकी सारी स्थिति अपनी पत्नीसे पायी हुई स्थिति होती है। मिर्जाका बचपन ननिहालमे आरामसे भले बीता हो पर बापके मरनेके बाद उनके-जैसे भावुक बच्चेपर अपनी यतीमीका भी असर पडा होगा; उन्होने कभी यह भी ख्याल किया होगा कि मेरा इसमे क्या है। चचाकी मृत्युके बाद ये विचार और प्रबल एवं कष्टजनक हुए होगे। यतीमीके कारण इनका ठीक राहसे भटक जाना और लफगाई करना स्वाभाविक-सा रहा होगा। दिल्ली आनेका भी कारण यही रहा होगा कि वहाँ कुछ अपना बना सकूँगा।०दिल्ली आनेपर कुछ समय तक तो माँ कभी-कदाच इनकी सहायता करती रही पर मिर्जाके असंख्य पत्रोमे कही भी मामा वगैरासे किसी प्रकारकी मदद मिलनेका उल्लेख नही है। इसलिए जान पडता है, धीरे-धीरे इनका सम्बन्ध ननि-हालसे बिलकुल खत्म हो गया था।०

दिल्लीमे ससुर तथा उनके प्रतिष्ठित साथियो एवं मित्रोके काव्य-प्रेमका इनपर अच्छा असर हुआ। इलाहीबख्शखाँ पवित्र एवं रहस्यवादी प्रेमसे पूर्ण काव्य-रचना करते थे। वह पवित्र विचारोके आदमी थे। उनके यहाँ सूफियो तथा शायरोका जमघट रहता था। निश्चय ही गालिबपर इन गोष्ठियोका अच्छा असर पड़ा होगा। यहाँ उन्हे तसव्वुफका परिचय मिला होगा, और धीरे-धीरे यह जन्मभूमि आगरामे बीते बचपन तथा बादमे किशोरावस्थामे दिल्लीमे बीते दिनोके बुरे प्रभावोसे मुक्त हुए होगे।०दिल्ली आनेपर भी शुरू-शुरूमे तो मिर्जाका वही तर्ज रहा पर बादमे यह सँभल गये।०

कहा जाता है कि मनुष्यकी कृतियाँ उसके अन्तरका प्रतीक होती हैं। मनुष्य जैसा अन्दरसे होता है, उसीके अनुकूल वह अपनी अभिव्यक्ति कर पाता है। चाहे कैसा ही भ्रामक परदा हो, अन्दरकी झलक कुछ न कुछ परदेसे छनकर आ ही जाती है। इनके प्रारम्भिक काव्यके चन्द नमूने लीजिए।

प्रारम्भिक काव्य

[१]नियाज़े-इश्क़, ख़िर्मनसोज़ असबाबे-हविस बेहतर।
जो हो जावें निसारे-बर्क़[२] मुश्ते-ख़ारो-ख़स बेहतर।

× × ×

देखता हूँ उसे थी जिसकी तमन्ना मुझको।
आज बेदारी[३] में है ख़्वाबे-ज़ुलेखा मुझको।

× × ×

हँसते हैं देख-देखके सब नातवाँ[४] मुझे।
यह रंगे-ज़र्द[५] है चमने-जाफ़राँ[६] मुझे।

× × ×

देख वह बर्क़े[७]-तबस्सुम बस कि दिल बेताब है।
दीदए-[८]गिरियाँ मेरा फ़ौआरए-सीमाब[९] है।
खोलकर दरवाजए मैख़ाना बोला मैफ़रोश,
अब शिकस्ते-तोबा[१०] मयख़ारोंको फतहुलबाब है।

× × ×

१. प्रेमका परिचय, २. विद्युत् पर न्योछावर, ३. जागरण, ४. दुर्बल, ५ पीत रंग, ६. केसरका उद्यान, ७ मुसकराहटकी बिजली, ८. रुदनशील नयन, ९. पारद, १०. न पीनेकी प्रतिज्ञाका उल्लंघन।

इक गर्म आह की तो हज़ारोंके घर जले।
रखते है इश्क़में य असर हम जिगरजले।
परवानेका न ग़म हो तो फिर किसलिए 'असद'
हर रात शमअ शामसे ले तासहर जले।

× × ×

ज़ख्मे दिल तुमने दुखाया है कि जी जाने है।
ऐसे हॅसतेको रुलाया है कि जी जाने है।

× × ×

सबा लगा वो तमाँचा तरफ़से बुलबुलकी
कि रूए-गुंचए-गुल[1] सूए-आशियाँ[2] फिर जाय।

ऊपर जो शेर दिये गये है उनमे एक सवेदना, रसशीलता तो है पर उनकी अपेक्षा उनमे एक छटपटाहट, बेचैनी, जवानीके उडते हुए सपनोकी छाया और कृत्रिम कल्पनाओकी उछल-कूद अधिक है। कोई मौलिक भावना नही, कोई उथल-पुथल कर देनेवाली प्रेरणा नही। हाँ, इतना है कि बचपन से ही इनमे कवि-प्रतिभाके बीज दिखायी पड़ते है। ७-८ साल की उम्रमे यह उर्दू (रेख़ती) तथा ११-१२ सालमे फारसीमे कविता करने लगे थे।

जैसा मै पहिले लिख चुका हूँ, दिल्ली आनेपर भी बहुत दिनो तक यह अपने उसी आगराके रगमे रहे। ऐशो-इशरत, दिलकी सौदेबाज़ी और समय रईसजादोकी तरह राग-रंग या फिज़ूलके कामोमे बिताना। पर इनके हाथो उर्दूका उत्कर्ष होना था; सयोगवश इनकी मुलाकात मौलवी फजलहक खैरावादीसे हो गयी। धीरे-धीरे दोनोमे गहरी मित्रता और घनिष्ठता हो गयी। मौ० फज़लहक साहित्य एवं धर्मके गहरे अध्येता

फ़ज़लहक खैरावादीका प्रभाव

---

१. पुष्प-कलिकाका मुख, २. घोसलेकी ओर।

तो थे ही, काव्यके भी अच्छे पारखी थे।० इस जमानेकी दिल्ली यद्यपि राजनीतिक दृष्टिसे बेदम, बेजान थी पर वहाँ कुछ ऐसे विचारक एकत्र हो गये थे जो समझते थे कि धार्मिक गतानुगतिकता ही हमारे पतनका मुख्य कारण है। वे स्वतन्त्र विचारकी प्रेरणा देते थे। ऐसे लोगोमे शाहइस्माइल तथा सय्यद अहमद बरेलवी मुख्य थे। सर सय्यद अहमदखाँने इनके स्वतन्त्र विचारके इस आन्दोलनकी तुलना लूथरके 'रिफार्मेशन' आन्दोलनसे की है। इसके विरुद्ध पुरानी परम्पराके विद्वानोका दल था जिसके नेता मौ० फ़जलहक़ खैराबादी और शाह नसीर थे। मौ० फजलहकने अपने जीवन और आचरणसे गालिबपर बहुत प्रभाव डाला। गालिब उनकी बडी इज्जत करते थे पर गालिबके विचार एव चिन्तना नवीन आन्दोलनके अनुकूल थी। तरुणवर्ग शाह इस्माइलका अनुयायी था और गालिब तथा मोमिन दोनों इस सुधार एवं स्वतन्त्र चेतनाके पक्षपाती थे।०

बहरहाल, विचार-वैभिन्न्य होते हुए भी फजलहकने अपने घनिष्ठ संसर्ग एव आचरणसे गालिबपर गहरा असर डाला। गालिब इन्हे बहुत मानते थे, इनका सम्मान तथा इनकी पवित्रता एवं काव्यानुभूतिका समादर करते थे। इनकी मित्रताने वह काम किया जो पहिले किसीसे न हुआ था। फ़जलहकने इनके काव्यको नये रास्तेपर मोडा; पुराने एवं निरर्थक काव्यके संशोधनपर बाध्य किया। इनके और एक दूसरे मित्र मिर्जाखानी कोतवालके अनुरोधपर ही गालिबने अपनी पुरानी गजलोके निस्सार भागोको काटकर निकाल दिया था तथा काट-छाँटकर एक छोटा दीवान बनाया जो आज इतना लोकप्रिय है।

मौ० फ़जलहक़ने गालिबके व्यक्तित्वको एक नई मोड़ दी, तथा काव्यमे भी एक नई मोड लानेमे सफल हुए। बात यह है कि जब 'असद'

काव्यपर आक्षेप

(गालिबका पूर्व कवि-नाम) ने गजले सुनानी शुरू की तो इनके शेरोंकी विचित्रतापर बड़ा तूफान उठा; लोगोंने बड़ी आलोचना की पर अपने हठमे यह उन आप-

त्तियोकी परवाह न करते थे। इन छिद्रान्वेपकोको ही लक्ष्य कर उन्होने आगरामे एक रुबाई कही थी—

मुश्किल है ज़िबस[1] कलाम मेरा ऐ दिल।
होते है मलूल[2] इसको सुनके जाहिल*।
आसान कहनेकी करते हैं फ़र्माइश,
गोयम मुश्किल वगर्ना गोयम मुश्किल।[3]

पर न केवल आगरामे बल्कि दिल्लीमे भी ये आक्षेप जारी रहे। यह कोई विचित्रता, अद्भुतता लानेको ही काव्योत्कर्प समझते थे। इससे इनका काव्य दुरूह हो जाता था। लोग इनके काव्यको बेमानी और महमिल बताते थे। मुशायरोमे, गोष्ठियोमे, जलसोमे, महफ़िलोमे इनकी 'मुश्किल-गोई' (काव्य-जटिलता) के चर्चे होते थे। लोग कहते—'अच्छा तो कहते है पर भई बहुत मुश्किल कहते है।' कुछने कहा—'क्या अच्छा क्या बुरा, महमिल बकते है।' लोगोकी भावनाको किसीने शेरोमे भी प्रकट किया—

अगर अपना कहा तुम आपही समझे तो क्या समझे
मज़ा कहनेका जब है एक कहे और दूसरा समझे।
कलामे-मीर समझे और ज़बाने-मीरज़ा समझे।
मगर इनका कहा यह आप समझें या ख़ुदा समझे।

---

१ बहुत, २ खिन्न।

* बादमे इसे बदलकर यो कर दिया—

सुन-सुनके उसे सखुनवराने क़ामिल।

३. अर्थात् आसान कहता हूँ तो मेरे लिए कठिनाई है और अगर नही कहता हूँ तो भी कठिनाई है

एक बारकी बात है कि मौ० अब्दुल कादिर रामपुरीने, जो बड़े हास्य-प्रिय थे, मिर्जासे किसी मौकेपर कहा कि आपका एक उर्दू शेर समझमे नहीं आता और उसी समय दो मिसरे ख़ुद मौजूँ करके मिर्जाके सामने पढ़े—

पहले तो रोग़ने-गुल भैंसके अंडेसे निकाल।
फिर दवा जितनी है कुल भैंसके अंडेसे निकाल॥

मिर्जा सुनकर सख्त हैरान हुए और कहा यह मेरा शेर नही। मौ० अब्दुल क़ादिरने कहा कि मैने .ख़ुद आपके दीवानमे देखा है और दीवान हो तो मै दिखा सकता हूँ। आखिर मिर्जाको मालूम हुआ कि मुझपर इस पैराये मे एतराज करते है।*

लोगोके आक्षेपपर चिढकर कहा था—

न सताइशकी[1] तमन्ना न सिले[2] की पर्वा,
गर नहीं हैं मेरे अशआरमें मानी न सही।

जैसा लिखा जा चुका है, बादमे मौ० फजलहककी मित्रता एवं सलाह से इन्होने न केवल अपने पुराने दीवानका संशोधन एवं चयन किया वरं आगेके लिए भी अपनी राह बदल दी यद्यपि अपनी मौलिकता कायम रखी। न केवल काव्यमे वरं जीवनमे भी परिष्कार हुआ। शराब तो न छूटी पर लफंगई छूट गयी।

अर्थ-कष्टका आरम्भ

पर विवाहके बाद इनकी आर्थिक कठिनाइयाँ बढती ही गयी। आगरा-मे, ननिहालमे, इनके दिन आराम व आसाइशसे बीतते थे। 'शाहिद व शमअ व शराब व शकर व नालये सरूद' की तृप्तिके लिए कोई कठिनाई न थी। दिल्लीमे भी कुछ दिनोंतक वही रङ्ग रहा। साढे सात सौ सालाना पेंशन नवाब

---

* यादगारेगालिब,

१. प्रशंसा, २. पुरस्कार।

अहमद वख्शके यहाँसे मिलती थी। वह यों भी कुछ न कुछ देते रहते थे। माँके यहाँसे भी कभी-कभी कुछ आ जाता था। अलवरसे भी कुछ मिल जाता था। इस तरह मजेमे गुजरती थी। पर शीघ्र ही पासा पलट गया।

१८२२ ई० मे वृटिश सरकार एवं अलवर दरवारकी स्वीकृतिसे नवाव अहमदवख्श खाँने अपनी जायदादका वँटवारा यो किया कि उनके बाद फिरोजपुर झुर्काकी गद्दीपर उनके वडे लडके शम्सुद्दीन अहमद खाँ वैठे तथा लोहारूकी जागीर उनके दोनो छोटे वेटो अमीनुद्दीन अहमद खाँ ओर जियाउद्दीन अहमद खाँको मिले। शम्सुद्दीन अहमदकी माँ वहूखानम थीं और अन्य दोनोकी वेगमजान। स्वभावत. दोनो औरतोमे प्रतिद्वन्द्विता थी और भाइयोके दो गिरोह वन गये थे। आपसमे पटती न थी। वादमे झगडा न हो, इस भयसे नवाव अहमदवख्श खाँने अपने जीवन-कालमे ही इस वँटवारेको कार्यान्वित कर दिया और स्वय एकान्तवास करने लगे। इस प्रकार शम्सुद्दीन अहमद खाँ फिरोजपुर झुर्काके नवाव हो गये और दूसरे दोनो भाइयोको लोहारूका इलाका मिल गया।

इस वँटवारेसे गालिव भी प्रभावित हुए। भविष्यके लिए इनकी पेंशन नवाव शम्सुद्दीन अहमद खाँसे सम्वद्ध हो गयी जवकि इनका सम्वन्ध अन्य दो भाइयोसे अधिक मित्रतापूर्ण था। इसलिए उनकी पेंशनमे तरह-तरहके रोड़े अटकाये गये

गालिबकी मुसीबतें

और एप्रिल १८३१ मे वह विलकुल वन्द कर दी गयी। यद्यपि १८३५ मे नवाव शम्सुद्दीनकी गिरफ्तारीके वाद पुन. जारी हुई और १८३७ मे चार वर्षका वकाया पूरेका पूरा मिला। पर बीचमे सारी व्यवस्था भङ्ग हो जानेसे वडा कष्ट हुआ। क़र्ज वढा। फिर नवाव अहमदवख्श खाँ वीच-वीचमे जो कुछ देते रहते थे, वह भी वन्द हो गया क्योकि वह विलकुल एकान्तवासी हो गये थे और किसी मामलेमे दखल नही देते थे। गालिब-की यह हालत देख ऋणदाताओने भी अपने रुपये माँगना शुरू किया।

तकाजोंसे इनका नाकों दम हो गया। इधर यह हाल था, उधर गालिबके छोटे भाई मिर्जा यूसुफ भरी जवानी—२८ वर्षकी आयुमे पागल हो गये। चारों ओरसे कठिनाइयाँ एवं मुसीबतें एक साथ उठ खड़ी हुईं और जिन्दगी दूभर हो गयी।

इधर यह अर्थकष्ट एवं अन्य विपत्तियाँ, उधर गरीबीमे भी अमीरी शान। ससुरालके कारण मिर्जाका परिचय दिल्लीके सबसे अधिक प्रतिष्ठित समाजमे हो गया था। बडों-बड़ोसे उनका मिलना-जुलना और मित्रता थी। उधर साढे बासठ रुपये मासिककी आय, इधर ससुरालका वैभवपूर्ण जीवन। मिर्जा शानवाले आदमी, वह अपनी पत्नीके मायकेमे किसीके आगे सिर नीचा न होने देते थे। शेरो-शाइरीके कारण भी इनकी प्रतिष्ठा थी। इसलिए थोडी आमदनीमे ऊपरी शानो-शौकत कायम रखना और मुश्किल हो रहा था। ससुरालकी रियासतमे-से पेशनका जो इन्तजाम था उसमेसे ख्वाजा हाजी नामक एक और व्यक्तिका भी हिस्सा था। यह ख्वाजा हाजी या उनके पिता ख्वाजा कुतुबउद्दीन गालिबके दादा कौकानबेग खॉके साथ ही हिन्दुस्तान आये थे। कई लोगोने उन्हे गालिबके ही वंशका बताया है। उनका कहना है कि वह गालिबके पूर्व पुरुष तरसम खॉके छोटे भाई रुस्तम खाँके वंशमे थे। इस विषयमे कुछ ठीक-ठीक नही कहा जा सकता। खुद गालिबका कहना तो यह था कि 'ख्वाजा हाजीका बाप मेरे दादा कौकानबेग खाँका साईस था और उसकी औलाद तीन पुश्तसे हमारी नमकख्वार है।' पर सम्भव है, गालिबने जल-भुनकर ऐसा लिखा हो। इतना तो तय है कि दोनो सम्बन्धी थे क्योकि जिस मिर्जा जीवनबेगके पुत्र मिर्जा अकबरबेगसे गालिबकी बहिन (मिर्जा नसरुल्ला बेगकी भतीजी) छोटी खानम व्याही थी उन्ही जीवनबेगकी कन्या अमीरुन्निसा बेगमसे ख्वाजा हाजीकी शादी हुई थी। ख्वाजा हाजी मिर्जा नसरुल्लाबेग ख़ॉके अधीन उनके ४०० सवारोके रिसालेमे एक अफसर थे। बादमे जब वह रिसाला टूटा तो उसमेसे पचास सवार नवाब अहमदबख्श खॉको दिये गये थे

(जिसका वर्णन पहिले किया जा चुका है)। ख्वाजा हाजी इसी पचास सवारोके रिसालेके अफसर बना दिये गये थे। मतलब यह कि जब मिर्जा नसरुल्लाबेग खाँके परिवार एव आश्रितोंके लिए पाँच हजार वार्षिक पेंशन तय हुई तो उसमेसे दो हजार ख्वाजा हाजीको देनेकी व्यवस्था नवाब अहमदबख्शने कर दी थी। १८२६ ई० मे ख्वाजा हाजीकी मृत्यु हो गयी। गालिब ख्वाजा हाजीके पेंशन देनेके विरोधी थे पर यह सोचकर चुप हो गये थे कि पेंशन हाजीकी जिन्दगी भरके लिए ही है और उसकी मृत्युपर हमे लौट आवेगी पर वैसा नही हुआ। हाजीका हिस्सा उसके दोनो बेटो शम्सुद्दीन खाँ (उर्फ खाजा जान) और बदरुद्दीनखाँ (उर्फ खाजा अमान) के नाम कर दिया गया। इससे वह और चिढ गये। उन्होने विरोध भी किया पर उसका कोई परिणाम न हुआ। तब उन्होने कलकत्ता जाकर इस निर्णयके विरुद्ध गवर्नर जेनरल-इन-कौंसिलसे अपील करनेका निश्चय किया।

झगड़ेका मूल

इस झगडेका मूल रूप यह था कि नवाब अहमदबख्शके तीन पुत्र थे—नवाब अमीनुद्दीन तथा नवाब जियाउद्दीन और इन दोनोके सौतेले भाई और उर्दूके प्रसिद्ध कवि 'दाग' के जनक नवाब शम्सुद्दीन।* अहमदबख्श शम्सुद्दीनको ज्यादा मानते थे और उन्होने महाराज अलवर तथा बृटिश सरकारकी स्वीकृतिसे

* मुरक्का अलवरसे मालूम होता है कि शम्सुद्दीन खाँ नवाब अहमद बख्शके औरस पुत्र नही थे। अलवरके महाराज बख्तावरसिहके पास एक तवायफ थी—मूसी। उसकी दूरकी बहिन मुद्दीसे नवाब अहमदबख्शका सम्बन्ध हो गया। इस प्रकार यह उनकी रखैल थी। इससे चार बच्चे हुए थे—शम्सुद्दीन अहमद, इब्राहीम अली, नवाब बेगम और जहाँगीरा बेगम। नवाब बेगमका विवाह जैनुलआब्दीन खाँ 'आरिफ' से हुआ था। जहाँगीरा बेगम एक ईरानी मुहम्मद आजमसे ब्याही गयी। बादमे नवाब अहमदबख्शने

उन्हीको अपना उत्तराधिकारी माना था। किन्तु इस निर्णयसे दूसरे दो भाई स्वभावत. नाराज थे। झगड़ा खड़ा होनेके डरसे अहमदबख्शखाँने शम्सुद्दीन खाँको इस बातपर राजी किया कि पर्गना लोहारू, कुछ शर्तोके साथ, दूसरे दोनों भाइयोको दे दे। १८२६ मे यही हुआ था जिसका वर्णन पहिले किया जा चुका है। शेष जागीरका प्रबन्ध शम्सुद्दीनखाँने अपने हाथोंमे ले लिया।

पर एक और कठिनाई थी। ग़ालिबके चचा नसरुल्ला बेग खाँकी जागीर भी नवाव अहमदख़ाँकी जागीरमे शामिल हो गयी थी।* इस

मुगल नियाज मुहम्मद बेगकी कन्या कुफू बेगमसे नियमानुसार विवाह किया जिससे चार सन्ताने हुई—अमीनउद्दीन अहमद, जियाउद्दीन अहमद, माहे-रुख बेगम और बादशाह बेगम। इस प्रकार शम्सुद्दीनको जायदाद मिलना ही अनियमित था पर नवाब उन्हे ही सबसे ज्यादा चाहते थे। झगड़ेका मूल यही था।

* पहिले हम बता चुके है कि मिर्जा नसरुल्लाख़ाँको दो पर्गने दिये गये थे। बादमे वे भी फीरोजपुर झुर्कामे मिला दिये गये और तय पाया था कि नसरुल्लाख़ाँके उत्तराधिकारियोको दस हजार सालाना पेंशन दी जायगी। किन्तु यह रकम गुप्त रूपसे ५ हजार कर दी गयी और इसमे ख्वाजा हाजीका खान्दान भी शामिल कर लिया गया एवं उसे दो हजार वार्षिक वृत्ति दी गयी। शेष तीन हजारमेसे गालिबके हिस्सेमे ७५० रु० सालाना आये।

गालिबके चचा नसरुल्लाख़ाँ १८०६ मे मरे थे। उनके मरनेपर ख्वाजा हाजीने जायदादमे हिस्सा पानेका दावा किया। नवाब अहमदबख्शने स्वयं उसकी ओरसे गवाही दी और वह जागीर हाजीको इस शर्तपर दे दी गयी कि उसीसे नसरुल्लाखाँके आश्रितोकी भी मदद की जाय। नवाब अहमद बख्शने हाजीको समझाया कि तुम्हारा इलाका मेरे इलाकेसे मिला हुआ है

अन्यायसे मिर्जा दुखी थे। नवाब अहमदबख्शखाँने नसरुल्लाखाँके उत्तराधिकारियोके भरण-पोषणके लिए वृत्ति देनेका वादा किया था। नसरुल्लाखाँके कोई सन्तान न थी इसलिए स्वाभाविक उत्तराधिकार गालिब तथा उनके छोटे भाई मिर्जा यूसुफ तथा उनकी माँ बहिनोको मिलना चाहिए था। नसरुल्लाखाँके उत्तराधिकारियोके लिए शुरूमे दस हजार सालाना पेंशन नियत हुई थी। किन्तु नवाब अहमदबख्श सिर्फ ३ हजार देते थे जिसमेसे मिर्जाके हिस्सेमे केवल साढे सात सौ आता था। आरम्भमे तो अहमदबख्शसे इनके सम्बन्ध बहुत अच्छे थे और वह समय-समयपर इन्हे और भी आर्थिक सहायता देते रहते थे। इसलिए मामलेने तूल नही पकडा पर १८२६ ई० मे गालिबके ससुर एवं नवाब अहमदबख्शखाँके छोटे भाई, इलाहीबख्शखाँकी मृत्यु हो गयी। स्वभावत पुराने सम्बन्धोमे कड़ुवाहट आ गयी। इस समय गालिब २९ वर्षके थे। उनकी जिन्दगी ऐशो-इशरतमे बीती थी। लोग नवाबके साथ इनके सम्वन्धके कारण कर्ज भी आसानीसे दे देते थे पर अब जब वृत्तिमे कमी कर दी गयी और नवाबसे वह सुखद सम्वन्ध भी न रह गये तो ऋणदाताओने स्वभावत रुपये मॉगना शुरू कर दिया। गालिबको अन्दरूनी बाते मालूम न थी और वह यही समझे बैठे थे कि सरकारने जो पर्गने दिये थे वे दस हजार सालानाके थे और सिर्फ उनके चचाको दिये गये थे। इसलिए जब हाजीके लड़कोंको वारिस बनाया गया तो उन्होने उसका विरोध किया। नवाब अहमदबख्शको समझानेके लिए वह खुद फीरोजपुर-झुर्का गये। वहाँ जानेपर मालूम हुआ कि नवाब साहब अलवर गये हुए है। उन्हे वहाँ कुछ दिन टिकना पडा। जब नवाब लौटे

इसलिए तुमको मालगुजारी वसूल करनेमे कठिनाई होती है। इसे मेरे सुपुर्द करो। आमदनी तुम्हे भेजता रहूँगा। इसी समम तय हुआ कि दो हजार सालाना हाजीको और ३००० नसरुल्लाखाँके अन्य आश्रितोको मिला करेगा।

तब उन्होंने सारी बातें कही पर नवाबने व्यवस्थामे कोई परिवर्तन करनेसे इनकार कर दिया। तब वह निराश लौटे और उन्होने बृटिश सरकारसे अपील करनेका निश्चय किया, जिसकी चर्चा हम पहिले कर चुके है।

उधर असलियत यह थी कि नसरुल्ला बेगकी मृत्युके बाद उनकी जागीर (सोंख और सोंसा) अंग्रेजोने ले ली थी। बादमे वह २५ हजार सालानापर अहमदबख्शको दे दी गयी थी। ४ मई १८०६ को लार्ड-लेकने अहमदबख्शख़ाँसे मिलनेवाली २५ हजार वार्षिककी मालगुजारी इस शर्त्तपर माफ़ कर दी थी कि वह दस हजार सालाना नसरुल्लाख़ाँके आश्रितोको दे। पर इसके चन्द दिनो बाद ही, ७ जून १८०६ को, नवाब अहमदबख्शने लार्ड लेकसे मिल-मिलाकर इसमे गुपचुप परिवर्तन करा लिया था कि सिर्फ ५ हजार सालाना ही नसरुल्लाखाँके आश्रितोको दिये जायँ और इसमे ख्वाजा हाजी भी शामिल रहेगा। इस गुप्त परिवर्तन एवं संशोधनका ज्ञान गालिबको नही था। इसलिए उन्होने फीरोजपुर-झुर्काके शासकपर दावा दायर कर दिया कि उन्होने एक तो आदेशके विरुद्ध पेशन आधी कर दी, फिर उस आधीमे भी ख्वाजाहाजीको शामिल कर लिया।

मिर्जाका विश्वास था कि उनके कलकत्ता जाने और गवर्नर जेनरल तथा अन्य उच्चाधिकारियोसे मिलनेका मुकदमेपर अच्छा प्रभाव पडेगा।

कलकत्ता जानेका निश्चय

उस जमानेमे, जब यात्राके साधन इतने सुलभ न थे, मिर्जाने बहुत विवश होने पर ही इस लम्बी यात्राका निश्चय किया होगा। अगस्त १८२६ के लगभग वह देहलीसे कलकत्ता जानेके लिए रवाना हुए। लखनऊके काव्यप्रेमी एवं विद्वज्जन बहुत समयसे इन्हे वहाँ बुला रहे थे। पर मौका न मिलता था। अब जो कलकत्ताके लिए निकले तो कानपुरसे लखनऊ होते हुए वहाँ जाना तय किया। लखनऊ वालोने उनका हार्दिक स्वागत किया; उन्हे सिर आँखोपर बिठाया। निम्नलिखित कतेमे उन्होने लखनऊका जिक्र किया है—

वाँ पहुँचकर जो ग़श आता [1]पैहम है हमको।
[2]सद रहे [3]आहंगे-ज़मीं बोसे [4]क़दम है हमको।

लखनऊ आनेका बाइस[5] नहीं खुलता यानी,
हविसे-सैरो-तमाशा सो वह कम है हमको।

ताक़ते रंजे सफ़र ही नहीं पाते इतना,
हिज्रे याराने वतन[6] का भी अलम[7] है हमको।

मक़तए सिलसिलए शौक़[8] नहीं है यह शह्र,
अज़्मे सैर नजफ़[9] व तूफ़े-हरम[10] है हमको।

लिये जाती है कहीं एक [11]तवक्क़अ ग़ालिब*
जादए राह[12] काशिशे काफ़े करम[13] है हमको।

जब मिर्जा लखनऊ पहुँचे तो उन दिनो गाजीउद्दीन हैदर अवधके बादशाह थे। वह ऐशोइशरतमे डूबे हुए इन्सान थे, यद्यपि उन्हे भी शेरो-

---

१ लगातार, २ शत, सैकडो, ३. ससारके इरादे, ४. चरणचुम्बी, ५ कारण, ६. वतनके मित्रोके वियोग, ७. दु.ख, ८. उत्कण्ठाकी शृंखलाको विच्छिन्न करनेवाला, ९ नजफ (अरबका प्रसिद्ध नगर जहाँ हजरतअलीका मजार है) की सैरकी इच्छा, १० काबाकी परिक्रमा, ११. आशा, १२ संबल, १३. कृपा-पुंज, (अत्यधिक कृपा) का आकर्षण।

*पहिले यह पाठान्तर था (बादमे बदल दिया)—

लाई है मोतमुद्दौला बहादुरकी उमीद।

शायरीसे कुछ-न-कुछ दिलचस्पी थी। §शासनका काम मुख्यत. नायब सल्तनत मोतमुद्दौला सय्यद मुहम्मद खाँ देखते थे जो लखनऊके इतिहासमे 'आगा मीर' के नामसे मशहूर है। अबतक 'आग़ा मीरकी ड्योढी मुहल्ला लखनऊमे ज्योंका त्यों क़ायम है। उस समय आगामीरमे ही शासनकी सब शक्ति केन्द्रित थी। वह सफेद स्याह जो चाहते थे करते थे। यह आदमी शुरूमे एक खानसामा-के रूपमे नौकर हुआ था किन्तु शीघ्र ही नवाब बेगम और रेजीडेण्टको ऐसा खुश कर लिया कि वे इसके लिए सब कुछ करनेको तैयार रहते थे। उन्हीकी मददसे वह इस पदपर पहुँच गया था। विना उसकी सहायताके बादशाह तक पहुँच न हो सकती थी।

लखनऊमे

ग़ालिबके कुछ हितैषियोने आग़ामीर तक ख़बर पहुँचाई कि ग़ालिब लखनऊमे मौजूद है। आगामीरने कहलाया कि उन्हे मिर्जाकी मुलाकातसे खुशी होगी। मिलनेकी बात तय हुई परन्तु मिर्जाने यह इच्छा प्रकट की कि मेरे पहुँचनेपर आगामीर खड़े होकर मेरा स्वागत करे और मुझे नक़्द-नजर पेश करनेसे बरी रखा जाय। आगामीरने इन शर्तोको स्वीकार न किया इसलिए मुलाकात न हो सकी। गालिब लखनऊमे लगभग पाँच महीने रहे और वहाँसे २७ जून १८२७ शुक्रवारको कलकत्ताके लिए रवाना हुए। अभी सफ़रमे ही थे कि ग़ाजीउद्दीन हैदरका देहावसान हो गया और उनकी जगह नसीरउद्दीन हैदर गद्दी पर बैठे। बहरहाल आग़ामीरसे भेंट न होनेके कारण जो फारसी क़सीदा गालिबने दिल्लीसे लखनऊ आने तथा अपनी

---

§ इन्होने 'नासिख' को 'मलिकुश्शुअरा' की उपाधि देकर अपने दरबार-मे रखना चाहा था पर नासिखने यह कहकर खिताब वापिस कर दिया कि गाज़ीउद्दीनको न तो देहलीके बादशाहोका मर्त्तबा हासिल है न बृटिश सरकारका ही बल एवं सम्मान प्राप्त है, मै उनका दरबारी शायर होकर क्या करूँगा।

मुसीवतोका जिक्र करते हुए लिखा था वह अवधके बादशाहके सामने पेश न हो सका और नसीरउद्दीन हैदरके गद्दीपर बैठनेके सात-आठ साल बाद नायव सल्तनत रोशन उद्दौला एवं मुशी मुहम्मद हसनके माध्यमसे दरबार तक पहुँचा और वहाँ पढा गया। वहाँसे शायरको पाँच हजार रुपये इनाम देनेका हुक्म हुआ पर इसमेंसे एक फूटी कौड़ी भी गालिबको न मिली। 'नासिख' के कथनानुसार तीन हजार रोशनउद्दौलाने और दो हज़ार मुहम्मद हसनने उड़ा लिये।

अन्य स्थानोकी यात्रा

लखनऊसे कलकत्ता जाते हुए यह कानपुर, बाँदा, बनारस, पटना मुर्शिदावाद ठहरे। लखनऊसे ३ दिन चलकर कानपुर पहुँचे। वहाँसे बाँदा गये। बाँदामे मौलवी मुहम्मदअली सदर अमीन-ने इनके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया; इन्हे हर तरहका आराम दिया और कलकत्ताके प्रतिष्ठित एव प्रभावशाली आदमियोके नाम पत्र भी दिये। बाँदामे ही इन्होने वह गज़ल लिखी थी जिसका निम्नलिखित शेर मशहूर है--

सताइशगर[1] है ज़ाहिद[2] इस क़दर जिस बाग़े-रिज़वाँ[3] का।
व एक गुलदस्ता है हम बेखुदोंके ताक़े-नसियाँ[4] का।

यात्रामे कठिनाइयाँ भी आई होगी, निराशा भी हुई होगी। यात्राकाल की ग़ज़लोमे इसकी भी ध्वनि है—

थी वतनमें शान क्या 'ग़ालिब' कि हो गुरबत[5] में क़द्र,
बेतकल्लुफ़ हूँ वह मुश्ते-खस कि गुलख़न[6] में नहीं।

× × ×

१ प्रशसक, २. विरक्त, संयम व्रत करनेवाला, ३. स्वर्गोपवन, ४ विस्मृतिका ताक,५ परदेश-निवास, ६. भट्ठी, भाड़।

करते किस मुँहसे हो ग़ुरबतकी शिकायत 'ग़ालिब'
तुमको बेमेह्रिए याराने-वतन[1] याद नहीं ?

× × ×

ज़ुल्मतकदे[2] में मेरे शबेग़म[3] का जोश है।
एक शमअ है दलीले-सेहर[4] सो ख़मोश है।

बाँदासे मोड़ा गये, मोड़ासे चिल्लातारा। फिर वहाँसे नाव द्वारा इलाहाबाद पहुँचे। जान पडता है, इलाहाबादमे कोई अप्रीतिकर साहित्यिक संघर्ष हुआ। पर उसका कोई विवरण कही नही मिलता। उनके एक फ़ारसी क़सीदेसे सिर्फ इतना मालूम होता है कि वहाँ कुछ न कुछ हुआ था—

नफ़स बलर्ज़ः ज़िवादे नहीबे कलकत्ता,
निगाहे ख़ैरः जहंगामए इलाहाबाद।

इलाहाबादमे कुछ ज्यादा ठहरना चाहते थे पर अवसर न मिला और यह बनारसके लिए रवाना हुए। बनारस पहुँचते-पहुँचते अस्वस्थ हो गये।

बुतोंके नगर बनारसमें

पर बनारसके जादूने जैसे 'हज़ी' को मुग्ध कर लिया था वैसे ही उसके चित्ताकर्षक दृश्योंने इन्हे भी अनुगत बना लिया। बनारस इन्हे इतना भाया कि शाहजहानाबाद (दिल्ली) पर भी उसे तर्जीह दी—

जहाँ आबाद गर नबूद अलम नेस्त।
जहानाबाद बादाजाए कमनेस्त।

---

१. वतनके मित्रोंकी निष्ठुरता, २. अँधेरी दुनिया, अँधेरा गृह, ३. शोकरात्रि ४. प्रभातका प्रमाण।

न बाशद क़हत बहे आशियाने।
सरे शाख़े गुले दर गुलसिताने।
बख़ातिर दारम ऐनक गुल ज़मीने।
बहार आईं सवादे दिलनशीने।
कि मी आयद बदऊ आगाहे लाफ़िश।
जहाँ आबाद अज़ बहे तवाफ़िश।

आख़ीरमे कहते है कि हे प्रभु! बनारसको बुरी नज़रसे बचाना। यह नन्दित स्वर्ग है, यह भरा-पूरा स्वर्ग है:—

तआलिल्ला बनारस चश्मे बददूर।
बहिश्ते ख़ुर्रमो फ़िरदौस मामूर।

बनारस उनको इतना अच्छा लगा कि ज़िन्दगी-भर उसे नही भूल पाये। ४० साल बाद भी एक पत्रमे लिखते है कि अगर मै जवानीमे वहाँ

बनारसकी गंगा एवं प्रभात

जाता तो वही बस जाता। बनारसकी गंगा एवं प्रभातने उन्हे मोह लिया था। इनका बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन उन्होने किया है। वहाँकी उपासना, पूजा, घण्टाध्वनि, मूर्तियाँ —मानवी और दैवी दोनो—सबके प्रति उनमे आकर्पण उत्पन्न हो गया था। काशीके बारेमे वह कहते है—

इबादतख़ानए नाक़ूसियाँ अस्त।
हमाना काबए हिन्दोस्ताँ अस्त।

"यह शंखवादकोका उपासनास्थल है। निश्चय ही यह हिन्दुस्तानका काबा है।"

वहाँकी सुन्दरियोके रूप-सौन्दर्य, चाल-ढाल, मस्ती इत्यादिका वर्णन करते हुए कहते है—

बुतानशरा हयूला शोलए तूर ।
सरापा नूर ऐज़द चश्मे बददूर ।

मियाँ हा नाज़ुको दिल हा तुवाना ।
ज़नादानी बकारे ख़्वेश दाना ।

तबस्सुम बस कि दर दिल हा तिवी ईस्त ।
दहन हा रश्के गुलहाए रवी ईस्त ।

ज़ अंगेज़े क़द अन्दाज़े ख़रामे ।
ब पाए गुल बुने गुस्तरदः दामे ।

ज़ताबे जलवए ख़्वेश आतिश अफ़रोज़ ।
बयाने बुतपरस्तो बिरहमन सोज़ ।

ब लुत्फ़े मौजे गौहर नर्मरू तर ।
ब नाज़ अज़ ख़ूने आशिक़ गर्मरू तर ।

ब सामाने गुलिस्ताँ बरलबे गंग ।
ज़ ताबे रुख चिराग़ाँ बरलबे गंग ।

रसाँदः अज़ अदाए शुस्त व शूए ।
ब हर मौजे नवेदे आबरूए ।

क़यामत क़ामताँ मिज़गाँ-दराज़ाँ ।
ज़ मिज़गाँ बरसफ़े दिल तीरबाज़ाँ ।
ब मस्ती मौजरा फ़रमूदा आराम ।
ज़ नग़्ज़े आबरा बख़्शिन्दा अन्दाम ।

फताद : शोरिशे दर कालिबे आब।
ज़ माही सद दिलश दर सीना वेताब।
जताबे जल्वा हा वेताव गश्तः।
गुहर हा दर सदफ़ हा आब गश्तः।
ज़बस अर्ज़े तमन्ना मी कुनद गंग।
ज़ मौजे आबहा वा मी कुनद गंग।

अर्थात्—

"यहाँके वुतोकी आत्मा तूरके प्रकाशके समान है। वह सरापा (ऊपरसे नीचे तक, आमूल चूल) नूर है। उसपर शनिदृष्टि (बुरी नजर) न पडे। ये क्षीणकटि (पतली कमर) पर वलवान हृदय वाली है। ऊपरसे नादान-सी दिखती है पर अपने कार्यमे चतुर है। इनकी मुस्कान ऐसी है कि हर दिलको वशमे कर लेती है और इनके मुखडे चैती गुलावको लजाते है। अपनी चालमे पाँवोसे गुलावके फूलोको वखेरती चलती है। अपनी ज्वाला-सी जलनेवाली कान्ति (जलवे) से अपनी पूजा करनेवालो (वुतपरस्तो) और ब्राह्मणोकी वाक्शक्तिको पराभूत करनेवाली है (अर्थात् वाणी उनकी कान्तिसे स्तब्ध एव मौन हो जाती है)। उनका जल-विहार मुक्ता-तरङ्गोसे भी सुन्दर है। उनका नाज प्रेमीके रक्तसे भी अधिक उष्ण है। गङ्गा तटपर वे क्या आ गयी एक गुलिस्ताँ—पुष्पोद्यान—आ गया, उनके मुख ऐसे लगते है मानो गङ्गा-तटपर दीपक जल उठे हो। उनके जलविहार एव स्नानकी अदा लहरोको आवरूका निमन्त्रण देती है। ये मृदुल शरीर-यष्टिवाली सुलोचनाएँ दिलोकी पक्तियोपर अपनी वरौनियोके तीर चलाती है। अपनी मस्तीसे इन्होने तरङ्गोको चुप कर दिया है। उनके सौन्दर्यसे जल स्तब्ध—स्थिर—हो गया है। फिर देखो, उन्होने पानीके अन्तरमे हलचल पैदा कर दी और सीनोमे सैकड़ो दिल मछलियोकी भाँति

तड़प उठे। अपने सौन्दर्यकी दीप्तिसे बेचैन होकर वे पानीमे चली गयी और ऐसी लगती है जैसे सीपमें मोती चुने हो। उन्हे देख गङ्गा भी अपने दिलमे यही तमन्ना रखती है कि आओ, मेरी लहरोमे स्नान करो जिन्हे मैने तुम्हारे लिए सृजित किया है।"

बनारससे नौका-द्वारा ही कलकत्ता जानेकी उनकी इच्छा थी पर उसमें व्यय बहुत अधिक था इसलिए घोडेपर रवाना हुए और पटना एव मुर्शिदाबाद होते हुए २० फरवरी १८२८ को कलकत्ता पहुँचे। यहाँ उन्होंने शिमला बाजारमे* मिर्जा अली सौदागरकी हवेलीमे एक बडा मकान १०) मासिक केराये पर लिया। पर इनके कलकत्ता पहुँचनेके पूर्व ही नवाब अहमदबख्श खाँकी

कलकत्ता

---

* स्व० मौलाना अबुलकलाम आजादने इसपर प्रकाश डाला है कि यह मुहल्ला कहाँ था और इसका नाम शिमला बाजार क्यो पडा। सभवतः लार्ड एमहर्स्ट पहिले गवर्नर-जेनरल थे जो शिमला गये। तबसे यह प्रथा चल पड़ी कि यदि प्रतिवर्ष नही तो हर दूसरे साल वे गर्मियाँ शिमलेमे बिताते थे। तब रेल नही थी। इलाहाबाद-कानपुर तक यात्रा प्रायः नौका द्वारा होती थी। उसके बाद पालकी, गाड़ी और घोड़ेपर। यह यात्रा जिस राजसिक ठाठ-बाट एव सामानके साथ होती थी उसका वर्णन उस कालके कई इतिहासकारोने किया है। एक पूरा नगर कलकत्तासे शिमला तक और शिमलासे कलकत्ता तक गतिमान रहता था। इसका परिणाम यह हुआ कि मजदूरो एव मुलाजिमोंका एक बड़ा गिरोह, कलकत्तामे, केवल इस सफरके लिए रहने लगा और इनके मुहल्लेका नाम शिमला बाजार पड़ गया। यह चितपुर रोडके उस हिस्सेमे था जो बादको गैडा तालाबके नामसे प्रसिद्ध हुआ। जान पडता है, यही मिर्जा गालिब ठहरे थे। अब यह हिस्सा बिलकुल बदल गया है। पुराने मकानोके नाम-निशान बाकी नही।

—नक़्शे आज़ाद (गुलाम रसूल मेहर) पृष्ठ २७३

मृत्यु हो गयी इसलिए अब झगड़ा उनके वारिस नवाब शम्सुद्दीनखाँसे शुरू हुआ ।

जब मिर्जा अनेक कठिनाइयाँ झेलनेके बाद कलकत्ता पहुँचे तो उन्हे गवर्नर-जेनरल-इन-कौसिलका जवाब मिला कि पहिले यह मुकदमा दिल्लीके अंग्रेज रेजीडेण्टके सामने पेश होना चाहिए । वहाँसे रिपोर्ट आनेपर निर्णय किया जायगा । उस जमानेमे जब यात्रा बडी कष्टसाध्य थी कलकत्तासे फिर दिल्ली, मुकदमेके लिए लौटना, मुश्किल था । इसलिए वह स्वयं तो कलकत्ता रहे और दिल्ली रेजीडेसीमे मुकदमेके लिए हीरालाल नामक व्यक्तिको वकील नियुक्त किया । इन दिनो सर एडवर्ड कोलब्रुक दिल्लीमे रेजीडेण्ट थे । मिर्जाने कलकत्ताके उनके एक मित्र कर्नल हेनरी इम्लाकसे भेट करके उनसे सिफारिशी पत्र लिया । इसी प्रकार कोलब्रुकके मीर मुशी अल्तफात हुसेन खाँके नाम भी एक पत्र नवाब अकबरअली खाँ तबातबाई मोतवल्ली इमामबाडा हुगलीसे प्राप्त किया और दोनो खत अपने वकीलको दिल्ली भेज दिये । उन लोगोने मदद करनेका वादा किया । गालिब सरकारके सेक्रेटरी एण्डरू एस्टरलिगसे भी मिले । उन्होने भी मिर्जाको आश्वासन दिया कि न्याय होगा । सर एडवर्ड कोलब्रुकने अपनी रिपोर्ट भी इनके अनुकूल भेज दी । पर कोलब्रुक अव्वल दर्जेका रिश्वतखोर था और इसी रिश्वतखोरीके जुर्ममे कुछ दिनो बाद निकाल दिया गया । उसकी जगह फ्रासिस हाकिंस रेजीडेण्ट नियुक्त हुआ । हाकिसकी नवाब शम्सुद्दीनसे मित्रता थी । स्वभावत. उसने सरकारके पास दूसरी रिपोर्ट भेजी और लिखा कि असदउल्ला खाँको जो साढ़े सात सौ मिलते रहे है उससे अधिक पानेके वह अधिकारी नही है ।

बहरहाल जिस उद्देश्यसे मिर्जा कलकत्ता गये थे, उसमे उन्हे सफलता नही मिली । अफसरोने इनकी इज्जत की, मददका वादा किया पर कोई ठोस नतीजा न निकला । मिर्जाको बडी आशा थी कि न्याय होगा और फ़ैसला उनके पक्षमे होगा । इसी आशापर वह डेढ़ सालसे ज्यादा अर्से तक

कलकत्तामे पड़े रहे। फैसलेमे बडी देर हो रही थी और हाकिसके विरोध-का समाचार भी दिल्लीसे आ रहा था इसलिए इन्होने वकील नियुक्त कर दिल्ली लौटनेका निर्णय किया। २९ नवम्बर १८२९ को दिल्ली लौट आये। जिस एस्टरलिगपर इनको भरोसा था वह ३० मई १८३० को मर गया और २७ जनवरी १८३१ ई० को गवर्नर जेनरल लार्ड विलियम बेटिकने इनके विरुद्ध मुक़दमेका निर्णय दे दिया। यद्यपि उसके बाद भी पुनर्निर्णयके लिए यह बराबर प्रयत्न करते ही रहे और वह सिलसिला १८४४ तक चलता रहा किन्तु उसकी चर्चा हम यथास्थान बादमे करेगे।

कलकत्ताकी साहित्यिक कुश्तियाँ

मुकदमेके सम्वन्धमे तो कलकत्तामे कोई विशेष लाभ न हुआ पर फ़ारसीगोई (फारसी काव्यरचना) मे अपनी विशेषता प्रदर्शित करनेके अवसर प्राय: मिलते रहे। इन दिनों कलकत्ता-मे ईस्टइण्डिया कम्पनीने एक विद्यालय चला रखा था। उसके अन्तर्गत एक काव्यगोष्ठीका भी निर्माण हुआ था। प्रत्येक मासके प्रथम रविवारको इसकी बैठक हुआ करती थी। ज्यादातर यह मशायरेके रूपमे होती थी और इसमे उर्दू फारसीकी गजले पढी जाती थी। मिर्जा भी इनमे जाते और गजले पढते थे। मिर्जाके कलकत्ता पहुँचनेके बाद जो मशायरा§ हुआ उसमे उन्होने

---

§ यह मशायरा इस विद्यालयकी वेलेज़ली स्ट्रीटवाली इमारतमे हुआ था जिसकी नीव १५ जुलाई १८२४ को रखी गयी थी और जो ३ साल मे तैयार हुई। गालिबके कलकत्ता पहुँचनेके कुछ ही महीने पहिले (अगस्त १८२७ मे) कक्षाएँ यहाँ लगने लगी थीं। मशायरेमे कविगण अन्दरके पश्चिमी बरामदेमे बैठते थे और श्रोतामण्डली बाहरके खुले सेहनमे फर्शपर बैठती थी। गालिबका अन्दाज है कि इस मशायरेमे लगभग ५ हजार आदमी उपस्थित थे।

हुमाम तब्रेजीकी जमीनमे एक गजल पढी जिसका यह 'मकता' प्रसिद्ध है :—

गर दहम शरह सितमहाय अज़ीज़ाँ 'ग़ालिब',
रस्मे उम्मीद हुमा नाज़े जहाँ बरख़ेज़द।

जव गज़लका निम्नलिखित शेर पढा गया तो किसीने आपत्ति की :—

जुज़वे अज आलमम व अज़ हमऽ आलम वेशम।
हचो मुए कि वुनांरा ज़मियाँ बरख़ेज़द।

आपत्ति यह थी कि प्रथम मिसरेमे 'वेश'की जगह 'वेशतर' होना चाहिए था। एक दूसरे व्यक्तिने एतराज़ किया कि दूसरे मिसरेमे 'मूए जमियाँ'की तरकीव गलत है वल्कि पूरा शेर निरर्थक है। एक और साहवने 'हमऽ आलम' की तरकीवपर यह एतराज़ किया कि आलम एक वचन है और 'कतील'के अनुसार हमऽ एकवचनके पहिले नही आ सकता।

इसी प्रकार एक और गजलके निम्नलिखित शेरपर भी एतराज किया गया—

शोरे अश्के बफ़िशारे वुने मिज़गाँ दारम।
ता'नाबर वेसरोसामानिए तूफ़ाँज़दहे।

इसपर यह आपत्ति हुई कि 'ज़दह' का प्रयोग ग़लत है। आपत्ति-कर्त्ताओमे मौलवी अव्दुल कादिर रामपुरी, मौ० करम हुसेन बिलग्रामी, मौ० नेमत अली अज़ीमावादी और फ़ारसीके कई आचार्य थे। मिर्जाके समर्थकोमे भी किफायत ख़ाँ ईरानी दूत, मौ० अव्दुलकरीम, मौ० मुहम्मद मोहमिन तथा नवाव अकवर अली मोतवल्ली इमामवाड़ा हुगली इत्यादि थे। किफायत ख़ाँने पुराने आचार्योके शेर सुनाये जिनमे 'हम : आलम' 'हम . रोज' जैसी तरकीवे थी। पर इससे विरोध दवा नही, विरोधियोको सन्तोप नही हुआ। इधर मिर्ज़ाको अपनी फारसीदानीका अभिमान था।

वह भला कतीलको प्रमाण क्यो मानने लगे थे ? जो आदमी फैजी-जैसोकी हँसी उडाता था वह कतीलके उदाहरणके आगे क्यो झुकता ? वह तो क़तीलका नाम सुनकर ही चिढ गये और बोले—"कतील कौन ? वही फरीदाबादका खत्री बच्चा ? मै क्यो उसे सनद मानने लगा ?" उनकी इस बातपर और भी हङ्गामा मचा। विरोधका जो बवण्डर वहाँ उठा वह वही तक सीमित न रहा, कलकत्ताके दूसरे लोगोमे भी फैला। इनके काव्यमे ढूँढ-ढूँढकर दोष निकाले जाने लगे। लोग, राह चलते इनपर, आवाजे कसते। विरोधकी उग्रताका अन्दाज इनके एक पत्रसे, जो इन्होने अपने मित्रको लिखा था, चलता है—"........अगर ये लोग जगह पाते तो मेरी खाल उधेड़ डालते।"

यह हालत दु खदायी थी। कलकत्ता कतीलके शिष्यो एव प्रशंसकोसे भरा था। अखीरमे गालिबने सोचा कि नदीमे रहकर मगरसे बैर करना ठीक नही। यह गरीबी और मुसीबतका जमाना था, कलकत्ताके प्रभावशाली लोगोसे दुश्मनी मोल लेना बुद्धिमत्ता न थी। यो भी गालिब शान्तिप्रिय व्यक्ति थे। इसलिए उन्होने एक फारसी मस्नवी 'वादे मुखालिफ' लिखी जिसमे युक्तिपूर्वक आपत्तियोके जवाब दिये गये, साथ ही गोष्ठीके अधिकारियो एवं कतीलकी तारीफ करके विरोधकी धार कुन्द कर देनेकी कोशिश की। इसमे लिखा—"... ...खुदा गवाह, मुझे एतराजोका खौफ नही, सिर्फ यह ख्याल गुजरता है कि संयोगवश चन्द दिनोके लिए यहाँ आ गया हूँ। अगर आपलोगोको नाराज कर लूँगा तो आप ही बादमे कहेगे कि दिल्लीसे एक 'शोखचश्म' और 'बेहया' शख्स आया था जिसने बुजुर्गोसे बेकारका झगडा किया। खुदा न करे, मै अपने वतनकी बदनामीका बाइस हूँ। पर मा'ज़रतख्वाह हूँ और दरखास्त करता हूँ कि आप यह वाकआ भूल जायँ।"

कलकत्ता-प्रवासमे मिर्ज़ाने ज्यादातर फारसीमे काव्य-रचना की, कभी-कभी उर्दूमे भी कह लेते थे।

कलकत्तामे ही इनकी भेट मौ० सिराज अहमदसे हुई जिनका अधिकारि-वर्गमे अच्छा सम्मान था। धीरे-धीरे उनसे अच्छी मित्रता हो गयी।

गुले रा'ना

मिर्जाके जो फारसी पत्र मिलते है उनमे सबसे ज्यादा इन्हीके नाम है। इन्हीके अनुरोधपर, कलकत्ताके दौरानमे, मिर्जाने अपने उर्दू तथा फारसी कलामका एक सकलन 'गुले रा'ना' के नामसे किया। इसकी एक अपूर्ण प्रति स्व० मौलाना हसरत मोहानीके पास थी। इसमे अनेक ऐसे उर्दू शेर है जो वादके उर्दू काव्य-सकलन (दीवान) से अलग कर दिये गये।

मुकदमा हार जानेसे जो असर हुआ होगा उसकी कल्पना की जा सकती है। इनकी समस्त आशाएँ उसीपर लगी थी, वे टूट गयी। यात्रामे

कलकत्ता-यात्राका परिणाम

वहुत अधिक व्यय हुआ, तकलीफे उठानी पडी; कर्ज हो गया। अव कर्जदारोके तकाजे वढ गये। कइयोकी डिग्रियाँ हुई। इनके पास क्या था ? ऐसी हालतमे इन्हे जेल जाना ही था पर चूँकि इनकी जान-पहिचान वडो-वडोसे थी इसलिए यह जवतक घरके वाहर न निकलते इनकी गिर-फ्तारी न होती। महीनो यह छिपे घरमे वैठे रहे। यही जमाना था जिसमे इनके कृपालु मित्र फ्रेजरकी हत्या हुई थी और नवाब शम्सुद्दीन उस सम्वन्ध मे पकडे गये थे और वादमे उन्हे फाँसी हुई थी (इसका वर्णन हम आगे करेगे)। चूँकि इनकी शम्सुद्दीनसे न वनती थी और फ्रेजरसे वनती थी इसलिए वहुतसे लोगोकी यह धारणा हुई कि इसीने जासूसी करके नवावको पकडवाया है। दिल्लीवाले नवाव शमसुद्दीनको बहुत मानते थे इसलिए लोग इनकी जानके ग्राहक हो गये। एक ओर अर्थकष्ट, दूसरी ओर प्राण-भय, यह समय इनके लिए वडा बुरा था।

इसलिए व्यावहारिक दृष्टिसे तो कलकत्ता-यात्रा निराशाजनक एवं निरर्थक रही पर इनकी वौद्धिक सम्पदा और अनुभव-ज्ञानमे उससे खूब वृद्धि हुई। नये अनुभव हुए, गुर्वतमे नये-नये आदमियोसे परिचय हुआ।

फिर उस जमानेमे कलकत्ता भारतके क्षितिजपर नया-नया ही उग रहा था। वहाँ एक नई सभ्यता उठ रही थी; औद्योगिक सभ्यताकी भूमिका लिखी जा रही थी उससे इनका साक्षात् हुआ। इन्हे वैज्ञानिक आविष्कारोंके करिश्मे देखनेको मिले। जगमगाती बत्तियाँ, सेवाके लिये (नलोमे) दौडता जल, पंखे झलते वायुदेवतासे इनका परिचय हुआ। इससे इनके मानसिक निर्माणपर काफी असर पडा। फिर लखनऊमे नासिखके नेतृत्वमे जबानकी तराश-खराश और सफाईकी जो कोशिशे हो रही थी उन्हे देखने तथा मार्गमे अनेक विद्वानोसे मिलनेके बाद इनका दृष्टिकोण स्पष्ट और विशद होता गया। यात्राके पहिले और बादकी रचनामे स्पष्ट अन्तर दिखाई पडता है। बादका काव्य अधिक पुष्ट है।

गालिबने जो मुकदमा दायर किया था उसमे पाँच प्रार्थनाएँ थी—

गालिबका दावा

१. ४ मई १८०६ के आदेशानुसार मुझे और मेरे खान्दानके दूसरे व्यक्तियोंको दस हजार रुपये सालाना मिलना चाहिए था। नवाब लोहारू पॉच हजार देते है और इसमेसे भी दो हजार एक पराये व्यक्ति ख्वाजा हाजी या उसके वारिसोको दे दिया जाता है जिसका हमारे खान्दानसे कोई सम्बन्ध नही। भविष्यमे दस हजार मिलनेकी आज्ञा दी जाय।

२. मई १८०६ से लेकर अब तक हमे दस हजार सालानासे जितना कम मिला है वह सारा बकाया दिलाया जाय। (ग़ालिबके हिसाबसे यह रकम उस समय तक डेढ लाखके लगभग होती थी।)

३. हमारी पेशनमे किसी पराये व्यक्तिका हिस्सा नही होना चाहिए। (मतलब ख़्वाजा हाजीके बेटोको जो पेशन मिल रही है वह बन्द कर दी जाय)।

४ आगेसे मेरी पेशन नवाब शम्सुद्दीन खॉकी जगह अंग्रेजी खजानेसे सीधी दी जाया करे।

५ सम्मान-स्वरूप मुझे खिताव, खिलअत और दरवारका मंसव दिया जाय।

फैसला हो जानेपर भी इन माँगोपर वह डटे रहे और उसके लिए कोशिशे करते रहे। इधर इनकी ये माँगे थी, उधर लोहारूकी जायदादके

लोहारूका झगड़ा

वारेमे खुद भाइयोमे झगड़ा था। पहिले लिखा जा चुका है कि नवाव अहमदवख्शखाँकी वसीयतके अनुसार फीरोजपुर-झुर्काका इलाका शम्सुद्दीन अहमद खाँ एवं पर्गना लोहारू उनके दोनो छोटे भाइयो—अमीनुद्दीन अहमदखाँ एवं जियाउद्दीन अहमदखाँ के हिस्सेमे आया था। पिताकी मृत्यु होते ही शम्सुद्दीनखाँने इस वँटवारेके विरुद्ध आवाज उठाई और कहा कि ज्येष्ठ पुत्र होनेके नाते सारी जायदाद-का अधिकार मुझे मिलना चाहिए, दूसरी सन्ततिको, ज्यादेसे ज्यादा, वृत्ति दिलाई जा सकती है। उन्हे एक और वहाना भी मिल गया। वात यह थी कि वडे होनेके कारण लोहारूका इन्तजाम नवाव अमीनुद्दीनखाँ के हाथ था। प्रवन्ध उन्हे सौपते समय एक शर्त्त यह रखी गयी थी कि जायदादकी आमदनीमेसे ५२१० रुपये सालाना सरकारी खजानेमे छोटे भाई नवाव जियाउद्दीनके व्ययके लिए जमा कर दिया जाया करे। इसकी ओर ध्यान न दिया गया इसलिए शम्सुद्दीनखाँका पक्ष प्रवल हो गया। दिल्लीके रेजीडेण्ट मि०मार्टिनने शम्सुद्दीनखाँका समर्थन किया और अन्तमे, सितम्वर १८३३ मे लोहारूका प्रवन्ध भी शम्सुद्दीनखाँको इस शर्त्तपर दे दिया गया कि वह अपने दोनो भाइयोको गुजारेके लिए २६ हजार रुपये सालाना देते रहेगे।

मार्टिनके वाद विलियम फ्रेजर नये रेजीडेण्ट होकर आये। आरम्भमे तो इनकी भी नवाव शम्सुद्दीनखाँसे अच्छी मित्रता थी पर वादमे किसी वात से दोनोमे विरोध हो गया। फ्रेजर लोहारू पर्गना शम्सुद्दीनखाँको दिये जानेके पक्षमे न थे। उन्हे यह माँग अन्यायपूर्ण लगी इसलिए उन्होने पूरी चेष्टा की कि अंग्रेज सरकार इस प्रार्थनाको ठुकरा दे किन्तु फैसला शम्सुद्दीन खाँके पक्षमे हुआ। इससे दोनोके वीच गाँठ पड गयी। फैसलेके वाद भी

फ्रेजरने उसके विरुद्ध सरकारको लिखा और नवाब अमीनउद्दीनखाँको सलाह दी कि वह कलकत्ता जाकर प्रयत्न करें। उसकी सलाह मानकर अमीनुद्दीन खॉ सितम्बर १८३४ मे कलकत्ता गये। गालिबने भी उन्हे अपने कलकत्ताके मित्रोंके नाम परिचय-पत्र दिये। इन प्रयत्नोके फलस्वरूप पहिला हुक्म मंसूख हो गया और लोहारू दोनो भाइयोंको पुन: मिल गया। इससे शम्सुद्दीनखॉ और फ्रेजरकी अनबन शत्रुतामे परिणत हो गयी। इस फैसलेसे गालिबको भी खुशी हुई। वह इस मामलेमे बराबर दोनों भाइयोके साथ रहे।

फ्रेजरका क़त्ल और शम्सुद्दीनखॉको फॉसी

२२ मार्च १८३५ को फ्रेजरने शामका खाना राजा किशनगढके यहाँ दरियागजमे खाया। वहाँसे वापिस होनेमे देर हो गयी। फ्रेजर बाडा हिन्दूरायमे एक कोठीमे रहते थे। जब रात ग्यारहके लगभग वह अपने मकानको लौट रहे थे तो मकानसे थोडी दूर पहिले किसीने उन्हे गोली मार दी। उस समय तो हत्यारा बच निकला लेकिन फौरन तमाम नाके बन्द कर दिये गये। जॉच होने लगी। पुलिसने शम्सुद्दीनखॉके दारोगा शिकार करीमखाँको गिरफ्तार किया। बादमे नवाबका एक और नौकर वसायलखॉ भी पकडा गया। करीमखाँके बयानपर मेवाती ऊनिया सिकन्दराबादमे पकड़ा गया और सरकारी गवाह बन गया। उसके बयानपर नवाब देहली बुलाये गये और पुलिसके पहरेमे रखे गये। बादमे मुकदमा चला और १८ अक्टूबर १८३५को गुरुवारके दिन प्रात:काल कश्मीरी दरवाजेके बाहर उन्हे २५ सालकी आयुमे फॉसी दी गयी।*

---

*इस जमानेमे जान लारेंस दिल्लीमे मजिस्ट्रेट थे और उन्हींने पता लगाकर वसायलखॉको नवाबकी कोठीमे गिरफ्तार किया था। यह लारेंस ही बादमे लार्ड लारेंस हो गये जिनकी जीवनी वासवर्थ स्मिथने लिखी है। इस जीवनीमे कत्लकी घटनापर काफी प्रकाश डाला गया है। इसके आधारपर स्व० मौलाना अब्दुलकलाम आजादने लिखा है—"स्मिथके

नवाव शम्सुद्दीनखाँकी फाँसी होने पर गालिवको आन्तरिक सन्तोष

वयानसे मालूम होता है कि लारेंसको कोठीके भीतरी भागमे एक डोल मिला था, इससे कागजके पुर्जे निकले थे। उन्हे जव जोडकर पढा गया तो यह इवारत निकली—'तुम जानते हो कि मैने तुम्हे देहली क्यो भेजा है ? वार-वार लिख चुका हूँ, अव ताखीर न करना।' वसायलखाँपर लारेंसको शुवहा इसलिए हुआ था कि उसने एक सुरंग घोडेको, जो सेहनमे वँधा था, वीमार जाहिर किया था मगर जव लारेंसने तोवड़ा उठाकर मुँहसे लगा दिया तो वह फौरन खाने लगा। नीज उसके सुमो पर भी गैरमामूली निशानात मिले थे। नवाव जमीर मिर्जा कहते थे कि खत के पुर्जे तहखानेसे मिले थे।

"नन्दकुमारके वाद यह दूसरी फाँसी थी जो एक हिन्दुस्तानी रईसके लिए अंग्रेजी कानूनको तजवीज करनी पड़ी। चूँकि शुमाली हिन्दमे इस वक्त तक कोई वाक़आ ऐसा नही हुआ था इसलिए हुकूमतको गैरमामूली एहतियातोसे काम लेना पडा। कलकत्तासे रेजीडेण्ट देहलीको लिखा गया था कि इस वारेमे शाहे देहलीसे एक फर्मान हासिल करना चाहिए। नीज उलमाए शहरका भी एक महजर तैयार कराना चाहिए। खुसूसियतके साथ यह वात अवामको दिखानी चाहिए कि अहकाये शरअकी रूसे भी फ्रेजरका कस्सास जरूरी है और इस वावमे अंग्रेजी फैसला फैसलएशरअके खिलाफ नही है।...वादशाहने वडी कोशिश करके वाज उलमाको, जो किलेसे वावस्ता थे, इसपर आमादा किया कि "तहरीर पर दस्तखत करदे और महजरकी विना पर खुद भी एक शक्का लिखकर रेजीडेण्टके हवाले कर दिया। यह शक्का और महजर तमाम मुल्कमे शाया किया गया था और रेजीडेण्टो और पोलीटिकल एजेण्टोसे जरिये तमाम रियासतोके दरवारोमे पहुँचाया गया था।

"नवाव जमीर मिर्जा कहते थे कि जव शम्सुद्दीनको फाँसीके लिए ले

हुआ क्योकि उनका एक प्रधान शत्रु सदाके लिए समाप्त हो गया। 'नासिख' को जो पत्र उन्होने लिखे उनमे यह सन्तोष स्पष्ट व्यक्त हुआ है।

जा रहे थे तो उन्होने रास्तेमे कुँजड़ेकी दुकानपर कसेरू देखे। जो अफ़सर पालकीके साथ था उससे कहा—"मेरा जी चाहता है कसेरू खाऊँ।" उसने पालकी रुकवाई और कसेरू खरीदकर सामने रख दिये। फिर जब पालकी चली तो यह खाते जाते थे और छिलके बाहर फेंकते जाते थे।

"नवाब अमीरुद्दीन मरहूम कहते थे कि जब देहलीसे तलबी हुई और मालूम हुआ कि उन पर पूरी तरह शुबहा हो चुका है तो उनके खान्दानके तमाम आदमी देहली जानेके मुखालिफ थे। वह कहते थे कि रातोंरात निकलकर सिखोके इलाकेमे पहुँच जायँ। एक पुराना ऊँटनी सवार अहमदबख्शके जमानेका बड़ा वफादार आदमी था। वह पिछले पहर आया और कहने लगा—तुम्हारे वालिद कहते थे कि तुम्हारे वुजुर्ग खुरासानके मुल्कसे आये थे। मेरी ऊँटनी सौ कोससे इधर दम लेनेवाली नही। मेरे कपडे पहिन लो और हमयानी कमरसे बॉधकर निकल चलो। फिरंगियो पर भरोसा न रक्खो। वह तुम्हे कभी नही छोड़ेगे।

"मगर शम्सुद्दीनको अपने खान्दान और अपने अमीराना अलायकका गर्रा था। वह समझते थे कि मेरे खिलाफ़ कुछ होनेवाला नही। दस सवार साथ लेकर पालकीमे रवाना हो गये। जब शहरके क़रीब पहुँचे तो एक सवारको आगे भेजवा दिया। रेजीडेण्ट और हुक्काम मौके पर मौजूद थे। कर्नल स्किनरने (जिसकी इनसे गाढी दोस्ती थी) आगे बढकर कहा कि नवाब साहब हथियार हवाले कर दीजिए और साहब कलॉ वहादुर (रेजीडेण्ट) पर भरोसा रखिए। यह आपके लिए जो कुछ कर सकेगे, करेगे। उन्होने तलवार हवाले कर दी। इस पर मजिस्ट्रेट आगे बढ़ा और कहा—आप सरकारके हुक्मसे गिरफ्तार किये जाते है। इस वक्तसे अपनेको कैदी तसव्वुर कीजिए।

"अब इनकी ऑखे खुली लेकिन वक्त निकल चुका था। फिर जब

नवाब शम्सुद्दीनकी फाँसीके बाद फीरोजपुर-झुर्काकी रियासत जब्त कर ली गयी और मिर्जाकी पेंशन जो वहाँसे मिलती थी, अब सीधे दिल्ली कलेक्टरीसे मिलने लगी। सुअवसर देखकर मिर्जाने फिर एक विस्तृत प्रार्थनापत्र, अंग्रेज सरकारकी सेवामे, नवाबकी जब्त जायदादसे पूरा हक पानेके लिए, पेश किया। १८ जून १८३६को पश्चिमोत्तर प्रदेशके लेफ्टिनेण्ट गवर्नरने फैसला किया कि जो ६२॥) मासिक मिलते है वही ठीक है और भविष्यमे भी वह इससे ज्यादा पानेके अधिकारी नही है। इसपर उन्होने गवर्नर-जेनरलके पास अपील की। पर वहाँसे भी यही फैसला कायम रहा। सब ओरसे निराश हो मिर्जाने १४ नवम्बर १८३६ को फिर दर्खास्त दी कि मेरा मुकदमा सदर दीवानी अदालत कलकत्ताके सामने रखा जाय और यदि यह सम्भव न हो तो निर्णयके लिए डाइरेक्टरोके पास विलायत भेजा जाय। ५ दिसम्बर १८३६ को उन्हे उत्तर मिला कि मुकद्दमेके सब कागजात विलायत भेज दिये जायँगे और वे १० मई १८३७ को 'लावेली एलायंस' नामक जहाजकी डाकसे विलायत भेज दिये गये।

सीधी पेन्शन और नया प्रार्थनापत्र

इससे गालिबको बडी खुशी हुई और उन्होने एक फारसी कता भी लिखा और आशान्वित होकर पुन दर्खास्त दी कि मई १८०६ से आजतक जितना हमे दस हजारके हिसाबसे कम मिला है और जो दो लाख तीन हजार होता है, वह उस २ लाख ६० हजार की रकममेसे दे दी जाय जो नवाब शम्सुद्दीनने अपनी फाँसीके पूर्व अग्रेजी खजानेमे जमा कराई थी। दूसरे हमे ३ हजार सालाना पेंशनका एप्रिल १८३५ तक का बकाया उस जायदादसे दिलवाया जाय जो नवाब फीरोजपुर छोडकर मरे है और तीसरे जब तक डाइरेक्टरोका फैसला

अन्तिम निर्णय

मौत सामने आ गयी तो सिपाहीजादा था, जवाँमर्दाना तैयार हो गया।"

—'नक़्शे आजाद' (२६४–२६७)

विलायतसे नही आ जाता हमे तीन हजार सालाना नियमित रूपसे मिलता रहे। पर ग़ालिबको मानव प्रकृतिका अच्छा ज्ञान नही था; वह समझते थे कि अंग्रेज खुशामदसे काबूमे किये जा सकते है। बहरहाल ये सब आवेदन-निवेदन निरर्थक हुए और १८४२ के आरम्भमे विलायतसे अन्तिम फैसला भी आ गया कि जो निर्णय हिन्दुस्तानमे हो चुका है वही ठीक है। पर वाह री मिर्जाकी आशावादिता—इतने पर भी उन्होने हिम्मत न हारी और २९ जुलाई १८४२ को इस फैसलेके विरुद्ध एक अपील, मेमोरियलके ढंगपर, महारानी विक्टोरियाके पास गवर्नर-जेनरलके जरिये भेजी। पर इसका भी कोई परिणाम नही निकला और १८४४मे वह बिल्कुल निराश और पस्त हो गये।

यहाँ यह ख़्याल रखना चाहिए कि मुकदमा उन्होने १८२८ मे दायर किया था और यह अन्तिल फ़ैसला १८४४मे, १६ साल बाद, हुआ। उस जमानेमे, जब यातायातके साधन दुर्लभ थे, उनका कितना खर्च इसपर पडा होगा। जो कुछ उनके पास था वह भी इस मुकदमे मे समाप्त हो गया। महाजनोके हजारो रुपये कर्ज हो गये जो उन्होने इसी विश्वासपर लिये थे कि मुकदमेके फैसलेसे हमे एक बडी रकम मिल जायगी। १८३५ मे ही इनपर ४०–५० हजारका कर्ज हो गया था। निर्णय विरुद्ध होनेसे कर्जके बोझसे ऐसे दबे कि जिन्दगी भर उभर एवं उबर नही सके। जिन्दगी कर्ज़ चुकाते-चुकाते बीती फिर भी न चुक सका। कठिनाइयोके कारण गृहस्थ जीवन पहलेसे ही दु खद था, अब तो उसमे बड़ी जड़ता और निराशा आ गयी और उन्होने भाग्यके आगे कन्धा डाल दिया।

प्रार्थनापत्रमे जिन पाँच बातोके लिए प्रार्थना की गयी थी उनमे पहिली तीन पूर्णतः अस्वीकृत हो गयी, चौथी फीरोजपुर-झुर्काकी जब्तीसे स्वय पूरी हो गयी और इन्हे पेशन दिल्ली कलेक्टरीसे सीधे मिलने लगी। रही पाँचवी बात सो उसमे अंग्रेजोको कोई विशेष असुविधा न दीख पड़ी इसलिए इन्हे तमाम सरकारी दरबारोमे कुर्सी, सप्तवस्त्री खिलअत और

त्रिविध रत्नकी प्रतिष्ठा प्राप्त हो गयी। दरबारका अधिकार तो लार्ड विलियमबेंटिकके ही कालमे, जब मिर्जा कलकत्ता गये थे, मिल गया था; खिलअतका लार्ड एलिनबराके कालमे (१८४२–१८४४)मे मिला। जो अपील इन्होने महारानी विक्टोरियाको भेजी थी उससे और कुछ तो परिणाम नही निकला पर आँसू पोछनेके लिए इन्हे सरकारी दरबारोमे दाहिने हाथकी दसवी कुर्सीपर बैठने तथा खिलअत पानेका अधिकार मिल गया।

गालिबकी जीवन-भर अग्रेजोपर बडी आस्था रही इसलिए उन्होने जीवनका इतना लम्बा समय इस मुकदमेमे लगा दिया। उनका ध्यान मुख्यत इसी ओर था। पर ऐसा नही कि गालिबने और जगहसे सहायता पानेके प्रयत्न न किये हो।

सलीम और जफ़र

फ्रेजरकी हत्याके कुछ पहिलेसे मिर्जा शाही दरबारमे प्रवेश पानेके लिए प्रयत्नशील थे। यह वह जमाना था जब अकबरशाह द्वितीय दिल्लीके तख्तपर थे, बहादुरशाह 'जफर' युवराज थे। जफरकी मानसिक उलझनोके कारण अकबरशाह उनकी जगह शाहजादा सलीमको युवराज बनाना चाहते थे। १८३४मे उसने इसके लिए काफी कोशिश की। गालिब बडी उधेडबुनमे थे कि किसका साथ दिया जाय। उन्होने हिसाब लगाया— 'जफर' पर 'जौक'का असर है, वह उनका शिष्य है इसलिए अगर सलीम को युवराज पद मिल जाय और वह आगे चलकर बादशाह हो तो मेरे लिए सुअवसर आ सकता है। इसलिए वह पहिले बादशाह और सलीमकी ओर झुके। उन्होने 'शह व शहजादा'की तारीफमे एक कसीदा लिखा जिसमे सलीमकी प्रशंसा इन शब्दोमे की—

> जहे मुनासबते तबअ शाहज़ादा सलीम।
> ब फ़ैज़े तर्बियते पादशाहे हफ़्त अक़लीम।

पर अकबरशाहकी एक न चली और गालिबके अनुमानके विरुद्ध

अंग्रेज सरकारने सलीमको युवराज बनाना स्वीकार न किया। १८३७मे अकबरशाहकी मृत्यु हो गयी। बहादुरशाह 'जफर' गद्दीपर बिठाये गये। पता नही, 'जफर'को गालिबकी इन बातोका कुछ ख्याल रहा या नही पर गालिब खुद अपने कार्यपर लज्जित थे और 'जफ़र'की नाराजीकी कल्पनासे भीत हो उन्होंने शुरूके फ़ारसी क़सीदोमे अपने गलत रवैयेके लिए बार-बार क्षमा प्रार्थना की है।

इधर दिल्लीमे अकबरशाहकी मृत्यु हुई, बहादुरशाह गद्दीपर बैठे, उधर लखनऊमे अवध-नरेश नसीरउद्दीन हैदरका देहान्त हो गया और अहमदअली शाहको गद्दी मिली। मिर्जाने अहमदअलीकी तारीफमे भी क़सीदा लिखकर भेजा पर शायद वह दरबारमे पढा ही नही गया। इस कसीदेमे भी स्तुति एवं प्रशंसाके बाद अपनी किस्मतका रोना रोया है—

लखनऊकी ओर दृष्टि

बा मन कि ताबे नाज़ न को याँ नदाश्तम।
बदकर्द बद कि जौरो जफ़ा कर्द रोज़गार।

और भी—

गुफ़्तम बअक़्ले कुल के नदानम बरा ए मन,
हुक्मे दवामे हब्स चरा कर्द रोज़गार।
गुफ़्त ऐ सितारः सोख़्तः ज़ाग़ो ज़ग़न नये,
काँरा गिरफ़्तो बाज़ रिहाकर्द रोज़गार।
तू बुलबुल! हमीं के बदाम ओमदी तरा,
अन्दर क़फ़स ज़बह नवाकर्द रोज़गार।

सचमुच गालिबके लिए यह समय बड़ी कठिनाइयों एवं मुसीबतोंका था। पर सब तरफसे निराश होनेका एक अच्छा परिणाम भी हुआ कि इनका ध्यान काव्य और साहित्यकी ओर अधिकाधिक खिचता गया। निराशासे भरी ज़िन्दगीके रेगिस्तानमे वही एक पुष्पोद्यान था जहाँ चन्द लमहे शान्ति एवं

'मयख़ानए आर्ज़ू'

ठण्डकसे बीत सकते थे । ज्यो-ज्यो नवाबी एवं जागीरदारीके सपने मिटते गये त्यो-त्यो काव्य, जो पहिले मनोरजन एव दिलवहलावकी चीज़ था, जीवन-निधि-सा होता गया । १८३५मे उन्होने फारसी पद्य-गद्यका संकलन 'मयख़ानए आर्जू'के नामसे तैयार किया । १८३७मे इसका अन्तिम अंश लिखा गया । राय छजमलके हाथकी लिखी इसकी एक प्रतिलिपि ख़ुदाबख़्श लाइब्रेरी पटनामे मौजूद है । जैसे भूपाली प्रतिसे उनकी उर्दू शायरीके बालपनपर प्रकाश पडता है वैसे ही इस पुस्तकमे उनकी प्रथम चालीस सालकी फारसी शायरीकी झलक दिखाई देती है । इसमे पद्य और गद्य दोनो है । बादमे इसके नस्र (गद्य) को अलग करके और दूसरे कुछ पत्र जोडकर मिर्जा अलीबख्शने 'पंच आहग' बनाया ।

इन निराशाकी घडियोमे इनका सम्बन्ध सरसय्यद अहमद ख़ाँ और उनके भाई सय्यद मुहम्मदख़ाँसे बढता गया । इन दोनो भाइयोके छापेख़ाने 'सय्यदुत्तावअ'मे ही इनका उर्दू (रेख़ता) दीवान अक्तूबर १८४१मे निकला। फारसी दीवान ४ साल बाद प्रकाशित हुआ । इससे इनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी ।

पर अभी तक जागीरदारीके सपने पूरे तौरपर न टूटे थे । रस्सी जल गयी थी पर ऐंठन बाकी थी । १८४२ ई० मे सरकारने दिल्ली कालेजका नूतन संगठन और प्रबन्ध किया । उस समय मि० टामसन भारत-सरकारके सेक्रेटरी थे ।

प्रोफेसरीसे इन्कार

यही बादमे पश्चिमोत्तर प्रदेशके लेफ्टिनेण्ट गवर्नर हो गये थे और मिर्जा ग़ालिबके हितैषियोमे थे । वह कालेजके प्रोफेसरोके चुनावके लिए दिल्ली आये । उस समय तक वहाँ अरबीकी शिक्षाका तो अच्छा प्रबन्ध था और मौ० ममलूकअली अरबीके प्रधान शिक्षक थे जो अपने विषयके अद्वितीय विद्वान् माने जाते थे पर फारसीकी शिक्षाका कोई सन्तोषजनक प्रबन्ध न था । टामसनने इच्छा प्रकट की कि जैसे अरबीकी शिक्षाके लिए योग्य अध्यापक है वैसे ही फारसीकी शिक्षा देनेके लिए भी एक विद्वान् अध्यापक

रखा जाय। इस मुआइनेके समय सदरुस्सदूर मुफ्ती सदरुद्दीनख़ाँ 'आजुर्दा' भी मौजूद थे। उन्होने कहा—दिल्लीमे तीन साहब फारसीके उस्ताद माने जाते है। १. मिर्जा असदउल्लाख़ाँ 'गालिब', २. हकीम मोमिनखाँ 'मोमिन' और ३. शेख़ इमामबख्श 'सहबाई'। टामस साहबने प्रोफेसरीके लिए सबसे पहिले मिर्जा गालिबको बुलवाया। अगले दिन यह पालकीपर सवार होकर उनके डेरेपर पहुँचे और पालकीसे उतरकर दरवाजेके पास इस प्रतीक्षामे रुक गये कि अभी कोई साहब स्वागत एव अभ्यर्थनाके लिए आते है। जब देर हो गयी, साहबने जमादारसे देरका कारण पूछा। जमादारने आकर मिर्जासे दरियाफ़्त किया। मिर्जाने कहला दिया कि चूँकि साहब परम्परानुसार मेरा स्वागत करने बाहर नही आये इसलिए मै अन्दर नही आया। इसपर टामसन साहब स्वयं बाहर निकल आये और बोले—"जब आप दरबारमे बहैसियत एक रईस या कविके तशरीफ लावेगे तब आपका स्वागत-सत्कार किया जायगा लेकिन इस समय आप नौकरीके लिए आये है इसलिए आपका स्वागत करने कोई नही आया।" मिर्जाने कहा—"मै तो सरकारी नौकरी इसलिए करना चाहता हूँ कि खान्दानी प्रतिष्ठामे वृद्धि हो, न कि जो पहिलेसे है उसमे भी कमी आ जाय और बुजुर्गोकी प्रतिष्ठा भी खो बैठूँ।" टामसन साहबने, नियमोके कारण, विवशता प्रकट की तब गालिबने कहा—'ऐसी मुलाजिमतको मेरा दूरसे ही सलाम है' और कहारोसे कहा—वापिस लौट चलो।* बादमे टामसन साहबने दूसरा प्रबन्ध किया।†

---

* 'आबेहयात' (आजाद) पृ० ५०७–५०८।

† इनके बाद टामसनने हकीम मोमिनको बुलवाया। उन्होने कहा कि जो वेतन (१०० रु० मासिक) ममलूकअलीको मिलता है उससे कम न लूँगा। साहब ४०) मासिकसे ज्यादा देनेको तैयार नही थे। इसलिए उन्होने भी इन्कार कर दिया। इमामबख़्शकी जीविकाका कोई साधन

मिर्जाके इस रवैयेसे उनके स्वभावके एक पहलूपर प्रकाश पडता है। इस समय वह बडे अर्थकष्टमे थे फिर भी उन्होने निरर्थक वातपर नौकरी छोड़ दी। आश्चर्य तो यह है कि जन्मभर सरकारी ओहदेदारो एव अग्रेज अफसरोकी चापलूसी एव अत्युक्तिभरी स्तुतिमे ही बीता (जैसा कि उनके लिखे कसीदोसे प्रकट है) पर जरा-सी और सारहीन वातपर वह अड गये। इससे यह भी ज्ञात होता है कि इस समय उनमे हीनताका भाव (इन्फीरियारिटी काम्प्लेक्स) बहुत वढा हुआ था और वह तुनुकमिजाज और क्षणिक भावनाओकी ऑधीमे उड जानेवाले हो गये थे।

इधर चिन्ताएँ बढती गयी, जीवनकी दुश्वारियॉ बढती गयी, उधर बेकारी, शेरोसखुनके सिवा कोई दूसरा काम नही। स्वभावत. निठल्लेपनकी घडियॉ दूभर होने लगी। चिन्ताओसे पलायनमे इनकी सहायक एक तो थी शराव, अव जुएकी आदत भी लग गयी। उन्हे शुरूसे शतरज और चौसर खेलने की आदत थी। अक्सर मित्र-मण्डली जमा होती और खेल-तमाशेमे वक्त कटता। कभी-कभी बाजी बदकर खेलते थे। गदरके पहिले उन्हे वडा अर्थ-कष्ट था। सिर्फ सरकारी वृत्ति और किलेके पचास रुपये थे। पर आदते रईसोकी थी इसलिए सदा ऋणभारसे दबे रहते थे। इस जमानेकी दिल्लीके रईसजादो और चाँदनी चौकके जौहरियोके बच्चोने मनोरंजनके जो साधन ग्रहण कर रखे थे उनमे एक जुआ भी था। गंजीफा आम तौरपर खेला जाता था। इनके साथ उठते-बैठते मिर्जाको भी लत लग गयी। धीरे-धीरे नियमित जुआबाजी शुरू हो गयी। जुएके अड्डेवालेको सदा कुछ न कुछ मिलता है फिर चाहे कोई जीते या हारे। इससे दिल बहलता था,

जुएकी लत

न होनेके कारण उन्होने यह कार्य स्वीकार कर लिया। बादमे उन्हे पचास मिलने लगे।—मरहूमे देहली कालेज (मौ० अब्दुलहक) पृ० १५१-१५३।

वक़्त कटता था और कुछ न कुछ आमदनी भी हो जाती थी। आजाद लिखते हैं—"यह खुद भी खेलते थे और चूँकि अच्छे खिलाड़ी थे इसलिए इसमे भी कुछ न कुछ मार ही लेते थे।"

अग्रेजी क़ानूनके अनुसार जुआ जुर्म था पर रईसोंके दीवानखानोंपर पुलिस उतना ध्यान न देती थी जैसे क्लबोमे होनेवाले ब्रिजपर आज भी ध्यान नही दिया जाता। कोतवाल एवं बड़े अफ़सर रईसोसे मिलते-जुलते रहते और परिचयके कारण भी ज़्यादा सख्ती न करते थे। गालिबकी जान-पहिचान भी कोतवाल तथा दूसरे अधिकारियोसे थी इसलिए इनके ख़िलाफ न तो किसी तरहका शुबहा किया जाता था, न कानूनी कार्रवाइयोका अन्देशा था।

पर सन् १८४५ के लगभग आगरासे बदलकर एक नया कोतवाल, फैजुलहसन, आया। इसको काव्यसे कोई अनुराग न था इसलिए गालिबपर मेहरबानी करनेकी कोई बात उसके लिए न हो सकती थी। फिर यह सख्त आदमी था। आते ही इसने सख्तीसे जाँच शुरू की और जासूस लगा दिये। कई दोस्तोने मिर्जाको चेतावनी दी कि जुआ बन्द करो पर वह लोभ एवं अहंकारसे अन्धे हो रहे थे; उन्होने पर्वा न की। वह समझते थे कि मेरे विरुद्ध कोई कार्रवाई नही हो सकती। एक दिन कोतवालने छापा मारा। और लोग तो पिछवाडेसे निकल भागे, मिर्जा धर लिये गये। मिर्जाकी

गिरफ़्तारी

गिरफ्तारीके पूर्व चन्द जौहरी पकड़े गये थे पर रुपया खर्च करके बच गये थे; मुक़दमे तककी नौबत न आई थी। मिर्जाके पास रुपया कहाँ था? हाँ; मित्र थे। उन्होने बादशाह तकसे सिफ़ारिश कराई किन्तु कुछ नतीजा न निकला। तब घरमे बैठ रहे। जब लोगोको मिर्जाकी रिहाईकी तरफसे निराशा हो गयी, न केवल दोस्तों और साथ उठने-बैठने वालोने बल्कि अजीजोने भी एक दम आँखें फेर ली और इस बातमे लज्जाका अनुभव करने लगे कि मिर्जाके मित्र या सम्बन्धी समझे जायँ। मौ० अबुलकलाम

आजाद लिखते है—"इस वावमे लोहारूके खान्दानका जो तर्जेअमल रहा वह निहायत अफसोसनाक था।" इस खान्दानका कोई फर्द न तो इस जमानेमे मिर्जासे मिला और न किसी तरहकी अयानत की। इतना ही नही

अज़ीज़ों और दोस्तोंकी तोताचश्मी

वल्कि जव आगराके एक अखवारने मिर्जाका जिक्र करते हुए उन्हे खान्दान लोहारूका रिश्तेदार जाहिर किया तो यह वात उन लोगोको वहुत वुरी लगी और उसका सशोधन कराके लिखवाया गया मिर्जा साहवसे खान्दान लोहारूका कोई नस्वी ताल्लुक नही है, महज दूरका सववी ताल्लुक है।"* इन वातोका भी मिर्जापर वड़ा प्रभाव पडा। मित्रोमे केवल नवाव मुस्तफाखाँ 'शेफ्ता'ने हर कदमपर इनका साथ दिया। खवर मिलते ही वह एक-एक हाकिमसे जाकर मिले और मिर्जाकी रिहाईकी कोशिश की। फिर जव मुकदमा चला और वादमे उसकी अपील की गयी तव भी उसका तमाम खर्च खुद उठाया। जवतक मिर्जा कैद रहे हर दूसरे दिन जाकर उनसे मिलते थे।

इस मामलेमे मिर्जाका दोप भी कुछ कम न था। मित्रोकी चेतावनीके वावजूद वह न सँभले। इसके पूर्व भी एक वार इस जुर्ममे मिर्जाको १००

सजा

रु० जुर्माना और जुर्माना न देनेपर चार मास कैदकी सजा हुई थी और यह चन्द दिनो वाद जुर्माना अदा करके छूटे थे। इसपर भी सावधान न हुए। दोवारा १८४७ मे जुएके जुर्ममे गिरफ्तार हुए। गिरफ्तारीकी घटना भी दिलचस्प है। कोतवालने वडी होशयारीसे छापा मारा। मकान घेर लेनेके वाद इत्तिला करवाई कि जनानी सवारियाँ आई है। इस कारण किसीने आपत्ति नही की। अन्दर जानेपर भेद खुला। लोगोने विरोध किया। इसपर पुलिसने भी सख्ती की। मिर्जा जुआखाना चलानेके जुर्ममे गिरफ्तार हुए। मुकदमा

---

* नक्शे आज़ाद पृ० २८२-२८३।

कुँवर वजीर अलीखाँ मजिस्ट्रेटकी अदालतमें पेश हुआ। वहाँ सजा हुई और अपीलमे भी बनी रही। ६ मास कठोर कारावास और दो सौ जुर्मानाका दण्ड मिला। जुर्माना न देनेपर ६ मास और। जुर्मानाके अलावा ५०) अधिक देनेपर श्रमसे मुक्ति।†

जेलमे खाना-कपड़ा घरसे जाता था। जो चाहे जब मिल सकता था फिर भी इस सजा और क़ैदसे इनके अहको गहरी चोट लगी। 'यादगारे ग़ालिब' मे मौलाना हालीने इनका एक ख़त उद्धृत किया है जिससे इनकी मनोदशाका पता लगता है। इसमे वह लिखते है:—

जेलमें

"मै हर एक काम ख़ुदाकी तरफसे समझता हूँ और ख़ुदासे लडा नही जा सकता। जो कुछ गुजरा उसके नग[1] से आजाद और जो कुछ गुजरनेवाला है उसपर राजी हूँ। मगर आरजू करना आईने अबूदियत[2] के खिलाफ नही है। मेरी यह आरजू है कि अब दुनियामे न रहूँ और रहूँ तो हिन्दोस्तानमे न रहूँ। रूम है, मिस्र है, ईरान है, बगदाद है। यह भी जाने दो; ख़ुद काबा आज़ादोंकी जाएपनाह[3] आस्तनए रहमतुल आलमीन[4], दिलदारोकी तकियागाह[5] है। देखिए वह वक्त कब आयेगा कि दरमॉदगी[6] की कैदसे, जो इस गुजरी हुई कैदसे ज़्यादा जानफर्सा[7] है, नजात[8] पाऊँ और बग़ैर उसके कोई मंजिले मक़सूद क़रार दूँ, सरब सेहरा निकल जाऊँ। यह है जो मुझपर गुजरा और यह है जिसका मै आरजूमन्द हूँ।"

---

† 'देहलीका आख़री सॉस' पृ० १७४ तथा अहरुनुल अखबार बम्बई २ जुलाई १८४७।

१ बदनामी, लज्जा, २. उपासना-सिद्धान्त, ३. आश्रयस्थान, ४. संसार पर दया करनेवाले (ईश्वर) का स्थान, ५. रसिकोका आश्रय, ६. हीनता, बेकारी, विवशता, ७. प्राणलेवा, ८ मुक्ति।

३ मास बाद ही दिल्लीके सिविलसर्जन डा० रासकी सिफारिश पर छोड दिये गये। पर इस कैदका इनपर गहरा प्रभाव पड़ा। इस कालमे जो 'तरकीब वन्द'[1] उन्होने फ़ारसीमे लिखी है उनमे गहरी व्यथा, जीवित हाड़-मास वाली व्यथाका चित्र है। इन दिनो इनका अर्थकष्ट सीमापर पहुँच गया था। सच पूछें तो कलकत्तासे लौटनेके बाद इनकी आर्थिक स्थिति बराबर खराब ही होती गयी थी। २०–२५ सालसे बराबर तगीमे गुजर कर रहे थे। दिलमे होता था कि किसी राजा-रईसकी मुलाजमत कर ले पर स्वयं आगे बढकर हाथ नही फैला सकते थे। चाहते थे कि कोई बुलावे तो जाऊँ। जो १८३५ मे इनपर पाँच हज़ारकी डिग्री हुई थी तभी उनपर ४०–५० हज़ार कर्ज था। नासिखने इन्हे लिखा कि 'आज दकनमे हुन बरस रहा है। हैदराबादमे महाराज चन्दूलाल अहले कमाल[2] का कद्रदाँ मौजूद है। अगर आप वहाँ चले जायँ तो आपके सब दलिद्दर दूर हो जायँ।' मिर्जाने जवाब दिया—'पहिले तो कर्ज अदा किये बगैर यहाँसे हिलना मुहाल है फिर अगर वहाँ जाऊँ भी तो चन्दूलाल गरीब मेरी क्या कद्र करेगा? उसे मेरे तर्जेसखुन[3] की हवा तक नही लगी और उसके कान इस आवाज़ से आशना नही। जहाँ फारसीमे कृतील और उर्दूमे शाहनसीर उस्ताद माने जाते हो वहाँ ग़ालिब और नासिखको कौन पूछता है। मज़ीदबरॉ[4] वह अस्सी सालका बुड्ढा ख़ुद कब्रमे पाँव लटकाये बैठा है, जबतक मै हैदराबाद पहुँचूँ वह आप अदमाबाद पहुँच चुका होगा।''

गहरा प्रभाव

---

१ तरकीबबन्द– नज्मका एक प्रकार जिसमे कई बन्द होते है और हर बन्दमे पाँच-सात शेर होते है। हर बंद भिन्न रदीफ-क़ाफ़िएमे होता है और हर बन्दके ख़ात्मेपर एक नया शेर लाते है जिसका रदीफ़-क़ाफ़िया अलग ही होता है, २ गुणियो, ३ काव्य-प्रणाली। ४ इसके अतिरिक्त।

पर स्थिति बहुत बिगडनेपर किसी रियासतकी मुलाजमतकी बात बार-बार इनके मनमे आती थी। करीब-करीब इसके लिए तैयार हो गये थे कि जेलकी इस सजासे जो बदनामी हुई उसने हिम्मत पस्त कर दी। 'तुफ्ता' को एक पत्रमे लिखते है—

"सरकारे अंग्रेजीमे बडा पाया रखता था। रईसजादोमे गिना जाता था। पूरा खिलअत पाता था अब बदनाम हो गया हूँ और एक बडा धब्बा लग गया है। किसी रियासतमे दखल कर नही सकता। मगर हाँ, उस्ताद या पीर या मद्दाह बनकर राहोरस्म पैदा करूँ।"

इस कैदने रईसजादा बनने और लोहारू वंशके साथ सम्बन्ध रखने तथा ऊपरी ठाट-बाटके सपने समाप्त कर दिये। इससे वह अपनी उस निधि पर दिन-दिन अधिकाधिक निर्भर करते गये जो उनमे भरी पडी थी।

संयोगवश और कैदसे छूटनेके थोडे दिनो बाद ही कुछ मित्रोकी मध्यस्थतासे दिल्ली दरबारसे इनका सम्बन्ध हो गया। इन दिनो मौलाना

क़िलेकी नौकरी

नसीरउद्दीन उर्फ मियाँ काले साहब बहादुर 'जफर' के पीर थे। वह गालिबके मित्रो और शुभैषियोमे थे। शाही हकीम एहसानउल्लाखाँ भी मिर्जाके प्रशसकोमे थे। इन लोगोने सिफारिश की। वहादुरशाहने मंजूर कर लिया कि मिर्जा तैमूरी वंशका इतिहास फारसी भाषामे लिखे। ४ जुलाई १८५० को यह बादशाहके सामने पेश किये गये। बादशाह जफरने नजमुद्दौला दबीरुल्मुल्क निजाम जंगकी उपाधि प्रदान की और ६ पारचे तथा तीन रत्नका खिलअत दिया। पचास रुपये मासिक वृत्ति नियत हुई और मिर्जा किलेके मुलाजिम हो गये। *

---

* उस समय किलेकी परम्परा थी कि सालमे दो बार वेतन मिलता था। एक तो पचास रुपये मासिक, फिर ६-६ महीनेमे मिले तो उसका

राजकीय इतिहासकार होनेके चन्द साल बाद ही, १८५४ ई०मे, युवराज फ़तहुल्मुल्क मिर्जा मुहम्मद सुलतान गुलाम फख़रुद्दीन 'रम्ज' उर्फ मिर्जा फखरू इनके शागिर्द हो गये। यहाँ यह

युवराजके गुरु

बात भी याद रखने योग्य है कि युवराजने गालिबके पुराने दुश्मन स्व० नवाब शम्सउद्दीन ख़ाँकी विधवासे शादी की थी।* इसलिए अन्दाज होता है कि उस समय गालिब काव्य-जगत्मे प्रतिष्ठाके शिखरपर रहे होगे। तभी युवराजने शम्सउद्दीनसे मिर्जाके विरोध भावको भुला दिया होगा। जो हो, शिष्य होनेपर युवराजने ४००) सालानाकी वृत्ति उन्हे दी।

परिणाम यह होता था कि महाजनके सूदमे ही काफी रकम कट जाती थी। गालिबने पहली छमाही किसी तरह काटी पर जनवरी १८५१ मे दर्ख़ास्त पेश की कि रोजानाकी ज़रूरतोका क्या करूँ, उन्हे इतने दिनोके लिए स्थगित तो कर नही सकता फलत महाजनोसे कर्ज लेता हूँ और सूदमे तनख़ाहका काफी हिस्सा निकल जाता है। पहली छमाहीके वेतनका एक तिहाई इसीमे चला गया—

आपका बंदा और फिरूँ नंगा।
आपका नौकर और खाऊँ उधार।
मेरी तनख़ाह कीजिए माह बमाह।
ता न हो मुझको ज़िन्दगी दुश्वार।
तुम सलामत रहो हज़ार बरस।
हर बरसके हों दिन पचास हजार।

इस प्रार्थना पत्रके बाद इन्हे वेतन हर मासमे मिलने लगा।

* कमाले दाग पृ० ४६ तथा आसारे गालिब (शेख़ मु० इकराम आई. सी. एस.) पृष्ठ ११६।

शाही इतिहासकार होनेसे इन्हे कुछ तसल्ली हुई थी कि १८५२ ई०मे जब उस इतिहासका पहिला भाग (मेह्रनीमरोज) पूरा हुआ, मोमिनकी मृत्यु हो गयी जिससे इन्हे बडी चोट लगी। किन्तु सबसे ज्यादा तकलीफ इन्हे इसी साल, १८ एप्रिल १८५२को, नवाब मिर्जा जैनुल-आब्दीन 'आरिफ़' की मृत्युसे हुई। 'आरिफ़' गालिबकी बीवीके भाजे थे। गालिब उन्हे बेटे-सा मानते थे। उनकी प्रतिभाके कायल थे। उन्हे उनसे बड़ी उम्मीदें थी। वह छोटी उम्रसे ही शेर कहने लगे थे। उनके देहा-वसानसे मिर्जाको बुढापेमे गहरी चोट लगी। उनकी व्यथापूर्ण वाणी फूटी—

मोमिन एवं आरिफ़-की मृत्यु

हाँ, ऐ फ़लक पीरेजवाँ था अभी आरिफ़,
क्या तेरा बिगड़ता जो न मरता कोई दिन और।

बादमे आरिफके दोनो बेटो (बाकर अलीखाँ और हुसेन अलीख़ाँ) को लाकर अपने पास रखा और उन्हे अपने बच्चोसे ज्यादा मानकर बडे लाड-प्यारसे पाला।

'गालिव' दरबारमे कभी-कभी जाया करते थे और उनकी आव-भगत भी होती थी, पर उन्हे वह दर्जा प्राप्त नही था जो 'जौक' को था। 'जौक' जफरके उस्ताद थे। स्वभावत. उनकी इज्जत ज्यादा थी। उनके साथ गालिबकी नोक-झोक चलती ही रहती थी। दिसम्बर १८५१मे जफरके पुत्र जवाँबख्तकी शादी धूमधामसे हुई। इस अवसरपर मिर्जा गालिबने निम्नलिखित सेहरा लिख-कर बादशाहकी ख़िदमतमे पेश किया—

ज़ौक़से छेड़छाड़

ख़ुश हो ऐ बख़्त[1]! कि है आज तेरे सर सेहरा,
बाँध शहज़ादः जवाँबख़्तके सर पर सेहरा।

---

१. भाग्य।

क्या ही इस चाँदसे मुखड़ेपै भला लगता है,
है तेरे हुस्ने दिल अफ़रोज़[1] का ज़ेवर सेहरा।
नाव भर कर ही पिरोये गये होंगे मोती,
वर्ना क्यों लाये हैं कश्तीमें लगाकर सेहरा।
सात दरियाके फ़राहम[2] किये होंगे मोती,
तब बना होगा इस अन्दाज़का गज़ भर सेहरा।
जीमें इतरायें न मोती कि हमीं हैं यक चीज़,
चाहिए फूलोंका भी एक मुकर्रर[3] सेहरा।
हम सखुन-फ़ह्म है ग़ालिबके तरफ़दार नहीं,
देखें इस सेहरेसे कह दे कोई बढ़कर सेहरा।

जब शेख इब्राहीम 'जौक' बादशाहके पास पहुँचे तो बादशाहने 'गालिब' का लिखा हुआ सेहरा उनको दिया और कहा कि उस्ताद, इसे देखिए। उन्होने पढा और स्वभावके अनुसार कहा—"पीर मुर्शिद दुरुस्त ३।" बादशाहने कहा, उस्ताद तुम भी एक सेहरा अभी लिख दो और जरा मकतेका भी ख्याल रखना। (यानी उस सेहरेसे बढ़कर हो)। जौक वही बैठ गये और यह सेहरा लिखा:—

ऐ जवाँबख़्त! मुबारक तुझे सर पर सेहरा।
आज है यम्नो[4] सआदत[5] का तेरे सर सेहरा।
ता बने[6] और बनी[7] में रहे इखलास[8] बहम[9],
गूँधिए सूरये इखलास[10] को पढ़कर सेहरा।

---

१. हृदयको प्रकाशित करनेवाला सौन्दर्य, २. एकत्र, ३. दूसरा। ४. बरकत, ५ प्रताप, ६. दूल्हा, ७ दूल्हन, ८ प्रेम, ९. परस्पर, १०. प्रेम एवं सौष्ठव सम्बन्धी कुरान-शरीफका एक अंश।

धूम है गुलशने आफ़ाक़[१] में इस सेहरेकी,
गाये मुरग़ाने नवासंग[२] न क्योंकर सेहरा।
फिरती ख़ुशबूसे है इतराई हुई बादे बहार[३],
अल्ला अल्लाह रे फूलोंका मुअत्तर[४] सेहरा।
रूनुमाई[५] में तुझे दे महो-ख़ुरशीद[६] फ़लक[७],
खोल दे मुँहको जो तू मुँहसे उठाकर सेहरा।
दुर्रे ख़ुशआब[८] मज़ामीसे बनाकर लाया,
वास्ते तेरे तेरा 'ज़ौक' सनागर[९] सेहरा।
जिसको दावा है सखुनका यह सुनादे उसको,
देख इस तरहसे कहते है सख़ुनवर[१०] सेहरा।

इस सेहरेकी बडी धूम मची। मिर्जा गालिब इस घटनासे बड़े परीशान हुए। कहाँ उन्होने बादशाहको खुश करनेके लिए सेहरा लिखा था, कहाँ परिणाम उलटा हुआ। तब उन्होने क्षमा-प्रार्थनाके रूपमे यह किता लिखा:—

मंज़ूर हैं गुज़ारिशे अहवाल वाक़ई[११],
अपना बयान हुस्न तबीयत नहीं मुझे[१२]।
सौ पुस्तसे है पेशए आबा[१३] सिपहगिरी,
कुछ शायरी ज़रीय-ए-इज्ज़त नहीं मुझे।

---

१. संसारके उद्यान २. संगीत-निपुण पक्षी, ३ वासन्ती वायु, ४. सुगन्धित, ५. मुँह दिखाई, ६. चाँद-सूरज, ७. आकाश, ८. अच्छे पानीदार मोती, ९ प्रशंसक, १० श्रेष्ठ कवि, ११ सच्ची बातको निवेदन कर देना आवश्यक है, १२. अपनी कथा कहना वैसे मेरे स्वभावमे नही, १३. पूर्वजोका पेशा।

आज़ादरौ[1] हूँ और मेरा मुस्लिक[2] है सुलहकुन[3],
हरगिज़ कभी किसीसे अदावत नहीं मुझे।
क्या कम है यह शरफ़[4] कि ज़फ़रका ग़ुलाम हूँ,
माना कि जाह[5] ओ मंसबो[6] सरवत[7] नहीं मुझे।
उस्तादे शह[8] से हो मुझे पुरख़ासका[9] ख़याल,
यह ताब यह मजाल यह ताक़त नहीं मुझे।
सेहरा लिखा गया ज़िरहे इम्तिसाले अम्र[10],
देखा कि चारा[11] ग़ैर इताअत[12] नहीं मुझे।
मक़्तेमें आ पड़ी है सखुन गुस्तराना[13] बात,
मक़सूद[14] इससे क़ितअ-मुहब्बत[15] नहीं मुझे।
रूए सखुन[16] किसीकी तरफ़ हो तो रूसियाह[17],
सौदा[18] नहीं जुनूँ[18] नहीं वहशत[18] नहीं मुझे।
क़िस्मत बुरी सही पै तबीयत बुरी नहीं,
है शुक्रकी जगह कि शिकायत नहीं मुझे।
सादिक़[19] हूँ अपने क़ौलमें 'ग़ालिब' खुदा गवाह,
कहता हूँ सच कि झूठकी आदत नहीं मुझे।

---

१. स्वतन्त्र विचारवाला, २. स्वभाव, ३ मैत्रीपरक, शान्तिपरक, ४ सम्मान, ५ इज्जत, ६ ओहदा, ७ दौलत, ८. बादशाहके उस्ताद यानी जौक, ९ झगडे, १० बादशाहके आदेशके पालनके रूपमे, ११. इलाज, १२ ताबेदारी, १३ काव्योचित अतिशयोक्ति, १४ अभीष्ट, १५ प्रेमको तोडना, १६ यह कविता किसीको लक्ष्य करके लिखी गयी हो तो, १७ काला मुँह, १८ उन्माद और पागलपन, १९ सच्चा।

बहरहाल जबतक जौक रहे, दरबारमे गालिब उभर नही पाये। १६ अक्तूबर १८५४ को जौककी मृत्यु हो गयी। जौकके बाद बादशाह

चन्दरोज़ा खुशहाली

जफरने भी मिर्जा गालिबसे इस्लाह लेनी शुरू की। जफ़रके सबसे छोटे शहजादे मीरजा खिज्र सुलतानने भी इनकी शागिर्दी इख्तियार की। सम्भवत. इसी साल नवाब वाजिद अलीशाह अवध-नरेशकी ओरसे भी पॉच सौ सालाना मिलने लगा। इससे इनकी स्थिति काफी हद तक सुधर गयी पर यह अल्पकालिक रही क्योकि दो ही साल बाद, १० जुलाई १८५६ को, मिर्जा फख़्रूकी मृत्यु हो गयी। उधर ११ फरवरी १८५६ को अंग्रेजोने वाजिद अलीशाह-को गद्दीसे उतारकर कलकत्ता भेज दिया जहाँ वह मटियाबुर्जमे नजरबन्द कर दिये गये। मई १८५७ मे गदर हो गया और मीरजा खिज्र सुलतान हुमायूँके मक़बरेमे गिरफ्तार कर लिये गये और दिल्लीके बाहर मेजर हडसनकी गोलीके शिकार हुए। जफरपर बागियोंकी मदद करनेके जुर्ममे मुकदमा चला और वह अक्तूबर १८५८ मे रंगून भेज दिये गये जहाँ ७ नवम्बर १८६२ को उनकी मृत्यु हुई।

ऊपर लिखा जा चुका है कि १८५४ के अन्तिमाशमे जौककी मृत्यु हुई और उसके बाद ही गालिबको जफरका गुरु होनेका सौभाग्य प्राप्त

बहादुरशाह एवं ग़ालिब

हुआ। मुश्किलसे २—३ साल उन्होने बादशाहके काव्यका संशोधन किया होगा। मोमिन और जौककी मृत्युके बाद उर्दू काव्यकी दुनियामे यही मशाल रह गये। इसलिए बहादुरशाहने इन्हे गुरु तो बनाया पर दिलसे वह कभी इनके अनुयायी न बन सके। कुछ लोग कहते है कि जफरका बहुत-सा कलाम गालिबका ही लिखा है; बादशाहकी एक लाइन है तो इनकी चार। मु० हु० आजाद और हालीने भी ऐसे ही शुबहे किये है पर दोनोका काव्य ही इस झूठका सबसे बडा उत्तर है। बहादुरशाह 'जफर'का रंग और है, गालिबका रंग और। जफरकी जबान सरल और साफ़-सुथरी है; उनमे उलझाव नही है

जव गालिब किसी बातको सीधे ढगसे कहना बहुत कम जानते है। जफरकी जबान इस देशकी जबान है, उनकी उर्दू सचमुच उर्दू है जब मिर्जा गालिव की जवान और विचारपर फारसीयतकी ऐसी छाप है कि उर्दू उभर नही पाती वल्कि यह कहिए कि यह उर्दू भी एक प्रकारकी फारसी है। मिर्जा अपनी फारसीदानीके लिए प्रसिद्ध थे और फारसीके सर्वोत्तम साहित्य-कारोमे माने जाते थे। १८५३–५४ मे जब बहादुरशाहके शिया होनेकी शोहरत हुई तो बादशाहने गालिबसे ही दमअ उल्बातिल नामक एक फारसी मस्नवी लिखवाकर छपवाई।

जहाँ बहादुरशाहने गालिबके विस्तृत भाषा-ज्ञानसे कुछ-न-कुछ लाभ उठाया वहाँ बहादुरशाहकी जीवन-शैली एवं रहस्यमय दार्शनिक विचारो-से गालिव भी कुछ-न-कुछ प्रभावित हुए। फारसी परम्पराके कारण मिर्जाको तसव्वुफसे थोडी-वहुत दिलचस्पी तो थी ही बहादुरशाहकी सगतिसे उसमे वृद्धि ही हुई और उनके काव्यमे सूफियाना ख़याल ज्यादा आने लगे।

यह ठीक है कि दरबारमे गालिबको ज़ौकका दर्जा कभी न मिला, पर यह भी ठीक है कि दरबार शाहीमे अपनी तबीयतदारी एव जद्दतके कारण मिर्जाकी ज़फरसे बडी बेतकल्लुफी थी। अपनी हाजिर जवाबी और हास्यप्रियताके कारण भी वह इस स्थितिको पानेमे सफल हुए थे।

गालिब एव बहादुरशाहके वर्णनमे हालीने कई लतीफे लिखे है। उनसे तथा उस कालमे लिखे कई शेरोसे मिर्जाकी हास्यप्रियताकी कल्पना होती है।

एक रोजा नहीं

एक वार जब रमज़ान गुजर गया और मिर्जा किलेमे गये तो बादशाहने पूछा—"मिर्जा! तुमने कितने रोजे रखे?" मिर्जाने अर्ज किया—"पीरो मुर्शिद! एक नही रखा!" और निम्नलिखित किता पढा—

इफ़्तारे सूमकी कुछ अगर दस्तगाह हो।
इस शख़्सको ज़रूर है रोज़ा रखा करे।
जिस पास रोज़ा खोलके खानेको कुछ न हो,
रोज़ा अगर न खावे तो नाचार क्या करे।

फिर एक रुबाई भी पेश की—

सामाने ख़ूर व ख़ाब कहाँसे लाऊँ?
आरामके असबाब कहाँसे लाऊँ?
रोज़ा मेरा ईमान है 'ग़ालिब' लेकिन,
खसख़ानः व बरफ़ाब कहाँसे लाऊँ?

लाल किला एवं बहादुरशाहके साथ गालिबका सम्पर्क तो हुआ पर मिर्ज़ाकी तेज़ निगाहने भाँप लिया कि यह सल्तनत ज्यादा दिन चलनेवाली नही है। मिर्जाकी अधिकारियो एव अंग्रेजोमे पैठ थी। यह देख रहे थे कि अंग्रेजोकी ताकत बढ रही है। वे बादशाहत खतम करनेपर तुले हुए थे पर एकाएक इस भयसे परिवर्तन नही करते थे कि कही भारतकी जनता बिगड न जाय। १८३७ मे जब बहादुरशाह गद्दीपर बैठे तभी उनसे कहा गया कि ईस्ट इण्डिया कम्पनीपर बादशाहके जो अधिकार है उन्हे छोड दो लेकिन वृद्ध बहादुरशाह कमजोर होनेपर भी ऐसा करनेको तैयार न हुआ। बादमे जब अग्रेजोकी ताकत बहुत बढ गयी तब १८५४ मे यह फैसला हुआ कि बहादुरशाहके बाद शाही खान्दान किलेमे रहनेकी जगह कुतुबके पास रहे। इसी बातपर रेजीडेण्ट एव नवाब जीनतमहलकी बड़ी झडप हुई परन्तु अंग्रेज अब शक्तिमान थे, उन्हे किसीकी भावनाओकी क्या परवाह थी इसलिए निर्णय ज्यो-का-त्यो रहा और दो साल बाद यह भी तय हो गया कि बहादुरशाहके उत्तराधिकारीको बहादुरशाहसे कम

दुनियादारी एवं व्यावहारिकता

पेशन मिलेगी, दूसरे यह कि उसकी उपाधि वादशाह नही वल्कि शाहजादा होगी। मतलव वादशाहत वहादुरशाहके साथ ही खत्म हो जायगी।

मिर्जाने देखा कि वादशाहत तो खत्म हो रही है, इसलिए अक्लमन्दी-की वात यह है कि अपना भविष्य अंग्रेजोके साथ सम्वद्ध करना चाहिए। उनको इस देशकी मिट्टीके प्रति कोई आकर्षण न था इसलिए जिस वातसे उन्हे अंग्रेजोका विरोधी होना चाहिए था उसी कारण वह, उलटे, उनकी ओर खिचते गये। उन्होने देखा, अग्रेजोका विरोध निरर्थक है। वह दुनिया-दार और व्यावहारिक आदमी थे। उन्होने महारानी विक्टोरियाकी प्रशसा-मे एक फारसी कसीदा लिखा और लार्ड केनिंगके जरिये विलायत भेजवाया। पर साथमे वह स्वार्थ भी लगा था जो इनके जीवनमे सदा लगा रहा और जिसके कारण यह कभी निरपेक्ष न हो सके। कसीदेके साथ एक निवेदन था कि रूम व ईरानके वादशाह कवियोपर वड़ी-वडी इनायते करते है। अगर महारानी भी मुझे खिताव, खिलअत एवं पेशनसे गौर-वान्वित करें तो कोई आश्चर्य नही।" इस खतका जवाव १८५७ की जनवरीके अन्तमे गालिबको लंदनसे मिला कि विचारके वाद खिताब एव खिलअतके वारेमे आज्ञा प्रचारित होगी।

अव क्या था, मिर्जा फूले न समाये। आशाओके काल्पनिक महल वनाते रहे कि ११ मईको गदर सिरपर आ गया।

गदरके अनेक चित्र इनके पत्रोमे, तथा इनकी पुस्तक 'दस्तबू' मे मिलते है। इस समय इनकी मनोवृत्ति अस्थिर थी। यह निर्णय न कर

ग़दर

पाते थे कि किस पक्षमे रहे। सोचते थे, पता नही ऊँट किस करवट बैठे! इसलिए किलेसे भी थोडा सम्वन्ध वनाये रखते थे। 'दस्तंवू'मे उन घटनाओका जिक्र है जो गदरके समय इनके आगे गुजरी। इस समय यह वल्लीमारांमे रहते थे। इसी मुहल्लेमे शरीफखानी वशके प्रसिद्ध हकीम लोग रहते थे जो पटियाला सरकारमे मुलाज़िम थे। महाराज पटियालाने अंग्रेजोसे कहकर इस मुहल्लेके

सिरेपर दीवार खिचवा दी ताकि बाहरका आदमी अन्दर न जाने पाये और अपने आदमियोका पहरा बैठा दिया कि कोई फ़ौजी गोरा लोगोको तग न कर सके। पर लोग इतने भयभीत थे कि कूचाबन्दीसे बाहर जाकर पानी भी न ला सके। प्याससे लोगोंके ओठोपर जान थी। वह तो कहिए, पानी बरसा और लोगोने चादरे तान-तानकर घर भरके बर्तन भर लिये। काली सेनाने दिल्लीमे खूब लूट-मार की; कितने ही अंग्रेजोको मार दिया जिसका मिर्ज़ाको बराबर अफसोस रहा।

कत्ल व गारतके बाद बागियोने किलेका रुख किया। इस समय बादशाह उनकी आज्ञा माननेको विवश था। मिर्ज़ाने शाहको 'गिरफ्ते सिपाह' लिखा है। दिल्लीसे अंग्रेजी शासन उठने और दोबारा स्थापित होनेमे चार मास चार दिन लगे पर इनकी हालत मिर्ज़ाने केवल ५–६ पृष्ठोमे लिखी है। उसमे भी अपनी एवं अपने अजीजोकी मुसीबतोंका जिक्र है। ऐसा जान पड़ता है कि मिर्ज़ाने उस समयकी घटनाएँ विस्तारसे लिखी होगी पर अग्रैजोकी विजय एव बहादुरशाहके निर्वासनके बाद उनका प्रकाशन उचित न समझ बहुत-सा अश निकाल दिया होगा।

उधर फ़साद शुरू होते ही मिर्जाकी बीवीने, उनसे पूछे बिना, अपने सब जेवर और कीमती कपडे मियाँ काले साहबके मकानपर भेज दिये कि वहाँ सुरक्षित रहेगे पर बात उलटी हुई। काले साहबका मकान भी लुटा और उसके साथ गालिबका सामान भी लुट गया।

चोटपर चोट

चूँकि इस समय राज मुसलमानोका था इसलिए अग्रेजोने दिल्ली-विजयके बाद उनपर विशेष ध्यान दिया और उनको खूब सताया। बहुतसे लोग प्राण-भयसे भाग गये। इनमे मिर्जाके भी अनेक मित्र थे। इसलिए ग़दरके दिनोमे उनकी हालत बहुत खराब हो गयी। घरसे बाहर बहुत कम निकलते थे। खाने-पीनेकी भी मुश्किल थी। ऐसे वक्त उनके कई

हिन्दू मित्रोंकी सहायता

हिन्दू मित्रोने उनकी बड़ी सहायता की। मुशी हरगोपाल 'तुफ्ता' मेरठसे बराबर रुपये भेजते रहे; लाला महेशदास इनकी मदिराका प्रबन्ध करते रहे। मुशी हीरा सिह दर्द, पं० शिवराम एवं उनके पुत्र बालमुकुन्दने भी इनकी मदद की। मिर्जाने अपने पत्रोमे इनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की है।

यद्यपि पटियालाके सिपाही आस-पासके मकानोकी रक्षामे तैनात थे और एक दीवार बना दी गयी थी पर ५ अक्टूबरको (१८ सितम्बरको दिल्लीपर अंग्रेजोंका दोबारा अधिकार हो गया था) कुछ गोरे, सिपाहियोके मना करनेपर भी, दीवार फाँदकर मिर्जाके मुहल्लेमे आ गये और मिर्जाके घरमे घुसे। उन्होने माल-असबाबको हाथ नही लगाया पर मिर्जा, आरिफके दो बच्चो और चन्द और लोगोको पकड ले गये और कुतुबउद्दीन सौदागरकी हवेलीमे कर्नल ब्राउनके सामने पेश किया। उनकी हास्यप्रियता और एक मित्रकी सिफारिशने रक्षा की।

मुसलमान हूँ पर आधा

बात यह हुई कि जब गोरे मिर्जाको गिरफ्तार करके ले गये तो अंग्रेज सार्जेण्टने इनकी अनोखी सज-धज देखकर पूछा—'क्या तुम मुसलमान हो?' मिर्ज़ाने हँसकर जवाब दिया कि 'मुसलमान तो हूँ पर आधा।' वह इनके जवाबसे चकित हुआ। पूछा—'आधा मुसलमान कैसे?' मिर्जा बोले—"साहब, शराब पीता हूँ, हेम (सुअर) नही खाता।"

जब कर्नलके सामने पेश किये गये इन्होने महारानी विक्टोरियासे अपने पत्र-व्यवहारकी बात बताई और अपनी वफादारीका विश्वास दिलाया। कर्नलने पूछा—"तुम देहलीकी लडाईके समय पहाडी (रिज) पर क्यो नही आये जहाँ अग्रेजी फौजे और उनके मददगार जमा हो रहे थे?"

मिर्ज़ाने कहा—"तिलगे दरवाजेसे बाहर आदमीको निकलने नही देते थे। मै क्यो कर आता? अगर कोई फ़रेब करके, कोई बात करके निकल जाता, जब पहाडीके करीब गोलीके रेजमे पहुँचता तो पहरेवाला गोली मार देता। यह भी माना कि तिलगे बाहर जाने देते, गोरा पहरेदार भी गोली न मारता पर मेरी सूरत देखिए और मेरा हाल मालूम कीजिए।

बूढा हूँ, पाँवसे अपाहिज, कानोंसे वहरा, न लडाईके लायक़, न मश्विरतके काबिल। हाँ, दुआ करता हूँ सो वहाँ भी दुआ करता रहा।"

कर्नल साहब हँसे और मिर्जाको उनके नौकरो एवं घरवालोके साथ, घर जानेकी इजाजत दे दी।

मिर्ज़ा यूसुफ़का अन्त

मिर्जा तो बच गये पर इनके भाई मिर्जा यूसुफ इतने भाग्यशाली न थे। पहिले जिक्र किया जा चुका है कि वह ३० सालकी उम्रमे ही विक्षिप्त हो गये थे और गालिबके मकानसे दूर, फराशखानेके करीब, एक दूसरे मकानमे अलग रहते थे। जितनी पेंशन गालिबको सरकारी खजानेसे मिलती थी उतनी ही मिर्जा यूसुफके लिए भी नियत थी। उनकी बीवी, बच्चे भी साथ-साथ रहते थे पर जब देहलीपर पुन. अंग्रेजोंका अधिकार हुआ तो गोरोने चुन-चुनकर वदला लेना शुरू किया। इस बेइज्जती और अत्याचारसे बचनेके लिए यूसुफकी बीबी, बच्चो-सहित, इन्हे अकेले छोड़, जयपुर चली गयी थी। घरपर इनके पास एक बूढी नौकरानी और एक बूढा दरवान रह गये। मिर्जाको भी सूचना मिली किन्तु बेबसीके कारण कुछ कर न सके।

३० सितम्बरको, जब गालिबको अपना दरवाजा बन्द किये हुए पन्द्रह-सोलह दिन हो रहे थे, उन्हे सूचना मिली कि सैनिक मिर्जा यूसुफके घर आये और सब कुछ ले गये लेकिन उन्हे और बूढे नौकरोको जिन्दा छोड़ गये।* मिर्जा गालिब लिखते है कि १९ अक्टूबरको, सुवहके वक्त, मिर्ज़ा यूसुफका बूढा दरवान खबर लाया कि मिर्ज़ा यूसुफ़, पॉच दिन निरन्तर ज्वरग्रस्त रहनेके वाद कल रात गुज़र गये।

---

* गालिबके एक निकट सम्बन्धी मिर्जा मुईनउद्दीनने लिखा है कि यूसुफ गोलीकी आवाज सुनकर, यह देखने कि क्या हो रहा है, घरसे बाहर आये और मारे गये।—गदरकी सुबह-शाम पृष्ठ ८८।

इस समय शहरकी हालत भयानक थी। २–४ आदमियोका मिलकर, किसी लाशको दफन करनेके लिए, कब्रिस्तान तक ले जाना सम्भव न था। कफनके लिए कपडे भी न मिलते थे। खैर, साथियोने मदद की। मिर्जाका एक नौकर और पटियालाका एक सिपाही उनके साथ गये। कफनके लिए दो-तीन सफेद चादरे मिर्जाने अपने पाससे दी। इन लोगोंने गलीके सिरेपर तह्व्वरखाँकी मस्जिदकी† सेहनमे गड्ढा खोदा और शवको उसमे उतारकर मिट्टी डाल दी।

इस समय मिर्ज़ा गालिबकी हालत दयनीय थी। आमदनीके ज़रिये बद, जान बचानेकी फिक्र, भाईकी मौत! एक आतंक सबपर छाया हुआ।

उस जमानेकी हालत

ज़िन्दगी भी क्या ज़िन्दगी थी। जो जीवित थे, मरे हुओसे बदतर थे। किसीकी सुरक्षा न थी। गोरे जिसकी इज्जत-आबरू चाहते ले लेते थे, जिसे चाहते मार देते, उन-पर प्रतिहिसाका भूत सवार था। हकीम महमूद ख़ॉ का पटियाला महाराज-से सम्बन्ध होनेके कारण, गालिबका मुहल्ला कुछ सुरक्षित था। बहुत-से लोगोने भागकर हक़ीम साहबके यहाँ शरण ली थी। २ फरवरी १८५८ को हाकिम शहर चंद सिपाहियोके साथ गालिबके मुहल्लेमे आया और हकीम महमूदखाँको, साठ आदमियो-सहित, पकड़ ले गया। हकीम साहब एव उनके कुछ साथी ३ दिन बाद, कुछ लोग एक हफ्ते बाद रिहा कर दिये

---

† मालिक राम साहब लिखते है—फर्राशखानेसे खारी बावलीकी तरफ जाये तो यह मस्जिद 'नया बॉस'के पास उलटे हाथको पड़ती है। इनके निर्माणकर्ता तह्व्वरखाँ ताश्कन्दी मुहम्मदशाहके राज्यकालमे शाहजहाँपुरके ज़मीदार थे। वर्तमान मस्जिद नई बनी है। अब इसकी कुर्सी ऊँची है और सेहनके नीचे बाजारमे दुकाने है।

—जिक्रे ग़ालिब, फुटनोट पृष्ठ ९६–९७।

गये । हकीम साहब * छूटकर घरमे नही बैठे, हरएकके लिए दौडे और बेगुनाहीके सुबूत दिये जिससे एप्रिल तक बाकी लोग भी रिहा कर दिये गये ।

---

*इन्ही हकीम महमूदखाँकी मृत्यु पर हालीने एक मर्सिया लिखा था जिसके कुछ अश यहाँ उद्धृत है—

वह ज़माना जब कि था दिल्लीमें यक महशर बपा ।
नफ़सी-नफ़सी का था जब चारों तरफ़ गुल पड़ रहा ।
अपने-अपने हालमें छोटा-बड़ा था मुब्तिला ।
बापसे फ़र्जन्द और भाईसे भाई था जुदा ।
मौजज़न था जबकि दरियाए अताबे जुलजलाल ।
बाग़ियोंके ज़ुल्मका दुनिया पे नाज़िल था वबाल ।

× × ×

ऐसे नाज़ुक वक्तपर मर्दानगी उसने जो की
अह्ले इन्साफ़ उसको भूले हैं न भूलेंगे कभी ।
बिलयक़ीं जिन मुलज़िमोंको उसने समझा बेखता ।
मार्शल लामें सबूत उनकी सफ़ाईका दिया ।
चैनसे बैठा न जबतक होगया इक-इक रिहा ।
जो कि थे नादार की उनकी अयानत बर्मला ।
ज़र दिया खाना दिया कपड़ा दिया बिस्तर दिया ।
बे ठिकानोंको ठिकाना बेघरोंको घर दिया ।

इस जमानेमे सबको अपनी-अपनी पडी थी। जिसको जहाँ जगह मिली वही भाग खड़ा हुआ। मिर्ज़ाने 'दस्तंबू' एव अपने रुक्कों तथा पत्रोमे अपने दोस्तो तथा परिचितोकी हालत बयान की है। जब शहर फतह हुआ उसी हफ्ते जियाउद्दीन और नवाब अमीनउद्दीन, अपने परिवार एवं चद आदमियोके साथ अपनी जागीर लोहारू जानेके लिए रवाना हुए लेकिन अभी महरौलीमे ही थे कि लुटेरे सिपाहियोने आ घेरा और बदनपर जो कपडे थे उन्हे छोड सब कुछ ले गये। दिल्लीका घर भी पूर्णत. लुट गया। मुज़फ्फरउद्दीन हैदरख़ाँ और जुलफिकारउद्दीन हैदरख़ाँ (हुसेन मिर्ज़ा) पर जो गुजरी वह इससे भी व्यथाजनक है। वे शहरके अन्य प्रतिष्ठित लोगोकी तरह अपनी अट्टालिकाएँ छोड़ जान बचाकर भागे। उनके घर भी बुरी तरह लुटे। फिर किसीने मकानके परदो और सायबानोमे आग लगा दी जिससे सारा घर जलकर राख हो गया। उन लोगोके यहाँ मिर्ज़ाका काव्य एकत्र होता रहता था, वह भी इसीमे नष्ट हो गया। मिर्ज़ाके एक खतमे इस घटनाकी ओर इशारा है—

मिर्ज़ाके दोस्तो एवं परिचितोकी हालत

"भाई जियाउद्दीनख़ाँ साहब और नाज़िर हुसेन मिर्जा साहब हिन्दी फारसी नजम व नसरके मस्विदात मुझसे लेकर अपने पास जमा किया करते थे। सो इन दोनो घरोपर झाडू फिर गयी। न किताब रही न असबाब रहा।"*

नवाब मुस्तफाख़ाँ 'शेफ्ता' को गदरके बाद सात साल कैदका हुक्म हुआ था। वह एक प्रतिष्ठित जागीरदार और उर्दू-फारसीके समर्थ कवि

---

*१८५७ ई० मे मिर्जाने अपने उर्दू कलामका एक नुस्खा रामपुर भेजा था, वह सुरक्षित रहा और उसकी नक़लोसे ही १८६१ मे वर्तमान उर्दू दीवान तैयार हुआ। लेकिन उसे भेजनेके बाद भी तो गालिबने कुछ न कुछ लिखा ही होगा, वह सब नष्ट हो गया।

थे। उर्दू कवियोंके सम्बन्धमे इनका लिखा फ़ारसी भाषाका ग्रन्थ 'गुलशन बेखार' प्रसिद्ध है। गार्सन तासीने भी इसकी प्रशंसा की है। शेफ्ता गालिब के प्रशंसकोंमे थे और मुसीबतके ज़मानेमे बराबर उनकी मदद करते रहे। इसलिए उनकी कैदसे भी गालिबके दिलपर चोट लगी। खैर, अपीलमे वह छूट गये। इससे गालिबको जो खुशी हुई वह इसीसे समझी जा सकती है कि उस बुरी अवस्थामे भी डाकगाड़ीमे बैठकर मेरठ गये, उनसे मिले, चार दिन रहे, तब वापिस आये।'

शेफ़्ता

मौलाना मुफ्ती सदरउद्दीन आजुर्दा फ़ारसीके उच्चकोटिके कवि और अरबीके धाकड विद्वान् थे। गदरके पहिले दिल्लीमे सदरुस्सदूर थे। वह भी पकडे गये। मुकदमा पेश हुआ। जानबख्शी का हुक्म हुआ पर नौकरी मौकूफ़, जायदाद ज़ब्त। निराश लाहौर गये। फ़िनाशल कमिश्नर एवं ले० गवर्नरने कृपा करके आधी जायदाद वापिस करा दी।

मुफ़्ती सदरउद्दीन

गालिबकी ज़िन्दगीमे मौ० फज़लहकका बडा हाथ था। उन्होने उन्हे 'बेदिल'की नकलसे हटाकर काव्यके सही रास्तेपर लगाया। ये गिरफ्तार ही नही हुए, आजन्म निर्वासित भी किये गये। रंगूनमे रखे गये। इनके दूसरे बेटे गुलाम गौस 'बेख़बर' ने अपील की जिससे बहुत दिनों बाद—१८६१ मे—रिहाईका हुक्म हुआ पर रिहाईका हुक्म रंगून पहुँचनेके पूर्व ही उनकी मृत्यु हो गयी।

मौ० फ़ज़लहक़

' मतलब यह कि गदर क्या आया मिर्जाका जीवनाकाश काली घटाओं-से घिर गया। घरमे जो कुछ था, वह खतम हो गया, यार-दोस्त गिरफ्तार और दूर हो गये, आमदनीके सब रास्ते बंद। किलेकी तनखाह तो पहिले ही बंद हो गयी थी क्योंकि वहाँ तो देशी फौजका डेरा था। इतना ही बहुत था कि उन लोगों-

असीम कष्टोंकी घटाएँ

ने इनको सताया नही अन्यथा अग्रेज़ोका 'वज़ीफ़ाख़ार' कहकर मौतके घाट उतार देते तो उन्हे कौन रोकनेवाला था। अंग्रेज़ोकी तरफ़से जो ख़ान्दानी पेंशन मिलती थी वह भी बंद हो गयी क्योकि दिल्लीपर देशी फ़ौजका कब्ज़ा था, अग्रेजी दफ्तर ही कहाँ रह गया था। इस कष्टके समय नवाब ज़ियाउद्दीन अहमदने मिर्ज़ाकी बीवी उमराव बेगमको पचास रुपये माहवार नियत कर दिया। यह प्रकारान्तरसे मिर्ज़ाकी ही मदद थी। बेगमको यह वजीफा उनकी मृत्यु तक मिलता रहा।

रामपुरसे सम्बन्ध

गदरसे थोडे ही अर्से पहिले मिर्ज़ाका दरबार रामपुरसे सम्बन्ध हो गया था। थोडा-बहुत सम्बन्ध तो बहुत पहिलेसे था क्योकि जब बचपनमे नवाब मुहम्मद यूसुफअलीख़ाँ शिक्षाके लिए दिल्ली आये तो उन्होने गालिबसे फ़ारसी पढी थी पर बादमे यह सिलसिला टूट गया था। जब १८५५ ई० मे वह गद्दी पर बैठे तो मिर्ज़ाने किता लिखकर भेजा पर परिणाम कुछ न निकला।* नवाबने ध्यान नही दिया। बादमे जब गालिबके हितैषी और मित्र मौ० फ़ज़लहक खैराबादी रामपुरमे थे उन्होने मिर्ज़ाको तैयार किया कि वह नवाबके पास क़सीदा भेजे। मिर्ज़ाने क़सीदा भेजा। मौ० फजलहक़ने भी सिफारिश की। इसके उत्तरमे नवाबने ५ फ़रवरी १८५७ को एक ख़तमे चद शेर इस्लाहके लिए मिर्ज़ाके पास भेजे§। तबसे उनका दरबार रामपुरसे नियमित सम्बन्ध हो गया। जान पड़ता है कि नवाब साहबने इस प्रारम्भिक कलाममे यूसुफ तख़ल्लुस किया था पर मिर्ज़ाके सुझावपर 'नाजिम' पसन्द किया।

पर इनकी कोई मासिक वृत्ति नही बँधी थी। वैसे नवाब बीच-बीचमे रुपये भेजते रहते थे। पहिले ही पत्रके साथ ढाई सौ भेजे थे।

---

*मकातीबे गालिब पृ० ३।

§मकातीबे गालिब पृ० १२०।

यह सम्बन्ध हुए थोड़े ही दिन हुए थे कि तूफान आया और गदरमे सब व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी। आँधी आई और चली गयी तब इन्हे

पेंशनकी चिन्ता

पेशनकी चिन्ता हुई। गालिबका ख़याल था कि शान्ति स्थापित होते ही मेरी पेशन बहाल हो जायगी। जब न हुई तो वही चापलूसीवाला ढंग इख़्तियार किया। महारानी विक्टोरिया तथा उच्चाधिकारियोकी प्रशंसामे क़सीदे लिखकर दिल्लीके अधिकारियोकी मार्फत भेजे किन्तु १७ मार्च १८५७को कमिश्नर दिल्लीने यह लिखकर उन्हे वापिस भेज दिया कि इनमे कोरी प्रशंसा एवं स्तुतिके सिवा कुछ नही है। जब इसके कुछ मास बाद, अक्टूबरमे, दस्तंबू छपी तो मिर्जाने जिल्द लगवाकर २ विलायत और ४ प्रतियाँ हिन्दुस्तानमे उच्चाधिकारियोको भेट की। सचालक शिक्षा-विभाग पश्चिमोत्तर प्रदेशने बडी प्रशंसा की और मि० मैकलियाड फिनाशल कमिश्नरने खुद लिखकर कमिश्नर दिल्लीकी मार्फत यह किताब मिर्जासे मँगवाई। यह सब तो हुआ पर अधिकारियोका दिल इनकी ओरसे साफ न हुआ। जनवरी १८६०मे मेरठमे बडा दरबार हुआ। अन्य दरबारी बुलाये गये पर इन्हे निमन्त्रण नही दिया गया। फिर जब गवर्नर जेनरलका कैम्प मेरठसे दिल्ली आया और मिर्जाने चीफ सेक्रेटरीके ख़ीमेमे मुलाकातके लिए अपना टिकट भेजवाया तो वहाँसे जवाब मिला कि गदरके दिनोमे तुम बागियोसे रब्त-जब्त रखते थे।* अब गवर्नमेण्टसे क्यो मिलना चाहते हो। लार्ड कैनिंगकी तारीफ़मे जो कसीदा लिखा था वह भी वापिस कर दिया गया कि अब ये चीजे हमारे पास न भेजा करो।†

---

* गदरमे इनका सम्बन्ध बहादुरशाहसे छूटा न था। आगराके अख़बार 'आफ़ताब आलिमताब'मे छपा था कि १२ जुलाई १८५७को मिर्जा नौशा (गालिब) ने बहादुरशाहकी तारीफमे कसीदा पढा था। श्रीमालिकरामने इसे १८ जुलाई लिखा है।

† गालिबनामा १४५–४६।

इस समय इनकी हालत बहुत खराब थी। यहाँ तक कि घरके कपडे-लत्ते बेचकर दिन कट रहे थे। एक पत्रमे निराशापूर्वक लिखते है—

"५३ मासका पेशन। तकर्रुर इसका बतजवीज लार्ड लेक व बमंजूरी गवर्नमेण्ट—और फिर न मिला है, न मिलेगा। खैर, एहतमाल है मिलनेका। अलीका वन्दा हूँ। उसकी कसम कभी झूठ नही खाता। इस वक्त कल्लूके‡ पास एक रुपया सात आने बाकी है। बाद इसके न कही कर्जकी उम्मीद है, न कोई जिस रेहन व बयके काबिल।"

इन निराशाजनक स्थितिमे लाचार होकर इन्होने दिल्लीसे बाहर चले जानेका निर्णय किया। नवाब अमीनुद्दीन अहमदखाँ तथा जियाउद्दीन अहमदखाँ एवं उनकी माँ बेगम जान साहबाने इस शर्तपर इनके प्रस्तावको स्वीकार किया कि उमराव बेगम और बच्चे लोहारू चले जायँ। इस निर्णयकी सूचना नवाब अलाउद्दीन अहमदखाको, जो उस समय लोहारूमे थे, देते हुए लिखते है—

"अपना मकसूद तुम्हारे वालिद माजिदसे ...कह चुका हूँ। खुलासा यह कि मेरी बीबी और बच्चोको, कि तुम्हारी कौमके है, मुझसे ले लो कि मै इस बोझका मोतहमिल हो नही सकता।' 'मेरा कस्द सियाहतका है। पेशन अगर खुल जायगा तो वह अपने सर्फमे लाया करूँगा। जहाँ जी लगा वहाँ रह गया। जहाँसे दिल उखडा चल दिया।"

निराशामे बीवी-बच्चे बोझ मालूम होते थे और सब मुसीबते उन्हीकी वजहसे आती मालूम पड़ती थी और इच्छा भी होती थी कि अकेले—

'रहिए अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो।'*

खैर, तय यह हुआ कि बीवी बच्चे लोहारू जायँ और यह पटियाला जाकर रहे। इस बीच इन्होने महाराज अलवर एवं पटियालाकी तारीफ़मे

---

‡ कल्लू गालिबका वफादार सेवक था जिसे वह बहुत मानते थे।

* जिक्रे गालिब, पृष्ठ १०१।

कसीदे लिखे और मदद चाही। पटियालाके प्रतिष्ठित नागरिक महमूदखाँके यह पड़ोसी थे। दस वर्षसे एक जगह रह रहे थे। हकीम महमूदखाँके दो भाई हकीम मुर्त्तजाखाँ और हकीम गुलाम अल्लाखाँ पटियाला-नरेश महाराज नरेन्द्रसिंहकी सेवामे थे। उनकी इच्छा भी थी कि गालिब कुछ दिन वहाँ आकर रहे। पर जब कसीदेके जवाबमे कोई अनुकूल उत्तर न मिला तब इन्होंने वहाँ जानेका विचार त्याग दिया।

रामपुरसे मासिक वृत्ति

इधरसे निराश होकर गालिबने नवाब रामपुरसे दर्खास्त की कि मेरा कोई नियमित वजीफा तय कर दिया जाय। नवाबने १६ जुलाई १८५६ को उत्तर दिया कि आपको १००) मासिक वेतन पहुँचता रहेगा।† नवाब रामपुर (यूसुफ़ अलीखाँ) ने मिर्जाको कई बार रामपुर निमन्त्रित किया। दिल्लीपर अंग्रेजोका कब्जा होते ही इन्होने रामपुर आनेका आश्वासन दिया था पर इन्हे सरकारी पेंशनकी उम्मीद अब भी लगी थी इसलिए दिल्ली छोड़ते न बनती थी। नवाब रामपुरने दूसरी बार २५ नवम्बर १८५८को बुलाया तो इन्होने जवाब दिया—"मेरे हाजिर होनेको जो इरशाद होता है, मैं वहाँ न आऊँगा तो कहाँ जाऊँगा। पेंशनके वसूलका जमाना करीब आया है। उसे मुल्तवी छोड़कर क्यो चला आऊँ? सुना जाता है और यकीन भी आता है कि आगाज साल ५९ ईस्वी यह किस्सा अंजाम पाये। जिसको रुपया मिलना है उसको रुपया, जिसको जवाब मिलना है उसको जवाब मिल जाये।"*

जनवरी १८५९ भी आया और चला गया। तब नवाबने २ फ़रवरी और १३ एप्रिलको पुन: निमन्त्रित किया जिसके उत्तरमे इन्होने लिखा—

---

† मकातीबे गालिब, ८२, उर्दू—ए—मोअल्ला १२०।

*मकातीबे गालिब पृ० १२।

"पहले खतमे यह अर्ज किया है कि मजमूआ पेशनदारोकी मिसिल मुस्तब है और हनोज सदरको रवाना नही हुई । नवाब गवर्नर जेनरल लार्ड केनिंग बहादुरने कलकत्तासे मेरी पेशनके कवागज तलब किये और यह कागज फेहरिस्तमेसे अलग होकर लेफ्टिनेण्ट गवर्नर बहादुर पंजाबकी खिदमतमे इरसाल हुए । वहाँसे कलकत्ता भेजे जायँगे । फिर वहाँसे हुक्म मंजूरी पजाब होता हुआ यहाँ आयेगा और यहाँ मुझको रुपया मिल जायगा । आज रुपया मिला, कल मैने आपसे सवारी और वारे वरदारी माँगी । आज सवारी और वारवरदारी पहुँची और कल मैने रामपुरकी राह ली ।"

कैसी दृढ आशा एवं निष्ठा थी इस आदमीको अग्रेज़ोकी न्यायप्रियता-मे । पर निराश तो होना ही था । १८६० के शुरूमे जब गवर्नर जेनरलने इनसे मुलाक़ात करनेसे इन्कार कर दिया तब इनकी नीद टूटी और जब अन्तिम उत्तर मिल गया तब इनकी आँखे खुली । इस वीच दिसम्बर १८५९मे पुन· नवाब रामपुर इन्हे निमन्त्रित कर चुके थे । इसलिए अग्रेजो-से निराश होकर १९ जनवरी १८६० को यह रामपुरके लिए रवाना हुए और २७ जनवरीको वहाँ पहुँच गये ।§

रामपुरमे इनका ख़ूब सत्कार हुआ । नवाव साहबने अपनी खास कोठी ठहरनेके लिए दी । पर ग़ालिबने गलती यह की कि आरिफ़के दोनो बच्चों (बाक़रअली और हुसेन अली) को साथ ले गये । इस भयसे कि कही बच्चे कीमती सामानको नुक़सान न पहुँचाये इन्होने स्वयं दूसरा स्थान देनेकी प्रार्थना की । इसपर चार दिन वाद राजद्वारा मुहल्लेमे एक बड़ा मकान इन्हे रहनेको दिया गया । शुरूमे खाना भी दोनो वक्त सरकारसे आता रहा पर बादमे सौ रुपया मासिक इसके लिए तय हो गया । अर्थात्

रामपुरमें

---

§ उर्दूए-मोअल्ला पृ० १७० ।

दिल्लीमे रहे तो सौ, रामपुरमे रहे तो दो सौ। रामपुरकी जलवायु भी इनके अनुकूल थी और यह गर्मी और बरसातमे वहाँ रहना चाहते थे पर बच्चोने लौटनेकी ज़िद की। इन्हे अच्छा न लगा कि उन्हे अकेले भेजूँ इसलिए ख़ुद भी लौटना पड़ा। १७ मार्च १८६० को चलकर २४ मार्चको दिल्ली पहुँच गये।

रामपुर जानेसे इनका सम्बन्ध रामपुर दरबारसे सुदृढ हो गया। इनके कहनेपर नवाब रामपुरने, समय-समयपर अंग्रेज़ अफसरोसे भी इनकी सिफ़ारिश की। उधर रामपुरसे दिल्ली लौटते समय मिर्ज़ा मुरादाबाद ठहरे। मालूम होनेपर सर सैयद अहमदख़ाँ इन्हे सरायसे अपने घर ले गये। इस मुलाकातका परिणाम मिर्ज़ाके लिए बहुत अच्छा हुआ। सरसैयदकी अंग्रेज़ोमे बडी पहुँच थी। उन्होने मिर्ज़ाकी पेंशनकी बहालीके लिए कोशिश की *। उनकी सिफारिशसे इनकी पेंशन बहाल हो गयी और दिल्ली लौटनेके बाद इन्हे पेंशनकी पाई-पाई जो बाकी थी, मिल गयी।

पेंशनकी बहाली

पेंशन मिलनेसे टूटी हुई आशाएँ फिर हरी हुई। इन्होने दरबार और ख़िलअतकी बहालीके लिए भी कोशिशें की। १ जून १८६२ को §दरखास्त दी कि "मुझे लार्ड विलियम बेंटिकके अहदसे दरबारका, और लार्ड एलनबराके अहदसे ख़िलअत व त्रिरत्नका ऐजाज़ हासिल था। चाहिए तो यह था कि उम्र बढनेके साथ इस इज्जत व तौक़ीरमे इजाफा होता, मगर अब कि मेरी उम्र ६७ बरस है, इसके बरख़िलाफ़ वह पहला दरबार और ख़िलअत भी छिन गया है। मै गदरके दिनोमे भी वफ़ादार रहा। पेंशनका इजरा ही मेरी बेगुनाहीका सबसे बड़ा सबूत है। फिर

---

* स्व० मौ० अबुल कलाम आजाद': 'अलहिलाल' १७ जून १९१४।

§ जिक्रे ग़ालिब पृ० ११४।

न मालूम मुझसे दरबारका हक़ क्यो छीन लिया गया है। पस मेरे मआ-
मिलातकी तफ़तीश की जाय और अगर यह साबित हो जाय कि मै बेक़ुसूर
हूँ तो मेरा दरबार और दूसरे ऐजाज़ बहाल किये जायँ।"

३ मार्च १८६३ ई० को दरबार एवं खिलअतकी बहाली भी हो गयी। २३ मार्च १८६३ को सर राबर्ट माण्ट-गोमरी, ले० गवर्नर पंजाबने इन्हे खिलअत दी।*

ख़िलअ़तकी बहाली

*मौ० अबुलकलाम 'आज़ाद' लिखते है—"ख़लीफ़ा मुहम्मद हुसेन मरहूम (पटियाला) ने मुझसे दिल्लीके एक दरबार बादे-गदरका ज़िक्र किया था जिसमे वह शरीक हुए थे और मिर्ज़ा ग़ालिबको देखा था। मिर्जा साहब पर जोफ़से चलना दुश्वार था। दो शख़्स दोनो तरफ़ सहारा देकर उन्हे ले० गवर्नरके पास लाये। उनके हाथमे ज़रअफशा कागज़ था जिसपर एक रुबाई दर्ज थी। जब रूबरू पहुँचे तो कहा—कानोसे बहरा हो गया हूँ, इरशादे मुबारक सुन नही सकता। आँखोकी बसारत जवाब दे रही है; जमाले मुबारक देख नही सकता। फ़िक्रे शेरकी ताकत नही कि कसीदा लिखकर खिदमते दौलतख़ाही बना लेता।

रस्मे अस्त कि मालिकाने तहरीर।
आज़ाद कुनिंद बन्दए मीर!

इस इज्ज व ख़िस्तगीमे एक रुबाई अर्ज करके दिलकी हसरत निकाली है, उम्मीदवारे कबूलियत हूँ।" यह कहकर रुबाई पढी है। कागज़ बतौर नज़र हाथोपर रखके पेश किया। ले० गवर्नरने रुबाई लेकर खुशनूदीका इज़हार किया और बहुत जोरसे पुकारकर कहा—आपका क़दीम ऐजाज बहाल हुआ। आप हुजूर गवर्नर जेनरलके दरबारमे भी बदस्तूर खिलअत पायेगे। फिर अपने हाथसे सरपेच बाँध दिया और मीर मुशीने खिलअतके बकीय ऐज़ाज अता किये।" शायद इसमे इसी दरबारका ज़िक्र है।

—नक्शे आजाद पृ० ३०५।

नई दर्ख़ास्त

१८६५ के आरम्भमे उन्होने अंग्रेज सरकारकी सेवामे पुनः निवेदन किया कि (१) मुझे महारानीका राजकवि (शायरे दरबार) नियुक्त किया जाय, (२) दरबारमे पहिलेसे ऊँची जगह दी जाय, और (३) मेरी किताब दस्तबू हुकूमत अपने खर्चसे प्रकाशित करे।

बहुत जॉचके बाद ६ जनवरी १८६६ को यह निर्णय हुआ कि मिर्ज़ा-को दरबारी शायर तो नही बनाया जा सकता, हाँ, गवर्नर-जेनरलको इस-पर कोई आपत्ति नही कि ले० गवर्नर पंजाब उन्हे खिलअत दे या दरबार-मे पहिलेसे ऊँची जगह दे।

नवाब यूसुफ़ द्वारा आदर

ज़िन्दगीमे ग़ालिबकी जैसी इज्ज़त नवाब मुहम्मद यूसुफ़ अलीखॉ नवाब रामपुरने की, दूसरेने न की। वह सज्जनताकी मूर्त्ति थे। ग़ालिब यद्यपि उनकी नौकरीमे थे फिर भी उनके साथ मित्र एवं गुरु-रूपमे व्यवहार करते थे। जैसा ग़ालिबके पत्रोसे भी प्रकट है, मासिक वृत्तिके अलावा भी, समय-समयपर उनकी सहायता करते रहते थे। वह स्वयं बहुत अच्छे कवि थे और उनके कलामका अध्ययन करनेपर मालूम होता है कि उनपर गालिबकी चिन्ता-धाराका काफ़ी प्रभाव पड़ा था। यह भी सम्भव है कि ग़ालिबने अपने संशोधनोसे उसपर अपनी छाप डाल दी हो। निम्नलिखित शेरोमे वही जद्दत और शोख़ी है—

रुख़सते अर्ज़ेहाल क्या मॉगूँ।
कह न बैठें कहीं कि रुखसत हो।

× ×

सच्चे हैं अपने वादेके आते वो ख़्वाबमें,
'नाज़िम' मुझीको नींद न आई तमाम रात।

× ×

शराबो शाहिदो मतरिबसे काम रख नाज़िम,
क़िसे ख़बर है कि अंजामेकार क्या होगा ?

× ×

किस किसका करूँ रश्क कि इस राहे-गुज़रमें
हर ज़र्रा मुझे दीदए-बीना नज़र आया।

× ×

शबिस्तानोंमें रहो, बाग़ोंमें खेलो, मुझको क्यों पूछो,
कि रातें किस तरह कटती हैं दिन क्योंकर गुज़रते हैं ?

× ×

जिसको मंजूर है आलमका परीशां रखना,
उसको क्या काम पड़ा है कि सँवारे गेसू।

× ×

२१ एप्रिल १८६५ को नवाब मुहम्मद यूसुफ अलीखाँका कर्कट रोग (सर्तान) से देहान्त हो गया। इनको काफी चोट लगी। नवाब यूसुफ-

रामपुरकी दूसरी यात्रा

अलीख़ाँकी जगह उनके ज्येष्ठ पुत्र नवाब कलब-अली गद्दीपर बैठे। उनसे मिलनेके लिए ७ अक्तूबर १८६५ को, दिल्लीसे चलकर १२ अक्तूबरको यह रामपुर पहुँचे। दोनो बच्चे इस बार भी साथ थे। अपने पिताकी भाँति ही कलबअलीख़ाँने उनका सम्मान किया। जर्नेली कोठी ठहरनेके लिए दी गयी। २२ दिसम्बर को बच्चे लौट गये। २८ दिसम्बरको मिर्ज़ा भी दिल्लीके लिए रवाना हुए। उन दिनो काफ़ी वर्षा हो गयी थी, रामगगा बढी हुई थी ; दरियापर किश्तियोका अस्थायी पुल था। ज्योही इनकी पालकी नदीके उस पार पहुँची है कि एक जोरके रेलेमे वह पुल बह गया। अब यह हालत हुई कि साथी नौकर, सामान एक किनारेपर रह गये और यह अकेले दूसरे किनारे। गिरते-पडते मुश्किलसे मुरादाबादकी सरायमे पहुँचे और एक कम्बलमे, जो

इनके साथ था, रात बिता दी। बुढापा, दुर्बलता, दिसम्बरकी कड़ाकेकी सर्दी, उसपर वर्षा, पासमे पर्याप्त कपडे नही; बीमार पड गये। अगली सुबह मौ० मुहम्मद हसनखॉ, सदरुस्सदूर, को खबर मिली तो वह इन्हे अपने यहाँ उठवा ले गये और उनकी यथोचित चिकित्सा और परिचर्याकी व्यवस्था की। यही नवाब शेफ्तासे भेंट हुई जो रामपुर जा रहे थे। शेफ़्ताने रामपुर पहुँचकर नवाबसे जिक्र किया। उन्होने तुरन्त एक ख़ास आदमी-द्वारा मिर्जाको खत भेजा कि 'अगर तबीयत ज्यादा खराब हो और आप पूरी सेहत हो जानेतक मुरादाबाद ठहरनेका इरादा रखते हो तो रामपुर तशरीफ ले आइए। यहॉ चिकित्साका उपयुक्त प्रबन्ध हो जायगा।'

परन्तु नवाबका पत्र पहुँचनेके पूर्व ही, तबीयत सँभलनेपर, वह रवाना हो चुके थे और ८ जनवरी १८६६ को दिल्ली पहुँच गये।

रामपुरमे इनका आदर-सत्कार तो खूब हुआ पर जिस मतलबसे यह रामपुर गये थे वह पूरा न हुआ। बात यह थी कि जो कर्ज इनपर चढ गया था उससे मुक्ति तभी हो सकती थी जब कहीसे एक मुश्त बड़ी रकम मिलती। रामपुरके अलावा कही औरसे इन्हे उम्मीद न थी। इसीलिए रामपुर गये थे जैसा कि 'तुफ्ता' को रामपुरसे लिखे इनके एक पत्रके निम्नलिखित अंशसे प्रकट होता है।*

"मै नस्रकी दाद और नज़्मका सिला मॉगने नही आया। भीख मॉगने आया हूँ। रोटी अपनी गिरहसे नही खाता; सरकारसे मिलती है। वक्ते-रुखसत मेरी किस्मत और मनइमकी हिम्मत। नवाब साहब अजरूए सूरत रूहे मुजस्सिम और एतबारे अख्लाक आयते रहमत है; खजानए फ़ैजके तहवीलदार है। जो शख्स दफ़्तरे अजलसे कुछ लिखवा लाया है उसके पटनेमे देर नही लगती। एक लाख कई हजार रुपये साल गल्लेका

*उर्दू-ए-मुअल्ला पृ० ७१।

महमूल माफ कर दिया। एक अहलकारपर साठ हजारका मुहासवा माफ किया और वीस हजार रुपया नकद दिया। मुंशी नवलकिशोर साहवकी अर्जी पेश हुई, खुलासा अर्जीका सुन लिया। वास्ते मुंशी साहवके कुछ अतिया, वतकरीवे शादिए सविया तजवीज हो रहा है। मिकदार मुझपर नही खुली।"

'मकातीवे गालिव' की भूमिकामे जनाव इम्तियाज़ अलीखाँ अर्शी लिखते है कि "नवावने रामपुर पहुँचनेके बाद इन्हे एक हज़ार रुपये सिंहासनारोहणके इनामके रूपमे प्रदान किये और विदाईके समय दो सौ मार्ग-व्ययके लिए दिये।" इनकी अर्थाकाक्षा इतनी वढी-चढी थी कि इस ओससे प्यास क्या वुझती। तुफ्ताको दिल्लीसे लिखते है—

निराशा

"लो साहव, खिचड़ी खाई दिन वहलाये। कपडे फाटे घरको आये। ८ जनवरी ''''दोशंवेके दिन गजवे इलाहीकी तरह अपने घरपर नाजिल हुआ।"

जान पड़ता है, वादमे, इनके सम्वन्ध नवाव कलवअलीखाँसे विगड गये। अपनी अहकारवृत्तिका प्रदर्शन करते हुए मिर्ज़ाने किसी खतमे हिन्दुस्तानी फ़ारसीनवीसोके विरुद्ध व्यग्य किया था जिसका नवावपर वहुत वुरा असर पड़ा। इसके वाद मिर्ज़ाने वहुत यत्न किये कि पूर्ववत् सम्वन्ध हो जाय पर अभाग्य-वश सफलता न मिली।

पर इन कठिनाइयो और मुसीवतोके वीच भी, गदरके वाद इनकी प्रसिद्धि चारो ओर फैलती ही गयी। रामपुर दरवारने तो इनकी क़द्र की ही पर इनके प्रशंसक केवल रामपुरमे नही वल्कि हिन्दुस्तान भरमे थे। वंगालमे मैसूरके शाही खानदानके शाहजादा वशीरुद्दीन (नवाव अव्दुल लतीफ़के भाई), डिपुटी कलक्टर खाँवहादुर अव्दुलगफूर खाँ 'नस्साख', सूरतमे मीर गुलाम वावा खाँ, लोहारूमे नवाव लोहारूके साहवजादे मिर्ज़ा अलाउद्दीन खाँ और

प्रसिद्धि

भाई नवाब जियाउद्दीनखाँ गालिबके प्रशंसकों एवं शागिर्दोंमें थे। इलाहाबाद के खॉबहादुर मुंशी गुलाम गौस 'बेखबर' 'क़ातए बुरहान' के मामलेमे मिर्जाके साथ न थे लेकिन इनकी काव्य-प्रतिभाके कायल थे। पज़ाबमे तो इनकी पुस्तक 'दस्तंबू' बहुत लोकप्रिय हुई और वहाँसे उर्दू रुक्कोंकी बड़ी माँग थी। लोग इनके दर्शनोंको आने लगे थे।

इस जमानेमे शाह गौस कलन्दर नामक एक विद्वान् सूफ़ीसे भी इनकी मित्रता हो गयी थी। यह शाह साहब भी मिर्जासे मिलने गये थे। शाह साहबकी किताब 'तजकिरा-ए-गौसियः' मे गालिबकी कई मुलाकातोका जिक्र है और उससे गालिबके जीवन एव स्वभावपर विशेष प्रकाश पड़ता है।

शाह गौससे घनिष्टता

इस तजकिरेमे शाह साहब लिखते है—

"एक रोज हम मिर्जा नौशाके मकानपर गये। निहायत हुस्ने एखलाक से मिले। लबेफर्श तक आकर ले गये और हमारा हाल दरियाफ़्त किया। हमने कहा—मिर्जा साहब, हमको आपकी एक गजल बहुत ही पसन्द है। अललखुसूस यह शेर—

तू न क़ातिल हो कोई और ही हो,
तेरे कूचे की शहादत ही सही।

कहा—साहब! यह शेर मेरा नही, किसी उस्तादका है। फ़िलहकीकत निहायत ही अच्छा है। उसदिनसे मिर्जा साहवने यह दस्तूर कर लिया कि तीसरे दिन जीनतुल मसाजिदमे हमसे मिलनेको आते और एक ख्वान खानेका साथ लाते। हरचंद हमने उज्र किया कि यह तकलीफ न कीजिए मगर वह कब मानते थे। हमने खानेके लिए कहा तो कहने लगे कि मैं इस काबिल नही हूँ; मयख्वार रूसियाह, गुनहगार मुझको आपके साथ खाते हुए शर्म आती है।''''हमने बहुत इसरार किया तो अलग तश्तरीमे लेकर खाया। उनके मिजाजमे कस्रे नफ्सी और फर्दतनी थी।"

इसी किताबमें लिखा है—"एक रोजका जिक्र है कि मिर्जा रजबअली बेग 'सरूर' मुसन्निफ 'फिसानए अजायब' लखनऊसे आये। मिर्जा नौशासे मिले। असनाए गुफ्तगूमे पूछा—मिर्जासाहब, उर्दू जबान किस किताबकी उम्दा है?' कहा—'चार दरवेशकी।' मियाँ रज्जबअली बोले—'फिसानए अजायबकी कैसी है?' मिर्जा बेसाख्ता कह उठे—'अजी लाहौल विला कूवत! इसमे लुत्फेजबान कहाँ,—एक तुकबंदी और भठियारखाना जमा है।" इस वक्त तक मिर्जा नौशाको यह खबर न थी कि यही मियाँ सरूर है। जब चले गये तब हाल मालूम हुआ। बहुत अफसोस किया और कहा कि 'जालिमो! पहिलेसे क्यो न कहा?' दूसरे दिन मिर्जा नौशा हमारे पास आये, यह क़िस्सा सुनाया और कहा कि यह अमर मुझसे नादानिश्तगीमे हो गया है, आइए आज उसके मकानपर चलें और कलकी मुकाफात कर आये। हम उनके हमराह हो लिये और मियाँ सरूरके फ़रूदगाहपर पहुँचे। मिज़ाजपुर्सीके बाद मिर्जासाहबने इबारत आराईका जिक्र छेडा और हमारी तरफ मुखातिब होकर बोले—'जनाब मौलवी साहब! रातमे मैने 'फिसाना अजायब'को बगौर देखा तो उसकी खूबिए-इबारत और रंगीनीका क्या बयान करूँ। निहायत ही फ़सीह व बलीग इबारत है। मेरे क़यासमे तो न ऐसी उम्दा नस्र पहिले हुई, न आगे होगी और क्योकर हो? इसका मुसन्निफ अपना जवाब नही रखता। गर्ज इस किस्मकी बहुत-सी बाते बनाई। अपनी खाकसारी और उनकी तारीफ करके मियाँ सरूरको निहायत मसरूर किया। दूसरे दिन उनकी दावत की और हमको भी बुलाया। उस वक्त भी 'सरूर' की बहुत तारीफ की। मिर्जासाहबका मजहब यह था कि दिलआजारी बड़ा गुनाह है।

उर्दू किस किताबकी अच्छी है?

"एक दिन हमने मिर्जा गालिबसे पूछा कि तुमको किसीसे मुहब्बत भी है। कहा कि हाँ, हजरत अली मुर्त्तजाँ से। फिर हमसे पूछा कि आपको? हमने कहा कि वाह साहब, आप तो मुगल बच्चः होकर अली-

मुर्त्तजाका दम भरें और हम उनकी औलाद कहलाये और मुहब्बत न रखे, क्या यह बात आपके कयासमे आ सकती है ?''*

× × ×

जहाँ एक ओर इनकी प्रसिद्धि होती गयी और इनके प्रशंसको एव अनुयायिओंकी संख्या बढ़ती गयी तहाँ उत्कर्ष कालमे अनेक संघर्ष एव विरोध भी हुए । १८५८ के बादका समय इनके उत्कर्षका मध्याह्न था । आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी न थी तो बुरी भी न थी । दिल्लीमे शान्ति स्थापित हो गयी थी पर वह पुराना रंग अब न था । एक सन्नाटा-सा था, दोस्त अहवाब बिखर गये, थे । गदरके दिनोका आत्म-चरित 'दस्तंबू' को खत्म कर चुके थे । किताबे और अन्य वस्तुएँ पहले ही नष्ट हो चुकी या लुट चुकी थी । इसलिए एकान्तमे मिर्जा फ़ारसी एवं अरबी शब्दो एवं धातुओपर विचार किया करते थे । इस समय उनके पास दो ही अच्छी किताबें थी—'बुरहान कातअ' जो फारसीका शब्दकोश था, दूसरी दसातीर जिसके लेखक मुहम्मद हुसेनके पूर्वज तब्रेजसे आये थे, यद्यपि वह स्वय हिन्दुस्तानमे पैदा हुए थे इसीसे वह तब्रेजी कहलाते थे । पडे-पड़े इन्होने बुरहान कातअका गहरा अध्ययन करना शुरू किया । उसमे उन्हे अनेक त्रुटियाँ दिखाई पडी, शब्दोके अर्थ एव धातुओकी गलतियाँ मिली, तरीका बयान अक्सर भोडा एवं कोशविद्याके विरुद्ध पाया । जो त्रुटियाँ दिखाई पडी, उन्हें यह लिखते गये । एक किताव वन गयी जिसका नाम 'क़ातअ वुरहान' रखा गया । § यह १८५९ के आरंभमे लिखी गयी और १८६१

'बुरहान क़ातअ' का संघर्ष

---

* 'आसारे गालिव' (शेख मुहम्मद इकराम) पृ० १६४–१६५

§ साहव आलम मारहरवीको पत्रमे लिखते है—''इस दरमांदगीके दिनोमे····'वुरवान कातअ' मेरे पास थी । इसको मै देखा करता था । हजारहा लुगत गलत, हजारहा वयान गलत, इवारत पोच · मैंने सौ दो सौ लुगतके अगलात लिखकर एक मजमूआ वनाया है और 'कानअ वुरहान' इसका नाम रखा है ।''

अक्तूबरके वाद छपी। * इसके ३—४ साल वाद मिर्जाने दूसरा एडीशन दुरफ्शे कावियानीके° नामसे छपवाया जिसकी एक प्रति बृटिश म्यूज़ियमके पुस्तकालयमे मौजूद है। इस पुस्तकमे मिर्जाकी स्वतत्र मेधा एवं विवेचना शक्तिके दर्शन होते है। यह परम्परा या अगलोके लिखेके सामने सिर न झुकाते थे वल्कि हर वस्तुकी समीक्षा करते थे। तुफ्ताको लिखा भी था—"यह न समझा करो कि अगले जो लिख गये वह सव हक है। क्या आगे अहमक नही पैदा होते थे?"

'कातअ-बुरहान'के छपते ही एक तहलका मच गया। साहित्यकी भूमि मल्ल-भूमि बन गयी। उसके प्रकाशित होते ही पक्ष-विपक्षमे किताबे छपने लगी। विरोधमे ज्यादा निकली। सबसे पहिली किताव सैयद सआदत अली (भू० पू० मीरमुशी राजपूताना रेजीडेसी) की 'मोहरिक क़ातअ बुरहान' थी। यह फारसीमे ही लिखी गयी थी। ९६ पृष्ठोकी थी और अहमदी दिलहाई छापाख़ाना शाहदरामे छपी थी। उसके जवावमे ३ पुस्तिकाएँ निकली—१. दाफए हजियाँ (फारसी), २ लतायफ गैबी (उर्दू), ३. सवालाते अब्दुल-करीम (उर्दू)। 'दाफए हजियाँ' के लेखक मौ० नजफअली खाँ थे। यह २८ पृष्ठोकी एक पुस्तिका है और १८६५ मे अकमलुल मतावअ देहलीसे छपी थी। नजफअली झज्झरके काजी खान्दानमेसे थे और सैयद मुहम्मद अजीजउद्दीनके पुत्र थे। इनकी गणना उस कालके अरवी-फारसीके विद्वानोमे की जाती है। दूसरी पुस्तक 'लतायफ गैबी' के लेखक मियादाद

विरोधका बवण्डर

---

* मौलाना अल्ताफहुसेन हालीके कथनानुसार १८६० मे पहिली बार और १८६१ मे दुरफ्शे कावयानीके नामसे दूसरी बार छपी।

° ईरानमे काव. नामका एक लुहार था जिसने अपने झण्डेमे अपनी धौंकनी वाँधी थी और जिसके द्वारा उसने जनताको एकत्र करके फियानी राज्यको नष्ट किया था। सामान्य अर्थ विद्रोहका झण्डा।

खाँ सय्याह थे। यह ४१ पृष्टोकी पुस्तिका है। खोजसे मालूम हुआ है कि यह स्वयं गालिबकी लिखी हुई है। यह १८६४ मे अकमलुल मतावअमे छपी थी और मूल्य ८) प्रति था। तीसरी सवालाते अब्दुलकरीम जरासी (८ पृष्ठ की) पुस्तिका है। §

चौथी किताब जो इस सम्बन्धमे लिखी गयी 'सातअ वुरहान' (फारसी) है। इसके लेखक मीरजा रहीम बेग 'रहीम' मेरठी थे। यह १७४ पृष्ठोकी पुस्तक है और १८६७ ई० मे मतबा हाशमी मेरठमे छपी थी। रहीम बेग विद्वान् और उर्दू-फारसीके कवि थे। इस पुस्तक 'सातअ बुरहान' के जवाबमें गालिबने स्वयं १६ पृष्ठोंका 'नामये गालिब' लिखा जो अगस्त १८६५ मे मतबा मोहम्मदी देहलीमे छपा। मिर्जाने इसकी ५ प्रतियाँ नवाब रामपुरको भेजी थी। १० एवं १७ अक्तूबर १८६५ के अवध अखबारमे भी इसका प्रकाशन हुआ था।

'कातअ बुरहान'के जवाबमे दो पुस्तके और लिखी गयी—

१. **क़ातअ-उल-क़ातअ'**—ले० अमीन उद्दीन 'अमीन'। यह १८६५ मे लिखी गयी और १८६७ मे मतवा मुस्तफ़ाई देहलीमे छपी। इसमे २६८ पृष्ठ है। सच पूछे तो क़ातअ बुरहानके जवाबमे लिखी यही पहिली किताब है। 'मोहरिक क़ातअ बुरहान'मे भी इसका हवाला दिया गया है।

२. **मवय्यदे बुरहान**—ले० आगा अहमदअली 'अहमद' (अध्यापक फ़ारसी, मदरसा आलिया, कलकत्ता)। इनके पूर्वज इस्फहांके रहनेवाले थे। यह वडा विवेचनापूर्ण ग्रन्थ है। इसमे ४६८ पृष्ठ है तथा ७ पृष्ठोकी

---

§ उर्दू मासिक 'आजकल' (फरवरी १९५३) मे श्री मालिकरामने लिखा है कि यह पुस्तक भी गालिबकी ही लिखी है। कमसे कम उसकी रचनामे उनका हाथ तो स्पष्ट है।

शुद्धि-तालिका है। टाइपमे मतवा मजहरुल अजायव कलकत्तासे १८६६मे छपा था।

मिर्ज़ाने २४ पृष्ठोमे एक पुस्तिका 'तेगेतेज' नामसे लिखी थी। इसमे १७ अध्याय है। १ से १६ अध्याय तकमे एक-एक आपत्ति मौ०अहमदअली पर की है और उनकी आपत्तियोके जवाव भी दिये है। अन्तिम अध्यायमे 'वुरहान कातअ'पर नये एतराज है। यह पुस्तक १८६७ मे छपी थी। इसकी भापा वडी कटु है। सैयद सआदतअली तथा उनके कातए वुरहानके वारेमे, गालिव इस पुस्तकमे, लिखते है—"एक मर्द वेमग्ज, मआउज्जेहन[1], न फारसीदाँ न अरवीख़ाँने मेरी निगारिश[2] (कातअ वुरहान) की तरदीदमे एक किताव वनाई और छपवाई और 'मोहरिक कातअ' उसका नाम रखा।"*

'तेग़ेतेज'

तेगेतेजमे क़ातअ वुरहानके सभी विरोधियोपर नुक्ताचीनी है और मवय्यदे वुरहानकी आपत्तियोके जवाव भी है पर मुख्यत. यह मिर्जाअहमदअली का जवाव है। इसमे वह मिर्ज़ा अहमदअलीकी निस्वत लिखते है—"अर-

---

* गालिव एक उर्दू पत्रमे मुंशी हवीवुल्लाखाँको लिखते है—"अहा हा! 'मोहरिक कातअ'का नुस्ख़ा तुम्हारे पास पहुँचा। कामे कि ख्वास्तम जखुदागुद मयस्सरम। मै इस खुराफातका जवाव क्या लिखता। मगर सखुनफहम[3] दोस्तोको ग़ुस्सा आ गया। एक साहवने फारसीमे उसके अयूव[4] जाहिर किये, दो तालिवइल्मोने[5] उर्दूमे दो रिसाले जुदा-जुदा लिखे। दाना[6] हो और मुसिफ[7] हो। फ़र्कको देखकर जानोगे कि मोअल्लिफ[8] इसका अहमक है और जव वह अहमक दाफए हजियाँ, सवालात अव्दुल करीम और लतायफ गैवीको पढकर मुतनव्वा[10] न हुआ और मोहरिकको धो न डाला तो मालूम हुआ कि वेहया भी है।

१. प्रतिभाहीन, २ रचना, ३. साहित्य-पारखी, ४ दोप, ५ शिष्यो, ६ चतुर, ७ न्यायी, ८ प्रणेता, ९ मूर्ख, १० सावधान।

बीयतमें अमीनउद्दीनसे बढकर, फारसीयतमें बराबर, फ़ह्श व नासजागोईमे कमतर जितने अलफाज[1] तजलील[2]के है चुन-चुनकर मेरे वास्ते इस्तेमाल किये और यह न समझा कि गालिब अगर आलिम नही, शायर नही, आखिर शराफत व अमारत[3]में एक पाया रखता है, साहबे इज्जोशान है, आली ख़ान्दान है। उमराए हिन्द, रऊसाए हिन्द, महाराजगाने हिन्द सब उसको जानते है; रईसजादगाने सरकारे अंग्रेजीमे गिना जाता है; बादशाह की सरकारसे नजमुद्दौलाका खिताब है, गवर्नमेण्टके दफ्तरमे 'ख़ॉ साहब बिसियार मेह्रबान दोस्तान' अल्काब है; जिसको गवर्नमेण्ट ख़ॉ साहब लिखती है उसको सिडी और कुत्ता और गधा क्योकर लिखूँ। फिलहकीकत यह तजलील बफहवामे जर्बुल गुलाम अहानतुलमौला गवर्नमेण्ट बहादुरकी तौहीन और वजीए व शरीफे हिन्दकी मुखालफत है। मेरा क्या बिगडा? मौलवीने अपना पाजीपन जाहिर किया; मैने मोअल्लिम अमीन वेदीनको शैतानके हवाले किया और अहमदअलीके अलफाज मजमूनसे कतअ नजर किया और उनके मतालिबे इल्मीका जवाब अपने जिम्मे लिया।"

'तेगेतेज'के अलावा मिर्जाने एक तीस शेरका फारसी किता मौ० मुहम्मदअलीके नाम लिखकर भेजा जिसमे उनकी किताबपर प्रभावोत्पादक ढंगसे व्यंग किये है। यह अहमदअली ढाकाके रहनेवाले थे पर ईरानी नस्लका दावा करते थे। कितेमे इसपर भी व्यंग है—

हर कि बीनी बाज़बाने मूलिदे खुद आश्नास्त,
साज़े नुत्क़े मोतने अजदाद बेजा करदः अस्त।

ख्वाजारा अज़ इस्फ़हानी बूदने आबा च सूद,
ख़ालिक़श दर किश्वरे बंगाला पैदा कर्दः अस्त।

---

१. शब्द (लफ्जका बहुवचन)। २. ज़िल्लत, अपमान। ३ अमीरी।

इन बातोसे समझमे आ सकता है कि गालिबकी आलोचनासे साहित्य-जगत्‌मे कितनी बडी हलचल उठ खडी हुई थी। मिर्ज़ा न केवल बुरहाने

विरोधका कारण

कातअके विरोधी थे वरन् किसी भी हिन्दुस्तानी फरहगनवीसके क़ायल न थे। जो लोग इन कोशकारोके भक्त थे उनका विरोध करना मिर्जाको आवश्यक-सा लगता था। इतने विरोधका कारण यह था कि मिर्जाकी शैली चुटीले व्यग्यों और कटूक्तियोसे भरी हुई थी। जगह-जगह प्रतिद्वन्द्वी लेखकका मजाक उडाया गया है। इससे बुरहाने कातअके पक्षपाती आग-बबूला हो गये। जैसा कि ऐसे तर्कप्रधान साहित्यिक संघर्षोमे प्राय. होता है, दोनो पक्षोमे गलतियाँ थी। बुरहाने कातअमे गलतियाँ थी तो 'कातअ बुरहान' भी गलतियोंसे अछूती न थी। मिर्जाका यह कथन भी कितना हास्यास्पद था कि ईरानी नस्लका होनेपर भी बंगालमे पैदा होनेवाले अहमदअलीको भाषाविद् (अहलेजबान) न माना जाय और परदादाके बाद ईरानका मुँह भी न देखनेवाले गालिबको फ़ारसीभापातत्त्वज्ञ माना जाय।

मिर्जाके इस कितेके जवाबमे मौ० अहमदअलीने खुद किता लिखा और एक शागिर्द मौ० अब्दुल समद 'फिदा' सिलहटीके नामसे छपाया

हंगामए दिलआशोब

जिसके जवाबमे गालिबके दो शागिर्द सैयद मु० बाकरअली 'बाकर' और ख्वाजा सैयद फखरउद्दीन 'सुखन'ने लिखे। बादमे चारो किते 'हंगामए दिलआशोब'के नामसे ११ एप्रिल १८६७को आरा (बिहार) के मुशी सन्तप्रसादके छापेखानेमे छपे।

अब्दुल समद 'वफा' (या अहमद अली)ने इन दोनो कितोका जवाब

'तेग़ेतेजतर'

लिखा और पहिले चारोके साथ इसे मिलाकर 'तेगेतेजतर' के नामसे १८६७मे छपवाया।

इसके बाद मुंशी जवाहर सिह 'जौहर' लखनऊने एक किता लिखा जिसमे अहमद अलीका समर्थन एवं गालिबका विरोध था। इसपर बाकर

एवं सुखनने जौहर और फिदा दोनोके क़ितोंका एक-एक जवाब लिखा। उधर मीर आगा अलीशम्सने 'अवध अखबार' (२५ जून १८६७)मे मिर्जाके कई शेरोंपर एतराज किया।* इसका भी जवाव सखुनने उर्दू गद्य और वाकरने फारसी गद्यमे लिखा। मुंशी मुहम्मद अमीर 'अमीर' लखनवीने गालिबके पक्षमे एक किता 'अवध अखबार'मे छपवाया। इनका संकलन करके 'हंगामए दिल आशोव' हिस्सा दोयमके नामसे सन्तप्रसादने आरासे छपवाया।

पर इन सबमे वेबुनियाद बाते ज्यादा थी—कवि-कल्पना थी। मिर्जा गालिबने जो एतराज 'तेगेतेज' मे किये थे उनका जवाब किसीने न दिया। अहमदअलीने 'शमशीर तेजतर' मे यह यत्न किया। यह ग्रन्थ १८६८मे छपा। इसके कुछ समय बाद तो गालिबका देहान्त ही हो गया।

'शमशीर तेजतर'

जिन्दगी भर कर्जदारोसे इनका पिण्ड नही छूटा। बच्चे जितने हुए मर गये। आरिफको बेटेकी तरह पाला वह भी मर गया। पारिवारिक जीवन कभी सुखी एवं प्रेममय नही रहा। मानसिक सन्तुलनकी कमीसे जमानेकी शिकायत हमेशा रही। इसका दुःख ही बना रहा कि समाजने कभी हमारी योग्यता और प्रतिभाकी सच्ची क़द्रदानी न की। फिर शराब जो किशोरावस्थामे मुँह लगी वह कभी न छूटी। गदरके जमानेमे अर्थ-कष्ट, उसके बाद पेन्शनकी बन्दी, खिलअत एवं दरबार बन्दीके दु.खसे परीशान रहे। जब इनसे कुछ फुर्सत मिली तो 'क़ातअ बुरहान' के हंगामेने इनके दिलमे ऐसी

शरीरका निरन्तर ह्रास

---

* श्री मालिकरामने अपनी पुस्तक 'ज़िक्रे गालिब' मे लिखा है कि लखनऊकी दो वेश्याओ—कमरी जान मुश्तरी उर्फ मंझू तथा उमराव जान जोहरा उर्फ बी छुट्टन—ने भी, जो सुशिक्षित कवियित्रियाँ और शम्सकी शागिर्द थी, इस साहित्यिक-विवादमे भाग लिया था।

उत्तेजना पैदा की कि वेचैन रखा। इन लगातार मुसीवतोंसे इनका स्वास्थ्य गिरता ही गया। खाना-पीना वहुत कम हो गया। वहरे हो गये। दृष्टि-शक्ति कम होती गयी। क़ब्जकी शिकायत पहिलेसे थी ही। मई १८५८मे क़ोलजका आक्रमण पहिली वार हुआ और वीच-वीचमे वरावर होता रहा। १८६१मे इतने दुर्वल थे कि नवाव रामपुर मु० यूसुफ खाँने अपने मझले पुत्र हैदरअली खाँका निकाह किया और उसमे उन्हे निमन्त्रित किया, पर वीमारी एवं दुर्वलताके कारण वहाँ न जा सके।

दिन-दिन तन्दुरुस्ती खराव होती जा रही थी। एक न एक रोग लगे रहते थे। जीवनके उत्तर कालमे खून भी खराव हो गया। इसके कारण

चर्मरोगसे कष्ट

चर्मरोग प्राय' होते रहते थे। इस चर्मरोगसे उन्हे वडी तकलीफ उठानी पडी। एक फोडा वैठता या पकता कि दूसरा तैयार हो जाता। वरसो तक यह सिलसिला रहा। इनके पत्रोको पढनेसे उस समयकी इनकी तकलीफोका कुछ अन्दाज़ किया जा सकता है। ३ मई १८६३के एक पत्रमे लिखते है —

"छठा महीना है कि सीधे हाथमे एक फुंसीने फोड़ेकी सूरत पैदा की। फोडा पककर फूटा और फूटकर एक जख़्म और जख़्म एक गार वन गया। हिन्दुस्तानी जर्राहोका इलाज रहा। विगडता गया। दो महीनेसे काले डाक्टरका इलाज है। सलाइयाँ दौड़ रही है; उस्तरेसे गोश्त कट रहा है। वीस दिनसे इफाका[1] की सूरत नजर आती है।"

पर यह 'इफाका' भी अस्थायी था। एक फोड़ा अच्छा होता कि दूसरे निकल आते। १६ अगस्त १८६३के पत्रमे 'तुफ्ता' को लिखते है:—

"एक वरससे अवारिजे फिसादे खून[2] मे मुब्तला हूँ। वदन फोड़ोकी कसरतसे सर्दचिरागाँ हो गया। ताकतने जवाव दे दिया। दिन-रात लेटा रहता हूँ।"

---

१ लाभ, २. रक्तदोपके रोग।

एक ख़तमे नवाब अनवरउद्दौला 'शफक' को लिखते है:—

"न तप न खाँसी, न असहाल न फालिज न लकवा, इन सबसे बदतर एक सूरत पुर कुदूरत यानी एहतराकका मर्ज। मुख्तसर यह कि सरसे पाँव तक बारह फोडे, हर फोड़ेपर एक जख्म, हर जख्मपर एक गार। हर रोज बेमुबालगा तेरह फाये और पावभर मरहम दरकार। नौ-दस महीने बेखुर्दो-ख़ाब[1] रहा और शबो-रोज[2] बेताव[3]। राते यो गुजर रही है कि अगर कभी आँख लग गयी, दो घडी गाफिल रहा हूँगा कि एक आध फोडेमे टीस उठी; जाग उठा; तड़पा किया, फिर सो गया, फिर होशयार हो गया।"

नवम्बर १८६३मे काजी अब्दुलजमीलको एक खतमे लिखते है—
"जितना ख़ून बदनमे था, बेमुबालगा आधा उसमेसे पीप होकर निकल गया।"

फोडोसे मुक्ति मिली तो १८६३मे फत्क (अत्रवृद्धि, आँत उतरने) की शिकायत हुई।

लम्बी बीमारी

इन शारीरिक व्याधियोमे पारिवारिक सौख्य एवं दाम्पत्य स्नेहके-अभावने जिन्दगीको स्वादहीन कर दिया था। जीनेकी भी इच्छा नही रह गयी थी। मृत्युकी आकाक्षा करने लगे थे। जून १८६३के एक पत्रमे लिखते है :—

"सन् १२७७ हिजरीमे मेरा न मरना सिर्फ तकजीबके वास्ते था।···· हर रोज मर्गे नौ[4]का मजा चखता हूँ···रूह मेरी अब जिस्ममे इस तरह घबराती है जिस तरह तायर[5] कफस[6]मे। कोई शगल, कोई इख्तिलात[7], कोई जल्सा, कोई मजमा पसन्द नही। किताबसे नफरत, शेरसे नफरत, जिस्मसे नफरत, रूहसे नफरत। जो कुछ लिखा है बेमुबालगा और बयाने वाकअ है।"

---

१. खाने-पीने और नीदसे लाचार, २. रात-दिन, ३. बेचैन, ४. नवमरण, ५. पक्षी, ६ पिजडा, ७. प्रेम-व्यवहार।

बीमारी इतनी बढी कि १८६४ ई०के शुरूमे कही-कही इनकी मृत्युका समाचार भी फैल गया। यही बात १८६७ ई०मे भी हुई। फरवरी १८६४के पत्रमे यह अनवरउद्दौलाको लिखते है—"आपकी पुर्सिशके क़ुर्बान जाऊँ कि जबतक मेरा मरना न सुना, मेरी खबर न ली।"

जीवनके आखिरी सालोमे यह बराबर बीमार रहे। एक बीमारी अच्छी होती कि दूसरी हो जाती। कमजोरी बेहद बढती गयी। १२ मई १८६६को मौ० हबीबउल्लाखाँ 'जका'को लिखते है—

"मेरे मुहिब, मेरे महबूब! तुमको मेरी खबर भी है? आगे नातवाँ[1] था, अब नीमजान[2] हूँ। आगे बहरा था, अब अंधा हुआ चाहता हूँ। रामपुरके सफरका रहे-आवर्द है। रे'शः[3] व जोफे बसर[4]; जहाँ चार सतरें लिखी उँगलियाँ टेढी हो गयी, हुरूफ सूझनेसे रह गये। इकहत्तर बरस जिया, बहुत जिया।। अब जिन्दगी बरसोकी नही, महीनों और दिनोकी है।*

१८६६ मे गालिब कैसे थे इसकी जानकारी उस कालके कई लेखक छोड़ गये है। इसी साल (१८६६मे) 'जल्वए ख़िज्र'के लेखक सैयद फर्जन्द अहमद बिलग्रामी मिर्जासे मिलने दिल्ली आये। उनकी पुस्तक मे गालिबके कई चित्र मिलते है जिनसे प्रामाणिक सूचनाएँ मिलती है। वह लिखते है —

बिलग्रामीका चित्र

"हजरतका लिबास उस वक्त यह था—पाजामा सियाह बूटेदार—कलीदार नेफा सुर्ख़ टूलका, बदनमे मिर्जई, सर खुला हुआ, रंग सुर्ख़ व सफेद, मुँहपर दाढी दो अँगुल। आँखे बडी, कान बडे; कद लम्बा, विलायती सूरत, पाँवकी उँगलियाँ बसबब कसरते शराबके मोटी होकर ऐंठ गयी थी और यही

---

१. दुर्बल, क्षीण, २ अर्द्धप्राण, मृतप्राय, ३. अगकम्प, ४ दृष्टिक्षीणता।
*उर्दू-ए-मोअल्ला, पृ० २८।

सबब था कि उठनेमे दिक़्क़त होती थी। आँखोंमे नूर[1] मौजूद था; कानके समाअत[2]मे कुछ सकल[3] आ चला था।"

इस समय उनकी उम्र लगभग सत्तर सालकी थी। स्वास्थ्य गिरता ही गया। "चलना-फिरना मौक़ूफ़ हो गया था, अक्सर औकात पलँगपर पड़े रहते थे, गिजा कुछ न रही थी।"*

भोजनके विषयमे तो खुद ही ४ दिसम्बर १८६६को मौ० हबीबुल्ला खाँ 'जका'को एक पत्रमे लिखते है :—

"इस महीने यानी रजबकी आठवी तारीखसे वहत्तरवाँ वर्ष शुरू हुआ। गिजा सुबहको सात बादामका शीरा कन्दके शर्बतके साथ, दोपहरको सेर भर गोश्तका गाढ़ा पानी, करीब शाम कभी-कभी तीन तले हुए कबाब, छ घडी रात गये पाँच रुपये भर शराबे खानासाज और इसी कदर अर्के-शीर। ऐसावके जोफका यह हाल कि उठ नही सकता और अगर दोनों हाथ टेककर, चारपाया बनकर, उठता हूँ तो पिण्डलियाँ लर्जती है.... दिन भरमे दस-बारह बार और इसी कदर रात भरमे, पेशाबकी हाजत होती हे। हाजती पलंगके पास लगी रहती हैं; उठा, पेशाब किया और पड रहा। असबाबे ह्यातमेसे यह बात है कि शबको बदख्वाब नही होता। ....बे तवक्कुफ नीद आ जाती है। एक सौ साठ रुपयेकी आमद, तीन सौ का खर्च। हर महीनेमे एक सौ चालीस रुपयेका घाटा, कहो जिन्दगी दुश्वार है या नही।"†

'अज़ीज़' द्वारा लिखित विवरण

इन्ही दिनोकी बात है कि ख़ाजा अजीज लखनवी कश्मीर जाते वक्त रास्तेमे इनसे मिले थे। उस मिलनका बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन उन्होंने किया है :—

१. प्रकाश, २. श्रवण, ३. भारीपन, दोष।

* यादगारे गालिब (हाली)।

† उर्दू-ए-मुअल्ला पृ० ३२।

"मिर्जा साहबका मकान पुख़्ता था। एक बड़ा फाटक था जिसकी बगलमे एक कमरा और कमरेमे एक चारपाई बिछी हुई थी।....उसपर नहीफ-उल जुस्स[1] आदमी गंदुमी रंग, अस्सी बयासी सालका जईफ़ुल उम्र लेटा हुआ—एक मुजल्लिद किताब सीनेपर रखे, आँखे गड़ाये हुए पढ रहा था। यह मिर्जा गालिब देहलवी है....।

"हमने सलाम किया लेकिन बहरे इस कदर थे कि उनके कान तक आवाज न गयी। आख़िर खडे-खडे वापिस आनेका कस्द किया कि गालिबने चारपाईकी पट्टीके सहारेसे करवट बदली और हमारी तरफ देखा। हमने सलाम किया। बमुश्किल चारपाईसे उतरकर फर्शपर बैठे। हमको अपने पास बिठाया। कलमदान व क़ागज सामने रख दिया और कहा—आँखोसे किसी कदर सूझता भी है लेकिन कानोसे बिलकुल सुनाई नही देता। जो कुछ मै पूछूँ उसका जवाब लिख दो। नामोनिशान पूछा।....जब हमने नाम-पता लिखा तो कहा—मुझसे मिलनेके लिए आये हो तो ज़रूर कुछ न कुछ कहते होगे; कुछ अपना कलाम भी सुनाओ। हमने कहा—हम तो आपका कलाम जबाने-मुबारकसे सुननेकी गर्जसे आये थे। बहुत देरतक अपना कलाम सुनाया किये। फिर इसरार किया कि तुम भी कुछ सुनाओ। हमने यह मतला सुनाया—

महे मिस्रअस्त दाग़ अज़ रश्के महताबे कि मन दारम।
जुलेखा कोरशद अज़ हसरते ख़्वाबे कि मन दारम।

अजब लुत्फ और मजेसे इस मतलेको दुहराया और हदसे ज्यादा तारीफ की। फिर आदमीसे कहा—खाना लाओ। हम समझे बख्याल मेहमानवाज़ी तकलीफ कर रहे है। लिख दिया कि हम सिर्फ थोडी देरके लिए देहली उतर पडे थे। रेलका वक्त बिलकुल करीब है और बग्घी सरायमे खडी है, असबाब बँधा हुआ रखा है। पाबरकाब आपसे मिलने

---

१ क्षीणकाय।

आये थे। अब इजाजत चाहते है।' कहने लगे—"आपकी गायत[1] इस तकलीफसे यह थी कि मेरी सूरत और कैफीयत मुलाहिजा फर्मायें। जोफ[2] की हालत देखी कि उठना-बैठना दुश्वार है; बसारत[3] की हालत देखी कि आदमीको पहचानता नही हूँ; समाअत[4] की कैफ़ीयत मुलाहिजा की कि कोई कितना चीखे, मुझे खबर नही होती। गजल पढनेका अन्दाज मुलाहिजा किया, कलाम सुना। अब एक बात बाकी रह गयी है कि मै क्या खाता हूँ। इसको भी मुलाहिजा करते जाइए।" इतनेमे खाना आया। दो फुल्के और तश्तरीमे भुना हुआ गोश्त जिसमे कुछ मेवा भी पडा हुआ था। फुलकेका बारीक पर्त्त लेकर दो-चार नेवाले बमुश्किल खाये और खाना बढ़ा दिया। तअज्जुब होता है कि इस मिकदारे खूराकपर क्योकर बसर करते है।"

आर्थिक चिन्ताएँ

इन दिनों आर्थिक चिन्ताएँ भी बढ रही थी। जानते थे, जिन्दगीका चिराग बुझने ही वाला है इसलिए चेष्टामे थे कि मिर्जा बाकरअली व हुसेन अली खाँके वजीफे रामपुर दरबारसे नियत हो जायँ। बाक़रअलीकी शादी तो पहिले ही हो चुकी थी; हुसेन अलीकी मँगनी भी तय हो चुकी थी, हाँ शादी न हुई थी। ससुराल वाले शादीके लिए जल्दी कर रहे थे। इनके पास तो रोजके खर्चेके लिए ही कुछ न था। कर्ज भी न मिलता था। इसलिए विवश नवाब रामपुर-की ख़िदमतमे अर्ज किया कि आप कुछ रकम इनाअत फर्माएँ ताकि यह काम सरजाम पाये और बूढ़े फ़क़ीरकी, बिरादरीमे, शर्म रह जाये। मिर्जा-से पूछा गया कि कितना रुपया चाहिए। मिर्जाने लिखा कि बाकरअलीखाँ की शादीपर ढाई हजार ख़र्च आये थे। ढाई हजारमे शादी अच्छी हो जायगी लेकिन यह भी साथ अर्ज करता हूँ कि मेरा हक्के ख़िदमत इतना नही कि इस कदर माँग सकूँ। जो कुछ दोगे उसमे शादी कर दूँगा।"

---

१. उद्देश्य, २. दुर्बलता, ३. दृष्टिशक्ति, ४. श्रवणशक्ति।

पर पता नही क्या कारण हुआ कि यह उम्मीद पूरी न हुई। शादी तो टल ही गयी, पर कर्जदारोने इनको बहुत तंग किया और नालिशकी धमकियाँ दी। इसलिए हुसेनअलीखाँकी शादीकी माँग भूलकर नवाबसे फिर निवेदन किया कि ऋण-दाताओसे तो गला छुड़ा दें। १६ नवम्बर १८६८ के पत्रमे नवाबसाहबको लिखते है—

"हाल मेरा तबाह होते-होते अब यह नौबत पहुँची कि अबकी तनख़ाह से ५४ रुपये बचे।...मिनजुमलन आठ सौ रुपये हो तो मेरी आबरू बचती है। नाचार हुसेन अलीख़ाँकी शादी और उसके नामकी तनखाहसे किता नज़र की। अब इस बाबमे अर्ज करूँ क्या मजाल? कभी न कहूँगा। आठसौ रुपये मुझको और दीजिए। शादी कैसी? मेरी आबरू बच जाय तो गनीमत है।"

इस प्रार्थनापत्रके जवाबमे रामपुर दरबारकी ओरसे नवाब मिर्जाख़ाँ 'दाग' ने मिर्जाको लिखा कि 'हुजूरने तुम्हारे कर्जके अदा करनेकी नवेद की है और मिकदार कर्ज पूछी है।" मिर्ज़ा गालिबने दोबारा कर्जका परिमाण लिखा और नवाब साहबको भी याद दिलाई लेकिन कोई आदेश इस सम्बन्धमें न निकला और मिर्जाकी यह इच्छा भी अपूर्ण ही रही।

रामपुर दरबारसे निराशा

इस प्रकार एक ओर आर्थिक चिन्ताएँ और परीशानियाँ, दूसरी ओर दिन-दिन बढती हुई कमजोरी, बिलकुल निढाल हो गये। इस जमानेमे कही बाहर न जाते थे, दिन-रात पलँगपर पड़े रहते थे। कोई विशेष व्यक्ति आ जाता तो मुश्किलसे उठ बैठते थे अन्यथा लेटे रहते थे। लिखकर बातचीत करते थे पर बादमे कलम पकड़ने और लिखनेमे अँगुलियोमे तकलीफ होने लगी तो ख़तोका लिखना भी बन्द कर दिया। अगर कोई मिलनेवाला आ जाता तो बाहरके दोस्तोके ख़तोका जवाब बोलकर उससे लिखवा देते। फरवरी १८६७ मे देहलीके दो अख़बारों (अकमलुल

अख़बार और अशरफुल अख़बार) मे वक्तव्य छपवाया कि 'जहाँतक हो सका, मैने दोस्तोंकी खिदमत की, उनके खतोका जवाब देता रहा और अशआर पर इस्लाह देनेसे दरेग़ नही किया लेकिन अब मेरी सेहत इतनी गिर गयी है कि किसी तरह इस मेहनतकी मुतहम्मिल[1] नही हो सकती। इसलिए दोस्त-अहबाबसे दर्खास्त है कि मुझे ख़तोके जवाब और अशआरकी इस्लाहसे मुआफ़ रखे।' फिर भी खत आते रहे और वह अन्त तक जवाब लिखवाते रहे।

मानसिक उलझनों, शारीरिक कष्टों और आर्थिक चिन्ताओके कारण जीवनके अन्तिम वर्षोमे यह प्रायः मृत्युकी आकाक्षा किया करते थे। हर साल अपनी मृत्यु-तिथि निकालते। पर विनोद वृत्ति अन्त तक बनी रही। एक बार जब मृत्यु-तिथिका जिक्र एक शिष्यसे किया तो उसने कहा—"इंशा अल्ला, यह तारीख भी गलत साबित होगी।" इसपर मिर्जा बोले—"देखो साहब! तुम ऐसी फाल मुँहसे न निकालो। अगर यह तारीख ग़लत साबित हुई तो मै सिर फोड़कर मर जाऊँगा।"

मृत्युकी आकांक्षा

एक बार दिल्लीमे महामारी फ़ैली। मीर मेहदीहसन 'मजरूह'ने अपने ख़तमे इसका जिक्र किया तो उसके जवाबमे लिखते है—"भई कैसी वबा? जब एक सत्तर बरसके बुड्ढे और सत्तर बरसकी बुढियाको न मार सकी।"

धीरे-धीरे पर निश्चित गतिसे मौत तो निकट आती ही जा रही थी। अन्तिम दिनोमे अक्सर अपना यह मिसरा पढा करते थे—

ऐ मर्गे नागहाँ! तुझे क्या इन्तज़ार है?

और बार-बार दोहराते—

दमे वापसीं बर सरे राह है,
अज़ीज़ो! अब अल्ला ही अल्लाह है।

---

१. बोझ उठाने योग्य, समर्थ।

कभी-कभी यह सोच-सोचकर और दुखी हो जाते थे कि उनके बाद उनके आश्रितोका क्या होगा। ऐसे समय दिलको समझाते कि बीबीके सम्बन्धी उसे भूखो न मरने देगे। नवाब अमीनउद्दीनखाँ, लोहारु-नरेशको एक पत्रमे लिखा—

वह करुणाजनक पत्र !

"मेरी जौजा[1] तुम्हारी वहिन, मेरे बच्चे तुम्हारे बच्चे हैं। खुद जो मेरी हक़ीकी भतीजी है उसकी औलाद भी तुम्हारी औलाद हैं। न तुम्हारे वास्ते बल्कि इन बेकसोके वास्ते तुम्हारा दुआगो हूँ और तुम्हारी सलामती चाहता हूँ। तमन्ना यह है और इंशा अल्ला ऐसा ही होगा कि तुम जीते रहो और मैं तुम दोनो (अमीनउद्दीन व जियाउद्दीन) के सामने मर जाऊँ ताकि अगर इस काफलेको रोटी न दोगे तो चने दोगे। अगर चने भी न दोगे और बात न पूछोगे तो मेरी बलासे। मैं तो मुआफिक़ अपने तसव्वुरके इन गमज़दोके गममे न उलझूँगा।"

अन्तकाल

मृत्युके कई दिन पहिलेसे बेहोशीके दौरे आने लगे थे। कई-कई घण्टोके बाद कुछ देरके लिए होश आता, फिर बेहोश हो जाते। देहावसानसे एक रोज पहिलेकी दो घटनाएँ स्मरणीय है। लम्बी बेहोशीके बाद कुछ होश आया था। 'हाली' गये तो पहिचाना। नवाब अलाउद्दीन खाँने लोहारूसे हाल पुछवाया था। उनको जवाब लिखवाया—"मेरा हाल मुझसे क्या पूछते हो। एकाध रोजमे हमसायोसे पूछना।" इसी रोज कुछ खानेको माँगा। खाना आया तो नौकरसे कहा कि मीरजा जीवन-बेग (मिर्जा बाकरअलीखाँकी सबसे बड़ी लडकी) को बुलाओ। यह प्राय उन्हीके पास खेला करती थी पर उस समय अन्दर चली गयी थी। कल्लू मुलाज़िम बुलाने अन्तःपुरमे गया तो वह सो रही थी।

---

1. स्त्री।

उसकी माँ बुग्गा बेगमने कहा—'सो रही है, ज्यूँही जगती है, भेजती हूँ।' कल्लूने जाकर यही बात कह दी। इसपर बोले—'बहुत अच्छा। जब वह आयेगी, हम खाना खायेंगे।' पर उसके बाद ही गावतकिये पर सिर रखकर बेहोश हो गये। हकीम महमूद खाँ और हकीम अहसन-उल्लाखाँको खबर दी गयी। उन्होने आकर जाँच की और बतलाया—दिमागपर फालिज गिरा है। बहुत यत्न किया गया पर सब बेकार हुआ। फिर उन्हे होश न आया और उसी हालतमे अगले दिन, १५ फ़रवरी १८६९ ई०, दोपहर ढले, इनका दम टूट गया। एक ऐसी प्रतिभाका अन्त हो गया जिसने इस देशमे फारसी काव्यको उच्चता प्रदान की और उर्दू गद्य-पद्यको परम्पराकी शृखलाओंसे मुक्त कर एक नये साँचेमे ढाला।

मृत्युके बाद इनके मित्रोंमे इस बातको लेकर मतभेद हुआ कि शीया या सुन्नी किस विधिसे इनका मृतक संस्कार हो। गालिब शीया थे, इसमे किसीको सन्देहकी गुंजाइश न थी पर नवाब जियाउद्दीन और हकीम महमूदखाँने सुन्नी विधिसे ही सब क्रिया-कर्म कराया और जिस लोहारू खान्दानने १८४७ ई०मे समाचार-पत्रोमे छपवाया था कि गालिबसे हमारा बहुत दूरका सम्बन्ध है, उसी खान्दानके नवाब जियाउद्दीनने सम्पूर्ण मृतक संस्कार करवाया और उनके शवको गौरवके साथ अपने वशके क़ब्रिस्तान (जो चौसठ खंभाके पास है) मे अपने चचाके पास जगह दी।

अन्तिम क्रिया

इनकी मृत्युपर बहुतोने मर्सिये लिखे जिनमे हाली, मजरूह और सालिकके मर्सिये मशहूर है। उनके समाधिस्तम्भपर मजरूहका निम्न-लिखित किता खुदा हुआ है—

या हय्यि या क़य्यूम
रश्के उर्फ़ी व फ़ख्रे तालिब मर्द
असदउल्ला ख़ाने ग़ालिब मर्द

कल मैं ग़मो अन्दोहमें बाखातिरे महज़ूँ
था तुर्बते उस्ताद पै बैठा हुआ ग़मनाक
देखा तो मुझे फ़िक्रमें तारीखकी 'मजरूह'
हातिफ़ने कहा—'गंजे मआनी है तहेखाक ।'*

मिर्जाकी मृत्युका उनकी पत्नी तथा अन्य आश्रितोपर क्या प्रभाव पड़ा होगा, इसकी कल्पना मात्र की जा सकती है । मिर्जाकी जिन्दगी ज्यादातर

पारिवारिक सुखके लिए तड़पते ही रहे

दु:खोमे बीती । पारिवारिक सुखके लिए वह सदा तरसते ही रहे । सात बच्चे हुए—पुत्र और पुत्रियाँ । पर कोई पन्द्रह महीनेसे ज्यादा न जिया । पत्नीसे भी वह हार्दिक सौख्य न मिला जो जीवनकी दम घोटनेवाली घाटियोके बीच चलते हुए मनुष्यको बल प्रदान करता है । इनकी पत्नी उमराव बेगम नवाब इलाही बख्श खाँ 'मारूफ' की छोटी कन्या थी। बड़ी कन्या बुनियादी बेगम शर्फुद्दौला नवाब फैजउल्ला खाँ (पुत्र नवाब कासिम जान, जिनके भाई आरिफजानके पुत्र नवाब अहमदबख्श एवं इलाहीबख्श थे) के पुत्र नवाब गुलाम हुसेन मसरूरसे ब्याही थी । नवाब गुलाम हुसेनको बुनियादी बेगमसे दो पुत्र हुए —जैनुल आब्दीन खॉ और हैदर हुसेन खॉ । जब मिर्जाका अपना कोई बच्चा न जिया तो उन्होंने जैनुल आब्दीन खाँको गोद लिया । यह बडे अच्छे कवि थे और 'आरिफ' उपनाम रखते थे । गालिब आरिफको बेहद प्यार करते थे और उन्हे 'राहते रूहे नातवाँ' (दुर्बल आत्माकी शान्ति) कहते थे । दुर्भाग्यवश वह

पत्नी एवं पोषित बच्चे

भी भरी जवानी (३६ सालकी आयु) मे नकसीर फूटने और उससे अत्यधिक खून जानेसे, १८५२ ई० मे मर गये । गालिबके दिलपर ऐसी चोट लगी कि जिन्दगी

* १२८५ हिजरी ।

मे उनका दिल फिर कभी न उभरा। इस घटनासे व्यथित होकर उन्होने जो गजल लिखी उसमे उनकी वेदना ही साकार हो गयी है। कुछ शेर देखिए:—

लाजिम था कि देखो मेरा रस्ता कोई दिन और।
तनहा गये क्यों अब रहो तनहा कोई दिन और।
आये हो कल और आज हो कहते हो कि जाऊँ,
माना कि नहीं आजसे अच्छा कोई दिन और।
जाते हुए कहते हो क़यामतको मिलेंगे,
क्या ख़ूब? क़यामतका है गोया कोई दिन और।

इन आरिफ़साहबकी दो शादियाँ हुई थी। पहिला ब्याह नवाब शम्सुद्दीन खाँ की सगी बहिन नवाब बेगमसे हुआ था। शादीके दो वर्ष बाद सतवाँसा बच्चा पैदा होनेसे प्रसूतिकालमे ही उनकी मृत्यु हो गयी। दूसरा विवाह मिर्जा मुहम्मद अली बेग बुखाराईकी कन्या बुस्ती बेगम उर्फ नवाब दूल्हनसे हुआ। इस व्याहसे उन्हे दो पुत्र हुए—बाकर अली खाॅ और हुसेन अली खाँ। बुस्ती बेगमकी मृत्यु आरिफकी मृत्युके ३–४ मास पूर्व वृक्क-वेदना—दर्दे गुर्दासे हुई। आरिफ़ इस बीबीको बहुत चाहते थे और उसकी मृत्युसे उनपर जो चोट लगी वह भी उनके असामयिक निधनका कारण थी। माँकी मृत्युपर दोनो बच्चे अपनी दादी बुनियादी बेगमके पास रहने लगे। पर आरिफके मरनेपर गालिब उनके छोटे लडके हुसेन अली खाँ (जो केवल दो वर्षके थे) को ले आये और तबसे अपने पास रखा। बादमे बुनियादी बेगमकी भी मृत्यु हो गयी और आरिफके बडे पुत्र बाकर अली खाॅ भी मिर्जाके पास आ गये। इन दोनो बच्चोका गालिब बडा दुलार करते थे।

बाकर अली जब १७ सालके हुए, मिर्जाने उनकी शादी नवाब जिया-उद्दीन अहमदकी पुत्री मोअज्जम जमानी बेगम उर्फ़ बुग्गा बेगमके साथ (जो १२ सालकी थी) कर दी। यह बुग्गा बेगम दीर्घजीवी हुईं और

१० मई १९४५को ९३ व०की आयुमे मरी। इनके पाँच सन्तानें हुईं—पाँचो लडकियाँ। बड़ी नवाब बेगम ९ वर्षकी आयुमे ही चल बसी। इसके बाद सुलतान बेगम १८६५मे पैदा हुई। इन्हे गालिब बेहद चाहते थे और प्यारसे 'जीवन बेग' कहते थे। मृत्युके पूर्व होश आनेपर, माथ खानेके लिए इन्हीका स्मरण किया था। बादमें इनकी शादी नवाब जियाउद्दीन अहमद ख़ाँके पोते मीरजा शुजाउद्दीन अहमद ख़ाँ 'तावाँ'के साथ हुई। इन्होने भी लम्बी उम्र पाई और ८९ वर्षकी उम्रमे, अभी कुछ समय पहिले (२९ मार्च १९५४ ई०) इनकी मृत्यु दिल्लीमे हुई है। तीसरी फातिमा सुलतान बेगमकी शादी मीरजा वशीरुद्दीन अहमद ख़ाँसे हुई थी। चौथी रबिया बेगम डेढ सालकी उम्रमे ही मर गयी थी। पाँचवी और सबसे छोटी रकिया सुलतान बेगम उर्फ मच्छन है जिनकी शादी कर्नल जेड अहमदसे हुई। यह शायद अब भी जिन्दा है।

बाकर अली और उनकी सन्तति

मिर्जा बाकरअली फारसी एवं उर्दू दोनोमे कविता करते थे। फारसी मे 'बाकर' एवं उर्दूमे 'कामिल' उपनाम था। पहिले अलवरमे नौकर हुए। बादमे नौकरी छोडकर दिल्लीमे ही आ रहे और घोडोका व्यापार करने लगे। भरी जवानीमे, जब सिर्फ साढे अट्ठाईस सालके थे, क्षय रोगसे, २५ मई १८७६ ई० को इनका देहावसान हो गया।

हुसेनअली

हुसेन अली ख़ाँ १८५० ई०मे पैदा हुए थे। जैसा पहिले लिखा जा चुका है, गालिब इन्हे बहुत चाहते थे। इनकी शादी ग़ालिबके जीवन-कालमे ही तय हो चुकी थी, पर रुपयेका प्रबन्ध न हो सकनेके कारण न हो सकी। बादमे खुरशीद बेगम या हुस्ने-जहाँ बेगमसे हुई।*

---

*लोहारूवाले नवाब अहमद बख़्श ख़ाँके छोटे भाई थे नबीबख़्श। इनके पोते मिर्जा अकबर अलीने जेनरल सर डेविड आक्टर लूनीकी कन्यासे

यह भी उर्दू फ़ारसीमे कविता करते थे और रामपुरमे मुलाजिम हो गये थे। बादमे नौकरी छोड़ दिल्ली आ गये। बडे भाईकी मृत्युका ऐसा सदमा हुआ कि स्वयं बीमार रहने लगे और ७ सितम्वर १८८० को ३० सालकी उम्रमे चल बसे।

मिर्जाकी मृत्युके बाद उनकी विधवा उमराव बेगमपर जो विपत्तियाँ आई होंगी, उनकी कल्पना की जा सकती है। अंग्रेजी सरकारसे मिलने-

उमराव बेगम

वाली पेन्शन, रामपुरका वजीफा सब बन्द हो गया। ऋणदाताओके तक़ाजेसे अन्ततक गालिब परेशान रहे। अब वह बोझ भी इनपर पडा। हम पहिले लिख चुके है कि मृत्युके समय मिर्जापर ८००) कर्ज थे जिसके लिए उन्होंने रामपुर दरबारसे प्रार्थना की थी, पर अभीतक उसका कुछ न हुआ। १ अगस्त १८६९को उमराव बेगमने नवाब रामपुरको निम्नलिखित पत्र भेजा—

"जनाब आली! जिस रोजसे मिर्जा असद उल्ला खाँने वफात पाई है तो यह आजिज बेवा इस क़दर मसायब[1] मे गिरफ्तार है कि तहरीरके बाहर है। अव्वल तो यह मुसीबत है कि मिर्जा साहब मरहूम आठ सौ रुपयेके कर्जदार मरे, दूसरी मुसीबत यह है कि पेन्शन अंग्रेजी मस्दूद[2] हुई। तीसरी यह कि तनखाह सौ रुपये माहवार जो आप अजराहे कद्र-दानीके मिर्जा मरहूमको इरसाल फर्माते[3] थे, वह भी एक लख़्त मौकूफ हुई। अब तक कर्ज लेकर औकात बसर की। अब क़र्ज भी नही मिलता।

विवाह किया था। यह आक्टर लूनीकी वैध कन्या न थी। लूनीने मुबारक बेगम नामक एक स्त्रीको रख लिया था। उसीसे खुरशीद बेगमका जन्म हुआ था। मुबारक बेगमकी बनवाई हुई लाल मस्जिद हौजकाजीके पास, सिरकी वालानमे, थानेके सन्निकट है—लाल पत्थरकी बनी हुई।

—जिक्रे ग़ालिब पृष्ठ १४१

१ कष्ट, २ निरुद्ध, बन्द, ३. भेजते थे।

नौबत फाकाकशीकी पहुँची ।······ अब दुआगोकी यह तमन्ना है कि ऐसी परवरिश मुझ जईफा[1] की हो जाये कि मिर्जा मरहूम हके अबादसे बरी हो जाये कि यह सख्त अजाब है। अगर हुजूर सूरते अदाए कर्ज फरमावे तो कमाले सवावे अजीम[2] होगा।··········पेन्शन मेरी दस रुपये अंग्रेज करता है* बशर्ते कि मै कचहरीमे हाजिर हूँ और जाना मेरा कचहरीमे हर्गिज न होगा, गो फाको ही मर जाऊँ। क्या मै अपने बाप और चचा और शौहरका नाम रोशन करूँ। और जो इज्जत और रियासत मेरे चचा-की और हुर्मत मेरे वालिदकी और शौहरकी आगे खासोआमके थी, हुजूर-पर सब रोशन है।"

इस करुणाजनक अर्जीपर भी नवाब रामपुरका दिल न पसीजा। २ सितम्बर १८६९को बेचारी विधवाने दोबारा लिखा। इसपर ९ सितम्बर-को नवाब मिर्जा 'दाग'को हुक्म हुआ कि जाँच करके रिपोर्ट करें। ३० अक्तूबरको नवाबने हुक्म दिया कि उमराव बेगमको ६००) की हुण्डी भेजी जाय।

पता नही चलता कि यह ६००) की हुण्डी किस हिसाबसे भेजी गयी, न यही पता चलता है कि वह भेजी भी गयी या नही और भेजी भी गयी तो उमराव बेगमको मिली या नही। इन दु:खकी घडियोमे उमराव बेगम-के चचेरे भाई और मिर्जाके शिष्य नवाब जियाउद्दीन खाँने मदद की और २५) या ५०) मासिक वृत्ति भी नियत कर दी जो उन्हे मृत्युतक मिलती

---

१. वृद्धा, २ परम पुण्य।

* उमराव बेगमने अंग्रेजोके यहाँ दर्खास्त दी थी कि मिर्जा साहबकी पेन्शन हुसेन अली खाँके नाम कर दी जाय। डिप्टी कमिश्नरने इसकी सिफारिश की पर कमिश्नरने आदेश दिया कि ऐसा नही हो सकता, हाँ, बेवाको १०) माहवार वजीफ़ा मिल सकता है, बशर्ते कि वह कचहरीमे हाजिर हो। बेगम ग़ालिबने यह शर्त कबूल न की।

रही। नवाब जियाउद्दीन आजीवन और जीवनान्तर भी गालिबके सहायक रहे। जब गदरमे पेन्शन बन्द हो गयी थी तब भी ५०) माहवार उमराव बेगमको देते रहे।

पर उमराव बेगम वैधव्यका दुःख झेलनेके लिए ज़्यादा दिन जिन्दा न रही और पतिकी मृत्युके ठीक एक वर्ष बाद—वर्षीके दिन—४ फरवरी १८७० को, १०–११ बजे दिनके समय, परलोकवासिनी हुई।

ग़ालिबका जीवन : रहन-सहन, स्वभाव और आचरण

गालिब एक ईरानी रईसजादा थे। रईसजादाकी तरह पले, बढे। फिर उनकी शादी भी लोहारू खान्दानमे हुई। चचा, समुर सभीकी जिन्दगी रईसाना जिन्दगी थी। उसका असर इनपर भी पड़ा। इन्होंने कठिनाइयो और मुसीबतोके बीच भी ऊपर टीमटामकी जिन्दगी बनाये रखनेकी सदा कोशिश की। बचपनकी लगी आदते मुश्किलसे छूटती हैं। कुछ प्रयत्न और सत्संगसे छूट गयी, कुछ बनी रही। ऐशोइशरतकी जिन्दगी जो किशोरावस्थामे उभरी, जवानीमे उसकी डोर कट गयी। उसके कटनेका दुःख इनको बराबर बना रहा। कभी तृप्ति प्राप्त नही हुई। उस जमानेके रईसोकी बाहरी टीमटाम, जिन्दादिली, शेरोसुख़नका शौक़, यारबाशी, उदारता, ऐंठ पर उसके साथ ही जीहुजूरी—मतलब एक मिटती हुई रईसी सभ्यताके सब गुण-दोष इनमे थे।

व्यक्तित्व

ईरानी चेहरा, गोरा, लम्बा कद, सुडौल एकहरा बदन, ऊँची नाक, कपोलकी हड्डियाँ उभरी हुई, चौडा माथा, घनी उठी पलकोके बीच झाँकते दीर्घ नयन, ससारकी कहानी सुननेको उत्सुक लम्बे कान, अपनी सुनानेको उत्सुक मानो बोल ही पडेगे ऐसे ओठ—अपनी चुप्पीमे भी बोल-बोल पड़नेवाले, बुढापेमे भी फूटती देहकी कान्ति जो इशारा करती है कि जवानीके सौन्दर्यमे न जाने क्या नशा रहा होगा। सुन्दर गौर वर्ण, समस्त जिन्दादिलीके साथ जीवित,

इसी दुनियाके आदमी, इसान और इंसानके गुण-दोषोको कलेजेसे लगाये—यह थे मिर्जा वा मीरजा गालिब ।

बचपन दुलारमे पला । पर दुलारकी कड़ियाँ टूटती गयी । टूटी और मिली । मिली और टूटी । पिता गये । चचा आये । चचा गये । यार-दोस्त आये । उनका हुजूम बढा । मजलिसे जमी । प्यालोमे लालपरीका नर्त्तन हुआ—ऐसा नर्त्तन जिसने जिन्दगीको अपने आलिगनमे दबोच लिया । जवानीमे तो उसने गौरवर्णमे एक चम्पई कान्ति पैदा की । खूनमे दौड़ी । रंगोमे उछली । दिलमे गर्मी पैदा की । पर बुढापेमे खूनको पानी कर गयी; पाँवकी उँगलियोमे सूजन बनकर उभरी, हाथकी उँगलियोमे अदाके साथ ऐंठी । हाजमेको उड़ा ले गयी । फिर जिस्मपर फूट-फूटकर निकली ।

प्रौढावस्था आई; बुढापा आया पर इनकी जद्दत न गयी । बहुत दिनो तक दाढी मुँडाते रहे । जब देखा, बाल खिचडी हो रहे है और स्याहीपर सफेदी चढती ही जाती है तो दाढी मुँडाना बन्द कर दिया । दो-ढाई अंगुल की दाढी रखने लगे । अक्सर जो दाढी रखते है वे सिरके बाल भी बढाते है । इनके जमानेमे भी यही तरीका था । पर इनका ढब निराला था । दाढी रखी तो सिर मुड़ा लिया । इस तरह परम्परासे कुछ भिन्नता रखी ।

रईसजादा थे और जन्म भर अपनेको वैसा ही समझते रहे । इसलिए वस्त्र-विन्यासका बड़ा ध्यान रखते थे । जब घरपर होते, प्राय: पाजामा और अंगरखा पहिनते थे । सिरपर कामदानी की हुई मलमलकी गोल टोपी लगाते थे । जाड़ोमे गर्म कपड़ेका कलीदार पाजामा और मिर्जई ।

वस्त्र-विन्यास और भोजन

बाहर जाते तो अक्सर चूड़ीदार या तंग मोहड़ीका पाजामा, कुर्त्ता, सदरी या चपकन और ऊपर क़ीमती लबादा होता था । पाँवमे जूती और हाथमे मूठदार, लम्बी छड़ी । ज्यादा ठण्ड होती तो एक छोटा शाल भी

कन्धे और पीठपर। सिरपर लम्बी टोपी। कभी-कभी टोपीपर मुग़लई पगड़ी या पटका। रेशमी लुंगीके शौकीन थे।* रंगोका बडा ख्याल रखते थे।

खाने-खिलानेके शौकीन, स्वादिष्ट भोजनोके प्रेमी थे। गर्मी-सर्दी हर मौसिममे उठते ही पहिले ठण्डाई पीते थे जो बादामको पीसकर मिश्रीके शर्बतमे घोली जाती थी। फिर पहर दिन चढे नाश्ता करते थे। बुढापेमे एक ही बार, दोपहरको, खाना खाते, रातको कभी न खाते। खानेमे गोश्त जरूर रहता—शायद ही कभी नागा हुआ हो। गोश्तके ताजा, बेरेशा, पकनेपर मुलायम और स्वादिष्ट रहनेकी शर्त्त, फिर मेवे भी उसमें जरूर पडे हो और जोश आधा सेरके लगभग। बकरी एवं दुम्बेका गोश्त ज्यादा पसन्द था, भेड़का अच्छा न लगता था। पक्षियोंमे मुर्ग, कबूतर और बटेर पसन्द था। गोश्त और तरकारीमे, अपना बस चलते, चनेकी दाल जरूर डलवाते थे।§

---

* जैसा कि उर्दू ए मोअल्ला पृ० ३३६ के जवाहरसिहके नाम लिखे पत्रमे रेशमी लुंगीकी तीव्र कामना प्रकट करनेसे स्पष्ट है। रेशमी लुंगी भी वह जो पेशावर और मुलतानमे बनती थी।

§ बाकर अलीखाँकी पत्नी, बुग्गा बेगम, अपने ससुराल आनेके बादकी एक घटना इस सम्बन्धमे बताती थी—"जब रुख्सतीके बाद घरमे आई तो मेरी खातिर गोश्तमे दाल न डाली गयी। जब मीरजा साहब दोपहरको खानेपर बैठे तो देखा कि सालनमे दाल नही पड़ी है। उन्होने समझा कि शायद दाल घरमे खत्म हो चुकी है। कहने लगे—भई, अगर दाल खत्म हो चुकी थी तो या खुद किसीको भेजके मँगवा ली होती या मुझसे कहा होता कि मै मँगवा देता। इसपर बेगम साहिबा बोलीं कि नही, दाल तो घरमे मौजूद है लेकिन बहू चनेकी दाल नही खाती इसलिए नही डाली गयी। पट बोल उठे—ओ हो, फिर तो बहू खुदासे बढ़ गयी। अरे चना

चनेकी दाल, बेसन कढी और फुलकियाँ बहुत खाते थे। बुढौती एवं बीमारीमे, जब मेदा खराब हो गया तो रोटी-चावल दोनो छोड़ दिये और सेर भर गोश्तकी गाढी यख़नी और कभी-कभी ३-४ तले शमामी कबाब लेते थे। फलोमे अगूर और आम बहुत पसन्द थे। आमोको तो बहुत ही ज़्यादा चाहते थे, मित्रोसे उनके लिए फरमाइश करते रहते थे। और इसके बारेमे अनेक लतीफे इनकी जिन्दगीसे सम्बद्ध है।

हुक्क़ा पीते थे—पेचवानको ज्यादा पसन्द करते थे। पान नहीं खाते थे। शराब जन्म-भर पीते रहे। पर बुढापेमे, तन्दुरुस्ती ख़राब होनेपर, नामको चन्द तोले शामको पीते। बिना पिये नीद न आती थी। सदा विलायती शराब पीते थे। ओल्ड टाम और कासटेलन ज्यादा पसन्द थी। शराबकी तेजी कम करनेको आधेसे ज्यादा गुलाबजल मिलाते थे। पात्रको कपड़ेसे लपेटते और गर्मीके दिनोमे कपडेको वर्फसे तर कर देते। खुद ही कहा है—

आसूदा बाद ख़ातिरे ग़ालिब कि ख़ूए औस्त
आमेख़्तन ब बादए साक़ी गुलाब रा।

शराबकी चुस्की लेते और साथ-साथ घीमे तले नमकीन बादाम खाते। जब दुर्बल हुए तो इन्हे खुद शराब पीनेपर अनुताप होता था पर आदत छूटती न थी। फिर भी मात्रा कम करनेके लिए एक समय,

---

तो वह चीज है कि इसपर खुद अल्ला मियाँकी भी राल टपक पड़ी थी। जब वह चनेकी दाल नही खाती तो यह खुदासे भी बड़ी हुई। अरे खुदाके आगे चना गया और फ़रियाद की कि बारी ताला, यह क्या बात है कि मुझे लोग तरह-तरहसे तंग करते हैं, भूनते है, तलते है, पीसते हैं। आखिर मेरा गुनाह क्या है? खुदाने चनेकी तरफ देखा और कहा—दूर हो, नही मै भी तुझे खा जाऊँगा।

—अहवाले ग़ालिब

एकान्तमे या दो-एक ख़ास दोस्तोकी उपस्थितिमे, पीते थे। कही ज्यादा न पी ले, इसलिए जिस सन्दूकमे वोतलें रखते थे उसकी चावी इनके वफ़ादार सेवक कल्लू दारोगाके पास रहती थी और उसे ताक़ीद कर रखा था कि रातको कभी नशे या सुरूरमे मैं ज़्यादा पीना चाहूँ और माँगूँ तो मेरा कहा न मानना और तलव करने पर भी कुंजी न देना। लोगोके पूछनेपर कि यो नाम करनेसे क्या फायदा, छोड़ ही न दे, 'जौक़' का शेर पढते थे—

छुटती नहीं है मुँह से यह काफ़िर लगी हुई।

निवास

जैसा कि जीवन-रेखामे लिखा जा चुका है, गालिवका असल वतन आगरा था पर किशोरावस्थामे ही वह दिल्ली आ गये थे। कुछ दिन तो ससुरालमे रहे; फिर अलग रहने लगे। पर ससुरालमें या अलग, जिन्दगीका ज्यादा हिस्सा दिल्लीकी 'गली क़ासिमजान'मे ही वीता। सच पूछे तो इस गलीके चप्पे-चप्पेसे उनकी जिन्दगी जुड़ी हुई है। ५०-५५ वर्ष दिल्लीमे रहे जिसका अधिकांश इसी गलीमे वीता। यह गली चाँदनी चौकसे मुड़कर बल्लीमारान के अन्दर जाने पर शम्शी दवाख़ाना और हकीम शरीफखाँकी मस्जिदके बीच पड़ती है। इसी गलीमे गालिवके चचाका व्याह क़ासिमजान (जिनके नामपर यह गली है) के भाई आरिफजानकी वेटीसे हुआ था और बादमे गालिव खुद दूल्हा वने आरिफजानकी पोती, और लोहारूके नवावकी भतीजी, उमराव वेगम को व्याहने इसी गलीमे आये। और साठ साल वाद जव वूढे शायरका जनाज़ा निकला तो इसी गलीसे गुजरा। इस गलीके कई मकानोमे वह रहे। जनाव हमीद अहमदखाँने ठीक ही लिखा है—"गलीके परले सिरेसे चलकर इस सिरे तक आइए तो गोया आपने ग़ालिवके शवावसे लेकर वफात तककी तमाम मजिले तय कर ली।"*

---

* अहवाले गालिव, पृ० ७८-७९।

वैसे समय-समयपर दिल्लीके और मुहल्लोमे भी रहे पर अधिक उम्र इसी गलीमे गुजरी। ×

सदा किरायेके मकानोंमे रहे; अपना न बनवा सके। ऐसा मकान ज्यादा पसन्द करते थे जिसमे बैठकख़ाना और अन्तःपुर अलग-अलग हों और उनके दरवाजे भी अलग हो जिससे यार-दोस्त बेझिझक आ-जा सकें। नौकर ४-४, ५-५ रखते थे। बुरेसे बुरे दिनोमे भी तीनसे कम न रहे। यात्रामे भी २-३ साथ रखते थे। इनके पुराने नौकरोमे मदारी या मदारखाँ, कल्लू और कल्यान बडे वफादार रहे। कल्लू तो अन्त तक साथ रहा। वह चौदह सालकी उम्रमे मिर्जाके पास आया था और उनके परिवारका ही हो गया था। वह पाँवकी आहटसे पहिचान लेता कि लडकियाँ है, बहुएँ है या बुढिया है।

नौकर

फ़ारसी साहित्यमे मिर्जाको बडी अभिरुचि थी। फारसी काव्यका अध्ययन बराबर किया करते थे। काव्यके अतिरिक्त उपन्यास, आख्यान और कथा-साहित्यमे ज़्यादा दिलचस्पी थी। दास्ताने अमीर हमजा और बोस्ताने खयालको बड़ी रुचिसे पढते थे। "दिनको किताब, रातको शराब यह क्रम बहुत दिनों तक चलता रहा"।*

अध्ययन

× शुरूमे इसी कासिमजानकी गलीमे, ससुरालमे, आकर रहे। फिर जामा मस्जिदके निकट मक़ान लिया। उसके बाद फाटक हबशख़ॉमे शोबान बेगकी हवेलीमे जाकर रहे। कलकत्तासे वापिस आनेपर खारी बावलीमे नवाब अब्दुर्रहमान ख़ॉ की हवेलीमे रहे। फिर गली कासिमजानमे पहुँचे।

—जिक्रे ग़ालिब पृ० २०६

*मीर 'मजरूह' को गालिब, अपने एक पत्रमे, लिखते है—'मौलाना गालिब....इन दिनों बहुत खुश है। पचास साठ जुजोकी किताब अमीर

किताबे ख़रीदते न थे। किसीसे ले लेते और पढकर लौटा देते थे। स्मरणशक्ति इतनी तीव्र थी कि जो कुछ एक बार पढ़ लेते, भूलते न थे। बीच-बीचमे अख़बार भी देखते रहते थे। पत्र-लेखन-कलामे तो उस्ताद ही थे। अन्तिम जीवन तक मित्रो एव स्नेहियोको पत्र लिखते रहे। इनके पत्र क्या है, साहित्यकी अमूल्य निधि है। उनका ऐतिहासिक मूल्य और महत्त्व भी है। उनके जीवनके विविध अङ्गोपर इन पत्रोसे वडा प्रकाश पडा है। मालिकरामने ठीक ही लिखा है—

पत्र-लेखन

"ये ख़ुतूत लिखनेवालेकी जिन्दगी और करदारका आईना है।" इनके एक-एक लफ्जमे एक जिन्दा शख़्सीयत बोल रही है। यही इनकी इन्फ़रादी ख़ुसूसियत है।"

इन पत्रोकी विशेपता उनकी शैली है। यो मालूम होता है, कोई सामने वैठा वाते कर रहा हो। वह तहरीर (लेखक) को तकरीर (वक्तृता) वनानेकी चेष्टा करते थे।* इसीलिए लम्वे विशेषण या सिर-नामे उनमे नही मिलते। झट मतलव पर आ जाते है—गोया आपसे बात कर रहे है।

हमजाकी दास्तानकी, और इसी कदर ...को एक जिल्द वोस्ताने ख़यालकी आ गयी है। सत्रह बोतले वादए नाबकी तोशकख़ानेमे मौजूद है। दिन-भर किताव देखा करते है, रातभर शराव पिया करते है—

कसे कीं मुरादश मयस्सर बुअद।
अगर जम न बाशद सिकन्दर बुअद।

—उर्दू-ए मोअल्ला, पृ० १२४

* १८२८ मे कलकत्तासे मौ० मुहम्मद अलीखाँ सदर अमीन बाँदाको लिखा था—"मै चाहता हूँ, तहरीर तकरीरसे कम न हो।"

—कुल्लियाते नस्र १६६

पत्रका जवाब जरूर देते थे। अक्सर तीसरे पहरका वक्त इसमे जाता था। गदरके दिनोमे जब सब तरफ़से कटकर घरकी चार दीवारीमे बन्द हो गये थे तब तो मित्रोंको पत्र लिखना ही समय काटनेका एक मात्र साधन रह गया था। उर्दू-ए-मोअल्ला (५९) मे 'तुफ्ता'के नाम लिखे एक पत्रसे जान पड़ता है कि गदरके दिनोमे पत्रलेखनकी उनके जीवनमे क्या महत्ता थी :—

"मै इस तनहाईमे सिर्फ खतोके भरोसे जीता हूँ। यानी जिसका खत आया मैने ज़ाना कि वह शख्स तशरीफ लाया। खुदाका एहसान है कि कोई दिन ऐसा नही होता जो अतराफ व जनानिबसे दो-चार खत नही आ रहते हों। बल्कि ऐसा भी दिन होता है कि दो-बार डाकका हरकारा खत लाता है।....मेरी दिल-लगी हो जाती है। दिन उनके पढने और जवाब लिखनेमे गुजर जाता है।"

इनके पत्रोंकी हस्तलिपि काफी अच्छी है। बहुत जरूरी खत गुम न हो जायँ इसलिए उन्हे बैरंग भेजते थे और मित्रोको भी यही लिखते कि बैरंग भेज दिया करें।

काव्य-रचना

काव्य-रचनाके लिए उन्होने कभी किसीको अपना उस्ताद नही बनाया और मीरकी भाँति, बिना किसीसे इस्लाह लिये, अपनी कल्पना एव चिन्तनके बल पर खडे हुए। अर्थ-गाभीर्यको काव्यकी आत्मा मानते थे। कहा करते कि शायरी मानी-आफरीनी है, काफिया पैमाई नही। इनकी गजले लम्बी नही। अक्सर बिना कागज-क़लमके शेर बनाते जाते और याद कर लिया करते थे। फिर बादमे लिखते एवं संशोधन करते। मौलाना हाली लिखते है :—

"फिक्रेशेरका यह तरीका था कि अक्सर रातको आलमे सरखुशीमे फिक्र किया करते थे और जब कोई शेर अजाम हो जाता था तो कमर-बन्दमे एक गिरह लगा लेते थे। इस तरह आठ-आठ, दस-दस गिरहे लगा-

कर सो रहते थे और दूसरे दिन सिर्फ याद पर सोच-सोचकर तमाम अशआर कलमबद कर लेते थे।"*

ख़ास-ख़ास मुशायरोमे भी शरीक होते थे। आवाज बुलन्द और मधुर थी। बहुत अच्छा पढते थे। बादशाह जफरने इनका कसीदा सुनकर कहा था—"मीरजा, तुम पढते खूब हो।" मौलाना हालीने इनकी शेर-ख़ानीकी प्रशसा करते हुए लिखा है '—"शेर पढनेका अन्दाज भी, ख़ासकर मुशायरोमे, हदसे ज्यादा दिलकश व मोअस्सर था।....एक मुशायरेमे मिर्ज़ाने अपना फ़ारसी कसीदा दरिया शरेस्तन और तनहा शरेस्तन, जो जनाब इमाम हुसेनकी मनकबतमे उन्होने लिखा था, पढा। सुना है कि मजलिसे मुशायरा बज्मे अजा बन गयी थी। जबतक कसीदा पढा गया लोग बराबर रोते रहे।"†

जो कुछ लिखते, मित्रोंको भेज दिया करते थे। प्रतिलिपि बहुत कम रखते थे। इसीलिए दूर-दूर तक बिखरी हुई इनकी सब रचनाएँ आजतक भी संग्रहीत न हो सकी।

विनोद एव हास्य उनके जीवनके अग थे। विनोद, व्यंग एवं हास्य-का कोई मौका वह चूकते न थे। इस विषयकी चर्चा हम स्वतंत्र रूपसे आगे करेगे। वार्तालाप-परायण थे।

मिर्ज़ाके विषयमे पहिली बात तो यह है कि वह अत्यन्त शिष्ट एव मित्रपरायण थे। जो कोई उनसे मिलने आता उससे खुले दिल मिलते थे।

शिष्टता एवं मित्रपरायणता

इसलिए जो आदमी एक बार इनसे मिलता उसे सदा इनसे मिलनेकी इच्छा बनी रहती थी। मित्रोके प्रति अत्यन्त वफादार थे—उनकी ख़ुशीमे ख़ुश, उनके दु खमे दुखी। मित्रोको देखकर बाग़-बाग हो जाते थे।

---

* यादगारे ग़ालिब : हाली, पृ० ५८-५९।

† यादगारे ग़ालिब, पृ० ५६-५७।

उनके मित्रोका दायरा बहुत बड़ा था। उसमे हर जाति, धर्म और प्रान्तके लोग थे। किसी मित्रको कष्टमे देखते तो इनका हृदय रो पड़ता था। उसका दुःख दूर करनेके लिए जो कुछ सम्भव होता करते। स्वयं न कर पाते तो दूसरोंसे सिफारिश करते। इनके पत्रोमे मित्रोके प्रति सहानुभूति एवं चिन्ताके झरने बहते हुए दिखाई देते है। उन्हे कष्टमे देख ही नही सकते थे; दिल कचोटने लगता था। देखिए, भरतपुर-नरेशकी मृत्युकी खबर सुनकर, उनसे सम्बन्धित वा उनके आश्रित स्नेहियोकी जीविका का क्रम अस्त-व्यस्त हो जानेकी चिन्ता करते हुए 'तुफ्ता'को लिखते है :—

"भाई, आज मुझको बड़ी तश्वीश[1] है और यह ख़त मै तुमको कमाल आसीमगी[2] मे लिखता हूँ। जिस दिन मेरा ख़त पहुँचे अगर वक्त डाक-का हो तो उसी वक्त जवाब लिखकर रवाना करो....वास्ते ख़ुदाके न मुख़्तसर[3] न सरसरी बल्कि मुफस्सल[4]....जो कुछ वाकअ हुआ हो और जो सूरत हो मुझको लिखो और जल्द लिखो कि मुझपर ख़्वाबो खोर[5] हराम है। कल शामको मैने सुना, आज सुबह किले नही गया....और यह ख़त लिखकर अज रहे एहतियात[6] बैरग रवाना किया। तुम भी इसका जवाब बैरंग रवाना करना....ज्यादा क्या लिखूँ कि परीशान हूँ।"

मीर मेह्दी मजरूहको लिखते है—

"ऐ मीर मेह्दी, तू दरमांदा व आजिज[7] पानीपतमे पडा रहे, मीर साहब वहाँ पडे हुए दिल्ली देखनेको तरसा करे, सरफराज हुसेन नौकरी ढूँढता फिरे और मै इन गमहाय जाँ गुदाज[8] की ताब लाऊँ? मकदूर[9] होता तो दिखा देता कि मैने क्या किया?"*

---

१. चिन्ता, घबराहट, २. अत्यन्त व्याकुलता, ३. संक्षिप्त, ४ ब्यौरे-वार, ५. नीद और भोजन, ६. सावधानीके लिए, ७ निराश्रित और बेबस, ८ प्राणबेधक दुःखों, ९. सामर्थ्य।

*उर्दूए-मोअल्ला, ११८।

यूसुफ मिर्जाको लिखते है—

"यहाँ अगनिया[1] और अमरा[2] के अजवाज[3] व औलाद भीक माँगते फिरे और मै देखूँ। वस, मुसीवतकी ताव लानेको जिगर चाहिए।"§

हृदयमे रस था, इसलिए प्रेम छलका पडता था। मित्रो क्या शागिर्दो-से भी वहुत प्रेम करते थे। उनको इस्लाह ही नही देते थे, सशोधनोका कारण भी लिखते थे। बच्चोपर जान देते थे।

आमदनी कम थी। खुद कष्टमे रहते थे फिर भी पीडितोके प्रति बडे उदार थे। कोई भिखारी इनके दरवाजेसे खाली हाथ नही लौटता था।

उदारता

उनके मकानके आगे अन्धे लँगडे-लूले अक्सर पडे रहते थे। उनकी मदद करते रहते थे। एकवार खिलअत मिली। चपरासी इनाम लेने आये। घरमे पैसे नही थे। चुपकेसे गये, खिलअत बेच आये और चपरासियोको अच्छा इनाम दिया।

इस उदार दृष्टिके बावजूद आत्माभिमानी थे—'मीर' जैसे तो नही, जिन्होने दुनियाकी हर नामत अपने सम्मानके लिए ठुकराई, फिर भी

आत्माभिमान

अपनी इज्जत-आबरूका बडा ख्याल रखते थे। शहरके अनेक संभ्रान्त लोगोसे परिचय था पर जो इनके यहाँ न आता, उसके यहाँ न जाते थे। कैसी गरीबी हो बाजारमे विना पालकी या हवादारके नही निकलते थे। कलकत्ता जाते हुए जब लखनऊ ठहरे थे तो आगामीर्से इसीलिए नही मिले कि उसने उठकर इनका स्वागत करनेकी शर्त मजूर न की। इसी प्रकार कष्टके दिनोमे भी देहली कालेजकी अध्यापकी इसलिए ठुकरा दी कि जब टामसन साहबसे मिलने गये तो इनकी अगवानी करने कोई नही आया।

---

१ धनाढय, २. अमीर, ३ स्त्रियाँ।'

§ उर्दूए मोअल्ला २५५।

इन घटनाओंकी विस्तृत चर्चा हम उनकी जीवनीमे कर चुके है। एक शेरमे कहा है कि उपासनामे भी मै इतना स्वाधीन और आत्माभिमानी रहा हूँ कि यदि काबेका दरवाजा मेरे आगमनपर खुला न मिला तो उलटे पाँव लौट आये—

बन्दगीमें भी वह आज़ाद व ख़ुदबीं हैं कि हम,
उलटे फिर आये दरेकाबा अगर वा न हुआ।

वैसे वह शीया मुसलमान थे पर मजहबकी भावनाओमे बहुत उदार और स्वतन्त्रचेता थे। इनकी मृत्युके बाद ही आगरासे प्रकाशित होनेवाले मासिक पत्र 'जखीरा बालगोविन्द' के मार्च १८६९ के अकमे इनकी मृत्युपर जो सम्पादकीय लेख छपा था और जो शायद इनके सम्बन्धमे लिखा सबसे पुराना और पहिला लेख है, उससे तो एक नई बात यह मालूम होती है कि यह बहुत पहिले चुपचाप 'फ्रीमैसन' हो गये थे और लोगोके बहुत पूछनेपर भी उसकी गोपनीयताकी अन्ततक रक्षा करते रहे। बहरहाल वह जो भी रहे हो, इतना तो तय है कि मजहबकी दासता उन्होने कभी स्वीकार नहीं की। इनके मित्रोमे हर जाति, धर्म और श्रेणीके लोग थे।

धार्मिक औदार्य

सच्चे एवं उत्कृष्ट काव्यके प्रेमी थे पर भरतीकी रचनाओके निन्दक भी। औरोकी तरह, परम्परा निभानेके लिए, हर शेर पर दाद देना इनके स्वभाव एव प्रज्ञाके प्रतिकूल था। बुरे शेरको बर्दाश्त न कर सकते थे। हाँ, जो शेर वाकई अच्छा होता और इनके दिलमे चुभ जाता उसकी प्रशसा खुले दिल से करते थे।

दूसरे कवियोंके प्रशंसक

उन्नीसवी शतीमे मेरठमे एक नामी शायर सैय्यद अहमद हुसन गुजरे है। फारसीमे 'फुरकानी' और उर्दूमे 'शाकी' एवं 'बाकी' तखल्लुस करते थे। इनके पिता सय्यद किफायतअली भी 'तनहा' के नामसे शायरी करते

थे। १८६२ से १८६८ तक वह दिल्ली कमिश्नरीमे मीर मुंशी रहे। उस समय 'फुरकानी' भी पिताके साथ दिल्ली रहते थे। इस वक्त गालिबसे उनका परिचय हुआ। एक वारकी वात है कि 'फुरकानी' ने गालिबको अपना यह कसीदा सुनाया—

शद वक़्त कि दर तुर्रए संबुल शिकन उफ़्तद।
बा ग़ार्रए गुलज़ाला च दर मक़्रन उफ़्तद।

जव उन्होने यह मतला सुना, भावविभोर होकर, कमजोरीमे भी कोशिश करके उठ खडे हुए; कविका माथा चूम लिया और उपस्थित लोगोसे कहा—"यह सय्यद अहमद हसन गालिब जिन्दा है, असदउल्लाखाँ गालिब मुर्दा है। सब लोगोको इनसे फायदा उठाना चाहिए, मेरे पास आनेकी जरूरत नही।" वादमे फुरकानीको बहुत मानने लगे थे।

मौलाना हालीने भी 'यादगारे गालिब' मे ऐसी कई घटनाओकी चर्चा की है। जिन्दगी भर 'जौक' से इनकी छेडछाड़ चलती रही। पर एक दिन जव यार-दोस्त वैठे थे और यह शतरंज खेलनेमे तल्लीन थे, मुंशी गुलाम अली नामके एक व्यक्तिने 'जौक' का निम्नलिखित शेर किसी दूसरे उपस्थित मित्रको सुनाया—

अब तो घबराके यह कहते है कि मर जायेंगे।
मरके भी चैन न पाया तो किधर जायेंगे।

मिर्जाके कानमे भनक पड़ गयी। फौरन शतरज छोड़ दी और ग़ुलाम-अली ख़ॉसे कहा—"भैया, तुमने क्या पढा?" उन्होने शेर सुनाया। पूछा—किसका शेर है? उत्तर मिला—जौकका। सुनकर चकित हुए। उनसे वार-वार शेर पढवाते थे और सिर धुनते थे। अपने उर्दू खतोमे इस शेरका जगह-जगह जिक्र किया है।

इसी तरह जब एक बार मोमिनका यह शेर सुना—

तुम मेरे पास होते हो गोया,
जब कोई दूसरा नहीं होता।

तो बड़ी तारीफ की और कहा—"काश, मोमिनख़ाँ मेरा सारा दीवान ले लेता और सिर्फ यह शेर मुझको दे देता।" अपने पत्रोंमें इस शेरकी बार-बार चर्चा की है।

एक बार देखा गया कि नवाब मिर्ज़ा 'दाग़'के निम्नलिखित शेरको बार-बार पढ़ते थे और झूमते थे—

रुख़े रोशन[1] के आगे शमा[2] रखकर वह यह कहते हैं,
उधर जाता है देखें या इधर परवाना[3] आता है।

अच्छा शेर यदि शागिर्दोंका होता तो भी तारीफ करनेसे न चूकते थे। वह स्वयं काव्यके अच्छे पारखी थे। शेरफहमी उनमें बहुत थी। कैसा ही मजमून हो, एक सरसरी नजरमे उसकी तह तक पहुँच जाते थे। नवाब मुस्तफाख़ाँने 'गुलशने बेख़ार'मे मिर्जाकी सुखनफहमीकी बड़ी प्रशंसा की है। उन्होंने हालीसे एक घटनाका जिक्र किया था जिससे मिर्जाकी शेरफहमीपर प्रकाश पडता है। मौलाना आजुर्दाने 'दूर नही' 'हूर नही' इस ज़मीनमें गजल लिखी थी। उसमे इत्तिफाकसे मतला बहुत अच्छा निकल आया था। मौलानाने अपनी गजल दोस्तोको सुनाकर उनसे कहा—अगर्चे बहर दूसरी है मगर इस रदीफ व क़ाफियेमे नजीरीकी भी एक गजल है जिसका मतला है—

इश्क असियानस्त अगर मस्तूर नेस्त।
कुश्तए जुर्मे ज़बाँ मग़फ़ूर नेस्त।

---

१. प्रकाशमण्डित आनन, २. मोमबत्ती (दीपक), ३. पतंग।

अगर नजीरी हिन्दी होता और हमारी गजलकी जमीनमे उर्दू गजल लिखता तो उसका मतला इस तरह होता—

इश्क़ असियाँ है अगर मख्फ़ी व मस्तूर नहीं।
कुश्तए जुर्मे जबाँ नाजी व मग़फ़ूर नहीं ॥

आओ आज मिर्ज़ा गालिबके यहाँ चले और बिना लेखकका नाम बताये अपना और नजीरीके मतलेका यही उर्दू तर्जुमा मिर्जाको सुनायें और पूछे कि कौन-सा मतला अच्छा है। चूँकि नजीरीका मतला उर्दू तर्जुमेमे बहुत पस्त हो गया था, सबको यकीन था कि मिर्जा नजीरीके मतलेको नापसन्द करेगे और मौ० आजुर्दाके मतलेको तर्जीह देगे। पर जब नजीरीके मतलेका यही उर्दू तर्जुमा पढा गया कि मिर्जा सुनकर सिर धुनने लगे और इस कदर तारीफ़ की कि 'मौलाना आजुर्दाने अपना मतला नही पढा।''* इसी प्रकार काव्यके पारखियोकी भी बडी इज्जत करते थे। मौ० हाली लिखते है—

''मुशी नबीबख्श 'हकीर' तखल्लुस, जो एक जमानेमे कोलमे सररिश्तेदार थे और जिनकी सुखनफहमी और सुखनसजीकी बडे-बडे लोगोसे तारीफ सुनी गयी है, कही वह दिल्ली आये है और मिर्जाके मकानपर ठहरे है। उनकी निस्बत हरगोपाल तुफ्ताको एक फारसी खतमे लिखते है जिसका तात्पर्य यह है—'खुदाने मेरी बेकसी और तनहाईपर रहम किया और एक ऐसे शख्सको मेरे पास भेजा जो मेरे जख्मोका मरहम और मेरे दर्दका दर्मा[1] अपने साथ लाया और जिसने मेरी अँधेरी रातको रोशन कर दिया। उसने अपनी बातोसे एक ऐसी शमा रोशन की जिसकी रोशनीमे मैने अपने कलामकी खूबी जो तीराबख्ती[2] के अँधेरेमे खुद मेरी निगाहसे मख्फी[3] थी, देखी। मै हैरान हूँ कि इस फर्दानए यगाना[4] यानी मुशी नबीबख्शको किस

---

* हाली . यादगारे गालिब, पृ० ६२।

१. इलाज, उपचार, २ दुर्भाग्य. ३. प्रच्छन्न, ४ अद्वितीय व्यक्ति।

दर्जेकी सुखनफहमी और सुखनसंजी इनाअत हुई है। हालॉ कि मै शेर कहता हूँ और शेर कहना जानता हूँ, मगर जबतक मैने इस बुजुर्गवारको नहीं देखा, यह नही समझा कि सुखनफहमी क्या चीज है और सुखनफहम किसको कहते है ? मशहूर है कि ख़ुदाने हुस्नके दो हिस्से किये, आधा यूसुफको दिया और आधा तमाम बनी नूअ इन्सॉको। कुछ ताज्जुब नही कि फ़हमे सखुन और जौकमानीके भी दो हिस्से किये गये हो और आधा मुशी नबीबख्शके और आधा तमाम दुनियाके हिस्सेमे आया हो। गो जमाना और आस्मान मेरा कैसा ही मुखालिफ हो, मै इस शख्सकी दोस्ती-की बदौलत जमानेकी दुश्मनीसे बेफिक्र हूँ और इस नामतपर दुनियासे कानअ।"

पारिवारिक जीवन

मिर्जाका पारिवारिक जीवन कभी सुखी नही रहा। यह रिन्दाना तबीयतके आदमी थे। इनको बीबी ऐसी मिली जो एक राजवशकी परम्प-राओमे पली थी—धार्मिक निष्ठा, व्रत-पूजा, नमाजरोजा रखनेवाली, परहेजगार। मिर्जा धर्मके क्षेत्रमे स्वच्छन्द, वह परम्पराओका आग्रहपूर्वक पालन करनेवाली। यहॉ तक कि खाने-पीनेके बर्तन भी दोनोके अलग थे। फिर भी बीबी इनका बड़ा ख्याल रखती थी। हॉ, दोनोमे वह हार्दिक सौख्य न था, जो जीवनके अन्धकारमे किरन बनकर फूटता है। इस सम्बन्धमे हम आगे स्वतन्त्र रूपसे लिखेगे। बहरहाल, यह एक तथ्य है कि उनका पारिवारिक जीवन न केवल सुखी नही था, वरन् एक सीमातक दु:खदायी था।

मौलिकता एवं नवीनता के प्रति आकर्षण

न केवल काव्य बल्कि जीवनमे भी मिर्जा मौलिकता एवं नावीन्यके प्रति सदा आकर्षणका अनुभव करते रहे। अपनी यात्राके सिलसिलेमे बनारस और कलकत्ता दोनोपर वह रीझ गये थे। वह हर पुरानी बातको केवल उसके पुरानो होनेके कारण माननेसे इनकार करते थे और कहा करते थे कि क्या पुरानोमे गधे नही होते थे। अंग्रेजी सभ्यता एवं

शासनके प्रति उनमे एक रुझान थी, क्योकि उसमे सुव्यवस्था थी और अनिश्चितताओंसे भरे अध्यायका उससे अन्त हो जाता था। जब सर सैयद अहमद खाँने बड़े परिश्रम एवं लगनसे 'आईने-अकबरी' का सम्पादन किया तब मिर्जाने यही कहा था कि उनसे अच्छे कानूनोके मौजूद रहते इस कार्य-मे माथा-पच्ची करना फिजूल है। यह चीज उनके जीवन एव काव्यमे सर्वत्र दिखाई देती है—नवीनता एव व्यवस्थाके प्रति आकर्षण। इसे वह जीवनका चिह्न समझते थे। इस धारणापर ही उनके समस्त जीवन एवं काव्यका उठान है।

ग़ालिब : दाम्पत्य जीवन

यह बात पहिले लिखी जा चुकी है कि गालिबका दाम्पत्य जीवन कभी सुखी नही रहा। वह दु:खकी एक लम्बी कहानी है जिसमे नायक और नायिका दोनो हाहाकारसे भरे, चिरपिपासित, वेदनाओका भार ढोते हुए जिन्दगीके दिन पूरा कर रहे हैं। निश्चय ही इस तथ्यने गालिबके जीवन और उनके दृष्टिकोणपर गहरा प्रभाव डाला। दो शिष्ट, सभ्य जीवन एकत्र हुए पर एकत्र होकर भी एकत्र न हो सके। मानो एकत्र हुए हो सिर्फ टकरानेके लिए। युगोका साहचर्य जहाँ स्वप्नोकी एक मोह-निशाकी सृष्टि न कर सका, लम्बा दाम्पत्य जहाँ एक दूसरेके लिए करुणाकी स्रोतस्विनी दिलोकी मरुभूमिमे न फुटी, जहाँ दिल एक दूसरेके लिए कभी न तड़पे, कभी न रोये, कभी जहाँ अपनी भूलोपर अनुतापके अश्रुविन्दु न झरे, कभी जहाॅ मौन आलिगनका बाहुपाश नही बँधा जिसमे सब कुत्सा और वितण्डा-का अन्त हो जाता है, कभी जहाॅ हृदयसे हृदय नही बोले—अपने सामने बैठकर, जबान और तर्ककी भाषामे नही, आत्मार्पणकी भाषामे, क्षणभर अपना सब कुछ भूल जानेकी भाषामे, 'मै' और 'तू' नही 'हम' की भाषामे ऐसा लम्बा दाम्पत्य जीवन था गालिबका—नारकोय यन्त्रणाओकी लम्बी श्रृंखलामे बॅधा हुआ जहाॅ दोनोको बन्धनकी अनुभूति तो थी पर बन्धनको वह बाहुपाश बनानेकी चेष्टा नहीं थी जो दो प्राणोको एक कर देता है और जहाॅ जिन्दगी अपनी नही दूसरोकी हो जाती है; जहाॅ इन्सान अपने लिए उतना नही जीता जितना दूसरोके लिए जीता है।

टकरानेके लिए मिलन

बहरहाल यह एक सत्य है कि गालिबका दाम्पत्य जीवन दु:खपूर्ण था।

अनायास सवाल उठता है कि क्यो ऐसा हुआ ? उर्दूका एक बहुत बड़ा शायर, भारतमे फारसीयतका नेता, भावनाओंके वेगमे दृढ रहनेवाला, और अपने युगकी चिन्तनशीलता एव बौद्धिकताका प्रतिनिधि गालिब एक औरतकी जिन्दगीको क्यो ऐसी न बना सका कि उनके शायराना एहसास उसके दिलको भी छूते, उसकी जिन्दगीमे भी कभी वहार आती,—वहार न सही, उसके एकाध झोके ही सही।

१७९९ मे दिल्लीके एक शरीफ प्रतिष्ठित और प्रभावशाली घरानेमे एक लडकी पैदा हुई। उसके पिता नवाव इलाहीवख़्शका जीवन वैभव एव सुखकी प्रतिमूर्त्ति था—राजकुमारोके सुख-भोगसे पूर्ण। किसी चीजकी कमी नही। युवाकालमे इलाहीवख़्शका जीवन इस तरहका था कि वह 'शहजादए गुलफाम'[1] के

उमरावका वचपन

नामसे प्रसिद्ध थे। इससे कल्पना की जा सकती है कि उस लडकी, उमराव वेगमका वचपन किस प्रकार वीता होगा, उसका पालन-पोषण किस प्रकार हुआ होगा और किन सुखो और दुलारोमे पली होगी। वह जमाना ऐसा था कि शरीफोमे वेटियाँ कम उम्रमे व्याह दी जाती थी। उनके अपने निर्वाचनका तो सवाल ही नही था। उमरावकी शादी सिर्फ ग्यारह सालकी आयुमे, ८ अगस्त १८१० ई० को आगराके एक रईसजादा असदउल्लाखाँसे कर दी गयी।

जिस रईसजादे असदउल्लासे उमरावकी शादी हुई उसकी उम्र भी कच्ची—सिर्फ तेरह सालकी थी। यद्यपि उसे वह सुख नसीब न हुआ था जो उमरावको वचपनमे प्राप्त था, पर उसका वचपन भी बड़े प्यार-दुलारमे वीता। वाप तो अक्सर वाहर रहते थे और यह छोटे ही थे कि मर गये परन्तु चचाने, जो एक उच्चाधिकारी थे, इन्हे अपनी ही सन्तान मानकर पाला। वह भी कुछ समय वाद दुनियासे चले गये। ननिहाल

---

१. कुसुमकोमल राजकुमार।

वैभवपूर्ण था, किसी प्रकारका अभाव न था। वहाँ रहे। बडे आराम और आसाइशकी जिन्दगी थी। इस तरह हम देखते है कि उमराव और असदउल्ला, पति और पत्नी, दोनोंका बचपन आराम और आसाइशमे बीता।

पर एक अन्तर था। शरीफ़ोकी लडकियाँ तो अन्त पुरकी सीमामे खिलती थी। उन्हे बातचीतका सलीका, उठने बैठनेका ढंग और घर-गृहस्थीकी बातें सिखाई जाती थी। उमरावके माँ-बाप थे। उनकी छायामे वह पली, बढी।

एक अन्तर

किन्तु असदउल्लाके ऊपर कोई देख-रेख करनेवाला, उनके जीवनको दिशा और मोड़ देनेवाला न था। बाप तो दूर ही दूर रहे, चचा भी जल्दी ही संसारसे प्रयाण कर गये। नानी और माँका दुलार मिला। पर बाहर कोई बडा-बूढा देख-रेख करनेवाला न होनेसे कच्ची उम्रमे ही मौज-मजाकी आदत पड़ गयी। यार-दोस्त जुट गये। और बचपन उस नियन्त्रण और प्रशिक्षणसे छूटकर बह चला जिससे भावी जीवन ढलता है। मुग़ल सभ्यताके उस पतन कालमे, जब वातावरण तमसाच्छन्न हो रहा था और अँधेरा गहरा होता जा रहा था, रईसज़ादोकी जिन्दगी यों भी एक बँधे ढर्रे पर चलती थी। वह, कच्चेपनमे ही ताक-झाँक, चूमाचाटी, गप-शप, सैर-सपाटेकी जिन्दगी बन जाती थी। असदउल्लाख़ाँ या ग़ालिबके जीवनके सम्बन्धमे यह बात बहुत ध्यान रखनेकी है। अनियन्त्रित, अभाव का नाम न जाननेवाले, उत्तम संस्कारोसे हीन, यारबाशीके बचपनमे उस चिर-पिपासाकी नीव पड़ी जिसने भोगवादी भावनाओंको गालिबमे सदा प्रबल रखा और कभी उन्हे अन्तःस्थ नही होने दिया।

जब लड़कीके घरवालोने पतिके रूपमे ग़ालिबको पसन्द किया तो सोचा, अच्छे खान्दानका लड़का है, देखनेमे सुन्दर, गोरा-चिट्टा, मृदु-भाषी; आगे चलकर अपने बड़ोकी तरह फ़ौजी नौकरीमे नाम कमायेगा, खाने-पीनेकी कोई तकलीफ लड़कीको न रहेगी। एक शरीफ़ घराना,

खूबसूरत शौहर, हर तरहकी आसूदगी लड़कीको मिल रही है, और क्या चाहिए। यह बात भी थी कि ग़ालिबकी चाची लडकी उमरावकी सगी फूफी थी। इसलिए ख्याल था कि लड़की जाने-पहचाने, एक तरहसे अपने ही, घरमे जा रही है। पर सब कुछ होकर भी वह आशा पूरी न हुई। असदउल्लाने जीविकोपार्जनकी ओर या कोई अच्छा पद प्राप्त करके एक औसत गृहस्थका तृप्त जीवन बितानेकी ओर कभी ध्यान न दिया। बचपनकी स्वच्छन्दता जिन्दगी भर बनी रही। विवाहित जीवनके चन्द साल किसी कदर बेफिक्रीमे बीते पर ज्यो-ज्यो समय बीतता गया, गृहस्थ जीवनसे निश्चिन्तता समाप्त होती गयी। बेकारी और शेरखानी जिन्दगीपर छाती गयी। ज्यो-ज्यो उम्रमे बढ़ते गये, आर्थिक एवं दैनिक जीवनकी मुसीबते बढती ही गयी। यहाँ तक कि २४ सालके बाद तो उमरावके जीवनसे सुखके सपने सदाके लिए विदा हो गये।

अपना सोचा कहाँ होता है ?

कुछ पत्नियाँ ऐसी होती है जो चरण पकड़कर सिरपर चढ़ जाती है, पतिकी कमजोरियोसे व्यथित होकर भी वे जानती है कि जो मिल गया है बुरा-भला उसे ही लेकर अपनी दुनिया बनानी है। वे धीरजसे काम लेती है और अपने स्नेह, सेवा और निष्ठासे धीरे-धीरे पति-हृदयपर अधिकार कर लेती है। दूसरी वे होती है जिनका अहंकार चुटीला होकर ज़िन्दगीकी सतहपर आ जाता है, आँखोमे विकृत पतिके लिए उपेक्षा, दिलमे अपनी किस्मत फूट जानेकी रह-रहकर उमड़ पड़ने-वाली अनुभूति, ज़बानमे अन्दरके दर्दकी तीक्ष्णता भर जाती है। जो बात पत्नीके लिए कही गयी है वही पतिके लिए भी है। समझदार, सहृदय पति पुरानी ज़िन्दगी और सपनोको भूलकर शान्तिके लिए ही सही, जो लक्ष्मी मिली उसे ही सहेजने-सँवारनेकी कोशिश करते है।

दिलोके बीच खाई बढ़ती गयी

दूसरे दिलफेंक और अभागे उसे लात मारकर, अपने और उसके बीच एक ऐसी दीवार खड़ी कर लेते है जो उम्र बढनेके साथ-साथ टूटनेकी जगह और दृढ होती जाती है। दुर्भाग्य कि ग़ालिब और उमराव दोनों इस दूसरी टाइपके पति-पत्नी निकले। दोनोमे गहरी अहंवृत्ति थी। कोई किसीके आगे झुकनेको तैयार नही। उमराव जरा झुककर गालिब पर गालिब हो सकती थी पर उन्हे एक नवाबकी लडकी होनेकी चेतना थी और उनका अहकार उन्हे ऐसा करनेकी इजाजत न दे सकता था। गालिब-की सगी बहिनके पोते नवाब सरूरुल्मुल्कने लिखा है—

"बचपनमे जब मै अपनी वाल्दा मरहूमा[1] के साथ उनके हाँ जाया करता था तो दादी (बेगम गालिब) मुझको एक दुअन्नी दिया करती थी। अजीब बात यह है कि इन दोनो मियाँ बीवीमे हमेशा अनबन रही। बीबियाँ इस ख़ान्दानकी निहायत मोहज्जब व शाइस्ता[2] मगर कमाल दर्जा मगरूर व मुतकव्वर[3] थी।...."

उमरावका अहकार एक ओर, गालिबका दूसरी ओर। मिलनेकी जगह दोनो टकराते गये, टकराते गये और कटते गये, कटते गये और टकराते गये।

दूसरी औरतका आकर्षण

जब घरमे दिलकी छाया न प्राप्त न हो, जब पत्नी जीवनके आशी-र्वादकी जगह जीवनका बोझ बन जाये, उससे प्रेम और मृदुलताके आश्वा-सनके स्थानपर विष-बुझी वाणीके वाण झरने लगे पुरुष घरसे बाहर भागता है। गालिब पर तो बचपनसे ही स्वच्छन्दताके संस्कार प्रधान थे, अब जो दोनोके दिल फट गये तो वह बाजारू औरतोकी ओर झुके। इसी सिलसिलेमे एक गायिका (डोमनी) पर बेतरह आसक्त हो गये। वह भी इनको प्यार करने लगी। इससे उमरावके दिलपर क्या

---

१. स्वर्गीया माँ, २. सभ्य और शिष्ट, ३. अहंकारी।

बीती होगी, इसकी कल्पना की जा सकती है। उसके जीवनकी धारा कटकर बिलकुल अलग हो गयी। कई सालो तक गालिब और उनकी इस प्रियतमाका प्रेम-व्यापार चलता रहा। फिर जान पडता है उसकी मृत्यु हो गयी। उस वक्त यह २०-२२ के पट्ठे थे। उन्होने उसकी मृत्युपर जो शोकपूर्ण रचना की है उससे इनकी गहरी लगावटका पता चलता है। यह रचना प्रबल भावावेगसे पूर्ण है। देखिए इसके कुछ शेर :—

तेरे दिलमें गर न था आशोबे ग़मका[1] हौसला,
तूने फिर क्यों की थी मेरी ग़मगुसारी[2] हाय हाय।
उम्र भरका तूने पैमाने वफ़ा[3] बाँधा तो क्या ?
उम्रको भी तो नहीं है पायदारी[4] हाय हाय।
ज़हृ लगती है मुझे आबोहवाए ज़िन्दगी,
यानी तुझसे थी उसे नासाज़गारी हाय हाय।
शर्मे-रुसवाईसे जा छुपना नक़ाबे-ख़ाक[5] में,
ख़त्म है उल्फ़तकी तुझपर पर्दादारी हाय हाय[6]।
किस तरह काटे कोई शबहाय तारे बर्शगाल[7],
है नज़र ख़ूकर्दए[8] अख़्तरशुमारी[9] हाय हाय।
गोश महजूरे पयाम[10] व चश्म महरूमे जमाल[11],
एक दिल तिसपर य' नाउम्मीदवारी हाय हाय।

---

१. दुःख और मुसीबतकी हलचल, २ सहानुभूति, हमदर्दी, ३ निष्ठाकी शपथ, वफादारीकी कसम, ४. स्थिरता, ५ मिट्टीके पर्देमे, तुम बदनामीके डरसे मिट्टीके पर्देमे जा छिपी, ६. इस प्रकार प्रेमको छिपानेकी कलाकी सीमा तुममे समाप्त है, ७ वर्षाकी अँधेरी राते, ८. अभ्यस्त, ९. तारे गिनकर, १०. सन्देशसे रहित कान, ११ दर्शनसे बिछुरी आँखें।

इश्क़ने पकड़ा न था ग़ालिब अभी वहशतका[1] रंग,
रह गया था दिलमें जो कुछ ज़ौक़ख़्वारी[2] हाय हाय ।

इंसान मरे हुएको एक दिन तो भूल ही जाता है—कबतक कोई किसी को याद रखता है पर घरमे बीवीसे दिल न लगनेके कारण गालिबको इस माशूकाकी याद युगों तक रही । फिर वैसा आँधीवाला प्रेम उनकी जिन्दगीमे न आया । घटनाके चालीस-बयालीस वर्ष बाद भी अपने एक प्रिय मिर्जा हातिम अली 'मेह्र'की प्रियतमाकी मृत्यु पर जो पत्र उन्होने लिखा था, उससे मालूम होता है उस बुढौतीमे भी जवानीकी इस प्रियतमासे बिछुड़नेकी कसक उनमे थी :—

"मुगल बच्चे भी गजबके होते है । जिसपर मरते है उसको मार रखते है । मैं भी मुगल बच्चा हूँ । उम्र भर एक सितमपेशा डोमनीको मैने भी मार रखा है । खुदा इन दोनोको बख्शे और हम तुम दोनोको भी कि जख्मे मर्गे दोस्त[3] खाये हुए है, मगफरत[4] करे । चालीस बयालीस बरसका यह वाकआ है, बाआँकि[5] यह कूचा[6] छुट गया, इस फनमे बेगाना महज[7] हो गया हूँ, लेकिन अब भी कभी-कभी वह अदाएँ याद आती है । उसका मरना जिन्दगी भर न भूलूँगा ।"

मतलब यह कि मियाँ बीवीमे जो खाई थी वह इस घटनासे स्थायी हो गयी । अगर आमदनी काफी होती यानी गालिब कमाऊ होते तो दिलका दयार सूना ही सही, जीवनकी बाह्य आवश्यकताएँ तो पूरी होती रहती और जिन्दगी एक ढर्रेपर तो चल सकती । किन्तु उमरावकी किस्मतमे वह भी न था । शादीके चौदह वर्ष बाद जो कुछ घरमे था वह भी बिकने लगा । गालिबने

उमरावकी गूढ़ वेदना

१. पागलपन, २. बदनामीकी उत्कण्ठा, ३. प्रियमरणका घाव, ४. क्षमा, ५. यद्यपि, ६. गली, ७. बिलकुल अपरिचित ।

शायरी, मित्र-मण्डली और अपनी हास्यप्रियतामे अपने दु खको निमग्न कर दिया था; शराब भी गमको भुलानेमे उनकी सहायता करती थी, पर बेचारी उमराव अपने दु खको कहाँ भुलाती। इसलिए वह दूर-दूर होती गयी एकान्तप्रिय होती गयी और परम्परागत अर्थमे धर्मनिष्ठ होती गयी।

यह अभिशप्त जीवन कदाचित् कुछ शीतल हो उठता यदि दाम्पत्य सुख-स्नेहके अभावमे भी एकाध बच्चे होते। पर यहाँ भी दोनों अभागे

सन्तानके अभावकी व्यथा

रहे। बच्चे तो सात हुए, पर बरस-सवा बरससे से ज्यादा एक न जिया। माँकी जिन्दगी और तन-मनकी गर्मी बच्चोको पेटमे रख-रखकर जन्म देने और फिर कलेजेके टुकडोके एकके बाद एक मौतके भयानक पंजो द्वारा छीन लिये जानेके गममे ही खत्म हो गयी। उस माँकी निराशा भरे जीवनकी कल्पना भी अत्यन्त व्यथाजनक है जिसे पतिका प्रेम न मिला, उसके अभावमे सन्तानकी किलकारियाँ न मिली या मिली तो यो कि उनका मिलना न मिलनेसे भी अधिक कसक और करक पैदा करनेवाला, फिर दैनिक जीवनकी निश्चिन्तता भी नही, कही हार्दिक सहानुभूतिका एक शब्द नही, एक बात नही। उलटे पतिके व्यंग और भोडी हँसीकी चोट।

नही कहता कि सन्तानहीनताका गम गालिबको कुछ कम रहा होगा। कोई प्यारा बच्चा जी गया होता तो शायद उसके माध्यमसे दोनो कुछ नजदीक आते पर दुर्भाग्यकी सीमा थी कि एक न जिया। यहाँ तक कि गालिबने बड़ी सालीके बडे लडके यानी बीवीके भाजे आरिफको गोद लिया तो वह भी दाग दे गया और मिर्जा तथा उमराव दोनोको समुद्रमे डूबते हुएको जो तिनके का सहारा मिला था, वह भी छिन गया। दोनो छटपटा कर रह गये। गालिबको इस घटनाने बेतरह प्रभावित किया जैसा आरिफकी मृत्युपर लिखी उनकी शोकपूर्ण रचनासे विदित होता है:—

जाते हुए कहते है, क़यामतको मिलेंगे,
क्या खूब क़यामतका है गोया कोई दिन और।

सन्तान प्रायः पति-पत्नीके उखडते, उचटते, टूटते दिलोंको जोड देती है, पर यहाँ तो दोनोंका सारा निजी जीवन, गृह-जीवन एक ऐसा रेगिस्तान बनकर रह गया दिखाई देता है जिसमे एक हरित भूमिखण्ड नही है—चटियल, पथराई हुई धरती पथराये कलेजेमे पथराई उमंगें और पथराई आँखे लिये ताक रही है।

कभी-कभी निराशाएँ और विपत्तियाँ भी हृदयोको नजदीक लाती है। पर ऐसा प्रायः तभी होता है जब दोनोके अन्तसमे कही सहानुभूतिका सोता, भले मुँह बन्द किये, पडा हो या कमसे कम दूसरे प्रबल आकर्षण एवं प्रवृत्तियाँ न हों, पर यहाँ यह बात भी न थी। गालिबकी प्रकृति उडनछू थी—वह बन्धनोंमे बँधकर रहनेवाले न थे। उधर बीवी गम्भीर, कुछ अहंकारी, चोट खाई हुई, कम बोलनेवाली और बन्धन एवं परम्पराके प्रति आसक्त। गालिबको पत्नीमे कभी वह गहरा आकर्षण न मिला जो जीवनको सोहागका वह वरदान देता है जिसपर सौ-सौ स्वर्ग निछावर किये जा सकते है। वह शादीको सदा जंजाल और फन्दा ही समझते रहे। फ़ारसी कितेमे उनके भाव स्पष्ट हो गये है:—

दूरी पैदा करनेवाली निराशा

ब आदमज़न ब शैतां तौक़े लानत,
सुपुर्दन्द अज़ रहे तक़रीमो तज़लील।
वलेकिन दर असीरी तौक़े आदम,
गिरांतर आमद अज़ तौक़े अज़ाज़ील।

शादी उस समय हुई थी जब जिन्दगी यारबाशीमे बीतती थी—उन्मुक्त थे। दुनियाके मजे सामने थे। स्वभावतः विवाहका बन्धन रुचा नही।

'उर्दू-ए-मुअल्ला' (पृ० २९५) मे नवाब अलाउद्दीन अहमद ख़ाँको लिखे गये पत्रमे अपनी शादीके विषयपर लिखते है:—

"एक बेडी (यानी बीवी) मेरे पाँवमे डाल दी और दिल्ली शहरको जिन्दान मुकर्रर किया और मुझे इस जिन्दानमे डाल दिया।"

इससे जान पडता है कि शुरूसे ही इन्होने बीवीको बेड़ी समझ लिया था और विवाहसे कभी खुश न रहे:—

आर्ज़ूए खाना आबादीने वीरां तर किया,
क्या करूँ गर सायए दीवार सैलाबी करे।

मै कह चुका हूँ कि दोनोके स्वभाव भिन्न थे—एक गम्भीर, दूसरा ठिठोलिया। एक लजाधुर, दूसरा दिलफेक। प्रोफेसर हमीद अहमदने ठीक

खोखले हास्यके पीछे भयानक चेहरा

ही लिखा है कि "वह खोखला हास्य, जिसके पीछे गरीबी, अनिश्चितता और फाकामस्तीका भयानक चेहरा हो, उस बीवीके लिए कोई अर्थ नही रखता था जिसे अपने मान-मर्यादाको बनाये रखनेके लिए न जाने क्या-क्या कष्ट सहन करना पडता था।" बेचारी शायरीको लेकर क्या करती, उसे तो एक शौकीन एव खर्चीले पर बेकार शौहरकी घर-गृहस्थीको चलाना पडता था। गालिबको हँसी-दिल्लगी, छेड़छाड़का जो लपका था, वह अन्दर ही अन्दर दुखी उमरावके दिलमे व्यंगके विषैले तीरकी तरह चुभता था। उनकी यह आदत उमरावके लिए बोझ हो गयी। उधर बुढापेतक गालिबकी वह आदत न गयी।

इन बातोका परिणाम यह हुआ कि फटे दिल और फटते ही गये। दोनोने नियतिके आगे कन्धा डाल दिया था और कभी दुखते दिलोपर

नोक-झोंक

मरहम लगानेकी चेष्टा भी न की। बल्कि मामला इतना तूल पकड़ गया कि दोनो एक साथ रहते हुए भी अलग-अलग बैठ रहे। अपने जीवनके उत्तरकालमे ग़ालिब प्रायः सारा वक्त अपने बैठकख़ानेमे ही गुजारते और सिर्फ एकबार लाठी टेकते-टेकते अन्दर जाते थे। इसके पूर्व जीवनमे भी उनका ज्यादा समय बाहर

या घरके पुरुष-कक्षमे ही बीतता था । अन्दर जाते तब भी कुछ न कुछ व्यंग्य उनके मुँहसे निकल ही जाता था। वह आजाद तबीयत, पूर्णतः इसी दुनियाके आदमी थे जबकि पत्नी कुछ सस्कार-वश, कुछ इनके कारण दुःखी हो, अपने पिताके पद-चिह्नोपर चलनेवाली, नमाजरोजाकी पाबन्द और परहेजगार थी । इसलिए दोनोमे अक्सर नोक-झोक हो जाती थी । गालिब बीवीको 'हजरत मूसाकी बहिन' कहते थे और ज्यादा बिगडते तो यहाँतक कह जाते थे कि 'मेरा तो नाकमे दम कर दिया है ।' बहू (मिर्जा बाकरअली ख़ाँकी पत्नी जमानी बेगम उर्फ बुग्गा बेगम§) के सामने ये बातें होती थी । इससे उमराव बेगम बड़ी दुखी हो जाती थी । वह चुप रह जाती और बहूसे कहती.—"बेटी, तू तो बच्चा है । बुड्ढेकी बातोका ख़्याल न किया कर । बुड्ढा तो दीवाना हो गया है ।"

बुग्गा बेगमने कई ऐसी घटनाओका जिक्र किया है* जिनसे इस स्थितिपर विशेष प्रकाश पड़ता है । वह कहती है—

"मिर्जा पिछले पहर हवाखोरीको जाया करते थे । एक रोज अस्र[1] के बाद वह वापिस आये । मै और मेरी सास अस्रकी नमाज पढ रही थी । दोनो भी उसी तख्तपर । नुक्कड़ पर हो बैठे । जब हमने सलाम फेरा तो कहने लगे—"वाह वा ! ख़ूब ! बहूको भी अपना-सा कर लिया । कम्हारी बूँटका कीड़ा अपने घर ले जाती है तो चालीस दिनमे उसे अपना-सा करके निकाल देती है ।"

"बरसातके दिन थे । मेह बहुत बरसने लगा । पोतो (बाकर एवं हुसेन) ने खाना खाया और चले गये । नियाजअली (मुलाजिम) भी

---

§ १० मई १९४५ को ९३ सालकी उम्रमे इनकी मृत्यु हो गयी ।

*'अहवाले गालिब मे प्रो० हमीद अहमदखाँके लेख (पृ० ७८-८७ एवं २६६-२७६) ।

१. गोधूलि बेला, सूर्यास्तके पूर्व ।

चला गया। (मिर्जा साहब) बैठे बीवीसे बाते करते थे। मै यो बैठी थी, गावतकियेके कोनेसे लगी हुई। कहने लगे—"एक बीवी, दूसरा मैं। तीसरा आँखोमे ठीकरा! बहू, मै और मेरी बीवी बैठे है, तुम क्यो बैठी हो ?"* इसपर मेरी सास बोली—"ऐ तोबा! बुड्ढा तो दीवाना है। उसे तो ठट्ठेके लिए कोई चाहिए। अब बहू ही मिल गयी।"

मै पीछे किसी अध्यायमे लिख आया हूँ कि एकबार मकान बदलनेके सिलसिलेमे गालिबने उमराव बेगमको मकान देखने भेजा। देखकर आने-पर पूछा—"कहो, मकान पसन्द आया ?" बेगमने जवाब दिया—"उस घरमे तो लोग बला बताते है।" गालिबने कहा—"मगर क्या दुनियामे तुमसे भी बढकर कोई बला है ?"

एक बार अन्दर गये और किसीसे पूछा कि बेगम क्या कर रही है। उसने कहा—"नमाज पढ रही है।" कुढकर बोले—"जब आओ नमाज़! अरे इसने तो घरको फतहपुरीकी मस्जिद बना दिया।"

इनके अनेक पत्र भी ऐसे मिलते है जिनसे यह बात प्रमाणित होती है कि जिन्दगीमे कभी बीबीसे खुश नही रहे। बल्कि गृहजीवनके कटु अनुभवोने विवाहित जीवनके प्रति इनके दृष्टिकोणको ही विकृत कर दिया था। जब एक पत्नीके मरनेपर किसीको विवाहके लिए सन्नद्ध देखते तो इन्हे हैरत होती थी। दूसरी पत्नीकी मृत्युपर तीसरीसे शादी करनेके लिए तैयार उमराव सिहके बारेमे १९ दिसम्बर १८५८के पत्रमे लिखते है—

"…अल्ला-अल्ला! एक वह है कि दो बार उनकी बेड़ियाँ कट

---

* हमीदा सुलताननने, जिनका बुग्गा बेगमसे काफी नजदीकी सम्बन्ध था, इस घटनाका वर्णन यो किया है—" …ऐ है बीवी, देखो कितना प्यारा मौसिम है। कैसी जुनूँअगेज़ हवाएँ चल रही है। इस वक्त पै तुम हो और मै हूँ। यह बहू तो दोमे तीसरा, आँखोमे ठीकरा बनी बैठी है …।"

चुकी है और एक हम है कि एक ऊपर पचास बरससे जो फाँसीका फन्दा गलेमे पड़ा है, न फन्दा ही टूटता है, न दम ही निकलता है।"

एक और पत्रमें लिखा है—"ताहुल[१] मेरी मौत है। मै कभी उसकी गिरफ्तारीसे खुश नही रहा।....पटियाला जानेमे मेरी सुबकी और जिल्लत[२] थी। अगर्चे मुझको दौलते तनहाई[३] मयस्सर[४] आ जाती लेकिन इस तनहाई चन्दरोजा[५] और तजरीदे मुस्तआर[६] की क्या खुशी?...."*

अक्सर कहा करते थे—'जन न ख़्वाहद अगरश दुख़्तरे कैसर बदिहन्द।'

इनके उर्दू-फारसी काव्यमे ऐसी अनेक रचनाएँ§ है जिनसे इसकी बार-बार पुष्टि होती है।

विश्व-साहित्यमे पारिवारिक जीवन, दाम्पत्य जीवनके दु खकी छाया बड़ी लम्बी है। सुकरात, सादी, शेक्सपियर, तालसताय जैसे दर्जनो नाम

---

१ पत्नी, २. हीनता और अपमान, ३. एकान्त-धन, ४. प्राप्त, ५. क्षणिक एकान्त, ६. माँगी हुई स्त्री-विहीनता।

*नादिराते गालिव (१२९-१३०)

§फारसीकी दो रुबाइयोमे इसकी झलक देखिए—

ऐ आँकि बराह काबा रूयेदारी,
दामन कि गुजीदः आर्जूए दारी,
जीं गूनऽकि तुन्द मयख़रामी दानम,
दर ख़ाना जने सतीज़ः ख़ूएदारी।

और—

आँ मर्द कि जन गिरफ्त दाना नबूद,
अज गुस्सा फ़रागतश हमाना नबूद,
दारद जहाँ ख़ाना व जन नेस्त दर्द,
नाज़म बख़ुदा चरा तवाना न बूद।

गिनाये जा सकते है। अक्सर कवि और कलाकार उतने आत्मकेन्द्रित होते है कि एक ओर उनका व्यक्तित्व और अह् तथा दूसरी ओर संसारकी वास्तविकताओसे भागकर कल्पनाकी आनन्द-वाटिकामे विचरण करनेकी वृत्ति गार्हस्थ्य जीवनके व्यौरोके प्रति न्याय करनेमे बाधक होती है। पर गालिब तो कल्पना-प्रधान नही, बुद्धिप्रधान, चिन्ताशील कवि माना जाता है। उसने अपनी बीवीके प्रति ऐसा क्यो किया, इसीकी विवेचना हम करते रहे है। बचपनसे ही स्वच्छन्दताके संस्कार, सासारिक भोगविलासके प्रति आकर्पण, इस दुनियाके बाहरकी वस्तुओपर अनास्थाका गालिबके जीवनमे बहुत बडा भाग है पर दाम्पत्य जीवनकी असफलताने उनके जीवन और काव्यपर जो प्रभाव डाला है वह सर्वप्रधान है। इस दुःखने परम्परागत आस्थाओको टुकड़े-टुकडे कर दिया है और एक संसारीको और अधिक संसारी, एक स्वच्छन्द आत्माको और स्वच्छन्द तथा निर्बन्ध कर दिया है। यदि उनका दाम्पत्यजीवन सुखी होता, उसमे उपेक्षाके कण्टकवनकी जगह मादक आकर्षणोकी शय्या बिछी होती तो वही जिन्दगी ऐसे फूलोसे भर जाती जहाँ काँटे भी स्नेहकी अँगुलियोसे मृदुल होते है,—और जहाँ दुनियाके जहरीले दश अमृतके फौआरे उगलते है।

ग़ालिबका जीवन : हाज़िरजवाबी तथा व्यंग-विनोद वृत्ति

मिर्जा ग़ालिबकी अधिकाश जिन्दगी कठिनाइयोमे बीती—यद्यपि कुछ हदतक वे कठिनाइयाँ खुद उनकी पैदा की हुई थी। रईसजदगीकी अहंवृत्ति उन्हे अपनी शक्तिसे अधिक खर्च करने और एक उच्चतर रहन-सहन ग्रहण करनेको विवश करती थी। आमदनी कम, खर्च ज्यादा था। इस प्रकार बाहर कठिनाइयाँ, महाजनोका कर्ज और तकाजा, साहित्यमें विरोधियोसे सघर्ष, इसपर अनमेल बीवीके कारण घरमे वह स्वाद नही जो मानव-जीवनका एक प्रसाद और आशीर्वाद है। इन प्रतिकूलताओके बीच, स्वभावतः वह आत्मविश्वासके बलपर जिन्दगीका सफर पूरा करते रहे। कुछ तो उनमे जन्मजात उत्फुल्लता और विनोदवृत्ति थी, कुछ प्रतिकूल वातावरणमे रक्षा-कवच रूपमे उभर आई थी। इस प्रतिकूल एवं कठोर परिस्थितिके कारण ही उनके विनोदमे तीव्र एवं प्रच्छन्न व्यंगोका स्पर्श है। काव्य एवं जीवन दोनोमे तीक्ष्ण व्यंग—'सरकाज़्म'—का स्वर हमे मिलता है। मिर्जाका सारा जीवन ही ऐसे लतीफोसे भरा हुआ है जिनमे उनके मजाक और नश्तर-सी चुभनेवाली उनकी व्यंग-वृत्तिके दर्शन होते है। अन्दरसे दुखी पर ऊपरसे चुहल और खुशीसे भरे हुए गालिबके जीवनका यह एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। यहाँ चन्द घटनाएँ लिखी जाती है जिनसे उनकी हाजिरजवाबी—'विट'-विनोदवृत्ति तथा प्रच्छन्न-व्यंग-कलापर प्रकाश पड़ता है।

लखनऊकी एक गोष्ठीमे, जिसमे संयोगवश मिर्जा मौजूद थे, लखनऊ एवं दिल्लीकी जवानपर बात चल पडी। एक सज्जनने मिर्जासे कहा कि जिस अवसरपर दिल्लीवाले 'अपने तई' बोलते है वहाँ लखनऊके लोग 'आपको' बोलते हैं। आपकी रायमे शुद्ध 'आपको' है या 'आपके तई ?' मिर्जाने कहा—"फसीह (शुद्ध) तो वही मालूम होता है जो आप बोलते है, मगर इसमे दिक्कत यह है कि मस्लन आपकी ही निस्वत यह अर्ज करूँ कि मै तो 'आपको' कुत्तेसे भी बदतर समझता हूँ, तो सख्त मुश्किल वाकअ होगी। मै तो अपनी निस्वत कहूँगा और आप—मुमकिन है कि अपनी निस्वत समझ जायँ।" उपस्थित सब लोग इसे सुनकर फड़क उठे कि क्या जवाब दिया है और कैसा प्रच्छन्न व्यग किया है। फिर अपने-अपने स्थानपर 'आपको' और 'अपने तई' दोनाके उपयोगका, प्रकारान्तरसे, समर्थन भी है।

लखनऊ एवं दिल्लीकी जबान

× ×

शब्दोके सम्बन्धमे मिर्जाका एक और लतीफ़ा भी मशहूर है। दिल्लीमे 'रथ'को कुछ लोग स्त्रीलिग, कुछ पुल्लिग बोलते है। किसीने मिर्जासे पूछा कि "हजरत रथ मोअन्नस[1] है या मुजक्कर[2] ?" वह बोले—"भैया! जब रथमे औरते बैठी हो तो मोअन्नस कहो, जब मर्द बैठे हो तो मुजक्कर समझो।"

पुल्लिग या स्त्रीलिंग ?

× ×

गालिबके जमानेमे हजरत मुहम्मद नसीरुद्दीन उर्फ मियाँ काले साहब अपनी विद्वत्ता एवं उच्चाचरणके लिए प्रसिद्ध थे। वह बहादुर शाहके शेख़

१ स्त्रीलिंग, २ पुल्लिग।

एवं मौलाना फ़ख़ुद्दीन कदससिराके पोते थे। इन्हीके कारण किलेसे मिर्जाका सम्बन्ध स्थापित हुआ था। मिर्जासे बडी मुहब्बत रखते थे। जीवन-रेखा अध्यायमे हम बता चुके है कि किस प्रकार मिर्जा जुएके अभियोगमे पकड़ लिये गये थे। जब मिर्जा जेलसे छूटे तो काले साहब उन्हे अपने घर ले गये और अरसे तक वहाँ रखा। उनके आराम-आसाइशकी सब सुविधाएँ कर दी। एक रोज मियाँ काले साहबके पास बैठे थे कि किसीने आकर क़ैदसे छूटनेकी मुबारकबाद दी। मिर्जा कब चूकनेवाले थे, झट बोल उठे—"कौन भड़ुआ क़ैदसे छूटा है? पहिले गोरेकी कैदमे था, अब कालेकी कैदमे हूँ।"

गोरेकी क़ैद बनाम कालेकी क़ैद

× ×

हाजिरजवाबी और विनोद वृत्तिके कारण ही अनेक बार कठिनाइयो एवं विपत्तियोसे छूट जाते थे। यहाँ एक घटना दी जाती है।

गदरके दिनोंकी बात है। उन दिनो अंग्रेज सभी मुसलमानोको शुबहेकी निगाहसे देखते थे। दिल्ली मुसलमानोसे खाली हो गयी थी। पर गालिब और कुछ दूसरे लोग चुपचाप अपने घरोमे पड़े रहे। एक दिन कुछ गोरे इन्हे भी पकड़कर कर्नल ब्राउनके पास ले गये। उस वक़्त 'कुलाह' (ऊँची टोपी) इनके सिरपर थी। अजीब वेशभूषा थी। कर्नलने मिर्जाकी यह धज देखी तो पूछा कि "वेल टुम मुसलमान?"

"आधा मुसलमान हूँ"

मिर्जाने कहा—"आधा।"

कर्नलने पूछा—"इसका क्या मटलब है?"

मिर्जा बोले—"शराब पीता हूँ, सुअर नही खाता।"

कर्नल सुनकर हँसने लगा और इन्हे घर लौटनेकी इजाजत दे दी।

× ×

गदरके बाद जब पेन्शन बन्द हो गयी थी और दरबारमे जानेका दरवाजा भी बन्द था, लेफ्टिनेण्ट गवर्नर पंजाबके मीर मुंशी पं० मोतीलाल एक बार

बाग़ी कैसे गिना गया ?

इनसे मिलने आये। मिर्जाने उनसे कहा—"तमाम उम्रमे एक दिन शराब न पी हो तो काफिर, और एक दफा नमाज पढी हो तो गुनहगार[1]। फिर मै नही जानता कि सरकारने किस तरह मुझे बागी मुसलमानोमे शुमार[2] किया ?"

× × ×

जब रामपुरके नवाब यूसुफअलीख़ाँका देहान्त हो गया और नये नवाब कलबअलीखाँ गद्दीपर बैठे तो मातमपुर्सी और नये नवाबके प्रति

ख़ुदा या आप ?

सम्मान-प्रदर्शनके लिए मिर्जा रामपुर गये थे। चद दिनो बाद नवाब कलबअली लेफ्टिनेण्ट गवर्नरसे मिलने बरेली जा रहे थे। रवानगीके वक्त, परम्परानुसार, मिर्जासे कहा—"ख़ुदाके सुपुर्द।" मिर्जा झट बोल उठे—"हजरत! ख़ुदा ने तो मुझे आपके सुपुर्द किया है। आप फिर उलटा मुझको ख़ुदाके सुपुर्द करते है।" सुनकर लोग हँस पड़े।

× × ×

जब मिर्जाके खिलाफ तूफान उठ खडा हुआ था तब बहुतसे विरोधी अश्लील बाते एवं गालियाँ लिखकर खतोमे भेजते थे। इस तरहके खत

गाली देनेकी भी कला होती है

अक्सर गुमनाम होते थे। इसी ज़मानेकी बात है। मौलाना हाली मिलने उनके यहाँ गये थे। वह लिखते है :—"....मिर्जा साहब खाना खा रहे थे। चिट्ठीरसाँने एक लिफाफा लाकर दिया। लिफ़ाफेकी बेरब्ती[3] और कातिब[4] के नामकी अजनबीयतसे उनको यकीन हो गया कि यह किसी मुख़ालिफ[5] का वैसा ही गुमनाम ख़त है जैसे पहिले आ चुके है।

---

१ अपराधी, २. गणना, ३ अस्तव्यस्तता, ४. लेखक, ५. विरोधी।

लिफाफा मुझको दिया कि इसको खोलकर पढो। मै खुद देखता हूँ तो···· फिलहकीकत[1] सारा खत फ़हस व दुश्नाम[2] से भरा हुआ था। पूछा, किसका ख़त है? और क्या लिखा है?' मुझे उसके इजहार[3] मे ता'मुल[4] हुआ। फ़ौरन मेरे हाथसे लिफाफा छीनकर···अव्वलसे आखिर तक पढा। इसमे एक जगह माँकी गाली भी लिखी थी। मुसकराकर कहने लगे कि 'इस उल्लूको गाली देनी भी नही आती। बुड्ढे या अधेड़ आदमी को बेटीकी गाली देते है ताकि उसको गैरत[5] आये। जवानको जोरूकी गाली देते है क्योकि उसको जोरूसे ज्यादा ताल्लुक होता है। बच्चेको माँकी गाली देते है कि वह माँके बराबर किसीसे मानूस[6] नही होता। यह········जो बहत्तर बरसके बुड्ढेको माँकी गाली देता है, इससे ज्यादा कौन बेवकूफ होगा?''

× ×

तुम सौदाई हो!

एक गोष्ठीमे मिर्जा मीरतक़ीकी तारीफ कर रहे थे। शेख इब्राहीम 'जौक' भी मौजूद थे। जौक और मिर्जामे अक्सर छेड़-छाड़ चलती रहती थी। जौक कुछ 'ठस' करीनेके आदमी थे। गालिब जो कहते उसे काटनेकी ही नीयत उनकी रहती थी। गालिब द्वारा मीरकी तारीफ सुनकर उन्होने 'सौदा' को मीरसे श्रेष्ठ बताया। मिर्जाने झट चोट की—''मै तो तुमको मीरी समझता था मगर अब मालूम हुआ कि आप सौदाई है।!''*

× ×

---

१. वास्तवमे, २. गाली-गलौज, ३. कथन, अभिव्यक्ति, ४ संकोच, ५. शर्म, ६ हिला हुआ, प्रेमी।

* यहाँ मीरी और सौदाई दोनोमे श्लेष है। मीरीका एक अर्थ है मीरका समर्थक, दूसरा है नेता, आगे आनेवाला। इसी प्रकार 'सौदाई'का एक अर्थ है 'सौदा' का अनुयायी; दूसरा अर्थ है—पागल।

मिर्ज़ाके बैठकखानेके पास ही एक छोटी-सी अँधेरी कोठरी थी, जिसका दरवाजा इतना छोटा था कि उसमेंसे झुककर जाना पड़ता था।

शैतानकी कोठरी

उसमें सदा फ़र्श बिछा रहता और गर्मी एवं लूके मौसिममें मिर्ज़ा दिनके दस बजेसे शाम चार बजे तक वहाँ रहते थे। एक दिन जब गर्मीके दिन थे और रमज़ानका महीना चल रहा था, मौ० आज़ुर्दा ठीक दोपहरके वक्त मिर्ज़ासे मिलने आ गये। उस वक्त मिर्ज़ा इसी कोठरीमें थे और किसी दोस्तके साथ चौसर या शतरंज खेल रहे थे। मौलाना वहीं पहुँच गये और रमज़ानके महीनेमें उन लोगोंको चौसर खेलता हुआ देखकर कहने लगे—"हमने हदीस[1] में पढ़ा था कि रमज़ानके महीनेमें शैतान मुकय्यद[2] रहता है मगर आज इस हदीसकी सेहत[3] में तरद्दुद[4] पैदा हो गया।"

मिर्ज़ाने कहा—"क़िबला हदीस बिलकुल सही है। मगर आपको मालूम रहे कि वह जगह जहाँ शैतान मुकय्यद रहता है, यही कोठरी तो है!"

× ×

पहिले लिखा ही जा चुका है कि आम इन्हें निहायत पसन्द थे। आमोंके सम्बन्धमें इनके कई लतीफे मशहूर हैं। एक रोजकी बात है कि

आमोंपर नाम

बादशाह बहादुरशाह, आमोंके मौसिममें, महताब बागमें टहल रहे थे। उस वक्त अन्य मुसाहिबोंके अलावा मिर्ज़ा भी मौजूद थे। आमके पेड़ रंग-बिरंगके खूबसूरत आमोंसे लद रहे थे। यहाँके आम बादशाह, राजकुमारों और बेगमोंके सिवा किसीको न मिल सकते थे। मिर्ज़ा बार-बार आमोंकी तरफ टकटकी लगाते। जब कई बार बादशाहने उन्हें ऐसा करते देखा तो पूछा—"मिर्ज़ा,

---

१. पैगम्बर मुहम्मद द्वारा फरमाई बातोंका सकलन, २ बन्दी, ३ शुद्धता, ४ शंका, भ्रम।

इतने ध्यानसे क्या देखते हो ?" मिर्जाने हाथ बाँधकर कहा—"पीरो मुर्शिद, यह जो किसी बुजुर्गने कहा है—

बरसरे दाना बनविश्ता अयाँ,
कि ईं फ़लाँ इब्न फलाँ इब्न फलाँ ।

वही देख रहा हूँ कि किसी दानेपर मेरा और मेरे बाप-दादाका नाम भी लिखा है या नही ?"

बादशाह मुसकराये और उसी रोज एक बहँगी चुने आमोंकी मिर्जाको भेजवा दी ।

× ×

बेशक गधा नहीं खाता !

मिर्जाके एक दोस्त थे हकीम रजीउद्दीन ख़ाँ । उन्हे आम अच्छे नही लगते थे । एक दिनकी बात है कि वह मिर्जाके साथ उनके मकानपर बरामदेमे बैठे थे । एक गधेवाला अपने गधे लिये हुए गलीसे गुजरा । गलीमे आमके छिलके पड़े थे । गधेने सूँघकर छोड़ दिया । हकीम साहबने कहा—"देखिए, आम ऐसी चीज है जिसे गधा भी नही खाता ।"

मिर्जाने कहा—"बेशक, गधा नही खाता ।"

× ×

पीड़ामें भी विनोद

बीमारीके दिनोकी बात है । शामका वक्त था । मिर्जा पलंगपर लेटे दर्दसे कराह रहे थे । उस वक्त उनके प्रिय शिष्य मीर मेहदी मजरूह बैठे थे । मिर्जाको कराहता देख मजरूह पॉव दाबने लगे । मिर्जाने कहा—"भई, तू सय्यदजादा है, मुझे क्यो गुनहगार करता है ?" मजरूहने न माना और कहा कि 'आपको ऐसा ही खयाल है तो पैर दाबनेकी उज्रत दे दीजिएगा ।'

मिर्जाने कहा—"हाँ, इसका मुजायक़ा नही ।"

जब मजरूह पैर दाब चुके, उन्होने उज्रत माँगी ।

मिर्ज़ाने कहा—"भैया ! कैसी उज्रत ? तुमने मेरे पाँव दाबे, मैंने तुम्हारे पैसे दाबे । हिसाब बराबर हो गया !"

× ×

किशोरावस्थामे जो शराब उनके मुँह लगी वह अख़ीर दमतक न छूटी । यद्यपि अपनी इस दुर्बलतापर मन ही मन वह लज्जित थे पर जब कोई शराबपर आक्षेप करता तो उसे ऐसा जवाब देते कि बोलती बन्द हो जाती। शराब की निस्बत उनकी विनोद-व्यंगपूर्ण बातें प्रसिद्ध हो गयी है । एक बारकी बात है कि एक व्यक्तिने इनके सामने शराबकी बडी बुराई की और कहा कि शराब पीना महान् पाप है ।

शराबीको और क्या चाहिए ?

गालिबने बडी गम्भीरतासे पूछा—"अच्छा, कोई पिये तो उसका क्या होता है ?"

उसने कहा—"छोटी-सी बात यह है कि शराब पीनेवालेकी दुआ कबूल नही होती ।"

मिर्जा बोले—"भई, जिसे शराब मयस्सर है उसको और क्या चाहिए जिसके लिए दुआ माँगे ?"

× ×

जाडेका मौसिम था। एक दिन नवाब मुस्तफा ख़ाँ मिर्ज़ाके घर पहुँचे। मिर्ज़ाने उनके आगे शराबका गिलास भरकर रख दिया। वह उनका मुँह ताकने लगे। मिर्ज़ाने कहा—"नोश फर्माइए ।" चूँकि उन्होने शराब पीनी छोड दी थी, इसलिए बोले—"मैने तो तोबा[1] कर ली है ।"

जाड़ेमें भी ?

मिर्ज़ाने आश्चर्यसे पूछा—"है ! क्या जाडेमे भी ?"

× ×

---

१ किसी धर्म-विरुद्ध वस्तुको ग्रहण न करनेकी प्रतिज्ञा ।

एक महाशय भूपालसे दिल्ली घूमनेके लिए आये थे। वह मिर्जासे भी मिले। कट्टर आदमी थे; धार्मिक सिद्धान्तों और परम्पराओंके माननेवाले थे। जब वह पहुँचे मिर्जा सागर व मीना[1] सामने रखे बैठे थे। पी रहे थे। आगन्तुकको मालूम न था कि मिर्जा शराब पीते हैं। उन्होंने शराबका शीशा शर्बतका गिलास समझकर हाथमें उठा लिया। इसपर पास बैठे दूसरे व्यक्तिने कहा—"जनाब, यह शराब है।" हजरतने तुरन्त गिलास रख दिया और कहा—"मैंने तो शर्बतके धोखेमें उठा लिया था।"

धोखेमें नजात मिल गयी !

मिर्जाने मुसकराकर उनकी तरफ देखा और कहा—"जहे नसीब[2]! धोखेमें नजात[3] हो गयी।"

× ×

मिर्जाकी एक बहिन बीमार थी। वह उनका हाल पूछने गये। बहिन बोली—"भैया, अब तो चला-चलीका वक्त है। खैर, उसका क्या? पर कर्जका फिक्र व अफसोस है कि गर्दनपर लिये जाती हूँ।" मिर्जाने कहा—"भला, यह भी कोई फ़िक्रकी बात है? खुदाके यहाँ मुफ्ती सदरुद्दीन खाँ बैठे हैं जो डिगरी इजरा करके पकड़वा बुलायेंगे?"

वहाँ कौन पकड़ेगा ?

× ×

एक दिन मिर्जाके एक शिष्यने उनसे आकर कहा—"हजरत, आज मैं अमीर खुसरोके मकबरेपर गया था। वहाँ एक खिरनीका पेड है। मैंने खूब खिरनियाँ खाईं। खिरनियोंका खाना था कि मेरा जमीर रोशन हो गया।" (लोगोंका ऐसा विश्वास था कि वहाँकी खिरनियाँ खानेसे योग्यता बढ जाती है)। मिर्जा बोले—"अरे मियाँ! तीन कोस नाहक

मेरे पीपलके पत्ते क्यों न खा लिये

---

१. प्याला और सुराही, २. भाग्यकी बात है, ३. मुक्ति।

गये। मेरे पिछवाडेके पीपलकी पत्तियाँ खा लेते तो इससे भी ज्यादा फायदा होता।"

× ×

पूर्वजोकी छोड़ी हुई सम्पत्ति जब मिर्जाके खर्चीले और उदार स्वभावके कारण खत्म हो गयी तो रुपयेकी तंगी सदा रहने लगी। यहाँ तक कि कभी-कभी पासमे एक टका न होता। बच्चे गिडगिडाकर रह जाते और उन्हे पैसे न मिलते। एक दिन हुसेन अलीखाँ खेलता हुआ इनके पास आया और कहा—"दादा जान! मिठाई लूँगा।" इन्होने उत्तर दिया—"बेटे पैसे नही है।" वह सन्दूकची खोलकर पैसे इधर-उधर टटोलने लगा। पर वहाँ क्या था? इन्होने झट यह शेर कहा—

चीलके घोंसलेमें मांस कहाँ?

दिरमो दाम अपने पास कहाँ!
चीलके घोंसलेमें माँस कहाँ!

× ×

रमज़ानका महीना था। नवाब हुसेन मिर्जाके यहाँ बैठे थे। मिर्ज़ा तो रोजा-नमाज कुछ रखते न थे। उन्होने पान मँगवाकर खाये। वहाँ एक धर्मनिष्ठ मुसलमान मौजूद थे। उन्होने आश्चर्यसे पूछा—"किबला! आप रोजा नही रखते?"

शैतान ग़ालिब है

मिर्जाने मुसकराकर उत्तर दिया—"शैतान गालिब है।"†

× ×

---

† श्लिष्ट पद है। एक अर्थ यह कि मै शैतानके वशमे हूँ। दूसरा यह कि गालिब खुद शैतान है।

किसी दुकानदारने उधार ली गयी शराबके दाम वसूल न होनेपर मुकदमा चला दिया। मुकदमेकी सुनवाई मुफ्ती सदरउद्दीनकी अदालतमे हुई। आरोप सुनाया गया। इनको उज्रदारीमे क्या कहना था, शराब तो उधार मँगवाई ही थी और दाम भी चुकते न कर पाये थे। इसलिए कहते क्या? आरोप सुनकर सिर्फ यह शेर पढ दिया—

क़र्ज़की शराब

क़र्ज़की पीते थे मय लेकिन समझते थे कि हाँ,
रंग लायेगी हमारी फ़ाक़ामस्ती एक दिन

मुफ्ती साहबने वादीको अपने पाससे रुपये दे दिये और मिर्जाको छोड दिया।

× ×

यह बात पहिले लिखी जा चुकी है कि इनका पारिवारिक जीवन सुखी न था। इसलिए अन्दरकी खीझ एवं व्यग्य-वृत्ति दोनोके मिश्रणसे कभी-कभी बडी कठोर बातें लिख या कह जाते थे। इनके शिष्योंमे एक उमराव सिंह था। उसकी दूसरी पत्नी मर गयी जिसके नन्हे-नन्हे बच्चे थे। किसी परिचितने उसका हाल लिखा और यह भी कि इन नन्हे बच्चोके लिए बेचारा तीसरी शादी न करे तो क्या करे? बच्चोंकी पर्वरिश कैसे हो?" मिर्जाने उसके जवाबमे लिखा—"उमराव सिंहके हालपर उसके वास्ते रहम और अपने वास्ते रश्क आता है। अल्ला-अल्ला! एक वह है कि दो-दो बार उनकी बेड़ियाँ कट चुकी है और एक हम है कि एक ऊपर पचास बरससे जो फाँसीका फन्दा गलेमे पड़ा है तो न फन्दा ही टूटता है, न दम ही निकलता है। उसको समझाओ कि भई तेरे बच्चोको मै पाल लूँगा, तू क्यो बलामे फँसता है?"

पत्नी या फाँसीका फन्दा?

× ×

मियाँ तोते ! तुम्हें क्या फ़िक्र है ?

जाडेका मौसिम था। तोतेका पिंजरा सामने रखा था। सर्द हवा चल रही थी। तोता सर्दीके कारण परोमे मुँह छिपाये बैठा था। मिर्ज़ाने देखा और उनकी अन्दरकी जलन बाहर निकली। बोले—"मियाँ मिट्ठू ! न तुम्हारे जोरू, न बच्चे। तुम किस फिक्रमे यो सर झुकाये हुए बैठे हो?"

× ×

आपसे बढ़कर भी बला है !

इसी तरह एकबारकी बात है कि जिस मकानमे रह रहे थे उसमे कई त्रुटियाँ थी इसलिए तकलीफ थी। मकान बदलना चाहते थे। एक दिन खुद एक मकान देखकर आये। उसका बैठकखाना तो पसन्द आ गया पर जल्दीमे अन्तःपुरवाला हिस्सा न देख सके। फिर यह भी बात रही होगी कि मेरे उस हिस्सेके देखनेसे क्या फायदा ? जिसे वहाँ रहना है वह खुद देखे और पसन्द करे। इसलिए बाहरी हिस्सा देखनेके बाद जब लौटे तो बीवीसे जिक्र किया और अन्दरका हिस्सा देखनेके लिए खुद उन्हे भेजा। वह गयी और देखकर आई तो उनसे पूछा—"पसन्द है या नापसन्द ?" बीवीने कहा—"उसमे तो लोग बला बताते है।"

मिर्जा कब चूकने वाले थे। बोले—"क्या दुनियामे आपसे बढकर भी कोई बला है ?"

इस प्रकार हम देखते है कि उनके हास्य और व्यग्यमे भी गहरा विष है। यह विप उनके जीवनका एक अंग है जिसकी समीक्षा हम स्वतन्त्र रूपसे, आगे, करेगे।

ग़ालिब : जीवन एवं काव्यकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

साम्राज्योंकी श्मशान-भूमि

जब गालिब पैदा हुए, दिल्लीकी बादशाहतके अन्तिम दिन थे। औरंगजेबके बाद मुगल साम्राज्यका जो पतन आरम्भ हुआ था, वह अपनी पराकाष्ठाको पहुँच गया था। 'मीर' के जमानेमे निराशा और आत्मपलायनके कारण मुहम्मदशाह इत्यादि आकण्ठ विलासके पकमे धँस गये थे। राज-काजकी ओर कोई ध्यान न देता था। दरबार षड्यन्त्रोका एक अड्डा बन गया था। यद्यपि गालिबके जीवन-कालके अन्तिम तीनो मुगल सम्राट् मानवके रूपमे बहुत भले थे, पर शासनका शीराजा बिखर चुका था। मुगलोकी प्यारी दिल्लीका यौवन-बसन्त बीत चुका था, यह खिजाँके दिन थे। लुटी, भूलुण्ठिता, अपमानित दिल्ली बेबस थी और अपने वर्तमान पर अतीतके भयानक अट्टहासको सुनकर सिहर-सिहर उठती थी। पर इस लुटी, खोई, वंचिता भिखारिणीमे न जाने कैसा जीवन था कि बार-बार खोकर, लुटकर, पददलिता होकर भी वह उठ खडी होती थी। उसके खण्डित सौन्दर्यमे भी न जाने कैसा जादू था कि मिटकर भी नही मिटता था। जैसे इतिहासके खण्डहर आकर्षित करते है तैसे ही वह आकर्षित करता था। अगणित साम्राज्योकी श्मशानभूमि दिल्ली मृत्युके आलिगन-पाशमे कितने राजाओं, नवाबों, सरदारोको कस-कसकर छोड़ देती थी; वे निर्जीव होकर गिर पड़ते थे तब दूसरे उनका स्थान ग्रहण कर लेते थे।

गालिबके जन्मके पूर्व वह अनेक बार लुट चुकी थी। बंगाल, अवध, रुहेलखण्ड, राजस्थान, हैदराबाद, महाराष्ट्र, पंजाबके सूबे तथा राज्य बहुत कुछ स्वतन्त्र हो चुके थे। बंगाल-बिहारमे तो ईस्ट इण्डिया कम्पनीके पाँव अच्छी तरह जम चुके थे, पश्चिमका बनिया देशमे पूर्व द्वारसे आकर दूरतक फैल चुका था, मद्रास तथा बम्बईके राजमार्गपर ब्रिटिश राजपुरुषके चरणोकी धमक दूर-दूरतक सुनाई पडती थी। अब वह अपना वणिक्‌का छद्मवेश बहुत-कुछ उतार चुका था और अपने अन्त.रूप शासक वेशमे दिखाई पडने लगा था। अब वह शासन-व्यवस्थामे हस्तक्षेप करने लगा था। लोग कुढते थे, खीझते थे, पर उसकी अदा और उसके दाँवपर टूट पडते थे। सारे देशमे अराजकताकी स्थिति थी, कोई व्यापक शासकीय बन्धन तो था नही, नैतिक बन्धन भी टूट गया था। आज जो दोस्त बनता, दोस्तीकी शपथ लेता, क़ुरान माथेसे लगाकर साथ देनेका आश्वासन देता, वही मौका मिलते कलेजेमे कटार भोक देता। किसीपर किसीका विश्वास न था। स्वार्थ-लिप्सा अब नंगी होकर नाचने लगी थी। नृपतिगण शासन एवं प्रजापालनका कार्य भूल चुके थे और विलासी तथा लुटेरे हो रहे थे। लूटके कार्यमे, स्थिति और समयके अनुसार, कभी मित्रता होती, कभी शत्रुता। बेटा बाप और भाई भाईको क्षण-क्षण भरमे भूल जाता था।

राज-मार्गपर बढ़ते ब्रिटिश चरण

नैतिक विशृंखलता

बादशाह बादशाह तो थे पर सामन्तोके अत्याचारसे प्रजाकी रक्षा न कर सकते थे। बार-बार लुटकर दिल्ली श्री-हीन हो चुकी थी, उसमे कोई आर्थिक स्थिरता न थी। सैनिको एवं राजकर्मचारियोको नियमित वेतन नही मिल पाता था। इससे वे भी लूटपाट करके काम चलाते थे और बादशाहका नियन्त्रण स्वीकार न करते थे। कौन किसके साथ है, इसका कुछ पता न चलता था। रोज जोड-तोड, नये सौदे होते रहते थे।

दिल्लीकी बादशाहत अन्तिम साँस ले रही थी। अकसर बादशाह

वजीर और अमीर-उमराके हाथकी कठपुतली बनकर जीता था। वे उसे अपने मतलबके लिए रखते थे और मतलब हल न होनेपर साँठ-गाँठकर बदल देते, मरवा देते या अपदस्थ कर देते। उसे बनाये इसलिए रखते थें कि देवताके आड़मे ही पुजारी धन-सञ्चय कर सकता है। इस पतन-कालमे भी दिल्लीके बादशाहका जनतामे सम्मान अक्षय था। इसलिए उसे खत्म करते न बनता था।

गालिबके जन्मकालमे शाह आलम द्वितीय (पहिलेके शाहजादा अली गौहर) तख्तपर थे। इस अभागे बादशाहकी सारी जिन्दगी एक दु:खद

बेताजो-तख़्त शाह आलम

कहानी है। पिता आलमगीर द्वितीय (१७५४-१७५९) की मृत्यु* के बाद उसे १२ सालतक तो बिहारमे ही, तख्तसे दूर रहना पड़ा। उस समय दिल्लीकी हालत ऐसी अनिश्चित और भयानक थी कि उसे उधर बढनेका ही साहस न हुआ। बापकी मृत्युके बाद १७६१मे पानीपतकी लडाईमे मराठोंकी भयानक पराजय एवं उसके बाद अब्दाली द्वारा दिल्ली-की लूटने स्थिति बहुत बदल दी थी। इसलिए उसका बडा बेटा अली गौहर (बादका शाह आलम) दूर-दूर मारा-मारा फिरता रहा। उसका बहुत समय इलाहाबाद और बिहारमे बीता। वह तख्तसे दूर असहाय फिर रहा था, उधर अंग्रेज बढ़े आ रहे थे। उसे यह बात खलती थी। पटनामे रहते उसने मीर कासिमको बंगालका नवाव बनाया जिसे पहिले तो अंग्रेजो-ने स्वीकार किया, किन्तु बादमे मीर कासिमकी स्वतन्त्र नीतिसे चिढकर उसे बंगालसे निकाल दिया। शाह आलम, मीर कासिम एवं अवधके नवाव

---

* मृत्यु क्या कहे, वस्तुतः इसे इमादुद्दौलाने कत्ल करा दिया था। बडा नमाजी पर परले सिरेका विलासी था। इसे बुढौतीमे भी नई-नई शादियाँ करनेकी झक थी। ६० सालकी उम्रमे, जब इसे चक्कर आते थे, इसने एक नवोढ़ासे विवाह किया।

वजीर शुजाउद्दौलाने अंग्रेजोके विरुद्ध लडनेके लिए आपसमें गठबन्धन किया। १७६४मे, बक्सरकी लडाईमे, तीनोकी पराजय हुई और शाह आलम नजरबन्द कर लिया गया। अग्रेज उसे शतरंजकी मुहर बनाना चाहते थे, इसलिए उन्होने सन्धि कर ली। १६ अगस्त १७६५को, कुछ सुविधाएँ प्राप्त करनेके लिए वे बादशाहसे इलाहाबादमे मिले, जहाँ उसे

अंग्रेजोके संरक्षणमें

इन दिनो रखा गया था। बादशाह (शाह आलम) ने उन्हे बगाल, विहार और उडीसाकी दीवानी दे दी। अग्रेजोने बादशाहको ६ लाख वार्षिक देना स्वीकार किया। १७६५ से १७७१ ई० तक वह अग्रेजोके संरक्षणमे रहा, पर अपनी अपमानजनक स्थितिसे अन्दर ही अन्दर वह बडा असन्तुष्ट था। वह बराबर दिल्ली जानेके लिए अधीर था और तदर्थ प्रयत्न कर रहा था। अन्तमे उसकी इच्छा पूरी हुई। मराठो, विशेषत माधवराव सिन्धियाकी सहायतासे २५ दिसम्बर १७७१को उसने बादशाहके रूपमे दिल्लीमे प्रवेश किया।

दिल्लीमे क्या था ! कोरा सिंहासन था, लुटे महल थे, दरोदीवारसे हसरत टपकती थी। स्थिति अत्यन्त निराशाजनक थी। खजाना खाली

दिल्लीमें

था, शाही परिवारको जब-तब भूखो मरनेकी नौबत आ जाती। कोई बिना मतलब हल हुए सहायता करनेको तैयार न था। सबको लक्ष्मीकी भूख थी और उसी चीजका अभाव था। मरहठे सहायता करनेको तैयार थे परन्तु उसके बदले ४० लाख रुपये एव कुछ प्रदेश चाहते थे। सौदा पक्का न होते देख उन्होने दिल्लीको घेर लिया। विवश होकर सम्राट्ने कोरा एवं इलाहाबादके इलाके उन्हे सौप दिये।

यह सब करनेपर भी उसकी चिन्ता कम न हुई। सच पूछे तो उसे जीवनभर कठिनाइयोसे छुट्टी न मिली। दरबार षड्यन्त्रोका अड्डा बन गया था। दिल्लीपर मराठोका आतक था। उधर बादशाहके पूर्व सहायक अवधके नवाब शुजाउद्दौला भी अंग्रेजोसे मिल गये थे। सहारनपुरकी ओर

जाब्ताख़ाँके पुत्र गुलाम कादिर रुहेलाकी शक्ति तेजीसे बढ रही थी। उसने सिखोसे साठ-गाँठ करके दोआवेके कई शाही क्षेत्रोंपर कब्जा कर लिया। बादमे तो उसने शाह आलम और उसके छोटे-छोटे बच्चोंपर वह भयकर अत्याचार किये कि इतिहास लज्जित है। उसने बादशाहको सिहासनसे उतार दिया, उसकी आँखे निकाल ली, बेगमोंको अपमानित किया, महलको लूटा। बच्चे भूख-प्याससे तडप-तड़पकर मर गये पर उसने पानी न दिया। शाह आलमको, राजकुमारों सहित, जलती ईटोपर खडा किया। यह वही गुलाम कादिर था जिसने कुरान छूकर शाह आलमके प्रति वफादारीकी शपथ ली थी। पर उस युगमे लोगों विशेषतः दरबारियोमें, चरित्रका स्तर बिलकुल ही गिर गया था। निराश होकर बादशाहने महादाजी सिधियासे सहायताकी प्रार्थना की। महादाजी तुरन्त आये और गुलाम क़ादिर* तथा उसके धूर्त्त साथी मंजूरअलीको गिरफ्तार करके मरवा दिया और सम्राट्का उद्धार किया। तबसे शाह आलम बराबर महादाजीको बेटेकी तरह मानता था और उनपर भरोसा रखता था। गुलाम क़ादिर द्वारा आँखे निकाल लिये जानेके बाद जो वेदनापूर्ण फ़ारसी गजल उसने लिखी थी उसमे स्पष्ट कहा है—**"माधोजी सिंधिया फ़र्ज़न्दे जिगरबन्दे मन अस्त।"** महादाजी भी उसकी बडी इज्जत करते थे। १७९४ मे महादाजीका देहान्त हो गया। उनके बाद दौलतराव

अकल्पनीय यन्त्रणाओंका जीवन

---

*मराठा सेना पकडकर उसे मथुरा, जहाँ महादाजी उस समय ठहरे हुए थे, ले जा रही थी। रास्तेमे उसने सिपाहियोको दुर्वचन कहे तो सिपाहियोने उसकी आँखे फोड़ डाली, अंग-प्रत्यंग काट डाले और बादमे रास्तेके एक वृक्षपर टाँगकर ३ मार्च १७८९ को उसे फाँसी दे दी। सिधियाकी आज्ञासे उसका मस्तकहीन शरीर शाह आलमके पास दिल्ली भेजा गया।

सिंधियाने दिल्लीको अपने अधिकार और संरक्षणमे ले लिया। १८०३मे अग्रेजोके सेनापति लार्ड लेकने दिल्ली ले ली किन्तु शाह आलमको बादशाह बनाये रखा। १९ नवम्बर १८०६ को शाह आलमकी मृत्यु हो गयी। उस समय गालिब सिर्फ नौ सालके थे।

शाह आलम अन्तिम मुगलोमे काफी योग्य था। अरबी, फारसी, तुर्की, संस्कृत तथा हिन्दी भलीभाँति जानता था। उर्दू, फारसी, हिन्दी और पंजाबीमे कविता करता था जैसा कि रामपुरसे प्रकाशित उसके काव्य-संग्रह 'नादिराते शाही' से प्रकट होता है। जीन ला इत्यादि अग्रेजोने, जो उसके सम्पर्कमे आये, उसके गुणोकी प्रशसा की है पर उसकी योग्यता किसी काम न आई। जमानेने उसका साथ नही दिया और सारा जीवन कठिनाइयो एवं मुसीबतोमे ही बीता।

शाह आलमके बाद अकबर शाह द्वितीय गद्दीपर बैठा। इसमे न बाप-की योग्यता थी, न साहित्यिक प्रतिभा। हाँ, वह सीधा-सादा, भलामानस था। अंग्रेज जान चुके थे कि दिल्लीका बादशाह

अकबर द्वितीय

नाममात्रका बादशाह है, उसकी अपनी कोई ताकत नही है इसलिए उसकी अधीनता स्वीकार करनेको तैयार न थे; ज्यादासे-ज्यादा बराबरीका दर्जा देनेको राजी थे। अकबरशाह द्वितीय नाम-मात्रका सम्राट् रहा। उसे पेंशन मिलती रही। वस्तुत· बादशाहकी उपाधि एक सम्मानकी निशानी मात्र रह गयी थी। जबतक महादाजी सिंधिया जीवित रहे, दिल्लीपर अंग्रेजोका प्रभाव बढने न पाया। वह एक प्रबल योद्धा ही नही थे, कुशल राजनीतिज्ञ, सहृदय एव गुणी पुरुष भी थे। किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, इसे भी वह जानते-समझते थे। उनके मरते ही अंग्रेजोका प्रभाव बढने लगा। अब कोई उनका प्रतिद्वन्द्वी न रह गया था। जैसा मै कह चुका हूँ कि अकबर द्वितीय व्यक्तिगत रूपसे सीधा और भला था पर उसमे शाहआलमकी-सी शासन-क्षमता न थी। शाह आलम आप-दाओको गोदमें पला था, जीवनके उत्त्थान-पतनसे गुजरा था, कठिनाइयों

एवं मुसीबतोके बीच बढा था, उसमे सूझ-बूझ थी, ऊँच-नीच समझनेकी ताक़त थी पर अकबर द्वितीय दरबार एवं अन्त:पुरकी पतनशील प्रवृत्तियोसे पूर्ण वातावरणमे पला था। उसने राज-कार्यमे जरा भी दिलचस्पी न ली; सारा काम बेगमोपर छोड़ दिया। उसकी माँ कुदसिया बेगम बड़ी चतुर महिला थी। वह उसकी पत्नी मुमताजमहलके साथ सारा राज-कार्य देखती। अंग्रेज रेजीडेण्ट तकसे बातें करनेकी जरूरत पड़ती तो वे ही, बीचमे पर्दा डालकर बाते करती थी।

सच पूछे तो बादशाह अंग्रेजोका वजीफाखार मात्र रह गया था। जनतामे बादशाहकी इज्जत थी इसलिए ऊपरसे दिखानेके लिए वह उसे बादशाह बनाये हुए थे पर उसे महत्त्व देनेको तैयार न थे। जमाना बदल गया था। कलके बनिये आजके शासक थे। यहाँ तक कि अब घरेलू एव किलेके राजकीय मामलोमे भी अंग्रेज हस्तक्षेप करने लगे थे। युवराजके निर्वाचनके लिए भी उनकी स्वीकृति आवश्यक हो गयी थी। मुमताजमहल अपने सबसे छोटे राजकुमार मिर्जा जहाँगीरको युवराज बनाना चाहती थी पर अंग्रेज उसे युवराजके रूपमे माननेको तैयार न थे; वे ज्येष्ठ पुत्र अबुलजफरको युवराज बनाना चाहते थे। इस समस्याको लेकर बादशाह और अंग्रेजोमे संघर्ष भी हो गया। अकबरशाहके स्वाभिमानको गहरी चोट लगी। इसलिए यह शान्तिप्रिय बादशाह भी अपनी ऐसी हीन स्थिति माननेको तैयार न हुआ। उसने अंग्रेजोके मतको उपेक्षा करके मिर्जा जहाँगीरके अभिषेककी घोषणा भी कर दी। ध्यान रखना चाहिए कि यद्यपि अंग्रेजोकी शक्ति बहुत बढ गयी थी किन्तु उन्हे जनमतका भय था और चूँकि जनतामे दिल्लीका बादशाह तत्कालीन भारतीय शक्तिका प्रतीक मानकर पूजा जाता था इसलिए इच्छा न होते हुए भी अंग्रेज़ोको बादशाहका विशेष सम्मान करना पडता था। वास्तविक तथ्य जो हो पर कागजपर दिल्लीका बादशाह एक स्वतन्त्र सम्राट् था। वह

सबसे प्रिय पुत्र तथा भृत्यकी बढ़ती हुई शक्ति

अवतक गवर्नर जेनरलको 'सबसे प्रिय पुत्र तथा भृत्य' लिखा करता था। अंग्रेजोको यह बात खटकती थी। अकबरशाहने लार्ड मिण्टोको इसी प्रकार सम्बोधित करते हुए मिर्जा जहाँगीरको ही युवराज बनाने तथा उसके अभिषेकोत्सवकी सूचना दी। एक स्वतन्त्र शासकके रूपमे उसे ऐसा करने-का पूर्ण अधिकार था। पर वह अंग्रेजोका पेंशनर या वजीफाखार भी था इसलिए उसके इस अधिकारपर अंग्रेजोकी स्वीकृतिकी वन्दिश थी। लार्ड मिण्टोने बादशाहके दावेको स्वीकार नही किया, इस प्रकारके पत्रको भविष्यमे स्वीकार करनेमे असमर्थता प्रकट की और दिल्लीके रेजीडेण्टको ऐसे समारोहमे सम्मिलित होनेसे मना कर दिया। उन्होने रेजीडेण्टके जरिये यह सन्देशा भी भेज दिया कि वक्त आ गया है कि मुगल बादशाह तथा अंग्रेज सरकारके मध्य जो वास्तविक वैधानिक सम्बन्ध है उसका निर्णय हो जाना चाहिए।

बादशाहने अपने प्रतिनिधि शाह हाजीके द्वारा कलकत्ता बड़े लाटके पास खिलअत भेजी जिसे लेनेसे उसने इन्कार कर दिया। यही नहीं भविष्य-मे मुगल बादशाहके किसी प्रतिनिधिको राज-दूतके रूपमे स्वीकार करनेमे भी असमर्थता प्रकट कर दी। इससे बादशाह और बेगमोको बडा दु ख और चिन्ता हुई। आपसमे सलाह हुई; बेगमोने सोचकर एक राह निकाली। उन्होने राजा प्राणकृष्ण नामके एक आदमीको, रेजीडेण्टकी बिना जानकारीके, कलकत्ता होते हुए विलायत सम्राट्के दरबारमे मुगल राजदूतके रूपमे भेजनेकी व्यवस्था की पर राजा प्राणकृष्णके कलकत्ता पहुँचते-पहुँचते बात खुल गयी। लार्ड मिण्टोने इस आदमीकी मुहर तथा इँगलैण्डके बादशाहके नाम लिखा प्रत्ययपत्र छिनवा लिया।

अंग्रेजोंके साथ संघर्ष

कुदसिया बेगमको अंग्रेजोका यह व्यवहार बहुत चुभा। वह चुप बैठनेवाली महिला न थी। अपने पति शाह आलमके जमानेमे उन्होने बडे-बड़े उतार-चढाव देखे थे। वह बेटे मिर्जा जहाँगीरके साथ स्वय

लखनऊ गयी एव वहाँके नवाब वजीर या अवधके बादशाहसे अग्रेजोके विरुद्ध सहायता माँगी। सहायता न मिल सकी और परिणाम उलटा हुआ। लार्ड मिण्टोको इस गुप्त यात्रा और कुदसिया बेगमके प्रयत्नका पता चल गया। उन्होने बादशाहकी वृत्तिकी वृद्धि तबतकके लिए रोक दी जबतक वह इन सब कार्योंके लिए खेद न प्रकट करें।

बादशाहकी मर्यादाका सवाल

इस प्रकार बादशाहकी मर्यादा और अधिकारका प्रश्न, जो शाह आलमके समयमे ही उठ खड़ा हुआ था, अकबर द्वितीयके समयमे भी बना रहा, बल्कि और जटिल हो गया। बार-बार यही सवाल उठता था कि इस देशमे सम्राट्‌की स्थिति सर्वोपरि है या नही। इसे लेकर अकबर शाह द्वितीय और अंग्रेज गवर्नर जेनरलके बीच बराबर खीचातानी चलती रही। जब लार्ड हेस्टिग्ज दिल्ली आये और बादशाहसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की तब अकबर शाह द्वितीयने कहला भेजा कि मैं उनसे तभी मिल सकता हूँ जब कि वह एक प्रजाके रूपमे मुझसे मिले और 'नजर' पेश करे। लार्ड हेस्टिग्जने इसे स्वीकार न किया। वह 'नजर' देनेको तैयार न हुए क्योकि इससे सम्राट्‌के प्रति उनकी अधीनता प्रकट होती थी। दोनो पक्ष, इस प्रश्न पर, तने ही रहे इसलिए भेट न हो सकी। हेस्टिग्जके बाद, १८२६ ई० मे लार्ड एमहर्स्ट जब दिल्ली आये तब फिर वही पुराना सवाल उठा। उस समय सर चार्ल्स मेटकाफ दिल्लीके रेजीडेण्ट थे। उन्होने दौड़-धूप और बीच-बिचाव करके एक सूरत निकाली। तब लार्ड एमहर्स्ट दरबारमे गये और सिहासनकी दाहिनी ओर बैठे। नजरकी शर्त न रखी गयी थी। चलते समय बादशाहने उन्हे एक मोतीकी माला भेटमे दी और दरवाजे तक पहुँचाने आये। फिर जब जवाबी मुलाकातके लिए बादशाह रेजीडेंसी गये तो लार्ड एमहर्स्टने उनका जोरदार स्वागत किया और उन्हे कुछ सामग्री भेंटमे दी।

इस प्रकार बादशाहको अपने पहिलेके रुखको छोडकर नीचे आना पड़ा। दोनो पहिली बार समान स्थितिमे मिले। कोई चारा न था, कोई शक्ति न थी कि वह अपनी स्वाधीनता एवं स्वतन्त्र वृत्तिकी रक्षा कर सकता। उसने यह भी सोचा कि ऐसा करनेसे हमारी वृत्ति (अलाउन्स) की वृद्धि किये जानेके मार्गमे जो अडचनें आ गयी है वे दूर हो जायँगी। पर उसकी यह आशा भी फलवती न हुई। अंग्रेज दिल्लीकी दुर्बलता एव विवशतासे पूर्णतः परिचित हो चुके थे और उसका लाभ उठा रहे थे। इससे बादशाहको बडी निराशा, दु ख तथा खीझ हुई और १८३१ मे जब लार्ड वेंटिक आये और मुलाकातका सवाल उठा तो बादशाहने मिलनेसे इनकार कर दिया। अब बादशाहको अनुभव हुआ कि कम्पनी-सरकारसे बातचीत व्यर्थ है। वह इस नतीजेपर पहुँचा कि कम्पनी-सरकारके विरुद्ध इग्लैण्डके सम्राट्से अपील करनेके सिवा दूसरा चारा नही है। सौभाग्यसे उसे इस कार्यके लिए एक योग्य आदमी मिल गये। बंगालमे इस समय राममोहन रायका प्रभाव बढ़ रहा था। बादशाह एवं बेगमोने उनसे सम्बन्ध स्थापित किया। उन्हे 'राजा'की उपाधि प्रदान की और इंग्लैण्डके सम्राट्के दरबारमे उन्हे मुगल राजदूत बनाकर भेजनेका निश्चय हुआ। राजा राममोहन रायने इस कार्यको स्वीकार किया। सम्राट् विलियमको दिये जानेवाला मेमोरियल (स्मृति-पत्र) तैयार किया गया। सबने उसे पसन्द किया। कम्पनी-सरकारके बीच बडी सनसनी फैली। उन लोगोने हर तरहसे इसका विरोध किया, अडंगे डाले, पर इस बार बादशाह अपनी तेजस्विनी माँ एवं पत्नीके कारण जरा भी विचलित न हुआ। अडचनोके बावजूद राजा राममोहन रायने समयपर विलायतके लिए प्रस्थान किया। विलायत पहुँचकर उन्होने जिस अधिकृत ढंगसे बात की और अपना पक्ष उपस्थित किया उससे कम्पनीके डाइरेक्टर

इंग्लैण्डके सम्राट्को स्मृतिपत्र

राजा राममोहन राय द्वारा बादशाहका प्रतिनिधित्व

तो क्रुद्ध हुए परन्तु सम्राट्-सरकारपर उसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। बोर्ड आफ़ कण्ट्रोलके अध्यक्ष सर चार्ल्स ग्राण्ट तो बडे ही प्रभावित हुए। उन्होंने राजा राममोहन रायके पदको स्वीकार किया और उनका स्मृतिपत्र विलियम चतुर्थके सामने उपस्थित कर दिया। सम्राट् तथा उनके मन्त्रियों-पर भी काफ़ी असर पड़ा, क्योकि यह स्मृतिपत्र बडे ही अच्छे ढंगपर तैयार किया गया था और इसमे कम्पनी-सरकारके विरुद्ध, तथ्योके आधार-पर, अनेक आरोप थे। इसकी विशेषता यह थी कि इसमे आरोप ही नही थे, ऐसे उचित सुझाव भी थे, जिनसे दोनो पक्षोका सम्मान सुरक्षित रहता था।

नियतिका उलटा चक्र

पर नियतिका चक्र किसी और दिशामे चल रहा था। सम्राट्-सरकार-द्वारा स्मृतिपत्रपर कुछ निर्णय होनेके पूर्व, विलायतमे ही राजा राममोहन रायकी मृत्यु हो गयी। कम्पनीके डाइरेक्टरोमे अनेक प्रभावशाली लोग थे। वे सब इस स्मृति-पत्रके विरुद्ध थे और उसकी बातोको असत्य बताते थे। सम्राट् तथा उनके मन्त्रियोका रुख़ अनुकूल था पर राजा राममोहन रायकी मृत्युके बाद उस प्रश्नपर बोलने और अपना पक्ष सिद्ध करनेवाला कोई न रह गया और बातें जहाँकी तहाँ रह गयी।

हास्यजनक स्थिति

इस परिस्थितिका उलटा परिणाम हुआ। कम्पनी-सरकार और चिढ़ गयी। जब नया रेजीडेण्ट हाकिस दिल्ली आया तो उसने बादशाह एवं किलेपर होनेवाले व्ययमे और कमी कर दी। नजर देनेका वक़्त आया तो नजर देनेका विरोध किया और देना स्वीकार भी किया तो एक हाथसे नजर दी। उसने बेगमो के स्वागतमे खडा होनेसे भी इनकार किया। इससे स्पष्ट है कि बादशाहकी स्थिति हास्यजनक थी। वह एक परम्पराको बनाये रखनेकी स्थिति थी—एक ऐसी परम्पराको, जिसके संचालनकी शक्ति उसमे न रह गयी हो। यह स्थिति पूर्णतः अंग्रेजोके ऊपर निर्भर थी। अंग्रेज इस परम्पराको केवल

इसलिए जारी रखे हुए थे कि शक्तिहीन होते हुए भी, प्रजाके बीच दिल्लीश्वरकी बडी प्रतिष्ठा थी। वे बादशाहकी वास्तविक दुर्बलताको जानते थे, इसलिए उसकी बातोकी ज्यादा परवाह नही करते थे।

अन्तमे अकबर बादशाह निराश, अपनी भग्न लालसाओके साथ ही इस संसारसे चले गये।

अब स्थिति यह थी कि समस्त दिल्ली, असलमे कम्पनीके शासनमे थी। उसीके अफसर थे, अदालते थी, पुलिस थी, प्रबन्ध था। केवल किले-

क़िलेकी हालत

के अन्दर सम्राट्की हुकूमत थी। पर किलेके अन्दर भी हालत अच्छी न थी। खजाना खाली था। सैनिकोको वेतन देनेका उपाय न था। बेगमे और अन्य आश्रितजन मुश्किलसे पेट भर पाते थे। प्रजामे दो वर्ग थे; बहुतसे उच्च वर्गके लोग, जिनका ऐश्वर्य समाप्त हो रहा था, अंग्रेजोके विरुद्ध थे। दूसरे ऐसे थे, जो इस विषयमे निरन्तरकी कठिनाइयोके कारण उदासीन हो गये थे और कौन जाता है, कौन आता है, इसमे उनकी कोई खास दिलचस्पी नही रह गयी थी। उनके लिए सब बराबर था। इसी जमानेमे विलियम फ्रेजरकी हत्यासे दिल्लीमे सनसनी फैल गयी। हम इस घटनाका वर्णन गालिबकी जिन्दगीमे विस्तारके साथ कर चुके है। इसलिए यहाँ दोहराना व्यर्थ समझते है।

बहादुर शाह 'जफर' के जमानेमे भी वही परम्परा चलती रही जो उनके पिताके समयमे चलती थी। वह १८३७ ई० मे गद्दीपर बैठे, जब गालिब प्रौढ यौवनकालमे थे और उनके जीवन और काव्यका एक निश्चित ढाँचा बन चुका था। बहादुर शाह एक साधु प्रकृतिके बादशाह थे। दिलके भले, सादगीपसन्द, पवित्र जीवनके अभ्यासी और धार्मिक मामलोमे अत्यन्त उदार। इतने उदार कि उन्होने खुद कहा है:—

मये वहदतकी हमको मस्ती है,
बुतपरस्ती खुदापरस्ती है।

ऐसे उदार, शराबसे दूर रहनेवाले, खाने-पीनेके शौकीन, शेरो-शायरीमे वक्त वितानेवाले, झगडे-झंझटसे दूर रहनेवाले, शान्तिके प्रेमी। सच पूछें तो अन्तिम तीनों मुगल सम्राट् निजी चरित्र, स्वाभिमान, धार्मिक औदार्य, सज्जनता, शिष्टतामे बहुत ऊँचे थे। अंग्रेजों और युरोपीय यात्रियोने भी उनकी प्रशंसा की है। उनकी ऊपरी शान-शौकत वही थी, जो मुगल साम्राज्यके वैभवकालमे थी। उन्हे शाही परम्पराओका पालन करना पड़ता था। यद्यपि अन्तिम मुगल सम्राटोकी शासन-सीमा किलेके छोटे-से क्षेत्रमे ही सीमित थी, पर किलेमे राजवंशके सम्बन्धियों—सलातीन—की भरमार थी। इनका और इनके कुटुम्बियोका पालन सम्राट्को ही करना पडता था। दान, भेंट, उपहारकी परम्परा पुरानी ही थी। खिलअत उसी तरह दी जाती थी। परिणाम यह हुआ कि आमदनी कम और खर्च ज्यादा होनेके कारण आर्थिक संघर्ष बढता गया। ऊपरी टीम-टामके बावजूद अन्दरसे वे खोखले होते गये। १८५७के गदरके साथ अवध और दिल्ली दोनोकी आंशिक स्वतन्त्रता भी समाप्त हो गयी। अवधके अन्तिम बादशाह वाजिदअली शाह और दिल्लीके अन्तिम ताजदार बहादुर शाहकी अन्तिम घड़ियाँ वतन और साथियोसे दूर मटियाबुर्ज और रंगूनकी कोठरियोमे बीती। दोनो कवि, गुणी, रसिक, धर्मनिष्ठ और योग्य थे, पर जिस धरतीपर खडे थे, वही धसक गयी और वे भू-गर्भमे समा गये।

सम्राट्की ऊपरसे भरी पर अन्दरसे खोखली जिन्दगी

गालिबके जीवन-काल (१७९७–१८६९ ई०) मे मुगल साम्राज्यका अन्त हो गया। उनके समयमे अन्तिम तीन मुगल सम्राट् हुए—१. शाह आलम द्वितीय (१७५९–१८०६), २. अकबर द्वितीय (१८०६–१८३७)

तथा ३ बहादुरशाह (जफर) द्वितीय (१८३७–१८५७)। मतलब यह कि गालिबका बचपन शाह आलमके अन्तिम कालमे पनपा, उनकी जवानी अकबर द्वितीयके कालमे गुजरी और प्रौढावस्था तथा वार्द्धक्य बहादुर शाहके जमानेमे और उसके बाद भी चलता रहा। तीनो अच्छे थे, पर शासन-क्षमताकी दृष्टिसे अशक्त और साधनहीन थे। इनके कालमे मुगल-साम्राज्य कहानी बनकर रह गया था और अन्तमे वह कहानी भी खत्म हो गयी।

कहानी खत्म हो गयी

इस प्रकार हम देखते है कि गालिबके जन्मके समय दिल्ली सल्तनतकी जडे टूट चुकी थी, बल्कि तना भी खोखला होने लगा था। उनके जीवन-कालमे जितने भी बादशाह हुए, नामके बादशाह थे। दिल्ली शहरमे भी उनका शासन न चलता था। वहाँ भी कम्पनीका इन्तजाम था। बादशाह वस्तुत किलेमे घिरे हुए, कहनेको स्वतन्त्र पर वस्तुतः सम्मानित बन्दी मात्र थे। वे पिंजरबद्ध पंछी थे। इन बादशाहोको अपना मतलब निकालनेके लिए कभी मराठे, कभी अंग्रेज संरक्षण एव पेन्शन देते रहे। देशकी अवस्था बिलकुल अनिश्चित और निराशाजनक थी। जनता बार-बार सामन्तो एवं युद्ध-पिपासु सरदारो द्वारा लूटी जाती थी। कभी अफगान, कभी मराठे, कभी अंग्रेज, कभी सिख, कभी राजपूत सिर उठाते और कुछ न कुछ हडप लेते। रोज लूट-खसोट, झगडे, युद्ध और भाग्य-परिवर्तन होते रहते थे। कलका बादशाह आजका भिखारी था। दक्षिणके मराठोने एक सार्वभौम राज्य स्थापित करनेके लिए जो प्रयत्न किये, मध्यवर्ती अनेक सफलताओ-विफलताओके बाद, १८१८मे पेशवाईके साथ ही उसका भी अन्त हो गया। उसके बाद उस स्वप्नको पूर्ण करनेका कार्य अंग्रेजोने अपने हाथमे ले लिया।

गालिबके जीवनकालकी राजनीतिक स्थिति

लेनपूलने ठीक ही लिखा है—"जैसे किसी राजाकी मृत देहको युग-

युगान्तर तक एकान्तमे ताज पहिनाकर, शस्त्र धारण कराके पूर्ण प्रभावशाली बना-सजाकर रखा जाय, किन्तु प्रकृतिकी एक फूँकमे वह धूलिसात् हो जाय, यही हालत मुगल साम्राज्यकी थी।"

सजा हुआ मुर्दा

सच पूछे तो मुगल-साम्राज्यके ह्रासके वीज उसके वैभवकालमे ही पड़ गये थे। मुगल आरामतलवी, यारबाशी, उत्फुल्लता और जीवनके नाना भोगोंके अभिलाषी थे। वैभव एव विलासका जीवन था। मुगल सम्राटोके इर्द-गिर्द अनेक जागीरदार, सरदार वा मसवदार इकट्ठे हो गये थे। इस प्रकार एक सामन्तशाहीकी सृष्टि हुई थी। उन्होने समाजको भी सामन्ती ढाँचेमे ढालनेका प्रयत्न किया। सम्राट् स्वयं एक प्रधान जागीरदार होता था। उसके बाद सरदारों या मंसबदारोंका स्थान था जो राज्यके प्रधान पदोपर नियुक्त होते थे। जिसको जैसा मंसव मिलता, समाजमे उसका उतना ही आदर होता था। इन मुगल सरदारो एवं मसबदारोका जीवन भी प्राय: भोग-विलाससे पूर्ण होता। राज्यकी बहुत बडी आय उनको प्राप्त होती थी। उनका जीवन बाहुल्यका जीवन था। वे भी बडे-बडे महलोमे रहते, सुन्दर वस्त्राभूषण पहिनते, अनेक हरम और रखेलियाँ रखते और शराब, रागरंग एवं कामलिप्सासे पूर्ण जीवन बिताते थे। इस प्रकार एक उच्चवर्ग बन गया, जो मुगल साम्राज्यके ह्रासके दिनोमे उसका ही विनाशक बन गया।

मुग़लकालीन सामाजिक अवस्था

उच्चवर्गके बाद एक मध्यवर्ग था जिसमे छोटे सरकारी कर्मचारी, सौदागर और महाजन इत्यादि थे। इनके पास सामान्यत. धन तो होता था पर वे ऊपरसे अपना जीवन सीधा-सादा और आडम्बरहीन रखते थे, क्योंकि उन्हे सदा डर लगा रहता था कि लालची सूबे और सरदार उनका धन लूट वा छीन न लें।

निम्न वर्ग सबसे बडा था। इसमे मजदूर, किसान और दुकानदार

इत्यादि थे। इनका जीवन बडा कष्टमय था। मजदूरी कम मिलती थी, उनसे जबरन काम कराया जाता या वेगार लिया जाता था। लूट-पाट, या लड़ाई-झगडोके कारण निश्चिन्तता न थी कि वे खेती और लघु उद्योग-धन्धोकी उन्नति कर पाते। उनकी स्थिति विषम थी।

ज्यो-ज्यो मुगल साम्राज्यकी केन्द्रीय सत्ता क्षीण होती गयी, इन तीनों वर्गोंका भी अधिकाधिक पतन होता गया। औरंगजेबमे दृढता थी, चरित्र था, लगन थी, यद्यपि सूझ-बूझ न थी। वह कठिनाइयोमे भी अडिग रहा। पर उसके बाद जो आये, वह चारों ओरके विरोध एवं तूफानमे ठहरने लायक न थे।

मुग़लोका पतन

अधिकाश परीशानियोसे घबराकर सुरा-सुन्दरी द्वारा अपना ग़म गलत करनेवाले थे। सम्राटोकी देखादेखी सामन्तोमे भी विलासिता आई। जब मुगल भारतमे पहिले आये थे, एक परिश्रमी जाति थे। पर बादमे धन, विलास एव वैभव-वाहुल्यने उनका चरित्र गिरा दिया। रनिवासोकी भीड़मे षड्यन्त्रोको फूलने-फलनेके लिए अनुकूल भूमि प्राप्त हुई। सर यदुनाथ सरकारने ठीक ही लिखा है कि "जव सुकाल होता तव भी खेतीकी सारी आय मुगल सामन्तोकी जेवोमे जाती थी और यह धन उन्हे उस विला-सिताके लिए प्रोत्साहित करता जिसकी कल्पना फारस या मध्य एशियामे कोई राजा भी नही कर सकता था।"

फिर देशमे अच्छी शिक्षाका कोई प्रबन्ध न था। मुगलोने इस ओर वहुत कम ध्यान दिया। इसीलिए उनमे उच्च बौद्धिक शक्तियोका अभाव रहा और वे राजनीतिज्ञ एवं नेता उत्पन्न करने-मे विलकुल असफल रहे। मुगल सरदारों एव सामन्तोके पुत्रोके लिए अच्छी शिक्षाकी कोई ठीक व्यवस्था न होनेके कारण वे आवारागर्दी करते, हिजड़ो एव खूबसूरत लौडियोसे घिरे रहते, उनके चोचलोपर मुग्ध होते, जीवनारम्भसे ही वे शराव-कबाव और औरतके मजोमे पड जाते। विलासिताकी जोके उनका खून पी जाती। फिर अपने

रईसजादोकी हालत

सामाजिक महत्त्व एवं अहंकारके कारण वे जन-जीवनसे भी कटे-कटे रहते। अतः जीवनकी विस्तृत पाठशाला भी उनको शिक्षा देने एवं गढनेमे असमर्थ थी। दरबारोमे षड्यन्त्र चला ही करते, इसलिए जरा ही बडा होते वे दलवन्दियो एवं गुटोमे बँट जाते थे।

भ्रष्टाचार

राजासे लेकर सामान्य अधिकारीतक प्रत्येक कृपाके लिए रिश्वत लेता था। इससे शासनमे भ्रष्टाचार बहुत वढ गया था। मन्त्री एव सम्राट्के निकट रहनेवाले अधिकारी खूब धन बटोरते थे; सामन्त लूट-पाट करते थे और प्रजा दिन-दिन गरीव होती जा रही थी। शासनके प्रति उसकी निष्ठा टूट गयी थी। राज-कोष खाली होनेके कारण सेनाको महीनो तनखाह न मिलती, इसलिए सैनिक भी जनता एव व्यापारियोको लूटते रहते थे।

काव्यका समादर एवं उर्दूका संरक्षण

परन्तु यह आश्चर्यकी वात है कि जहाँ मुगल साम्राज्यके अन्तिम युग-मे राजनीतिक अनिश्चितता, आर्थिक दुर्दशा तथा चारित्रिक पतनका सर्वत्र वोलवाला था, तहाँ साहित्य एव काव्य बराबर फूलता-फलता रहा। कदाचित् इसलिए कि वह विलास-कक्षके सौन्दर्यको बढाता था। विलासी एवं रसिक होनेके कारण मुगल काव्यके प्रेमी थे। अधिकाश स्वयं कवि थे और उनके दरबारमे बराबर कवियो, विद्वानो एव कलाकारोका सम्मान होता रहा। शाह आलम द्वितीय तो उर्दू, फारसी, हिन्दी और पजाबीका अच्छा कवि था। उसका हिन्दी काव्य पर्याप्त मात्रामे मिलता है। वह 'आफताव' और 'खुर्शीद' के उपनामसे फारसी-उर्दू तथा 'शाह आलम' के उपनामसे हिन्दीमे कविता करता था। उर्दू तो उसके संरक्षणमे खूब पनपी। अभीतक दरबारकी जबान (राजभापा) फारसी थी। उसने पहिली बार उर्दूको वह स्थान दिया। इस समयतक दक्षिण—बीजापुर एव गोलकुण्डा—मे उर्दू या रेख़ती पल रही थी। वली जब दिल्ली आये तो इस नई जबान-

ने दिल्लीवालोको मुग्ध कर लिया । शाह् आलमके कारण उजडती दिल्लीमे अनेक कवि एकत्र हो गये थे ।

उर्दू जवान थी तो इस देशकी बेटी, पर उसके मन, प्राण एवं हुस्नमे फारसीयतका प्राधान्य था । इसलिए फ़ारसीसे इसमे भी गजल आई, कसीदे आये, मस्नवी आई । पर विलासी जीवनमे इश्किया शायरीकी भूख गजलमे ही मिट सकती थी । इसलिए गजलोका प्राधान्य हुआ । इसमे प्रेम-पीड़ा वार्तालापके रूपमे व्यक्त होनेके कारण सजीव हो उठती थी । इसने हिन्दू-मुसलमान दोनोके दिलोंको खीचा । काव्य-प्रेमकी मस्तीमे हिन्दू-मुसलिम भेदभाव बहुत कम हो गया । इस समयकी दिल्लीकी जो हालत थी उसपर मीर, सौदा, इशा, जौक, गालिब, दाग सभीने आँसू बहाये है । कुछ अजब जमाना था । घुटे हुए दिल, लुटी हुई और पामाल जवानियोंपर हसरत भरी निगाहे डालते और सिसकते थे । भली प्रकार रो भी न सकते थे । 'सौदा' ने ठीक ही लिखा है:—

हैफ ! दर चश्मे ज़दन सोहबते यार आख़िर शुद ।
रूए गुल सैर न दीदम व बहार आखिर शुद ॥

("अफसोस ! पलक झपते मित्रका साथ छूट गया । फूलके आननको जीभर देख भी न पाई थी कि वसन्त समाप्त हो गया ।")

शाह आलमकी जिन्दगी दु ख-दर्दसे भरी जिन्दगी है । गुलाम कादिरने जिस प्रकार उसकी आँखें निकाली, उसका वर्णन पढकर रोगटे खड़े हो जाते है । पर यह वह जमाना था जब आँखे रहते भी लोग अन्धे हो रहे थे । दिल्ली तख्तके चतुर्दिक् तूफान उठ रहे थे । कही मराठे, कही अंग्रेज, कही रुहेले, कही सिख, कही राजपूत, कही जाट विद्रोह करके स्वतन्त्र हो चुके थे । लूट-पाट एवं शोषणका सर्वत्र बोलबाला था । पर सबसे बड़ी बात यह थी कि किसान लुटा और निम्न मध्यवर्ग शोषित था तथा राजा, नवाब, सरदार मतलब उच्चवर्गका भयकर आत्म-पतन हो चुका था ।

दिल्लीके तख़्तकी दुर्दशाका कारण उसकी ही अपनी पतित एव विलासपूर्ण जिन्दगी थी। अन्धे शाह आलमने अपनी एक करुणाजनक एवं व्यथापूर्ण फ़ारसी गजलमे ख़ुद ही कहा है.—

सरसरे हादसा बर्ख़ास्त पये ख़्वारिए मा।
दाद बरबाद सरोबर्ग जहाँदारिए मा।
आफ़ताबे फ़लके रफ़अतो शाही बूदेम,
बुर्द दर शामे ज़वाल आह सियहकारिए मा।
नाज़नीनाने परी-चेहरा कि हमदम बूदंद,
नेस्त जुज़ महले मुबारक ब परस्तारिए मा।

(अर्थात् दुर्भाग्यका तूफान हमे मिटानेको उठा। इसने हमारी जहाँदारीको, हुकूमतको बरबाद कर दिया। शाही वैभवके गगनमे हम सूर्यकी भाँति चमक रहे थे। हमारी ही सियहकारियो–काली करतूतो–के कारण यह पतनकी सन्ध्या आई है।·······अप्सराओं-सी कोमलांगनाएँ हमारी सेवामे उपस्थित रहती थी, पर आज हमारी देख-रेखको हमारी पवित्र पत्नीके सिवा कोई नही है।)

आत्मरोदन

मतलब बादशाह अशक्त, सामन्त और सरदार विलासी और एक-दूसरेके विरुद्ध, राजकर्मचारी रिश्वती और बेईमान, निम्नवर्ग शोषित एवं भयभीत। देशकी अवस्था ऐसी थी कि अंग्रेज आसानीसे प्रधान हो उठे। वैसे उनके अलावा भी छोटे-छोटे अनेक राजे-राजवाडे, नवाब-सरदार स्वतंत्र या अर्ध-स्वतंत्र हो गये थे। जिसे जहाँ मौका मिला, उसने वही अपना अधिकार जमाया। सामान्य प्रजा तो सैकड़ों सालसे बराबर लुटती आ रही थी। स्वभावतः वह ऐसे अनिश्चितताके जीवनसे

जन-जीवनके स्तर एवं उनकी झाँकी

ऊब चुकी थी। जो आता वही उसे लूटता और उससे खिराज मांगता। वह किसका-किसका पेट भरती और कबतक भरती। अनिश्चितता एवं नित्यकी लडाइयोके कारण खेती, व्यापार और गृह-उद्योग सब तबाह हो गये थे। उधर उच्चवर्गके लोगो—नवाबजादो, रईसजादोके सामने जीवनका कोई ध्येय न था। वे स्वच्छन्द जीवनके अभिलापी, ऐशोइशरत-के दिलदादे प्रजाको दबाकर, उससे छीन-झपटकर अपने विलासकी सामग्री जुटाते, बचपनसे ही इश्ककी बाते करते और विलासी जीवन बिताने लगते थे। मुर्ग और बटेर लडाते, पतगबाजी करते, शतरज और चौसर खेलते, काव्य-गोष्ठियो और नाच-रगकी महफिलोमे जाते, शराब व शायरीका शौक करते। देशका बहुसंख्यक वर्ग इस अवस्थासे ऊब गया था। पर उसे सूझती न थी कि वे क्या कर सकते है। इस मानसिक दुर्बलताका अग्रेजोने लाभ उठाया। वे जहाँ गये वहाँ भले ही मतलबसे सही एक व्यवस्था तो ले गये। एक निजाम तो था। भले उसमे गुलामी थी। पर जिन्दगीका समतौल तो था।

निराशाका युग

मतलब राजनीतिक दृष्टिसे देश निराश एवं जर्जर हो पड़ा था। मध्य एवं उत्तरकालीन भारतीय इतिहासमे सदैव विदेशियोसे लोहा लेने-वाले व्यक्ति पैदा होते रहे, प्रतिरोधक संगठित प्रयत्न भी जब-तब हुए पर सदियोसे जातीय भावना इतने निम्न स्तर पर गिर गयी थी और इतनी संकुचित हो गयी थी कि वह विस्तृत एवं जनगत, लोकगत हो ही न सकी। शताब्दियोके सघर्षके बाद जैसे बहुसंख्यक वर्ग, अनिश्चिततासे ऊबकर, दम ले रहा था। लोगोमे अपनी हीनताका भाव, इसीलिए विदेशियोके प्रति आक्रोश तो था पर जैसे नियतिके आगे अधिकाधिक जन कंधा डालते जा रहे थे। मतलब ग़ालिबके कैशोर कालमे एक ओर दिल्ली, क्या सारा देश, राज-नीतिक दृष्टिसे अशक्त था, देशकी राजकीय शक्ति तेजीसे बिखर रही थी और जो कुछ कर सकते थे उन सामन्तो और रईसो तथा उनके

बच्चोंको केवल शेरोशायरी, भोग-विलास, सागर व मीना और नीचे दर्जेकी हुस्नपरस्तीसे काम था। उधर अंग्रेजोके संरक्षणमे भारतके पूर्व तट पर एक नया नगर—कलकत्ता—न केवल तेजीसे बसता और बढता जा रहा था वरं एक नये जीवन, एक नई दृष्टि, एक नई सभ्यता एवं संस्कृति, एक नई सामाजिक एवं औद्योगिक व्यवस्थाका प्रतीक बनता जा रहा था।

चेतनाके दो रूप

जबतक भारतीय घरेलू उद्योग-धन्धे सुरक्षित रहे, इस देशके कला-कौशल एवं चीजोकी धूम विदेशी बाजारोमे रही। अंग्रेज व्यापारी यहाँसे चीजे युरोप तथा सुदूर पूर्वके बाजारोमे ले जाकर बेचते रहे। पर जब उनके देशमे युरोप-व्यापी औद्योगिक क्रान्तिकी लहर आई और वाष्पयंत्रो तथा चिमनियो-वाले कारखाने फैल गये तब अपने मालको यहाँ तथा अन्यत्र खपानेके लिए यहाँके धंधोका धीरे-धीरे निराकरण किया गया। इसीके कारण यहाँकी राजनीतिमे अंग्रेजोने अधिकाधिक दिलचस्पी लेनी शुरू की। उद्योगोके मिटनेसे भूमिपर भार बढ गया। आर्थिक स्थिति बिगड़ती गयी। हमारे यहाँ बेकारी फैली, धनिक एवं व्यापारी अपदस्थ हुए। अपने देश एवं उद्योग-धधोकी पामालीपर जाग्रत लोगोमे क्षोभ था। वह कही विद्रोहके रूपमे फूटा, कही सुधारवादी प्रयत्नोके रूपमे। स्थिति ऐसी थी कि अंग्रेजोको स्वीकार करनेके सिवा कोई चारा न था। अव्यवस्था और अनिश्चिततासे तो अंग्रेजी शासन अच्छा ही दीखता था। अग्रेजी शिक्षा-दीक्षाने जहाँ अभारतीय मनःस्थिति पैदा करनेमे योग दिया तहाँ संसारके सम्बन्धमे एक नई दृष्टि भी दी; नवीन ज्ञानने नई भावनाएँ पैदा की। १८२६ का बैरकपुर विद्रोह प्रथम दलके क्षोभका, और राममोहन-राय इत्यादिके क्रिया-कलाप दूसरे दलकी मनःस्थिति एवं व्यवहारके द्योतक है।

भारतमे मुगल साम्राज्यके क्षय एवं अंग्रेजी राज्यके विस्तारका इतिहास न केवल मनोरंजक वरं शिक्षाप्रद भी है। अंग्रेजोंने एक ओर देश-व्यापी अव्यवस्था, फूट तथा हमारे नैतिक एवं सामाजिक पतनका लाभ उठाकर अपना रथ आगे

अंग्रेज़ोंमें भी दो वर्ग

बढाया तो दूसरी ओर अपने अधीनस्थ प्रदेशोको सुव्यवस्था, शिक्षा, न्याय-पद्धतिका भी दान दिया।। उन्होने समझा कि केवल तन जीतनेसे काम नही चलेगा, इस देशके लोगोका मन भी जीतना होगा। इसलिए उन्होने शिक्षित वर्गोंको प्रोत्साहित किया। नवीन औद्योगिक क्रान्तिके लाभ उन्हे दिये। यह जागरण और नवीन शिक्षणका ही परिणाम था कि १८२३ ई० मे राममोहन राय इत्यादिने मुद्रण-स्वातन्त्र्यके लिए एक निवेदनपत्र ब्रिटिश सम्राट्को भेजा था। यह सक्रान्तिका काल था। अतः अंग्रेज भी दो दलोमे बँटे हुए थे। एक दल भारतीयोको शिक्षित करने, उन्हे मुद्रण-स्वातन्त्र्य प्रदान करने; आधुनिक सभ्यताका लाभ उन्हे देनेके पक्षमे था; दूसरा इसके विरुद्ध था। लार्ड विलियम बैंटिक, सर टामस मनरो भारतीयोको मुद्रण-स्वातन्त्र्यकी सुविधाएँ देनेके विरुद्ध थे पर १८३६ ई० मे जब सर चार्ल्स मेटकाफ गवर्नर जेनरल हुए उन्होने भारतीयोंको मुद्रण-स्वातन्त्र्यका अधिकार दे दिया। हाँ प्रगति-विरोधी गुटके प्रभावके कारण, इस 'अपराध'मे वह अपने पदसे हटा दिये गये। फिर भी वह अपने विचारोपर दृढ रहे। उन्होने लिखा था—

"यदि यह कहा जाता है कि ज्ञान-जागरणके फल-स्वरूप हमारे भारतीय राज्यका अन्त हो जायगा तो इसपर मेरा जवाब यह है कि नतीजा कुछ भी हो, उन्हे ज्ञान-लाभ कराना हमारा कर्त्तव्य ही है। यदि हिन्दुस्तानियोको अज्ञानमे

शाप या वरदान

रखनेसे ही यह देश हमारे साम्राज्यमे रह सकता तो हमारा प्रभुत्व इस देशके लिए शाप रूप ही सिद्ध होगा और उसका अन्त हो जाना ही जरूरी हो जायगा।"

"मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि यह मानना अधिक युक्तियुक्त और साधार है कि लोगोको अज्ञान बनाये रखनेमे ही अधिक भय है। मै तो यह सोचता हूँ कि ज्ञान-जागरणसे हमारा साम्राज्य अधिक बलिष्ठ होगा। इससे शासक और प्रजाजन दोनोमे सहानुभूति उत्पन्न होगी और परस्पर एकताका भाव बढेगा और आज जो खाई उनमे है वह धीरे-धीरे बिलकुल पट जायगी।"*

इसी प्रकारका भाव प्रकट करते हुए एलफिस्टनने जून १८१९ मे ही मेकेण्टाशको लिखा था—"हमारा साम्राज्य अधिक समय तक नही टिकेगा, यह केवल कुशंका नहीं बल्कि युक्ति-युक्त है।....हमारे प्रभुत्वका अत्यन्त इष्ट अन्त यही हो सकता है कि हमारे शासनमे लोगोके अन्दर इतने सुधार हो जायँ कि किसी भी विदेशी सत्ताका राज्य करना असम्भव हो जाय।....यह समय कितना होगा इसका अनुमान नही लगाया जा सकता। फिर भी हमारे सम्बन्ध-विच्छेदका समय कभी न कभी आये विना नही रह सकता और यहाँके लोग जंगली बने रहकर, अत्याचार करके हमारा सम्बन्ध तोड़ डाले इससे तो हमारे लिए यही अधिक हित-कारक है कि भले ही वह जल्द टूट जाय परन्तु टूटे वह उनका सुधार होनेके बाद।"†

इससे तो टूट जाना अच्छा

जैसी स्थिति अंग्रेजोके अन्दर थी वैसी ही भारतीयोके बीच भी थी। देशमे राजनीतिक दृष्टिसे जहाँ असामर्थ्यकी एक सुप्त चेतना थी और वह चेतना रह-रहकर जब-तब भडक भी उठती थी तहाँ एक चैतन्य वर्गमे

---

* The Development of An Indian Policy by Anderson and Subedar p. 143

† Mount Stuart Elphinstone by J. S. Cotton pages 185–86.

अंग्रेजी शासन-व्यवस्थाका लाभ उठानेका भाव भी था। जैसा हम ऊपरके उद्धरणोमे बता चुके है उदार अंग्रेज अपनी जीवन-परम्परा, समाज-व्यवस्था, शिक्षण तथा यूरोपमे उठ रहे नवीन विचारोंका अधिकाधिक लाभ अपनी नवीन भारतीय प्रजाको देनेके पक्षमे थे। एक ओर राजनीतिक शक्तिसे, दूसरी ओर ज्ञानसे अपनी श्रेष्ठताके प्रति भारतीयोको प्रभावित करना ही उनका लक्ष्य था। शताब्दियोकी अव्यवस्थासे ऊबकर धीरे-धीरे किन्तु निश्चित गतिसे लोग अंग्रेजी व्यवस्थाके प्रति आकर्पित हो रहे थे। बहुतोने तो मान लिया कि प्रभुकी इच्छासे या नियतिके खेलको पूरा करने ही अंग्रेज इस देशमे आये है और उनसे हमारा सम्बन्ध हुआ है। उनमे दोप है, विदेशी तत्त्व है पर जब देशी वर्ग एक दूसरेको हडपने एव मलियामेट करनेको तैयार हो, जब उनमे एक होकर विदेशियोके सामने खडा होनेका भाव न हो वल्कि आपसी झगडो या स्वार्थसिद्धिके लिए विदेशियोको आमन्त्रित करनेका भाव हो* तो उनकी ओर एक निराशाभरी दृष्टि डालनेके सिवा चारा ही क्या है?

इस समय भारत टुकडे-टुकडे हो रहा था। भारतीय केन्द्रीय सत्ताका प्रतीक दिल्ली उपहासजनक स्थितिमे थी। देशकी सबसे बड़ी आवश्यकता

ऐतिहासिक आवश्यकता

एक भारतीय सार्वभौम राज्यकी थी। १८१८मे जब माउण्ट स्टुअर्ट एर्लफिस्टनने (जो बम्बई प्रान्तका प्रथम गवर्नर था) पेशवाईको खत्म कर दिया तवसे भारतीयोका सार्वभौमका भारतीय राज्य स्थापित करनेका स्वप्न भी समाप्त हो गया। अब कोई ऐसा देशी सघटन नही रह गया था जो मराठोंका स्थान लेता। अंग्रेजोमे भी ऐसे लोग थे और हिन्दुस्तानियोमे भी, जो इस सम्बन्धको

---

* १८३५ ई० में सरजानशोरने 'इण्डियन आर्मी' निबन्धमे लिखा था कि हिन्दुस्तानियोमे आत्मविश्वास नही है, न राष्ट्राभिमान है और वे एका भी नही कर सकते, यही हमारे साम्राज्यका सामर्थ्य है।

एक ऐतिहासिक आवश्यकता मानकर उसे स्वीकार करने और उसका सर्वोत्तम उपयोग करनेके पक्षमे थे, जैसा कि ऊपरके उद्धरणोसे हम प्रकट कर चुके है। १८५०मे 'लोकहितवादी' पत्रने मानो त्रस्त भारतीय जनताकी इसी भावनाको प्रकट करते हुए लिखा था—"सुज्ञ लोगोंको चाहिए कि वे अंग्रेजोके जानेकी इच्छा कदापि न करें।" क्योकि उनके न रहनेका परिणाम, उस समय व्यापक अराजकता एवं अनिश्चितताके अतिरिक्त और कुछ नही हो सकता था। लोग यह भी देख चुके थे कि हमारे राष्ट्रीय चारित्र्यमे कोई ऐसी दुर्बलता अवश्य है कि बार-बार विद्रोह करके भी हम सफल नही हो पाते। इसलिए पहिले शिक्षा एवं संस्कार द्वारा अपनी वास्तविक स्थितिको समझने तथा अपनी परम्परागत दुर्बलताओको दूर करनेसे आगे चलकर स्वतन्त्रताकी सम्भावना अधिक हो सकती है। उदार अंग्रेज भी इस बातको समझते थे कि शिक्षा पाकर भारतीय बराबरीका दावा करेंगे पर वे धीरे-धीरे अपनेको इस स्थितिके लिए तैयार कर रहे थे क्योकि अब विना भारतीयोंके अधिकाधिक सहयोगके उनका शासनतन्त्र भलीभाँति चल नही सकता था। १८२४ ई० मे एलफिंस्टनने कम्पनीके कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्सको जो शिक्षा-विषयक वक्तव्य भेजा था उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है। इस वक्तव्यमे अन्य बातोपर प्रकाश डालनेके बाद वह लिखता है—

सब दृष्टियोंसे भारतीयोंको समत्वका अधिकार देना अच्छा है!

"यह आपत्ति उठायी जायगी कि यदि हमने यहाँके लोगोको शिक्षा देकर अपने बराबरका दर्जा दे दिया और शासन-कार्यमे भी उन्हे हिस्सा देते चले गये तो वे उन पदोंपर ही सन्तुष्ट नही रह सकेंगे जो हम उन्हे देगे बल्कि वे सारे शासनपर अपना अधिकार साबित किये विना शान्त न बैठे रहेंगे। इस बातसे इन्कार नही किया जा सकता कि ऐसा भय रखनेके कई कारण है परन्तु दूसरी किसी नीति-द्वारा हम अधिक स्थायी बन सकेंगे, ऐसा मुझे विश्वास नही होता।

यदि हमने देशी लोगोंको नीचे ही दबा रखा तो उनके प्रतिकारसे ही हमारा राज्य उलट-पुलट हो जायगा और यह संकट पूर्वोक्त संकटकी अपेक्षा अधिक भयंकर और अधिक अकीर्तिकर होगा। इस खींचातानीमें हमें सफलता मिल भी गयी तो हमारे साम्राज्यके लोगोंमें एकरस न होनेके कारण विदेशी आक्रमणसे, अथवा हमारे ही वंशजोंकी बगावतसे, उसके उखड़ जानेकी सम्भावना है। हमारी कीर्ति एवं हित दोनों दृष्टियोंसे, एवं मानव जातिके कल्याणकी दृष्टिसे भी विचार किया जाय तो जिन लोगोंके हितके लिए इस सत्ताकी धरोहर ईश्वरने हमें दी है उन्हींके हाथोंमें उसे वापिस सौंप दें यही बेहतर है बनिस्बत इसके कि उसे विदेशी हमसे छीन लें या हमारे ही कुछ मुट्ठी भर उपनिवेशवासी अपना जन्मसिद्ध अधिकार कहकर अपने हाथमें ले लें।"*

इस प्रकार हम देखते हैं कि उन्नीसवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें देशमें एक ओर घोर राजनीतिक अव्यवस्था और अनिश्चितता व्याप्त हो गयी थी और इस अनिश्चिततामें अंग्रेज अपने शोषणमें भी जो व्यवस्था, नवीन जीवन-विधि, शिक्षा-प्रणाली लाये उसकी ओर धीरे-धीरे भारतीय जनता आशासे देखने लगी थी। दूसरी ओर दिल्लीके अन्तिम बादशाहोंके मुसलमान होनेके बावजूद हिन्दुओंमें उनके प्रति अत्यन्त सम्मानका भाव था। समान दुःख और संकटके इस कालमें उनके तथा उच्चवर्गीय लोगोंके अन्दर साम्प्रदायिक वैमनस्य तो रह ही नहीं गया था, भेदभाव भी बहुत कुछ दूर हो चला था। जनता भूल चली थी कि शासक मुसलमान हैं। यह मुगलोंकी धार्मिक उदारताकी नीतिका परिणाम था। यद्यपि मुगल मुसलमान थे और कोई-कोई कट्टर भी थे पर उन्होंने योग्य हिन्दुओंको ऊँचे पद दिये, कलाकारों, कवियों एवं संगीतज्ञोंको आश्रय दिया,

साम्प्रदायिक वैमनस्य-का अभाव

---

* M. S. Elphinstone by J. S. Cotton p. 184.

विद्वानोको अपनाया, भारतीय भाषाओंको ग्रहण किया। यह परम्परा, औरङ्गजेबकी धार्मिक कट्टरताके बावजूद, अन्त तक चलती रही बल्कि अन्तिम मुगल कालमे वह और निखर गयी। खासतौरसे, कवियोकी दुनियामे हिन्दू-मुस्लिम भेद-भाव कम-से-कम था। मुसलमान देशज शब्दो-को अपनाने लगे थे और दोनोके सम्पर्कसे बनी हिन्दवी (बादकी रेखता या उर्दू) पनपती जा रही थी। यह ठीक है कि उर्दूकी आधारशिला फारसीयत थी क्योकि एक लम्बे अरसे तक फारसीके राजभाषा होने तथा शिष्ट हिन्दू-मुसलमानों द्वारा उसे स्वाभाविक रूपमे ग्रहण कर लिये जानेके कारण ऐसा होना ही था पर उसमे इस देशके शब्द एवं सस्कार भी तेजीसे आ रहे थे (वली, इंशा, मीर, जफ़र इत्यादिकी रचनाओसे यह स्पष्ट हो जाता है।) मीर, गालिब इत्यादि उर्दू-कवियोमे कही कट्टरताका कोई चिह्न नही है। मतलब जब मुगलोकी शक्तिका पतन हो रहा था, हिन्दू-मुस्लिम-समन्वय तथा जन-सम्पर्कसे एक नई जबान बन रही थी। इसके पीछे शिष्टताकी एक लम्बी परम्परा थी, जीवनका एक हलका-फुलका दृष्टिकोण था। रीतिकालीन हिन्दी काव्यकी भॉति, राज-नीतिक शक्तिकी क्षीणताके दिनोमे, शत-शत निराशाओ एवं कठिनाइयोसे भरे मानवको इसने प्रेमकी घूंट पिला-पिलाकर जिलाया। भले ही यह प्रेम अधिकाशत· बाजारू था पर इन सकटके दिनोमे उसने मानव-हृदयको कट्टरताकी कालिमासे दूर रखा, जन-जीवनके नजदीक लाया, पस्तीमे एक समता, एक निकटता पैदा की और फारसीके विशाल प्रेम-पूर्ण एवं

वातायन जिससे जीवनकी वायुके झकोरे आते रहे

शृगार-साहित्यका खजाना शिष्ट एवं शिक्षित वर्गोके आगे रख दिया। फलत. राजनीतिसे दूर रहने वाले पर इस देशकी रीति-नीतिमे पले; इस देशकी परम्पराओसे बँधे हिन्दू-मुसलमानोमे एक संस्कार, एक शिष्टता, एक शराफत, एक काव्यकला-प्रेम आया, एक सौहार्द्र पैदा हुआ, एक रस्मोराह पैदा हुई। उच्च वर्गोके, परम्परागत

रूढियोसे ग्रस्त एवं विलासपूर्ण जीवन-कक्षमे भी इसने एक दरीचा, एक खिड़की, एक वातायन बना दिया था जिसमेसे आनेवाले वायुके झकोरोमे जन-जीवनकी घुटन, आकांक्षाएँ, हसरते, लालसाएँ भी होती। राग-रंगकी जिन्दगी तो होती, परम्पराएँ और रूढियाँ भी होती पर वह उत्कट भेदभाव न होता जो विजेता एवं विजितके रूपमे मुसलमानो एव हिन्दुओके बीच, एक जमानेमे, आ गया था। इससे ज़िन्दगीमे वह सतह उभरी जिसमे दोनो एक गोष्ठीमे बैठकर हमप्याला, कभी-कभी हमनिवाला, भी हुए, एक भावरागिसे भरे, एक ज़बानमे बोले। मुसलमान कवि एवं भक्त व्रजभापा तथा अवधीमे अपनी वाणीका गौरव प्रदर्शित करते, हिन्दू फ़ारसी एव उर्दूमे तवअ-आज़माई करते। हिन्दीमे श्रेष्ठ मुसलमान कवियोके अनेक नाम गिनाये जा सकते है; इसी प्रकार उर्दू और फ़ारसीमे हिन्दुओके काव्य एवं ज्ञान-गरिमाके श्रेष्ठ उदाहरण सुरक्षित है।

दो प्रवृत्तियाँ

इस प्रकार अन्तिम मुगलोके समय जहाँ देशकी राजनीतिक क्रियाशीलता सुप्त हो गयी, अंग्रेजोंका प्रभाव बढता गया, अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा एवं जीवन-क्रमसे एक नवीन, अपेक्षाकृत व्यापक, दृष्टि आई, नवीनके प्रति किञ्चित् आकर्षण उत्पन्न हुआ तहाँ दूसरी ओर, सांस्कृतिक धरातलपर, हिन्दू-मुसलमान अधिकाधिक निकट आते गये, साहित्य-जगत्मे एक विशेप साहचर्यका जन्म हुआ, फारसीका स्थान धीरे-धीरे एक नई भारतीय भाषा उर्दू लेने लगी।

ऊपर हमने जिस स्थितिका चित्र दिया है उसे सक्षिप्त करनेसे निम्नलिखित निष्कर्प निकलते है—

सार्वभौमिकताके तीन प्रतिद्वन्द्वी

१. अठारही शतीके भारतमे अनेक शक्तियाँ सार्वभौम सत्ता हस्तगत करनेके लिए प्रयत्नशील थी। इनमे फ्रांसीसी, अग्रेज, मराठे प्रमुख थे। प्रादेशिक स्वतंत्र राज्यके लिए भी हैदराबाद, मैसूर, बंगाल (मुर्शिदाबाद), अवध, पंजाब प्रयत्नशील रहे। समय-समयपर अफ़ग़ान

भी आ जाते थे पर उनका रूप प्रमुखतः लुटेरोंका रहा। इन तीनोंमे पहिले फ्रांसीसियोने सार्वभौम राज्यकी आशा छोड़ दी, मराठों और अंग्रेजोंकी प्रतिद्वन्द्विता बहुत दिनों तक चलती रही। पर अंग्रेजोंकी शक्ति बराबर बढती गयी।

२. पानीपतकी तीसरी लडाई (१७६१) में मराठोंकी भयकर पराजयके पश्चात् नक़शा बदलता गया। फिर भी अठारहवी शताब्दीके अन्त-

मराठा शक्तिकी त्रुटि

तक मध्य एवं उत्तर भारतमे मराठा शक्ति प्रबल रही। यह शक्ति कदाचित् और प्रबल होती यदि उनमे दम्भ कुछ कम होता, लूटपाटकी वृत्ति अनुशासित होती और आपसमे वे बिखर न जाते।

३. १८०४ ई० मे लार्ड लेकने सिंधियाको हराकर दिल्लीपर भी अंग्रेजी प्रभुत्वकी नीव डाली। १८०६ ई०मे माधवराव (महादाजी)

मराठा शक्तिका अन्त

सिंधियाकी मृत्युके बाद अंग्रेजोको चुनौती देनेवाला कोई प्रबल वीर उत्तर भारतमे न रह गया। १८१८ ई०मे पेशवाईका ही अन्त हो गया। यद्यपि राखके अन्दरसे कही-कही सुप्त चिनगारियाँ, हवा अनुकूल होते ही, चमक उठती थी और इक्के-दुक्के विस्फोट भी हो जाते थे पर निश्चित गतिसे भारतपर अंग्रेजी प्रभुता फैलती जा रही थी। उन्नीसवी शताब्दीका प्रथमार्द्ध उसके प्रसार एव द्वितीयार्द्ध उसके दृढ गठनका युग है। १८५७ ई० में अन्दरकी धधकती आग उभरी परन्तु वह समस्त भारतमे न फैल सकी। बंगालियो, सिखो, राजपूतों, मद्रासियो; गुजरातियोंने उसमे हिस्सा नही लिया; कही-कही लिया तो नाम-मात्रका लिया। वह आग अन्तमे हिन्दी-भाषी प्रान्तो एवं दिल्लीके आस-पास ही उमड़-घुमड़कर और राष्ट्रीय खीझका एक प्रतीक बनकर रह गयी।

४. अंग्रेजोमे ऐसे अनुदार बड़ी सख्यामे थे जो भारतीयोको सदाके लिए हीन और तुच्छ बनाकर रखना चाहते थे, पर उदार विचार वाले अंग्रेजोकी

सख्या भी कुछ कम न थी, जो समझते थे कि देर तक भारतवासियोको इस प्रकार रखना सम्भव नही है और सम्भव हो भी तो उचित नही है।

आत्मगौरव और आत्म-सुधारकी दो धाराएँ

फिर यूरोपमे भापके आविष्कारके कारण जो औद्योगिक क्रान्ति हुई और जिसकी परिधि तीव्र गतिसे विश्वव्यापी होती गयी उससे वचना-वचाना सम्भव न था। इसलिए कुछ समझकर, कुछ वे-समझे, कुछ स्वेच्छासे, कुछ वेवसीके कारण उन्हे शिक्षा, न्याय-व्यवस्था, कल-कारखाने, मतलव नई सभ्यताका अधिकाधिक परिचय एवं लाभ भारतीयोको देना पडा। प्रेस एवं अख़वारोके कारण दुनियामे एक नई चेतना आ रही थी। यहाँ भी, समयपर, वह आई। इसके प्रभाव-तले हममेसे एक वर्गने अपने देश एव संस्कृतिके प्रति गौरवके भावका प्रचार किया; दूसरेने उन्मुक्त हृदयसे यूरोपसे नवीन दृष्टिकोणके लाभ ग्रहण किये, अपनी परम्पराओके दोपो एव अपनी दुर्वलताओकी ओर ध्यान दिया। 'जो पुराना है वह अच्छा ही है' इसके विरुद्ध भी कुछ प्रवुद्ध व्यक्ति उन्मुख हुए।

५ उच्च मध्यवर्ग राजनीतिक शक्तिसे हीन होकर भोग-विलास, अधिकार, जायदादमे फँसकर जीवन विताता था। उसकी शिक्षाका कोई

उच्च वर्गोंमें शिक्षणका रूप

प्रवन्ध न था। जहाँ था भी वहाँ उसका ढाँचा वहुत पुराना, अनगढ और अविकसित था। वे लोग उस्तादोसे थोडी अरवी-फ़ारसी पढ़ लेते; कुछ हिन्दू संस्कृत भी पढते। जो हिन्दू दरवार एव नौकरियोसे सम्बन्धित थे या जिनका रव्त-जव्त उच्चवर्गीय मुसलमान शरीफो अथवा अदालतोसे था वे भी फारसी पढते। हिन्दू-मुसलमानके वीच भाषाका कोई झगडा न था। उच्चवर्गोकी जिन्दगी चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान प्राय. एक-सी थी। इनमे रस्मराह, मेल-मिलाप भी था। पर शिक्षणमे भाषा-ज्ञान ही मुख्य था। भाषाके माध्यमसे अधिकतर काव्य एवं पारम्परिक धर्मग्रन्थोका अध्ययन होता था।

६ अन्तिम मुगलोके जमानेमे सांस्कृतिक तलपर कुछ बाते हुई। इनमे पहिली बात है उर्दूका अभ्युदय। तुर्को, ईरानियो एवं भारतीयोके संसर्गसे एक नई जबानका जन्म हुआ। हिन्दकी जबान होनेके कारण यह हिन्दवी कहलायी। वलीने इसे बचपनमे सम्भाला; हातिम, अबरू, मजहर और ख़ाँ आरजूने इसे होशयार किया। बादमे यही रेख़ता हो गयी। शुरूमे यह एक ग्रामीण बोली थी—उस समय शरीफजादोने इसे नहीं अपनाया। वे फारसी लिखने और बोलनेमे अपनी शान समझते थे, फारसीयत एक प्राचीन सास्कृतिक गठनका प्रतीक थी इसलिए उसमे पारायण होना शराफतका, शिष्ट जीवनका एक प्रमाणपत्र था। पर हिन्दवी या रेख़तामे एक अजब लोच थी, उसमे इस देशकी मिट्टीकी सुगन्ध थी (यद्यपि उसका वातावरण फारसीका ही था) इसलिए धीरे-धीरे उत्तर, फिर दक्षिण और फिर उत्तरमे अनेक कवियोने उसे अपनाया। ज्यादातर ऐसे थे जिन्होने शौकिया, एक नये प्रयोगके आकर्षणके कारण, उसे अपनाया। यही बादकी उर्दू है जो दरअस्ल हिन्दीकी ही एक धारा है। इंशा, सौदा और मीरतकी 'मीर'ने इस भाषाका सस्कार किया; बादमे आतिश और नासिख़ने उसे सँवारा। शाह आलमने उसे दरबारमे सरक्षण दिया। मतलब अन्तिम मुगलोने स्वय मिटते हुए भी उर्दूके विकासमे काफी योग दिया। दूसरी बात हुई अंग्रेजो, फरासीसियो, डचोका भारतीयोसे संसर्ग। इनके साथ एक नया दृष्टिकोण, एक नया जीवन-गठन आया। एक सिहरन हुई, नीदमे एक फुरेरी-सी आई और पश्चिमके तीव्र, कर्कश, नादने मानो झिझोडकर हमे जगा दिया। अंग्रेजोके अभ्युदयके साथ यूरोपीय शिक्षण प्रणाली, प्रेस, अखबार, शासन-व्यवस्था, न्याय-प्रणाली आई। औद्योगिक सभ्यताका शैशव आरम्भ हुआ। दासता तो आई पर एक सुरक्षा एवं निश्चितता प्राप्त हुई। इस नवीन जीवन-क्रमने उच्च एव मध्यवर्गोको प्रभावित किया। सागर-सन्तरणको पाप

उर्दूका जन्म

नवीनका आकर्षण

माननेवाले भारतीयोको समुद्री हवाने खड्बड़ा दिया। नवीनके प्रति एक रहस्यका आकर्षण उत्पन्न हुआ।

७. अन्तिम मुगलोका जीवन कष्ट, मुसीबत, करुणासे पूर्ण एक ऐसी कहानीके रूपमे प्रकट हुआ जिससे इंसान सबक ले सकता है। शाहआलमने ठीक ही कहा था—

सरसरे हादसा बर्खास्त पये ख़्वारिए मा।
दाद बर्बाद सरोबर्ग जहाँदारिए मा।

और उनकी बड़ी वेदना घनीभूत होकर अन्तिम मुगल सम्राट् बहादुरशाह 'ज़फर'के साथ रंगूनकी एक अँधेरी कोठरीमे जहाँ केवल पत्नी रोनेके लिए रह गयी थी, यो बरस पड़ी थी—

अपने मरनेका ग़म नहीं लेकिन,
हाय, तुझसे जुदाई होती है।

आत्म-वेदना ही नही युग-वेदना भी

यह गम केवल अपने मरनेका, अपने मिटनेका ही गम नही है, यह एक प्राचीन परिपाटी, एक प्राचीन विरासत, एक जीवन-प्रणाली, एक सभ्यताके मिटनेका गम है। इसीलिए वह गमे जानाँ ही नही, आत्म-वेदना ही नही, गमे दौराँ—युग-वेदना—भी है। एक दुनिया, युगोकी जानी-पहचानी, परखी-परखाई दुनिया मिट रही थी और एक मादक, नवीन पर अज्ञात दुनिया, भविष्यके पर्देमे बनती हुई दुनियाकी परछाइयाँ पहिलेसे ही फैलने लगी थी।

संक्रान्तिके इसी कालमे गालिबका जीवन बीता—वह पैदा हुए, पले, बढे, दुनिया देखी, खेले-खाये, रोये-हँसे और चले गये। वह ईरानी संस्कारोसे पूरित थे। फारसीयत उनके खूनमे प्रविष्ट हो गयी थी और उसके प्रति दृढ आग्रह उनके जीवनमे अन्त तक, दिखाई देता है। जैसे पुराने पण्डित वर्गमे हिन्दीके प्रति उपेक्षा और उपहासका भाव था वैसे ही

गालिब और उनके वर्गमे इस नई उर्दूके प्रति तुच्छताका भाव था। गालिबकी जिन्दगी भी वही रईसजादोकी स्वच्छन्दताके लिए तड़पती हुई जिन्दगी थी, जिसके बारेमे हम ऊपर कई जगह संकेत कर चुके है। ज्यादातर वह एक सतही जिन्दगी थी पर उनकी तथा उनकी रचनाओकी पृष्ठ-भूमिपर जो ऐतिहासिक प्रवृत्तियाँ एवं शक्तियाँ उभरी उन्होने उनको समझा, एक सीमातक उनकी ओर आकृष्ट भी हुए। चूँकि जमाना बदल रहा था, पुरातन और नूतनकी आँख-मिचौनी हो रही थी, उन्होने दोनोको ग्रहण किया बल्कि यों कह सकते है कि परिच्छद, पोशाक पुरानी होते हुए, और उसमे एक पुराने दिलकी धडकने होते हुए भी अभिव्यक्ति, कल्पना, पकड़ और सूझ नई थी—दिल पुराना पर दिमाग नया। प्राचीनकी जडोसे रस ग्रहण करनेवाला दिलपर नवीनकी ओर देखती चिन्तनाकी आँखे, कुछ जगे कुछ खोये हुए, स्वप्निल कल्पनाओकी रंगीनियोमे डूबे पर उनकी उपयोगिता एव सत्यताके प्रति शंकाएँ जिसके ओठोपर मचलती और आँखोमे चमककर व्यंग करती है, यह थे गालिब। अपने जमानेके पतनकी परछाइयोके बीच गर्भमे करवट लेते नवीनका अभिवादन करनेवाले!

प्राचीनके बीच नवीनकी पकड़—यह थे ग़ालिब!

उनके समयमे भारतीय समाज, सभ्यता, शासन सब टूट रहा था। मुगल वैभवकी प्रतीक दिल्ली, विदेशोमे अफवाहकी तरह प्रसिद्ध दिल्ली, विदेशियोके दिलोपर स्वप्न और दिमागपर जादूकी तरह छाई दिल्ली लुट-पिटकर पस्त हो गयी थी। ऐसी पस्त कि उसके लिए कविगण रोते, नृपतिगण सिर धुनते, शिष्ट एव शिक्षित-जन आश्चर्यसे अभिभूत होते और जन-सामान्य वेदनाकी घूंट पी-पीकर रह जाते थे। वह विधवा-सी हो रही थी। एक दिन उसके भृकुटि-विलासपर राज्य बनते-बिगड़ते थे, उसकी मुसकराहटसे अगणित मन-प्राण शीतल होते थे, एक दिन वहाँसे 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा'का घोष उठता था, एक दिन उसकी

विधवा-सी उपहासका साधन दिल्ली!

शोखीपर उसकी नाजोअदापर राजमुकुट उलटते थे, उसके चरणोंमे शत-शत मस्तक अर्पित होते थे, एक दिन वह संसारका स्वर्ग थी पर आज वही भूलुण्ठिता थी। जो आता उसे मसल देता; जो आता उसके दिलके जख्म कुरेद कर देखता कि यह नाट्य तो नही है, जो आता उसकी अस्मतपर हाथ डालनेको लोलुप। वह सिसकती है और लोग हँस देते है, वह रोती है और लोगोका मनोरंजन होता है; उसकी लटे सचमुच एक अँधेरेकी सृष्टि करती है, एक ऐसे अँधेरेकी जिसमे तडपती रूहोका रोदन, मसली लालसाओंका क्रन्दन, वीते वसन्तके करुण स्मरण और अतीतकी शत-शत स्मृतियोका दंशन है। वह दिल्ली जिसके वैधव्य-मे, सारी पस्तीके बावजूद, एक अद्भुत आकर्षण था—डूबते हुए सूर्यकी लालिमाका आकर्षण।

भारतीय जीवन उथला हो रहा था। उसकी गरिमा नष्ट हो गयी थी। जीवनकी गहराई और पकड खो गई थी, दर्शन एवं तत्त्वज्ञान दिल-वहलावका साधन वन गये थे। पर पतनमे, मिटती हुई एक लम्बी जीवन-विधिके पीछे तेजी-से ऊपर उठती एक नई सभ्यता, एक नई जीवन-विधिकी आवाजे, कुछ अस्पष्ट-सी, आने लगी थी। पुरानी सभ्यता मृत्युकी वेदनामे करवटें लेती थी और उसके अन्दरसे अँगडाइयाँ लेता नवीन फूट-फूट उठता था।

मिटते प्राचीनमेंसे फूटता नवीन

गालिवने नये जमानेकी, आते हुए नवीनके चरणोकी धमक सुनी। यह वूता तो उनमे न था कि एक नई राह, एक नई दुनिया, एक नया समाज वह गढते, इतना ही क्या कम था कि प्राचीन श्रृंखलाओको अपने तनसे नही तो मन-से अवश्य उतार दिया और समझा कि जो नया आ रहा है वह हमारे वावजूद, उपदेशकोके नाक-भौ सिकोडनेके वावजूद आकर रहेगा। इस-लिए उसे अपनाना ही होगा, इसलिए कि वही इस युगका सत्य है।

गालिवका कार्य

इसीलिए उनमे अँग्रेजोके प्रति, अँग्रेजी समाजके प्रति एक रुझान हम देखते है। उन्होने कभी खुलकर अँग्रेजोंका विरोध नही किया, १८५७ के उन तूफानी दिनोमे भी नही, किले और बादशाहके सम्पर्कमे रहते हुए भी नहीं। इसे उनकी देशभक्तिका अभाव भी कहा जा सकता है पर वस्तुस्थितिको समझने और ग्रहण करनेकी उनकी दृढताका प्रमाण भी इसमे सन्निहित है। यह दिल्लीकी बदकिस्मती है कि उसके पतनके उस जमानेमे किसी शायरके ओठोपर विद्रोहका वह बिगुल अपनी शायरीमे नही तड़पा कि कौमकी स्वप्न-विजड़ित आत्माएँ—ख़्वाबीदा रूहे—एका-एक जग पड़ती। गालिबकी जिन्दगीका जो गठन था उसमे यह उम्मीद नही की जा सकती थी पर इससे उन्हे देशद्रोही नही कहा जा सकता। वह अंग्रेजके प्रति अनुकूल इसलिए थे कि वह उस जमानेका एक सत्य था जिसे इन्कार करना जमानेको इन्कार करना होता। अग्रेजोंके साथ जो जीवनकी चमक-दमक आ रही थी, जो जीवन-विधि आ रही थी उसमे लाख दोष सही पर एक उन्मेप था, संसार-सुखको पूर्ण उत्साह एवं उमंगसे ग्रहण करने, जिन्दगीका अधिकसे अधिक रस लेनेकी वृत्ति थी। यह वृत्ति गालिबकी उत्फुल्लता, रसग्राहिणी भोग-प्रधान जीवन-वृत्तिके भी अनुकूल थी। वह दिल्लीकी बरबादीपर रोते है पर अग्रेजोके आगमनपर सन्तुष्ट है। वह बादशाहके सेवक और पार्षद है पर उनके मिटनेपर हम उन्हे रोते-तडपते नही देखते। युगकी ऐतिहासिकताका ग्रहण उनके जीवन-का सत्य है।

अंग्रेजोंको इन्कार करना जमानेको इन्कार करना होता
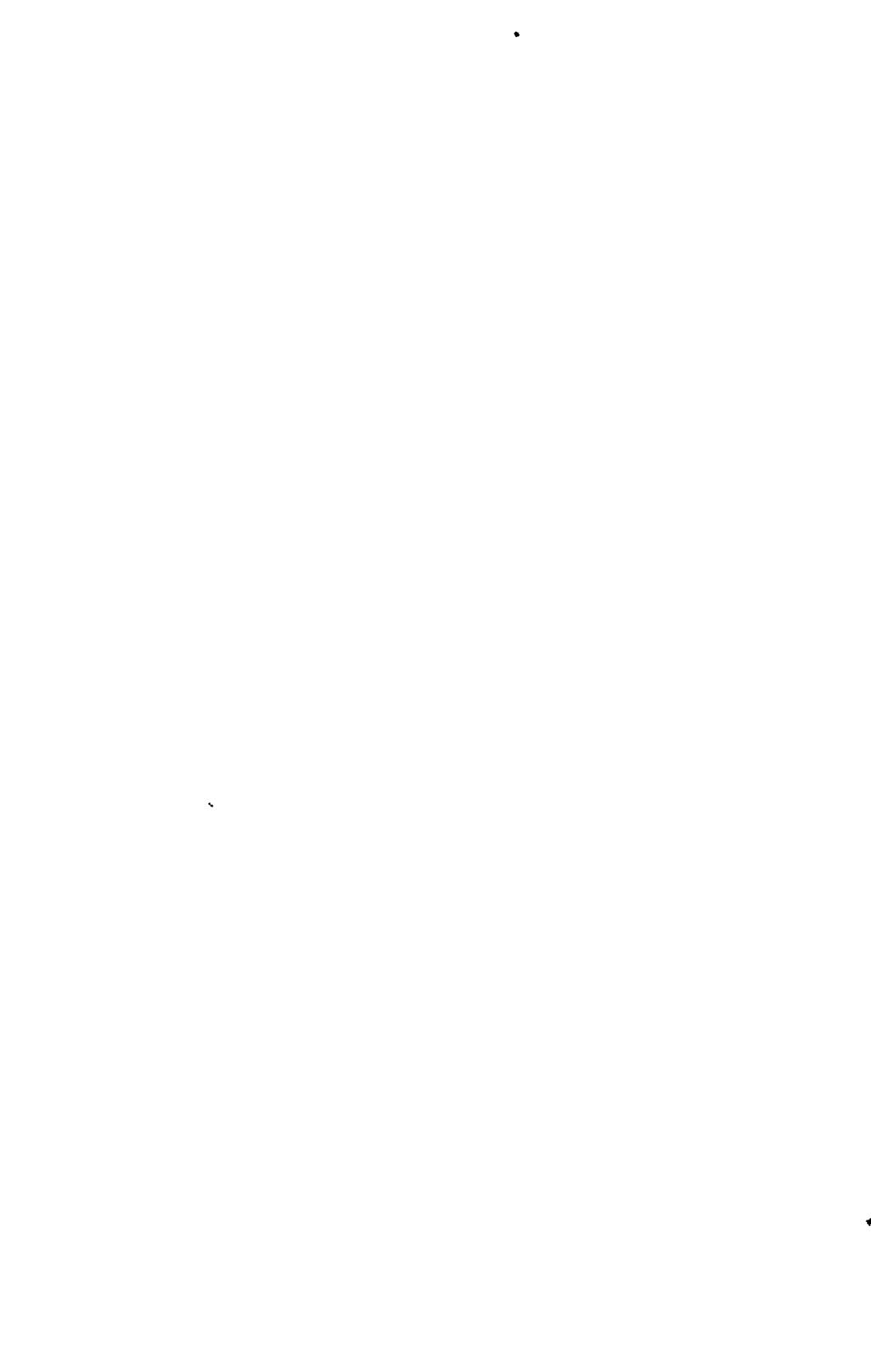
समीक्षा-भाग

ग़ालिब : मानसिक पृष्ठभूमि और मानवीय संवेदनाएँ

गालिबके जीवन और काव्यमे सर्वत्र उसका मानवीय रूप बिखरा हुआ मिलता है। उसकी बुराइयाँ-भलाइयाँ, दोष-गुण दोनो इन्सानके दोष-गुण है। यही सामान्यता उसकी असाधारणता है। हमारा अभिप्राय यह है कि उसका निर्माण अपने युगके एक जागरित मानवके समानान्तर होते हुए भी अनुभूति एवं कल्पनामे उससे कही तीव्र है और विरोधी जलवायु एव तूफानोके बीच भी वह मानवकी उस बुभुक्षा, उस प्यास, उस उत्कण्ठा तथा उन सहानुभूतियोंकी रक्षा कर सका है जिनके कारण जीवनका रथ कभी युगोकी लीकपर चलता और कही उसे मिटाकर नई लीकें बनाता है तथा मनुष्यको नई शक्ति, नये मूल्य एव नई निष्ठाएँ प्रदान करता है।

मानवकी वह बुभुक्षा और प्यास !

गालिबके निर्माण-तत्त्वोका अध्ययन करनेसे हमे उनमे परस्पर-विरोधी प्रवृत्तियाँ मिलती है। ये अन्तर्विरोध या परस्पर-विरोध व्यक्ति एव युग दोनोके अन्तर्विरोध है। व्यक्तिगत एवं वर्गगत अहंसे भरा हुआ पर बदलते हुए जमानेसे यो तंग कि हर कदमपर वह अहं पददलित होता है; किसीके सामने हाथ फैलानेमे शर्मका अनुभव, फिर भी सदा हाथ फैलानेको बाध्य; जमानेके दुःखको समेट लेनेका जज्बा लेकर भी अपनी तगीसे दलित; उमंगो और रंगीनियोकी एक दुनिया दिलमे बसाये हुए, फिर भी कदम-कदमपर असफलता एवं निराशासे उत्पीड़ित;

अन्तर्विरोध व्यक्ति और युग दोनोंके अन्तर्विरोध है

अपनी फ़ारसीयत एवं फारसी रचनापर आत्म-मुग्ध, किन्तु युगकी प्रतिहिंसा-से ऐसा प्रताडित कि जिस रेखता (उर्दू) को पाँवकी धूल समझता रहा उसीने उसे अमर कर दिया और उसकी लोकप्रियता फ़ारसी काव्यको खा गयी। रहन-सहन (वज़ा) मे सामन्ती, दिलसे रईस, खूनसे मुगल, रुचिसे ईरानी–फारसी–और मजबूरी तथा परिस्थितिसे हिन्दुस्तानी गालिब अनेक व्यक्तित्वोका व्यक्ति है, अनेक रंगो का चित्रकार है, अनेक अन्तर्विरोधोंका आकर है।

अन्तर्विरोधोंको समतल करनेवाला तत्त्व

किन्तु इन सब अन्तर्विरोधोको समतल कर देनेवाली एक चीज़ है, दुनिया और इन्सानको प्यार करनेकी उसकी निष्ठा। यह उसकी समस्त विषमताओ, सब नाहमवारियोको ढँक लेती है, उसकी सम्पूर्ण दुर्बलताओ और अपूर्णताओको अपने अंकमे समेट लेती है। यही वह जादू है जिसके कारण उदासी और दुःखकी घटाएँ प्यारकी बिजलियोसे चमक-चमक उठती है और भावनाकी धरती संवेदनाओकी अजस्र वर्षासे तृप्त होकर उर्वरा हो उठती है। वह लाख बुरा हो, पर इन्सानका दिल उसकी हर वाणीमे बोल-बोल उठता है—देवताका नही, इन्सानका दिल, गर्म-गर्म खूनसे भरा दिल जो अपनी अगणित शिराओमे जीवनकी प्यास लिये चलता है।

वह ज़माना !

गालिब जिस जमानेमे पैदा हुआ वह मुगल साम्राज्यकी सन्ध्या थी। वह एक ऐसी सभ्यतामे पला जो ऊपरसे मोहक बनी हुई थी, पर अन्दरसे इतनी खोखली हो गयी थी कि मृत्यु ही उसकी मुक्ति थी। उस गठनका शीराज़ा तेजीसे बिखर रहा था। इस बिखरावके क्रमको बहुत कम लोग देख पाते थे। नियतिने लोगोको मोहाविष्ट कर रखा था और उच्च वर्गके लोग उस विनाशकी ओरसे आँखें मूँदें अपनेमे ही सिमट चले थे जो तेजीसे उनकी ओर दौड़ा चला आ रहा था। चरित्र राष्ट्रीय न होकर बहुत कुछ वैयक्तिक हो गया

था—निजी या समूहगत स्वार्थोके पकमे लिपटा हुआ। गालिब ऐसे ही जमानेमे हुआ। बचपन दुलारमे पला, किशोरावस्था रगरलियोमे गुजरी, पर उत्तम संस्कारकी एक भी किरण न मिली। कोई निश्चित संस्कार बचपनमे न बन सका। न वातावरण था, न प्रेरणा थी, न बनानेवाला था। चैनसे गुजरती थी और एक रईसजादेके लिए यही क्या कम था। स्वभावत: उसमे विलासी जीवनकी परम्पराएँ पनपी। अपने वर्गके बहुत अधिक लोगोकी तरह उसे भी विलासिता एवं कामनाके तूफानकी जिन्दगी मिली।

पर एक बातमे वह औरोसे भिन्न था। उसे किसीकी छाया अधिक दिनोतक नसीब न हुई। उसकी खुशहालीके पीछे यतीमी झाँक रही थी।

ख़ुशहालीके पीछे झाँकती यतीमी

उसीने उसको उच्छृङ्खल किया, दुनियाके खुले रास्तेपर अकेला छोड़ दिया, और उसीने हथौड़ोकी चोटसे इसको गढा और तूफ़ानी थपेड़ोसे इसमे जीवनकी गति उत्पन्न की। बचपनमे हम देखते है कि एक ओर आराम-आसाइशकी सब सामग्री प्रस्तुत थी, दूसरी ओर वह अनाथ था, तनसे भी और मनसे भी। इस सतहपर उसके दु.ख-दर्दकी इन्तहा नही थी। यह स्थिति जीवन भर चलती रही और कभी समाप्त नही हुई। दो बरसका था कि बाप मरा, पाँचका था कि चचा मर गये। बच्चा था और घरमे अभाव न था, इसलिए यह दर्द, कुछ समयके लिए अन्दर ही अन्दर दब गया, पर यह इसके जीवनका एक महत्त्वपूर्ण एव स्मरणीय तथ्य है कि पाँच बरसकी उम्रके बाद इसका कोई सरपरस्त न रह गया। किसीके आगे झुकनेकी जरूरत न रही, कोई अनुशासन न रहा

निर्बाध जीवनकी डगरपर

(इसीलिए गालिबके इश्कमे वह आत्मार्पणका भाव कभी न आया जो मासके मानवमे आध्यात्मिक अनुभूतियोकी सृष्टि करता है)। चचाके मर जानेके बाद दुनियाकी रगरलियोमे डूबनेका रास्ता खुल गया। कोई रोक-टोक न रही। जरा ही बडा हुआ कि दिल्ली आया और एक उच्च वंशकी

लडकी इसे गले बाँध दी गयी। वह सच्चे अर्थोंमे गले ही बँधकर रह गयी; कभी दिलमे न उतरी, आंखोमे न चमकी, पाँवोंमे गति न बनी, अरमानोंमें न उभरी। जीवनके अन्तिम क्षणतक खटपट रही। उधर इशरतकी कीमत चुकानेमे, जो पास था, समाप्त हो गया, घरकी चीजें बिक गयी और तब कठिनाइयोका जो सिलसिला शुरू हुआ वह ज़िन्दगी भर न टूटा। मरनेके बाद भी बाकी रहा। जिन्दगी सदा ऋणदाताओंकी मोहताज रही। ३० बरसमे भाई पागल होकर मर गया। कई बच्चे हुए पर एक न जीया।

स्थायी पतझड़का जीवन

जिसे गोद लिया वह भी चल बसा। पत्नीसे जिस जीवन-रसकी आशा थी, उसकी एक बूँद न मिली। ५० बरसकी उम्रमे जेल जाना पडा। इस प्रकार सुखके चन्द दिनो बाद दु ख जो आया तो जिन्दगी भर मेहमान बना रहा। जीवनके उद्यानमे चन्द दिन रहकर जो बहार गयी तो गयी, फिर सदा खिजाँकी सनसनाहट, तोड और कुरेदन बनी रही।

जीवनकी प्यास

वह दु.खमे पला। दु ख उसकी जिन्दगीपर छा गया किन्तु उसके अन्दर जो जीवनकी प्यास थी उसने कभी उसके प्राणको, दिलको मरने न दिया। उसने दु खोकी चुनौती स्वीकार की और सदा उनसे लड़ता रहा। कभी हथियार नही डाले। जिन्दगीकी घाटियोमे भटकता हुआ निराश भी हुआ और दु.खका, कलेजा मथनेवाला चीत्कार भी सुनाई दिया—

है सब्ज़ःज़ार हर दरो-दीवारे-ग़मकदः;
जिसकी बहार यह हो फिर उसकी ख़िज़ाँ न पूछ[1] ॥

× ×

[१. गमकद.—दु खपूर्ण घरके द्वार व दीवार, मुद्दतोकी वीरानीके कारण लम्बी घाससे भर गये है, यही इस गमकद.की बहार है तब हमारी खिज़ाँका हाल क्या पूछते हो ?

जिसे नसीब हो रोज़ेसियाह मेरा-सा
वह शख़्स दिन न कहे रातको तो क्योंकर[1] हो ?

× ×

ज़िन्दगी अपनी जब इस शक्लसे गुज़री 'ग़ालिब'
हम भी क्या याद करेंगे कि ख़ुदा रखते थे[2] ॥

पर गालिबकी विशेषता यही है कि वह इतनेपर भी कभी गमका शिकार नही हुआ। किस्मतपर रोया भी है—कलेजेको टूक-टूक करने-

रोदनको मुसकराहट-की गोदमें उछालने-वाला इंसान

वाला रोना, दिलोको हिला देनेवाला रोना, किन्तु फिर इस रोदनको मुसकराहटकी गोदमे उछाल दिया है; एक आत्मविनोद (सेल्फ-ह्यूमर) मे दु ख-दर्द खो गये है, और जीवन-की उमंगोके रंग फिर उभर आये है, कामनाके पंछीके डैने फिर फड़-फड़ाने लगे है।

मतलब यह कि दु खोमे निढाल होकर वह कभी न बैठा; सदा लडता ही रहा। मजिलपर बैठकर रोनेकी जगह, रोते-हँसते और लड़खड़ाते हुए राहपर आगे बढते जाना उसका शेवा था।

यह ठीक है कि गालिबका गम उस कोटिका नही था जो मानवता-के बन्धन तोडनेको उद्यत होता है, जिसमे आदमी आकाश-कुसुम तोड़ने

---

१ जिसे मेरे जैसा रोजसियाह—काला दिन—प्राप्त हो वह विवश है कि दिनको रात कहे क्योकि ऐसा काला दिन, दिन तो कहा नही जा सकता। (भला उस दिनकी सियाही कैसी होगी जिसके आगे रात भी दिन मालूम होती है ?) २. जब हमारी जिन्दगी ऐसे बुरे हालमे गुजरी (कि कभी कोई आरजू पूरी न हुई) तो हम भी क्या याद करेगे कि हमारा भी कोई ख़ुदा था।]

को बेचैन हो उठता है और दु खका गला मरोड़ कर, पस्तीकी पसलियाँ तोडकर निराशाओके शव-पुजपर जीवनकी ज्योति और आशाके शंख फूँकता है तथा स्वप्निल आत्माओको, ख्वाबीदः रूहोको बेदार कर देता है—संसारका चेहरा बदल देनेवाला गम जो इसानको अर्शपर उछाल देता है, वह गम जो बुद्ध और गाँधीमे फूटता है, या और नज़दीक और नीचे स्तरपर उतर कर कहे तो वह गम जो 'हाली', 'जोश' और 'फैज' वगैराको बेचैन कर देता है। स्वभावतः उस माहौलमे, उस वातावरणमे, जिसमे गालिब पला था यह सम्भव न था पर यह गम ऐसा भी नही है कि 'मीर'के गमकी भाँति कलेजेके पोर-पोरमे समा जाय, निकाले न निकले, हटाये न हटे, और जिन्दगीपर एक अपरिवर्तनीय ऋतुकी तरह छा जाय; गम जो जिसे छूता है उसे रुलाता है और रुलाता है, जिसकी आँखोंपर उतरता है उसकी ज्योति छीन लेता है, जिसको डँसता है उसे सदाके लिए अपने आगोशमे, आलिगनमे, यो जकड़ लेता है कि फिर छुटकारा नही।

अर्शपर उछालनेवाला ग़म नही

वह ग़म भी नही जो कभी दूर न हो

इन दो आत्यन्तिक सीमाओके बीच एक गम और होता है, जो स्वस्थ इसानका गम है, वह गम जिसमे बिखरे हुए मजारोके बीच भी जिन्दगीके मेले लगते है; वह ग़म जिसमे इसान रोता है पर रोकर समाप्त नही हो जाता, और धुल जाता है, जिन्दगीके लिए और शक्ति प्राप्त करके उठता है। गालिबका ग़म उस मानवका ग़म है जो ऊबकर, निराश होकर संसारका त्याग करनेको उतावला नही होता, बल्कि उसके बावजूद, क्या उसके कारण, दुनिया तथा उसकी चीजोसे और मुहब्बत करना सीखता है। हर कठिनाई, हर दु.ख उसे बताता है कि यह दुनिया कितनी सुन्दर, कितनी प्राणोन्मादक, कैसी मोहक है।

दुनियासे मुहब्बत सिखानेवाला गम

ग़ालिब हर हालतमे इसी दुनियामे रहना चाहता है और इसी दुनियाका रस और स्वाद लेनेके लिए प्रयत्नशील है। तूफान आते है, पैर लड़खडा जाते है; जब वह स्वाद नही मिलता तो दु:खी और निराश भी होता है पर कभी दुनियाका तिरस्कार नही करता। उसमे दुनियाके प्रति घृणा नहीं; एक अटूट लगाव है। इसीलिए गालिबका गम मारक नही है। वह जीवनका ऐसा श्रृंगार है जिसमें कामनाओका हुस्न अपनी अगणित अदाओके साथ मचलता है; जिसमे जीवनकी गति है; जीवनका नर्त्तन है।

मुग़लका रंग

गालिब मुगल था। जीवनके विषयमे मुगलका दृष्टिकोण उत्फुल्लताका दृष्टिकोण है। मुगल रक्तमे धर्म और मजहबकी प्यास शिथिल होती है और जीवनकी रॉनाइयो एवं रंगीनियोके प्रति उसमे तीव्र आकर्षण होता है। स्वभावतः वह विलासी एवं काव्य-संगीत तथा सौन्दर्यका प्रेमी होता है। गालिबमे भी यही रंग उभरा मिलता है।

यह अदम्य प्यास ही जीवनका उत्स और काव्यका प्राण है

उसमे संसारके प्रति कामनाका प्रबल आग्रह है। संसारके प्रति यह अदम्य प्यास ही उसके जीवनका उत्स है, उसके काव्यका प्राण है। अमित कामनाएँ उसके जीवन और काव्यसे फूटती है। आले अहमद 'सुरूर'ने ठीक ही लिखा है—"उन्हे बचपनकी तफरीहात[1], जवानीकी रँगरलियों, ऐशोइशरत[2]की बहारों, सबमे हिस्सा मिला, अगर्चे उनके अरमान निकलनेपर भी न निकले*। वह दरियासे सैराब[3] होते हुए भी प्यासे रहे। यह तिश्नगी[4], यह प्यास,

---

१. सैर-सपाटा, विहार, मनोरंजन, २. विलास, ३ लब्रेज, पूर्ण छके हुए, ४. पिपासा।

* हज़ारों ख्वाहिशे ऐसी कि हर ख्वाहिश पै दम निकले,
बहुत निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले।

यह बेचैनी, यह बहुत कुछ हासिल[1] होते हुए भी बेहासिलीका एहसास[2] मामूली नही है।"§

और यह अमित प्यास किसी छिछोरेकी प्यास नही है। औरत और शराब कोई उसकी जिन्दगी नही हैं, जीवनके उल्लासके साधन-मात्र है। वह नशा करता है पर नशेबाज नहीं है, नशा एक मस्तीका साधन भर है—

मयसे ग़रज़ निशात[3] है किस रूसियाहको[4],
एक गूनः बेखुदी मुझे दिन-रात चाहिए।

इसी प्यासने उसे गति दी है। वह जानता है कि जीवन स्वयं गति है। जिन्दगी एक प्रवाह है, एक रवानी है, एक सफर है। मृत्यु एक ठह-

जीवन गति है

राव है, एक मंजिल है, एक गतिहीनता है। इसीलिए वह मंजिलका नही राहका कवि है। जब तक गम है, .खुशी है, चल-चलाव है, गति है, तभी तक यह जिन्दगी है। इसलिए वह बराबर चलते रहनेमे विश्वास रखता है। यहाँ आयु निर्बन्ध होकर नाच रही है। उसपर किसी प्रकारका नियन्त्रण नही है—

[5]रौमें है [6]रख्शे उम्र कहाँ देखिए थमे,
नै हाथ बागपर है न पा है रकाबमें।

[आयुका अश्व—काल अश्व—इस तीव्र गतिसे भाग रहा है कि बाग हमारे हाथसे और पाँव रकाबसे निकल गये है; कुछ मालूम नही कि यह कहाँ जाकर थमता है।]

---

१ प्राप्त, २ अनुभूति, ३ ऐश, ४. कृष्णमुख, पापी, ५ गति, ६ लाल और सफेद घोडा।

§ नक्दे गालिब, पृ० १२०।

यह मानसिक स्थिति है कि निष्क्रिय शान्तिकी अपेक्षा जिन्दगीका शोर-गुल और हगामा, फिर चाहे वह रोना ही हो, अच्छा लगता है। कहते है—

एक हंगामः पै मौक़ूफ़ है घरकी रौनक़,
नौहए ग़म[1] ही सही, नग़्मए शादी[2] न सही।

[घरकी शोभा एक चहल-पहलपर निर्भर है। इसलिए आनन्दका गान न हो तो शोकका गीत ही चलता रहे।]

यह उमग है कि वधस्तम्भकी ओर जाते हुए भी जिन्दगीकी वही अकड और आह्लादका वही रंग है—

[3]मक़तलको किस निशात[4]से जाता हूँ मैं कि है,
पुरगुल ख़याल ज़ख़्मसे दामन निगाहमें।

इसीलिए गालिबका दु ख जीवनको और मोहक बनाता है। फिर यह गम भी अनेक कोटियोमे बँटा हुआ है। इन कोटियोमे इश्कका गम (प्रेम-वेदना) श्रेष्ठ है क्योकि इसमे जीवनानन्द है, क्योकि यह दर्द भी है और दवा भी है—

इश्क़से तबीयतने ज़ीस्त[5]का मज़ा पाया,
दर्दकी दवा पाई दर्द बेदवा पाया।

फिर जब गम जिन्दगीसे लिपटा हुआ है तब इश्कके गमसे बच भी जाते तो दुनियाका गम, जीविकाका गम, कोई और गम तो होता ही। तब यही अच्छा है—

ग़म अगर्चे जाँगुसिल[6] है पै कहाँ बचें कि दिल है,
ग़मे इश्क़ अगर न होता ग़मे रोज़गार होता।

---

१. शोकका गीत, २ आनन्दगान, ३. वधगृह, ४. आह्लाद, ५ जीवन, ६ हृदयविदारक, प्राणघातक।

गालिबके सारे जीवनमे कोई न कोई गम दिखाई पड़ता है। कभी इश्कका गम है, कभी रोजगारका गम है. यहाँ तक कि कभी अस्तित्वका गम (गमे हस्ती) भी है। पर इन गमोको उलीचकर उसने सुख और हास्यके झरने वहा दिये है। बहुत दु.ख उठाया है. उसकी जिन्दगी आखीर तक दु:खोसे भरी रही।

ग़मोको चीरकर बहते हुए सुख और हास्यके झरने

वचपनसे वृद्धावस्था तक दु ख ही दु ख—यतीमीका दु.ख. संतानहीनताका दु ख, स्त्रीका दु.ख, पैसेका दु.ख, उत्तरकालमे अपने साथियो-सहयोगियोसे विछुडनेका दु.ख—मोमिन मरे, इमामबख्श सहबाई तोपसे उड़ा दिये गये, मयकशका प्राण गया, आजुर्दाको कालापानी हुआ, शेफ़्ता दण्डित हुए—दिल्लीकी सल्तनत खत्म होनेका दु ख, दुनिया-द्वारा अपनी ठीक पहिचान न होनेका दु ख, वंश-मर्यादा निभानेकी कठिनाइयोंका दु ख। पर ये दु ख कभी उसकी जिन्दगीकी हविस तोडनेमे समर्थ न हुए। ऐसा नही कि असफलताकी निराशाने दिलको छेदा नही। गालिब निराश हुआ है और खूब हुआ है। सीनमे कलेजेका दर्द सीमाको पहुँच गया है और कह भी डाला है—

खमोशीमें निहाँ .खूँगश्तः लाखों आरज़ूएँ हैं,
चिराग़े मुर्दः हूँ मैं बेज़बाँ गोरे गरीबाँका।

[हमारे मौनमे लाखो कामनाएँ खून हो-होकर, प्रच्छन्न हो गयी हैं। मै वेजवान परदेशियोकी कब्रोका मृत—बुझा हुआ—दीपक हूँ।]

पर जो आदमी स्वर्गके लिए भी दुनियाके आराम-आसाइश और मजे छोड़नेको तैयार नही हुआ वह निराशामे कवतक पडा रह सकता था। एक क्षणकी पस्ती और फिर वही जिन्दगीका झटका, जो कहता और कहलाता है —

न होगा यक बयाबाँमाँदगीसे ज़ौक़ कम मेरा,
हबाबे मौजए रफ़्तार है नक़्शे क़दम मेरा।

[एक बयावानको पार करनेकी थकान मेरी (यात्राकी) उमंगको कम नही कर सकती। मेरा पद-चिह्न मेरी गतिकी तरंगमे सिर्फ बुद्बुद्की भाँति है। अर्थात् जैसे लहरोमे अगणित बुलबुले उभरते रहते है पर उनका लहरोंकी गतिपर कोई प्रभाव नही पड़ता वैसे ही इस यात्रामे मेरे चरण-चिह्नोका मेरी गतिपर कोई असर नही है, थकानसे मेरी उत्कण्ठामे कोई कमी नही आई है।]

यह विश्वास ही ग़ालिबका ऐश्वर्य है।

अपनी शक्तिमे यही दृढ विश्वास गालिबका ऐश्वर्य है। यही विश्वास जीवनको गति देता है—गति जो, परिवर्तनोके बीच भी, अगणित स्वादों-का अर्घ्य लिये उसके पास आती है। एक फ़ारसी क़सीदेमे तो उसने यहाँ तक कहा है—"मेरा उन्माद मुझे बैठने नही देता। आग जितनी तेज है उतना ही मै उसे हवा दे रहा हूँ। मौतसे लड़ता हूँ और नंगी तलवारोपर अपने जिस्मको डालता हूँ। तलवार और कटारसे खेलता हूँ, तीरोको चूमता हूँ।" यह वृत्ति उसके

जहाँ गम ग़म नहीं सुखकी सीढ़ी है।

गममे एक अजीब कशिश पैदा कर देती है, एक अद्भुत आकर्पण भर देती है, यहाँ तक कि गम गम नही रह जाता, सुखकी सीढियाँ बन जाता है। दु खको सुखमे ढाल देनेका यही करिश्मा ग़ालिबके काव्य-का प्रधान तत्त्व है, यही उसके काव्यकी जीवन्त पृष्ठभूमि है।

× ×

गालिबने इश्क किया, गृहस्थी बनाई, दोस्ती की, मनकी गहराइयोमे पैठा पर ऐसा कभी न हुआ कि एक बिन्दुपर पहुँच कर रुक गया हो, एक तत्त्व या तथ्यमे केन्द्रित होकर रह गया हो। अन्तर एवं वाह्य दोनो

उसके जीवनानन्दके साधन है। 'मीर'मे यही न था। वह अन्तरकी दुनियासे कभी वाहर न निकले; अन्तर एवं वाह्य दोनोंको मिलानेकी कभी कोशिश न की। इसीलिए उनमे वेदना और अनुभूतिकी गहराइयाँ है, अतलस्पर्शी पकड है। दिलकी एक ऐसी दुनिया है जिसका चप्पा-चप्पा उनका जाना हुआ है। वह उसी पर मुग्ध है, उसीमे खो गये है। वाहरी दुनियाकी ओर नजर ही नही डालते। पर गालिब, दिलके दयारमे सैर कर लेनेके वाद वाहर भी निकल आता है और वहाँकी बहार और खिजाँका आनन्द भी लूटता है। उसमे एक अद्भुत व्यापकता और विविधता है। केमरेके शीशेकी तरह जो कुछ सामने आया उस सवका प्रतिविम्ब उसके मानसने ग्रहण कर लिया। यहाँ दिल धडकता है पर हुस्नकी अदाकारियोपर निछावर भी होता है, यहाँ भावनाकी दृष्टि है पर मासलताका स्पर्श भी है।

ग़ालिब और मीरके मानसिक निर्माणमें अन्तर

मैने ऊपर कही लिखा है कि गालिवमे एक मुगलकी दुनिया-परस्ती और तवीयतकी रगीनी है। पर यदि इतना ही होता, यदि उसके जिस्ममे दौडते हुए गर्म-गर्म खूनकी माँग वहुत तेज होती तो उस जमानेके मुगलोकी तरह बीबीको, जो उसकी स्वच्छन्दताके पाँवमे वेडी-जैसी थी और जिसे वह सदा वैसी अनुभव करता रहा, छोड़ रँगरलियोमे डूब जाता। अगर एक भारतीयकी अनुभूति तीव्र होती तो वह घर छोडकर फकीर हो जाता, फिर चाहे तसव्वुफके रग उसमे उभरते या जाहिद और वाइजका रोल वह इख्तियार करता। या फिर ऊँचाईपर निखर कर प्रवक्ता वन कर एक संदेश, एक पयाम देनेकी कोशिश करता। पर वैसी वात न थी। उसमे अनेक व्यक्तित्वोका सामञ्जस्य था, अनेक धाराएँ एक हो गयी थी। यह व्यक्तित्व-बहुलता (Multiplicity of Personality) गालिबको समझने-पानेकी एक प्रधान कुजी है।

ग़ालिबकी कुञ्जी

गालिब खूनसे मुगल, स्वभाव एवं रुचिसे ईरानी तथा रहन-सहनके संस्कारसे हिन्दुस्तानी है। अन्दरसे असीम प्यास लिये हुए भी, मुगल खूनकी वह गर्मी लिये हुए भी, जिसमे ऐशोइशरतकी, विलासिताकी अक्षय माँग है, छिछोरा नही है। उस गर्मी और प्यासपर भारतीय संस्कृतिकी शालीनता एवं ईरानी संस्कृतिकी विश्वानन्दी धाराकी कुछ न कुछ छाप स्पष्ट है। स्वभावतः उसकी प्यास एक ऐसे स्वस्थ मानवकी प्यास बन गयी जिसकी रगोमे गर्म खून बहता है, पर जिसके दिमागमे मानवी मूल्योका एहसास भी है। डा० अब्दुल लतीफने लिखा है कि "गालिबका इश्क बिलकुल माद्दी है, उसकी माशूक बाजारू है।" यह सही है, पर एक सीमातक। इसमे सत्य है, पर आंशिक। उसमे कही-कही बाजारूपन जरूर आ गया है, पर वह बाजारू नही है। वह न स्वर्गीय है, न बाजारू, वह औसत इन्सान है। माद्दी भी है, क्योकि जैसा मै कह चुका हूँ, गालिबके लिए जो कुछ है, यही दुनिया है—इसके बाद जो कुछ है, उसमे उसको विश्वास नही।★ वह इसी दुनियाका है—अगणित जिह्वाओसे दुनियाका रस और स्वाद लेनेवाला, कामनाके अगणित नयनोसे उसकी सौन्दर्य-भंगिमाओको देखनेवाला, कल्पनाके सहस्र-सहस्र करोसे उसे स्पर्श करनेवाला। हम इसे पसन्द न करें, यह और बात है। निजी रूपमे मै स्वय इसे पसन्द नही करता।

क्या उसकी माशूक़ा बाज़ारू थी ?

पर असलियत यह है कि वह इस भौतिक जगत्मे ही अन्तर्जगत्, अतीन्द्रिय जगत्का सौन्दर्य देखता है। इसीलिए प्रेयसीके हुस्नकी सौ-सौ अदाएँ उसे खीचती है। वे अदाएँ, जो ज्यादा गहरे, अध्यात्म-प्रवण व्यक्तियोके अन्तर्मनको एक गूढ एवं रहस्यमय स्वाद, एक अव्यक्त आनन्दसे

★ हमारे बच्चनकी तरह जो कहते है—

इस पार यहाँ मधु है तुम हो उस पार न जाने क्या होगा ?

भर देती है, गालिबमे स्पर्श और ग्रहण, चुम्बन और आलिंगनकी प्यास पैदा करती है। गालिब इसे छिपाता नही; वह कभी संकेत नही करता कि उसका प्रेम ईश्वरीय है, वह कभी नही कहता कि उसकी प्रेयसी तसव्वुफकी कभी पकड़मे न आनेवाली और एक छलावे-सी अदृश्य हो जानेवाली प्रेयसी है। उसका प्रेम मानवी है; उसकी प्रेयसी मानवी है, उसका सौन्दर्य मानवी है, उसकी, पकड़ मानवी है। स्वभावतः उसमे बार-बार देखनेकी कामनाएँ उठती है, उसमे स्पर्शकी भावनाएँ मचलती है, उसमे माशूकको आलिंगनमे आबद्ध करनेकी तृष्णा है। पर इस हविस, इस तृष्णामे छिछोरापन नही है, बाजारूपन नहीं है। यहाँ प्रेयसीके सौन्दर्यमे ही विश्वका सौन्दर्य, अपनी सम्पूर्ण मोहक भंगिमाओ, दिलकश अदाओके साथ आकर सिमट गया है। यहाँ त्याग नही है, पर केवल भोग भी नही है या यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि भोगके लिए भोग नही है, वह एक अक्षय अतृप्तिमूलक तृप्तिके साधन-रूपमे है। इसीलिए उसमे एक रख-रखाव, एक सन्तुलन भी है।

मानवी प्रेयसी

यहाँ उस वातावरणका स्मरण फिरसे दिलानेकी आवश्यकता है जिसमे गालिबका पालन-पोषण हुआ। वह एक उच्च मुगल घरानेमे पैदा हुआ, ईरानी संस्कारोके तीव्र गन्धयुक्त वातावरणमे पला। फारसीयत उसकी घुट्टीमे थी—वह फारसीयत जो गुल और बुलबुल, मय और मीनाके कभी खत्म न होनेवाले दास्तानसे भरी हुई थी। उसकी निश्चित परम्पराएँ थी। फिर वह मुगल सभ्यता एव शासनके सन्ध्याकालमे जन्मा और बढा। पिता और चचा कोई ऐसे सस्कार डालनेके पूर्व ही चल बसे जो उसकी जिन्दगीमे अनुशासन लाते। वह सोलह आना रईसजादा, एक रईसजादीसे विवाहित, उसकी संगत भी रईसजादोकी थी जिनमेसे अधिकाश जिन्दगीकी बाहरी खुशियो एव ऐशोइशरतमे डूबे हुए थे। इसलिए गालिबके अन्तर्मुख होनेका कोई सवाल ही न पैदा होता था। उसकी विशेषता यही है कि ऐसी परिस्थितिमे

वातावरण और संगति

भी उसने जिन्दगीकी लड़ाई खुद लडी, कभी उससे भागा नही और अपना रास्ता खुद बनाया—जीवनमे भी और काव्यमे भी। स्वभावतः उसके काव्यमे न तो आकाशमे उड़नेवाले देवोकी वाणी है, न कीचड़मे रेंगनेवाले वासना-कीटोका चीत्कार है। वह इन दोनोके बीचकी चीज है; वह एक भरपूर मानवकी वाणी है और यह गालिबका कैरेक्टर है कि उसने अपनेको कभी नही छिपाया, जैसा था वैसा ही जाहिर किया। जहाँ प्रकट न करना था या कोई आवश्यक न था वहाँ भी अपनेको स्वाभाविक रंगमे ही रखा, जिसमे पहिचानमे कोई धोखा न हो (यद्यपि खुद धोखा खाने और धोखा देनेवाले समीक्षको एवं व्याख्याकारोने उसे इसपर भी नही बख़्शा)। जीवन और काव्य सबसे उसकी यह ईमानदारीकी भावभूमि बिलकुल स्पष्ट है।

इसीलिए उसके काव्यमे हुस्नकी मचलती हुई तस्वीरोकी बहुतायत है। काशी और कलकत्तामे उसने जो सौन्दर्य देखा उसपर लहालोट हो गया है। निश्चय इस सौन्दर्यमे, जिसे सौन्दर्यकी अपेक्षा रूप कहना चाहिए, शारीरिक आकर्षण है, कोई अशरीरी अनुभूति नही। पर इसमे बुतोके आकर्षणका ही नही, प्राकृतिक हरीतिमाके आकर्षणका भी जिक्र है:—

वह सब्ज़:ज़ारहाए[1] मुतर्रा[2] कि है ग़ज़ब
वह नाज़नी[3] बुताने ख़ुदआरा[4] कि हाय हाय।
सब्रआज़मा[5] वह उनकी निगाहें, कि हफ़ नज़र[6],
ताक़तरुबा[7] वह उनका इशारा कि हाय हाय।

---

१. हरीतिमाएँ। २. तरावट देनेवाली। ३. सुकुमारियाँ। ४. स्वयं-सज्जिता प्रतिमाएँ। ५. धैर्य-विघातक। ६. नज़र न लगे। ७. साहस और शक्ति देनेवाला।

इसी प्रकार दिल्लीमे भी एक प्रेयसीकी मृत्युपर जो 'नौहा' (शोक-गीत) लिखा था उसमे एक मानवी प्रेयसीके चिरविरहका रोदन है, उसमे मासल कामनाओकी कराह है। गालिबने कही यह इशारा तक नही किया है कि उसका प्रेम अमानवीय, अशरीरी और वासनारहित है। बल्कि वासना ही उसके जीवनका सत्य है। पर वासनाका ग्रहण उसने इस ईमानदारी और निष्ठाके साथ किया है कि वासना वासना नही रह जाती। आत्यन्तिक आग्रह एवं निष्ठाके कारण उसमे एक प्रकारका आध्यात्मिक सौन्दर्य पैदा हो गया है।

वासना ही जीवनका सत्य है

गालिबका काव्य शरीर-सौन्दर्य एवं मांसल प्रेमका काव्य होकर भी किसीको गिराता नही। उसमे लगावट है पर गिरावट नही। उसमे आग्रह है पर पशुत्व नही, उसमे प्यास है पर विप नही। उसमे दर्दकी तमन्ना है पर जिन्दगीका एहसास भी है, उसमे बेहोशी है पर एक अद्भुत सजगता भी है। उसमे भोग है पर कुछ न कुछ अर्पण भी है। वह अगणित जिह्वाओसे जीवनका रस चूसता है पर चूसकर रस दूसरोको देता भी है।

इसीलिए घोर सांसारिक वासनाओका कवि होकर भी वह इंसानको इस गहराईके साथ प्यार करता है, दूसरोके बच्चोको अपने बच्चोंकी तरह अपना लेता है, दोस्तो एवं शिष्योपर जान देता है, हर एकके दुःख-दर्दका शरीक है। इसीलिए उसमे दुनियाके प्रति वह प्रीति और निष्ठा है कि इसे छोड अमरताका सौदा करनेवाले खिज्रको ललकार कर कह सकता है —

वह ज़िंदः हम है कि रूशनासे ख़ल्क[1] ऐ ख़िज्र,
न तुम कि चोर बने उम्रे जाविदाँके[2] लिए।

---

१. संसारका परिचय रखनेवाले, २. अमर जीवन।

[ऐ खिज्र ! जिन्दा तो असलमे हम है कि दुनियामे चलते-फिरते और उससे पहचान रखते है न कि तुम जो अमर होनेके लिए चोर वने ।]

इसी निष्ठाके कारण, इसी ईमानदारीके कारण उसमे मानवीय संवेदनाओका वह निखार है जो सूफी और जाहिदमे नही मिलता । यह ठीक है कि वह अपनी आवश्यकताओके लिए गिड़गिडाता भी है, पर यह न भूलना चाहिए कि दूसरोको भीख माँगते देख, उनकी वेदना अनुभव कर, दर्दसे कराह भी उठता है । तीव्र एव प्रबल आसक्तियोके इस मानवकी जड़ोमे एक प्रकारकी फकीरी, एक अनासक्ति है । एक जागरित सच्चे मानवकी तीव्र सवेदना उसमे है; विना इसके क्या वह एक मित्रको, अपने एक निजी पत्रमे लिख सकता था—

तीव्र आसक्तियोंके मूलमें एक अनासक्ति भी है

"क़लन्दरी[1] व. अजादगी व असियारो करम[2] के जो दुआवी[3] मेरे ख़ालिकने[4] मुझमे भर दिये है, बकदर हजार[5] एक जहूर[6] मे न आये । न वह ताकत जिस्मानी[7] कि एक लाठी हाथमे लूँ और उसमे शतरंजी और एक टिनका लोटा मय सूतकी रस्सीके लटका लूँ और प्यादा पा चल दूँ, कभी शीराज जा निकला, कभी मिस्रमे जा ठहरा, कभी नजफ जा पहुँचा;

न वह दस्तगाह[8] कि एक आलमका मेज़बान बन जाऊँ ।
अगर तमाम आलममें न हो सके न सही,

जिस शहरमें रहूँ उस शहरमें तो कोई, नंगा-भूखा नज़र न आये ।

ख़ुदाका मकहूर[9], ख़ल्कका मरदूद, बूढा, नातवाँ[10], बीमार फकीर,

---

१. फक़ीरी, २. श्रेष्ठता और कृपा, ३. दावे, ४. कर्त्ता, ५. हजारमे एक भी, ६. व्यक्त, ७. शारीरिक शक्ति, ८. सामर्थ्य, ९ दैत्रकोपग्रस्त, १०. दुर्बल ।

नक्वत[1] मे गिरफ्तार। मेरे और मआमलात कलाम व कमालसे कतअ-नजर करो;

वह जो किसीको भीख माँगते न देख सके, और ख़ुद दर बदर भीख माँगे, वह मै हूँ।"

ऐसे समय उसकी निराशा समाजगत हो जाती है; उनका निजी दु:ख युग-वेदनामे परिणत हो जाता है और अपनी असमर्थतापर कह उठता है—

न गुले नग़मा हूँ न पर्दए साज़[2]।
मैं हूँ अपनी शिकस्त[3] की आवाज़।

यह 'अपनी शिकस्त' उसकी शिकस्त नही है। यह उस समाज-व्यवस्थाकी पराजयकी वाणी है जिसके पास एहसास तो था, अनुभूतियाँ तो थी पर निर्माणका कोई नया स्वप्न नही था।

गालिबका जैसा निर्माण था उसमे उससे यह आशा नही की जा सकती कि वह एक नई दुनियाका सन्देश देगा, एक नये जगत्की राह दिखायेगा। इच्छा होती तो भी वैसी शक्ति न थी। वह ठीक-ठीक देख भी न पाता था कि नया मानव कब आयेगा या कैसा होगा पर उसकी विशेपता यह है कि वह पुरानेसे बँधा होकर भी नवीनका स्वागत करनेको उत्सुक है। ठीक राह उसे ज्ञात नही है पर उसकी खोजमे हर एक तेजीसे चलनेवालेके साथ कुछ दूर जाता है; गलती मालूम होनेपर रुक जाता है—

राहसे बेख़बर पर नवीन-का स्वागत करनेको उत्सुक

चलता हूँ थोड़ी दूर हर एक तेज़ रौके साथ,
पहचानता नहीं हूँ अभी राहबरको मै।

---

१. दरिद्रता, कगाली, २. बाजेका पर्दा, ३. पराजय।

वह नवीन मानवके निर्माणमे क्रियात्मक भाग न ले सका—नही ले सकता था पर एक वस्तुवादीकी भाँति उसके निर्माणकी प्रबल आशा उसमे थी। वह इतना समझ गया था कि पुरानी व्यवस्था मिट रही है पर उसके कारण एवं परिणामको वह देख न पाता था। फिर भी वह 'मृत प्राचीन' की उपासनाका स्पष्ट विरोधी था* और कहता था कि 'हर पुरानी चीज दुरुस्त नही।' उसने जड परम्पराओंका उपहास करते हुए कहा—

तेशें बग़ैर मर न सका कोहकन 'असद',
सरगश्त-ए-ख़ुमारे रसूमो क़यूद था।

[ऐ 'असद' कोहकन (फरहाद) बिना कुदाल (मारे) न मर सका। बेचारा एक परम्परा और बन्धनके नशेमे मस्त था!]

वह नवीन जीवनके अभिनन्दनके लिए तैयार रहता था इसीलिए १८५७के गदरमे, गहरी आत्मवेदनाके बावजूद वह तटस्थ रहा क्योंकि वह जानता था कि यह व्यवस्था मिटकर रहेगी। यद्यपि इस उपक्रममे उसके ही वर्गका विनाश निहित था और एक इंसानकी भाँति उसे इसका अफ़सोस भी था, फिर भी वह समझता था कि इसे मिटना ही चाहिए।

उसपर जो अपवाद लगाये जाते है वे केवल इस बातको भुला दिये जानेके कारण लगाये जाते है कि वह अनेक धाराओ, अनेक व्यक्तित्वो और विविधताओका कवि है। उसमे एक साथ अनेक मानस-ससार प्रतिफलित है। उसमे प्रायः परस्पर-विरोधी तत्त्व है। एक ओर घोर अहं, दूसरी ओर जन्मभर नवाबो, राजाओ और शासकोकी ख़ुशामद, एक ओर वासना-बाहुल्य दूसरी ओर घर-गृहस्थीके बन्धनोकी सँभाल, एक ओर

एक मानवमें अनेक मानव

---

* सर सय्यदको लिखा था—मुर्दापरवर्दन मुबारककार नेस्त। (मुर्देको पालना श्रेय कार्य नही है।)

मानव-वेदनाकी अनुभूति एव ग्रहण, दूसरी ओर अपनी ही पत्नीकी निराशा और गहरी जीवनव्यापी वेदनाके प्रति उपेक्षा, एक ओर भावुकता दूसरी ओर प्रवल वस्तुवादिता, एक मानवमे अनेक मानवोकी अभिव्यक्तिकी भाँति गालिब था। एक फारसी शेरमे अपनी प्रकृतिकी विविधताकी ओर ध्यान दिलाते हुए अपनी प्रेयसीसे कहता है:—

दबीरम, शायरम, रिंदम, नदीमम, शेवःहा दारम,
गिरफ़्तम रह्म बर फ़रियादो अफ़गानम नमे आयद।

उसकी ख़ूबसूरती यही है कि सारी विविधताएँ, सारे विरोधाभास, उसकी उस सर्वग्राहिणी, अन्तर्भेदिनी पिपासित दृष्टिके सामने आकर एक पुष्प-गुच्छकी भाँति व्यवस्थित हो गये है जो लाला वो गुलमे भी, प्रकृतिमे भी मानवी सौन्दर्यको देख सकी थी—

सब कहाँ! कुछ लालः वो गुलमें नुमायाँ हो गयीं।
ख़ाकमें क्या सूरतें होंगी कि पेनहाँ हो गयीं।

गालिब संसारका प्रेमी, मानवी सौन्दर्य एवं प्रेमका पुजारी, अमित कामनाओका कवि, अनेक अन्तर्विरोधोका आकर, अनेक व्यक्तित्वोका व्यक्ति, अपनी भावना एवं कल्पनामे डूबा पर अपने दिमागको उनसे ऊपर रखे, भावुक होकर भी वस्तुवादी, पुराना होकर भी नया, गमके सुरोमे ख़ुशीके राग गानेवाला ऐसा इन्सान है जो जाफरीके शब्दोमे 'प्राचीनताकी खिडकीसे नये युगको देख रहा था।'

ग़ालिबके काव्यमें दर्शन

कुछ समीक्षकोने गालिबके काव्यसे इधर-उधरके उद्धरण देकर यह सिद्ध करनेका प्रयास किया है कि वह एक दार्शनिक थे और उनका काव्य गम्भीर दार्शनिक चिन्तन-कणोसे पूर्ण है। दूसरोने इसके बिलकुल विपरीत उन्हे एक ऐसे सामान्य कविके रूपमे उपस्थित किया है जिसकी वाणीसे निम्नस्तरीय भोग-विलास तथा वासनाओकी दुर्गन्ध आती है। यह इस बातका उदाहरण है कि आजकी समीक्षा गहरी चिन्ता और अनुशासित विचार-शृङ्खलाका परिणाम नही, मनका एक अनियन्त्रित उद्‌गार मात्र बनकर रह गयी है। वह सस्ती भावनाओंकी तरंगोपर बहती है और निजी रुचिकी आँधियोमे तिनके-सी उड़ती फिरती है। इस तूफानी वातावरणमे अच्छो-अच्छोके कदम उखड़ रहे है। ऐसे समय इस विषयपर कुछ कहना एक दुस्साहस ही है।

क्या ग़ालिब दार्शनिक थे ?

पर इतना तो निश्चित है कि गालिब कोई दर्शनशास्त्री या तत्त्ववेत्ता न थे। तत्त्ववेत्ता जीवन और विश्वके दृश्य रूपके अन्तरालमे पैठकर, सामने होते हुए अगणित परिवर्तनोके पीछे जो सत्य होता है उसे एक विशिष्ट केन्द्रीय बिन्दुसे देखता है और उसीके प्रकाशमे प्रत्येक वस्तु या सत्ताका निरीक्षण करता है; अपने एवं चतुर्दिक् फैले जगत् और जगत्‌से भी परे जो जीवन है उसकी व्याख्या करता है। वह एक आत्मकेन्द्रित व्यक्ति होता है; सबके विषयमे उसका एक निश्चित दृष्टिकोण होता है।

दार्शनिकका कार्य

मानव-वेदनाकी ।स एक विशाल दर्पणकी भाँति होता है जिसके कलेजेमें और गजल्भावलियाँ इठलाती हुई प्रतिविम्बित होती हैं; जिसकी दुनियामे वसंतागमकी अँगड़ाइयाँ जिन्दगीके सौ-सौ सपने लिये आती है, पर जहाँ खिजाँके दर्द भरे चीत्कार भी बुलबुलके प्राणमे समा जाते है, जहाँ जीवनका विलास है तो मृत्युकी विभीषिका भी है; जहाँ हुस्नोइश्ककी अदाएँ, अठखेलियाँ और प्राण-मुग्धकर सकेत है तो विरह-अश्रुकी नदियोका उफान भी है। श्रेष्ठ कवि चाहकर स्वयं (वजात खुद) दार्शनिक नही होता; हाँ उसकी कल्पनाएँ और अनुभूतियाँ गम्भीर सत्योको कभी-कभी स्पर्श कर लेती है और उसमे दार्शनिक तत्त्वोकी झलकियाँ फूट पडती है। कविकी पकड़ प्रज्ञाकी पकड़ नही है; वह कल्पनाकी पकड़ है। वह कल्पनाके पखोपर भावनाके अनन्त आकाशमे उडता है और रंगीन दर्पणकी भाँति उसके मानसमे पड़नेवाली छाया भी रंगीन होती है। इस प्रकार वह शुद्ध दार्शनिक नही हो सकता। हाँ, जीवन एव जगत्‌के दार्शनिक छायाचित्र, अनुभूतिके रंगीन प्रतिविम्ब हमारे मनपर फेकता है।

कविका कार्य

न तो ग़ालिबकी जीवन-शैली, न उनका काव्य-क्षेत्र ऐसा था कि वह दुनियाको एक निश्चित सन्देश दे सकते। ससारमे ऐसे कवि भी हुए हैं जिन्होने हमे एक जीवन-दर्शन दिया है। पर साहित्यके इतिहासमे उनकी ख्याति कविके रूपमे उतनी नही है जितनी जातीयता या मानवताके पथ-दर्शकके रूपमे है। वे जीवनमे सत्यके साधक होते है। जीवन-शोधन उनका प्रमुख साध्य होता है। गालिबमे कही इस प्रकारके जीवनके लिए कोई तड़प नही, तडप क्या उत्कण्ठा ही नही। बचपनसे लेकर जीवनके अन्त-तक वह जिस वातावरणमे रहे-सहे, जो संस्कार ग्रहण किये उनमे कभी अन्तर्दृष्टि न रही, सदा वह दुनिया और उसकी रंगीनियोंको कलेजेसे लगाये रहे। खुद ही कहा है—

जीवन-दर्शन देनेवाले कवि

ग़ालिब उनमें नही

जानता हूँ सवाब ताअतो जुह्द[1],
पर तबीयत उधर नहीं आती।

ऐसे आदमीसे तत्त्व-विवेचन या दर्शनकी आशा करना एक ज्यादती है। फिर संसारमे जिन महाकवियोने दार्शनिकका भी कार्य किया है उनमेसे अधिकाशने महाकाव्य या आख्यान काव्यको साधनके रूपमे प्रयुक्त किया है, गीतिकाव्यको नहीं।

ग़ज़लगो शाइरकी मर्यादा

गालिबकी न तो अपनी जिन्दगी तत्त्व-विवेचनाके अनुकूल थी, न उनके काव्य-साधन ही उस गहरी एवं व्यापक विचार-शृङ्खलाकी अभिव्यक्तिके अनुरूप थे। वह प्रधानतः एक 'गजलगो' शाइर थे। गजलमे किसी कल्पना या अनुभूतिकी एक झलक मात्र दी जा सकती है। बल्कि एक ही गजलके विभिन्न शेरोंमे भी अलग-अलग झलकियाँ या कल्पनाएँ होती है। ज्यादासे ज्यादा वह एक गुलदस्ता है जिसमे फूल और पखुरियाँ, पत्तियाँ और काँटे सब एक शक्लमे गूँथ दिये जाते है। गजल एक ऐसा गीतिकाव्य है जिसे मुक्तक कहना चाहिए। गजलगो शाइर हर क़दमपर, हर शेरमे अपना विषय बदलता है। इसलिए यूँ भी गालिबके काव्यमे किसी स्पष्ट एवं विवेचनपूर्ण जीवन-दर्शनकी खोज करना महज एक ख़ामख़याली है।

गालिबके जीवन एवं काव्यकी सबसे बडी विशेषता यही है कि वह बन्धनोको स्वीकार नही करता; किसी एक दृष्टिकोण, विचार-धारा या जीवन-शैलीमे बँधकर रहना उसे मंजूर नही।

बन्धनोंको चुनौती देनेवाला कवि

पुराना होकर भी वह पुराना नही और नयेकी झलक दिखाकर भी वह नया नही है। उसमे पुराना और नया, भूत और वर्तमान बल्कि भविष्यमे मिलकर रह गया है—जैसा वस्तुतः प्रत्येक विकसित एवं जागरित मानवमे होता है। इसलिए

---

१. उपासना और तप (पवित्रता)।

उन्हे किसी विशेष दार्शनिक विचार-धारामे बाँटकर या बाँधकर रख देना एक हास्यास्पद चेष्टा है और खुद उन्हे असलियतसे दूर कर देना है—उस असलियतसे जो उनमे थी और जो उनके काव्यका आधार है। हाँ, दुनियामे चलते हुए उन्होने जो देखा, जो सोचा उसमे कभी-कभी ऐसे आभास भी दिख जाते है, ऐसी झाँकियाँ भी मिल जाती है, जिनमे दार्शनिक कल्पना, चिन्ता एव अनुभूतिकी चलती-फिरती तस्वीरे झाँक-झाँक उठती है।

यदि दर्शनसे सूक्ष्म एवं चिन्तन-प्रधान विचार-पुंजका अर्थ लिया जाय तो गालिबको दार्शनिक कहा जा सकता है किन्तु यदि दर्शनसे मानव-जीवन या उसके किसी पक्ष-विशेषके सम्बन्धमे निश्चित निजी दृष्टिकोणका तात्पर्य है तो वह दर्शनशास्त्री नही है। गालिबके काव्यमे जो दार्शनिक झाँकियाँ हमे मिलती है वे तत्त्ववेत्ताकी प्रज्ञाकी अभिव्यक्तियाँ नही है। इनमे कवि न दर्शनशास्त्री है, न दर्शनका व्याख्याता या मुतकल्लिम है। जैसा मै कह चुका हूँ, वह सूफी भी नही है—उसकी प्रकृति ही सूफीकी प्रकृति नही है।

एक अर्थमें दर्शनशास्त्री है

जब मै यह कह रहा हूँ, तब मुझे उनका यह शेर खूब याद है—

य' मसायले तसव्वुफ़ य' तेरा बयान 'ग़ालिब'
तुझे हम वली समझते जो न बादाख्वार होता।

पर तसव्वुफकी समस्याओपर कुछ कह देनेसे ही कोई सूफी नही हो जाता, वह तत्त्वज्ञानीके सत्यको अनुभूतिके माध्यमसे जीवनमे उतारनेपर सूफी होता है। और सच पूछें तो इस शेरमे भी मदिरापानपर लेक्चर देनेवालोपर एक सूक्ष्म-व्यंग-मात्र है।

जहाँ भी तसव्वुफकी बाते है वहाँ वे उनके दिलकी गहराईसे उठती नही जान पड़ती। मनमे लहरे उठती है और दिमागके पर्देपर एक परछाई

सी उठती दिखती है आती और जाती हुई। तसव्वुफमे संसारकी वासना-का त्याग और परम प्रियतमके प्रति सर्वस्वार्पण मुख्य है जिनका गालिबमे एकान्त अभाव है—बल्कि विश्व-वासना ही उनके जीवनकी प्रधान प्रेरणा है।

जिज्ञासा :

जिज्ञासा ज्ञान-रथका पहिया है। गालिबने जब खुली आँखोसे दुनिया-को देखा, तो दुनियाके विविध परिवर्तनोंके बीच उसके पीछे छिपी सत्ताका

संसारमें मचलता सौन्दर्य

सौन्दर्य सर्वत्र मचलता दीख पडा। उनमे जिज्ञासा प्रबल हुई। वह संसारमे बिखरे सौन्दर्यको देखते है। ये दिल मोहनेवाली तरु-णियाँ, उनके हाव-भाव, सुगन्धित कुञ्चित अलकें, सुर्मई आँखें, हरीतिमा और पुष्प, वर्षा एवं वायु क्या है? कहाँसे आये है? क्यो है, जब तेरे बिना कोई नही?—

जब कि तुझ बिन नहीं कोई मौजूद,
फिर य' हंगामा ऐ ख़ुदा क्या है?
ये परीचेहरः लोग कैसे हैं?
ग़मज़ः[1] वो इश्क़ वो अदा क्या है?
शिकने ज़ुल्फ़े अम्बरीं[2] क्यों है,
निगहे चश्मे सुर्मःसा क्या है?
सब्ज़ः व गुल कहाँ से आये हैं,
अब्र[3] क्या चीज़ है, हवा क्या है?

अस्तित्व (हस्ती) का तत्त्वज्ञान :

यही जिज्ञासा गालिबके समस्त मानसपर छा गयी है और तब समस्त

१. हाव, २. सुगन्धित अलकोंकी लटे या घुमाव, ३. मेघ, वर्षा।

सृष्टि एक खेल, बच्चोकी एक क्रीडा-सी दिखाई पड़ती है। अस्तित्व एक तमाशा-सा लगता है; बडे-बड़े करिश्मे विनोद-से जान पड़ते है '—

बाज़ीचए अतफ़ाल[1] है दुनिया मेरे आगे।
होता है शबोरोज़ तमाशा मेरे आगे।
एक खेल है औरंगे सुलेमाँ मेरे नज़दीक,
एक बात है ऐजाज़े मसीहा[2] मेरे आगे।
जुज़ नाम नहीं सूरते आलम मुझे मंजूर,
जुज़ वहम नहीं हस्तिए अशिया[3] मेरे आगे।

[अर्थात् "संसार मेरे सामने हो रहा बच्चोंका खेल है। इसकी नवीनताओको देखकर यही समझता हूँ कि मेरे सामने रात-दिन एक तमाशा हो रहा है। सुलेमानका तख्त और हजरत ईसाके चमत्कार मेरे निकट एक खेल और सामान्य बात है। संसारका यह रूप नाम ही नाम भरको है। मेरे विचारमे सभी वस्तुओका अस्तित्व एक वहम, एक भ्रम, एक माया है।"]

ये विचार मायावादी वेदान्तियोके विचारोसे मिलते है। एक स्थानपर फिर कहते है :—

हस्तीके मत फ़रेबमें आ जाइयो 'असद'
आलम[4] तमाम हल्क़ए-दामे-ख़याल[5] है।

अर्थात् "ऐ असद ! जिन्दगीके फ़रेबमे न आजाना (यह सरासर धोका है) सारा विश्व विचारके जालका फन्दा है (फन्देसे बचो, क्षणिक अस्तित्वको जीवन न समझ लेना)।

---

१. बाल-क्रीडा, २ ईसाके चमत्कार (मुर्दोको जिलाना, रोगियोको नीरोग तथा पीड़ितोको पीड़ारहित करना आदि), ३ पदार्थोका अस्तित्व, ४ विश्व, ५ कल्पना-जालका घेरा।

फिर कहते है—

हाँ, खाइयो मत फरेबे-हस्ती,
हरचंद कहें कि है, नहीं है।

सांसारिक असारता और संसारकी कल्पना-जन्यताके विषयमें उनके उर्दू तथा फारसी काव्यमें अनेक शेर मिलते है। फ़ारसीमे तो उनकी संख्या उर्दूसे भी अधिक है। दो ऐसे फ़ारसी शेरोमे उन्होंने कहा है—

आसमान, जहान बयाबान और समुद्र

"मेरी कल्पनाओने धुएँकी तरह उठकर एक पर्दा-सा तान दिया; मैंने उसका नाम आसमान रखा। मेरी आँखोंने एक परीशान-सा ख़्वाब देखा; मैंने उसका नाम जहान रख दिया। मेरी वहमने आँखोंमे धूल डाल दी, अब जो कुछ नजर आया उसका नाम बयाबान रखा। पानी-का एक कतरा गुदाज[1] होकर फैल गया, उसे समुन्दरके नामसे पुकारने लगा।"

जगत्का रूप

ऐसे शेरोमे रूपनाममय जगत्के मिथ्या होनेकी घोषणा है। यह जगत् 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म'का प्रतिबिम्ब मात्र है; उसकी स्वतंत्र सत्ता नही। यह जो बाह्य जगत् है उसीके अवलम्ब-से और उसीको लेकर है। वह है, इसलिए यह भी दिखाई देता है। वेदान्तमे मायाके दो प्रकार बताये गये है—१. व्यावहारिक, २. प्रातिभासिक। वस्तु-जगत् व्यावहारिक है। वह होते हुए भी नही है। शून्यको जाने दें पर जो शून्य नही है वह भी 'नास्ति' ही है। इसलिए गालिब कहते है .—

हस्ती[2] है न कुछ अदम[3] है ग़ालिब।

पर जिज्ञासा यहाँ पहुँचकर और आगे बढती है। यह सृष्टि जब उसकी झलक है, उसका प्रतिबिम्ब है, उस एक मात्र सत्का, तब वह असत्य

---

१. पिघलकर, फैलकर, २. अस्तित्व, ३. अनस्तित्व (शून्यता)।

क्योकर है ? जो सत् है वह असत्को कैसे उत्पन्न कर सकता है ? तत्त्व-ज्ञानी कहते है कि संसारको स्वतन्त्र मानने या देखनेका कारण हमारा अज्ञान है। यूनानके प्राचीन तत्त्वज्ञानी प्लेटगेनियसके 'नव-अफलातूनवाद' (Neo-Platonism) का भी कुछ ऐसा ही कथन है कि यह सारा जगत् उसी एक तत्त्वकी झलक है, जलवा है। यह उसकी विविध अभिव्यक्ति है। इस विविधतामे उसकी एकता है। अनेकमे वही एक है। यो समझिए—सूर्य एक प्रकाश-पिण्ड है। जब तक उसकी रश्मियाँ उसीमे सिमटी है, कुछ दिखाई नही देता। जब उसकी रश्मियाँ अपने मूल स्रोतसे निकलकर समस्त जगत् पर छा जाती है तो संसार नाना रूपोमे चमक उठता है। पर जब सूर्य अस्त होता है तो उसके साथ उसकी किरणे भी आँखोसे ओझल हो जाती है। सूर्यका प्रकाश सूर्यसे अलग नही। जब तक किरणे सूर्यमे निमग्न है उनमे अनेकता नही, ऐक्य है पर उससे निकलते ही, बाहर होते ही उनमे अनेकता आ जाती है या हमे दिखाई पड़ती है। इस प्रकार हमारी आँखोके सामने नाना रूप प्रकट होते रहते है।

तब क्या ग़ालिब वेदान्तियोंकी तरह, सचमुच, ससारको मिथ्या मानता है ? नही। जब संसारके पर्देमे वही है और उसीका रूप,

संसार उसीका आईना है

शृंगार, अदाएँ इस जगत्के रूपमे प्रकट हो रही है, जब, यह जगत् उसीके शृंगारका ऐसा आईना है जिसके सामने वह अपनेको नित्य-नूतन सज्जामे प्रस्तुत करता है तब वह मिथ्या कैसे है ? यह संसार उसीका है, हम उसीके है—उसीके कारण है। कहते है—

है तजल्ली[1] तेरी सामाने वजूद[2],
ज़र्रा[3] बे परतौए ख़ुर्शीद[4] नहीं।

---

१ ज्योति, प्रभा, २. अस्तित्वका कारण, ३ कण, ४. सूर्य-प्रकाश।

अर्थात् "तेरी ही ज्योति (तजल्ली)से अस्तित्वका संसार प्रकट हुआ। सूर्य-प्रकाशके बिना एक कण भी नही चमक सकता।"

वह प्रियतम नित्य शृंगारमे मग्न है :—

आराइशे जमाल[1] से फ़ारिग़ नहीं हनोज़[2],
पेशेनज़र[3] है आईना दाइम[4] नक़ाब[5] में।

(पर्देमें भी, नकाबमे भी वह सदैव आईनेको देखता रहता है। गोया अपने सौन्दर्यके शृंगारसे अभी फ़ारिग नही हुआ।)

यह संसार उसके सौन्दर्यकी एक झलक है। प्रियतमका हुस्न यदि आत्मदर्शी (दूसरे अर्थमे अभिमानी) न होता तो हमारी सृष्टि कैसे होती ?

देह्[6] जुज़ जलवए यकताइए माशूक़[7] नहीं,
हम कहाँ होते अगर हुस्न न होता ख़ुद्‌बीं।

(संसार माशूक—प्रियतम—की एकमात्र सत्ताकी झलक—जल्वाके सिवा और कुछ नही है। अगर वह सौन्दर्य ख़ुदबी (अपने आपको देखनेमे मग्न) न होता तो हम कैसे अस्तित्वमे आते ?) मतलब यह कि हम सब उसीके सौन्दर्य-प्रसाधनके कारण है।

जब संसारमे वही है, संसार उसीकी छवि है, तब हम उससे अलग कैसे है ? हम तो उसीके है:—

दिले हर क़तरा है साज़े अनलबह्[8],
हम उसके हैं हमारा पूछना क्या ?

---

१. सौन्दर्यका शृंगार, २ अबतक, ३. आँखके. सामने, ४. सदैव, ५. घूंघट, पर्दा, ६ जगत्, ७. प्रियतमके एकत्वकी छवि या प्रदर्शन, ८. 'मै समुद्र हूँ।'

[हर एक बूँदका दिल तड़पकर कह रहा है कि मैं सागर हूँ। तब हमारे लिए क्या पूछना ? हम तो उसके है ही।]

क़तरा और दरियाकी उपमा एवं रूपक द्वारा जीव एव ब्रह्मके ऐक्यकी बात फारसी एव उर्दू कवि न जाने कबसे कहते आ रहे है। दरियामे

दरिया और क़तरा

मिलते ही कतरा खो जाता है, उसका निजत्व विलीन हो जाता है। क़तरा स्वय दरिया हो जाता है। पर यह भी तो है कि दरिया भी क़तरेमे समा जाता है। प्रो० शौकत सब्जवारीने लिखा है :—"हकीकत यह है कि विसाले-दरिया[1] के बाद सिर्फ यही नही होता कि कतरे मौजे-दरिया[2] की आगोश[3] मे समा जाते है बल्कि दरिया भी अपनी बेपनाह वसअतो[4] और शोख लहरोके साथ कतरेके नन्हे-से दिलमे उतर जाता है। कतरा दरिया ही नही होता बल्कि दरिया भी कतरा हो जाता है।*" साधनाकी इसी स्थितिको हेगल और मेकटेगार्टने 'परिपूर्ण भाव' (Absolute Idea) कहा है। गालिबका

इशरते-क़तरा[5] है दरियामें फ़ना[6] हो जाना
दर्द का हदसे गुज़रना है दवा हो जाना।

उस स्थितिकी ओर संकेत मात्र है। क़तरा और दरियाकी भिन्नता केवल वाणीकी विवशता प्रकट करनेके लिए है अन्यथा हर क़तरा (जैसा पहिले कह चुके है) दरअस्ल दरिया ही है :—

क़तरा अपना भी हक़ीक़तमें है दरिया (लेकिन)

इस प्रकार गालिब ससारको ईश्वरसे भिन्न नही मानते। यह सब उस माशूकके ही हुस्नका जल्वा है। यह संसार ही उसकी छवि है। इसीमे

---

१. समुद्र-मिलन, २. समुद्र-तरग, ३ आलिगन, ४ असीम विस्तृतियों, ५. बूँदका ऐश्वर्य, ६ नष्ट, विलीन।

* फिल्सफा कलामे गालिब, पृ० ६८-६९।

उसे ढूँढ़ना और पाना है। गालिबका दर्शन 'एकं ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' या 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' (या तौहीदे मुतलक़) से बिलकुल भिन्न है।

संसार माशूकके हुस्नका जल्वा है

उनपर ईरानके प्राचीन धर्म एव दर्शन 'पैथइज्म' ('जगत् ही ईश्वर है' का सिद्धान्त या विश्व देववाद) का बड़ा प्रभाव है जिसमे ब्रह्मको प्रकृतिसे भिन्न नही माना जाता था। पिथागोरसके पूर्वके यूनानी भी ऐसा ही मानते थे। अपनी बाह्याभिव्यक्तिमे ग़ालिबका दर्शन हिन्दीके

'प्रसाद' से साम्य

महाकवि 'प्रसाद' के दर्शनसे बहुत मिलता है। 'प्रसाद' ने 'प्रियतममय यह विश्व निरखना' तथा 'विश्व स्वयं ही ईश्वर है' इत्यादिमे ठीक उसी दर्शनकी उद्‌भावना की है। दोनोने कभी जगत्‌के सौन्दर्य, सुख और शृङ्गारका तिरस्कार नही किया, बल्कि उसीमे, इसे खोजा। फारसी मस्नवी 'अब्रे गुहरबार' मे 'गालिब' कहते है कि विश्व चेतना-दर्पण है जिसमे ब्रह्म रूप (बजहुल्लाह) का दर्शन होता है।

सृष्टिके अनेकानेक रूपोमे एक ही तत्त्व विद्यमान है, इस विश्वासके कारण ही मानवके ईश्वरत्वमे ग़ालिबका विश्वास है। सरदार जाफ़रीने

हमारा मुँह उसीका मुँह है

ठीक ही लिखा है—"न केवल यह कि मानव जिस दिशामे मुँह करता है उस ओर वह ही नजर आता है बल्कि जिस मुँहको मानव चारों ओर मोड़ रहा है वह भी खुद 'उसी' का मुँह है।"*

गालिबने अनेक स्थानोंपर ब्रह्म एवं जगत् या ब्रह्म एवं जीवकी एकतापर बल दिया है। कहते हैं—

> है ग़ैबे ग़ैब जिसको समझते हैं हम शुहूद,
> है ख़्वाबमें हनोज़ जो जागे हैं ख़्वाबमें।

---

*दीवाने गालिब संपा० सरदार जाफरी पृ० १० (बम्बई संस्करण)

शुहूद साधनाकी वह अवस्था है जब साधकको जगत्‌की सम्पूर्ण वस्तुओं मे ईश्वर (बल्कि ब्रह्म) ही ईश्वर दिखाई देता है। † गैबे गैब या गैबुलगैब (गैबका गैब) वह परम सत्ता है जो इन्द्रिय, मन और बुद्धिसे परे है। गालिब कहते है जिसको हम शुहूदकी अवस्था समझे हुए है वही वस्तुतः परम-सत्ता (गैबेगैब) है (भ्रमवश हम उसे शुहूद माने हुए है)। यह वैसा ही है जैसे आदमी स्वप्नमे अपनेको जगा हुआ देखनेपर भी स्वप्नमे ही रहता है। (अज्ञानवश साधक अपनेको ब्रह्मसे भिन्न समझे हुए है।)

अभेद तत्त्व

इसी गजलमे (जिसका मिस्रा दिया हुआ है) वह और भी स्पष्ट कहते है—

अस्ले शुहूदो शाहिदो मशहूद एक है
हैराँ हूँ फिर मुशाहिदः है किस हिसाबमें।

हम ऊपर बता चुके है कि शुहूद साधनाकी वह अवस्था है जिसमे साधकको दुनियाकी हर चीजमे ब्रह्म ही ब्रह्म दिखाई पड़ता है। शाहिद इस अवस्थाके द्रष्टा (साधक) को कहते है। जिसको देखा जाता है वह मशहूद है। मुशाहिदाका अर्थ निरीक्षण, देखना, है। कहते है कि जब वस्तुत' शुहूद शाहिद और मशहूद (दर्शन, द्रष्टा और दृश्य वा साधना, सावक और साध्य) सब एक ही है तो हम क्या निरीक्षण करें, क्या देखें ?

---

†'हरिऔध' ने 'प्रियप्रवास' मे विरहिणी राधाके मुँहसे कहलाया है—
पाई जाती जगत्‌में जितनी वस्तुएँ उन सबोमें,
मै प्यारेको विविध रँग औ रूपमें देखती हूँ।

फिर कहते हैं, विश्वास दिलाते हैं—

है मुश्तमिल[1] नमूदे सुवर[2] पर वजूदे बह्र[3],
याँ क्या धरा है क़तरः वो मौजो[4] हबाब[5] में

सागरका अस्तित्व ही इन रूपोमे सम्मिलित (प्रकट) है अन्यथा बिन्दु, तरंग और बुलबुलेमे क्या रखा है ?

अस्लजात (ब्रह्म) अविनश्वर है, अमृत है और सृष्टि चूँकि उस परम तत्त्वसे अद्वैत (वहदत) है इसलिए सृष्टि भी अविनश्वर है। गालिब जगत्को ब्रह्मसे भिन्न नहीं मानते, जगत् स्वयं ब्रह्म है।

तब अन्तर्विरोध क्या है ?

तब एक दूसरा सवाल पैदा होता है कि यदि विश्व ब्रह्मका ही प्रकाश है तो पाप, अपराध, बुराइयाँ, दुखः-दर्द क्या है ? प्रकाशके साथ मलिनता क्यो है ? अन्तर्विरोध कहाँसे पैदा होते हैं। भारतीय आर्यदर्शन इसका उत्तर यह देता है कि ऐसा उस परम सत्यकी अनुभूति न होनेके कारण या आत्माके 'स्व-रूप' को न समझनेके कारण है। समस्त मोह, विभेद अपनेको (आत्मा वा ब्रह्मको) न समझनेके कारण है। एक पर्दा पड़ा हुआ है। इस्लाममे उत्तर यह है कि आलोक सूर्यसे भिन्न नही है पर उससे जितना ही दूर जाता है उसमे अन्तरके कारण मलिनता आती जाती है। इस उत्तरसे जिज्ञासाका पूर्ण समाधान नही होता क्योकि तब प्रकाशस्रोत (ब्रह्म) से एक भिन्न वस्तु—अन्तर—पैदा हो जाती है और 'हम. ऊस्त' (सब कुछ वही है) का सिद्धान्त शिथिल पड़ जाता है। चूँकि गालिब कोई तत्त्व-ज्ञानी नही, इसका कुछ ठीक उत्तर नहीं दे सका। हाँ उसकी तीव्र कल्पना मे जो सत्य उद्भासित हुआ उसके प्रकाशमे उसने आंशिक उत्तर देनेकी चेष्टा की है—

---

१. सम्मिलित, २. रूपाभिव्यक्ति, ३. सागरका अस्तित्व, ४ तरंग, ५ बुदबुद्।

"गुण (सिफाते कमाल) के एक बिन्दुसे सम्पूर्ण अन्तर्विरोध सम्पन्न होता है।

—मुनाजात (अब्रे गुहरबार)

"तूने अन्यके भ्रम (वहमे गैर) मे पड़कर दुनियामे हलचल मचा रखी है।"

—फ़ारसी क़सीदा

जब एक बार कह चुके कि दर्शक एवं दर्शनीय बल्कि दृश्य एवं दर्शन भी एक है तब दो क्यो मालूम पडते है ? यह स्वयं और अस्वयका विभाजन कैसा ? उत्तर यह कि इनके बीच पूजाकी रीति (रस्मे परस्तिश) का पर्दा पडा हुआ है।

मलिनताकी समस्या सुलझाते हुए यह भी कहा जाता है कि ठीक वह माशूक इस प्रकृति या जगत्के दर्पणमे अनेक जल्वो और अदाओमे दिखाई

मलिनताकी पृष्ठभूमिपर प्रकाशका गौरव

पडता है, प्रतिबिम्बित होता है पर यह प्रतिबिम्ब तब तक सम्भव नही जबतक शुभ्र काँचके पीछे कलई न हो। उज्ज्वलपर किरणे उतनी नही खिलती जितनी मलिनतापर। सूर्य-किरणे स्वच्छ आकाशमे उतनी नही चमकती जितनी धरतीकी अस्वच्छ वस्तुओपर पड़कर चमक उठती है। प्रकाशके गौरवके लिए, उसकी स्वीकृति एवं अनुभूतिके लिए अन्धकार की पृष्ठभूमि आवश्यक है। गालिब कहते है—

लताफ़त[1] बेकसाफ़त[2] जल्वः पैदा कर नहीं सकती,
चमन ज़ंगार[3] है आईनए-बादे-बहारी[4] का।

अर्थात् सौन्दर्य (लताफत) विना मलिनता (कसाफत) के जल्वे नही पैदा कर सकता। वसन्त-समीरणके आईनेके लिए चमन (पुष्पोद्यान)

---

१. सौन्दर्य, सुषमा, २. विना मलिनता, ३. मलिनता, क़लई; ज़ंग, ४. वसन्त-समीर।

कलई (जंग—मण्डूर—जंगार) का काम देता है (चमनके कारण ही वसन्त-समीरणका गौरव है ।)

इससे भी भिन्नता एवं द्वैतका समाधान तो नही होता। बहरहाल ग़ालिब चाहे इसका ठीक उत्तर न दे सके, वह मानते यही है कि संसारके सत्यको—कर्ताको—हम संसारमे ही जान और पा सकते है क्योकि यह कहीं बाहरसे नहीं आया; उसीकी अभिव्यक्ति है, उसीका स्वरूप है। वर्ड्सवर्थने भी कहा है कि एक ही सत्ता समस्त जगत्के अन्तरमे गतिशील है—

> वही एक बात है जो याँ नफ़स[1] वाँ नक्हते-गुल[2] है
> चमनका जल्वा बाइस[3] है मेरी रंगींनवाईका।

इधर (मेरी) वाणी, उधर फूलकी सुगन्ध एक ही चीजके दो रूप है।

संसार और जीवनका दर्शन :

जब यह संसार उसका है तब संसारकी सम्पूर्ण वस्तुएँ भी उसकी है। हम भी उसके हैं; यह दुःख-सुख, यह अन्धकार-प्रकाश, यह बुराई-भलाई सब उसकी है। इसलिए गालिब अपने आलिगनमे समस्त ससारको, संसारको उसकी सम्पूर्ण विविधताओके साथ, ग्रहण करता है। वह उसकी सम्पूर्ण रंगीनियोके साथ उसे प्यार करता है। वह संसारका इसीलिए है कि संसार उसका है, संसारकी हर चीज उसकी है। उत्कण्ठा और उमगने, बीचका पर्दा उठा दिया है—

सब कुछ उसका है

> वा[4] कर दिये हैं शौक़ने बन्दे नक़ाबे हुस्न[5],
> ग़ैर अज़ निगाह[6] कोई भी हायल[7] नही रहा।

---

१. श्वास, वाणी, २. पुष्प-गन्ध, ३ कारण, ४. अनावृत, उद्घाटित, खोल दिये, ५. सौन्दर्यके नकाब (आवरण) के बन्धन, ६. दृष्टिके सिवाय दूसरा, ७. बाधक।

शौकने हुस्नके नकावके वन्द (वन्ध) खोल दिये है। अव उसके और हमारे वीच सिवाय निगाहके दूसरी कोई चीज वाधक नही रह गयी है।

दृष्टिका पर्दा

हाँ, यह दृष्टि ही उसके सौन्दर्य-पानमे, उसके मिलनमे वाधक है। आधुनिक ग़जलके अद्वितीय कवि 'जिगर' मुरादावादी इससे भी आगे जाकर कहते है—

लाओ, उसे भी रख दें उठाकर शवे विसाल[1],
हायल[2] जो एक ख़फ़ीफ़[3] सा पर्दा नज़रका है।

दृष्टिका एक क्षीण आवरण जो वाधक हो रहा है, लाओ इस मिलन-रात्रिमे उसे भी उठाकर अलग रख दे।

सचमुच, पर्दा उठाकर निगाह स्वयं पर्दा वन जाती है। नही तो आत्मा (रूह) और पदार्थ (माद्दा), जीवन-मृत्यु, ब्रह्म-जीव सब एक है। यहाँ आकर दु:ख-सुख, खिजाँ और वहार मिल जाते है—एक दूसरे को आलिंगनमे लिये आते है। ऐसी स्थितिमे धर्मपरम्परा (मज़हब) परम सत्यसे हटा देती है। तव रीति-रवाज और सम्प्रदायका त्याग ही ईमान वन जाता है—

मिल्लतें जब मिट गयीं अजज़ाए ईमाँ[4] हो गयीं।

संसार, जो प्रियतमकी ही छवि है, पर मुग्ध हुआ कवि उसके दु:ख-दर्दको भी उसकी अदाओकी तरह ग्रहण करता है। अदाओसे और प्यार उमडता है, शोखियोमे माशूकका हुस्न और उभरता है, मलिनताकी पृष्ठभूमिपर प्रकाशकी गौरव-वृद्धि होती है। इसी प्रकार दु:ख-दर्द भी वहीसे आते है, इसलिए कि सुख-चैनका स्वाद वढा दे। खिजाँका आगमन

दु:ख-दर्द माशूककी अदाएँ है

---

१ मिलनरात्रि, २ वाधक, ३ क्षीण, ४. ईमानके अंग।

होता है, इसलिए कि जीवनका, आनन्दका नवीनीकरण हो (पत्तियाँ जाती है, नई कोपलें फूटती है ।)

मतलब यह कि दु.ख सुखका, मलिनता प्रकाशका शृङ्गार है, यों बदी (बुराई) सत्कृतिका ही अंग बन जाती है । अभेद हो जाता है—

यॉं इम्तियाज़े[1] नाक़िसो[2] कामिल[3] नहीं रहा ।

अर्थात् सिद्ध और अपूर्णकी भेदरेखा मिट गयी है । गीताके वही शब्द याद आते है:—

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ।

हर चीज़ प्यारके क़ाबिल है

चूँकि मानव उसका है, चूँकि मानवमे भी वही है, इसलिए वह मानवको प्यार करता है, चूँकि संसारमे वही है, इसलिए वह संसारको प्यार करता है, उसके दुःख-सुख, उसकी मृत्यु, उसके जीवनको प्यार करता है । बल्कि मृत्युके कारण जिन्दगीका मजा और बढ गया है, प्यारकी, जीनेकी, संसारको कलेजेसे लगानेकी लालसाएँ और तीव्र हो गयी है:—

हविस[4]को है निशाते-कार[5] क्या क्या ?
न हो मरना तो जीनेका मज़ा क्या ?

लालसाको काम करनेकी क्या-क्या उमंगें है ? क्यो है ? इसलिए कि मरना है । इसीके कारण लालसाएँ और प्रबल होती है । चूँकि विनाश है इसीलिए दुनिया इतनी मनोरम लगती है । यह जो द्वैतकी मनोदशा है

---

१. विशिष्टता, भेद, २. अपूर्ण, असिद्ध, ३. सिद्ध, ४ लालसा, ५. कर्मका उल्लास ।

इसमे मरणकी कल्पना ही संसारके बिखरे अंगोको एक लड़ीमे गूँथ देती है। अर्थात् रूपगत जो परिवर्तन है उसके कारण ससारका आकर्षण और तीव्र हो गया है। ऊपर-ऊपर जो विनाशका मार्ग चतुर्दिक् फैला दिखाई पड़ता है उससे भी उच्च और निम्न सब बराबर हो जाते है.—

नज़रमें है हमारी जादए राहे फ़ना ग़ालिब,
कि यह शीराज़ा है आलमके अज़्ज़ाए परीशाँ का।

(ऐ गालिब ! विनाशकी राह हर समय हमारी नजरमे रहती है, क्योकि ससारके बिखरे हुए अगोको मिलानेकी कड़ी यही है।)

साधकको आरम्भमे ऐसा ही लगता है। सब कुछ नाशमान है, हमारे अन्दर भी विनाशके बीज छिपे हुए है—

मेरी तामीर[१] में मुज़मिर[२] है एक सूरत ख़राबीकी।

पर यह भय, यह द्वैत, तभीतक है जबतक माशूककी कृपासे हम वञ्चित है, जबतक उसने हमे अपनाया नही है, अपने कृपा-कटाक्षसे घायल नही किया है। ज्योही उसकी कृपा-दृष्टि होती है, यह अस्तित्वकी भिन्नता नष्ट हो जाती है.—

तुम्हारी कृपा हमें लूट लेगी

परतवे[३] ख़ुर[४] से है शबनम[५] को फ़ना[६] की ता'लीम,
मैं भी हूँ एक इनायत[७] की नज़र होनेतक।

सूर्यका प्रकाश ओस-बिन्दु (शबनम) को फ़ना (विनाश) की सीख देता है। इसी प्रकार मै भी तभीतक हूँ जबतक तुम्हारी कृपा-दृष्टि

---

१. निर्माण, रचना, २ प्रच्छन्न, निहित ३. प्रकाश, ज्योति, ४. सूर्य, ख़ुर्शीद, ५ ओस, ६ विनाग (यहाँ 'फ़ना' अस्तित्वहीनता नही है वरं पूर्ण विलीनता, तल्लीनता है), ७. कृपा।

नहीं होती। (तुम्हारी इनायतकी एक नजर होते ही मैं भी तुममे विलीन हो जाऊँगा।)

यह इनायतकी नजर होनेतक संसार और जीवनको, गालिब अमित कामनाओके साथ प्यार करता है। वैसे मानव भी दुनियाकी अन्य वस्तुओकी भाँति ही प्यार की चीज है, पर उसमे अन्य वस्तुओसे यही अन्तर है कि उसमे कामना है, भावना है, उत्कण्ठा है, व्याकुलता है, तडप है। सबसे बड़ी बात यह कि उसमे बुद्धि है·—

मिट्टीके पर्देमें मचलता प्रलय : मानव

ज़िमा गर्मस्त इन हंगामः विनगर शोरे हस्ती रा,
क़यामत मी दमद अज़ पर्दए ख़ाके कि इन्साँ शुद।

अर्थात् दुनियाकी यह हलचल मेरे ही कारण है और मिट्टीके उस पर्देमे प्रलय मचल रहा है; वह मानव बन गया है।

मानवमे ब्रह्म बोलता है। वह ब्रह्मकी सबसे प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है। इसीलिए सृष्टिमे मानव महान् है। मानो समस्त सृष्टि उसीके लिए, उसी-की रुझानके लिए हो.—

ज़ि आफ़रीनिशे आलम ग़रज़ जुज़ आदम नेस्त।

(मानवके सिवा विश्वकी उत्पत्तिका कोई हेतु नही है।)

इसीलिए गालिब हजार जानसे दुनियाको चाहता है, हजार कामनाओं से वह उसे आलिगन किये हुए है, जकड़े हुए है। संसारकी भाँति ही इन कामनाओका अन्त नही है और प्रत्येक कामना इतनी लुभावनी कि क्या कहे.—

हज़ारों ख़ाहिशें ऐसी कि हर ख़ाहिश पै दम निकले।

वह अबाध कामनाका कवि है। उसका पीना अबाध, उसकी मस्ती

अबाध । जिस रूपकी जादूगरीका तमाशा चारो ओर विखरा है वह कभी समाप्त नही होता । वह उसमे इतना खो गया है कि उसीका होकर रह गया है । उसके विना चैन नही । कामनाकी इस बेचैनीमे वह सृष्टिके समस्त सौन्दर्य एव भोग्य पदार्थोको अपना ही मानता है ।

अबाध कामनाका कवि

हर चेः दर मब्दः ए फ़ैयाज बुवद आने मनस्त ।

अर्थात् जो कुछ उदार (फैयाज) सृष्टिके पास है, सब मेरा है, मेरे लिए है ।

इसीलिए गालिब, रवीन्द्रनाथकी भाँति, ससारसे विरक्त करनेवाली मुक्तिका उपासक नही है । कामना ही उसे संसारसे, और उसीके माध्यमसे उस माशूकसे, जो सब माशूकोमे प्रकट है, जोड़ती है । इस कामनाका ज्वार कभी शान्त नही हुआ । वह निरन्तर बढता ही गया है, यहाँ तक कि सम्भावनाओका समग्र संसार उसके एक क़दममे विलीन हो जाता है —

कामना ही माशूकसे जोड़ती है

है कहाँ तमन्ना[1] का दूसरा क़दम, यारब[2] !
हमने दश्ते इम्कां[3] को एक नक़्शे पा[4] पाया ।

"हे प्रभु ! कामनाका दूसरा पग कहाँ है ? (उसके रखनेकी जगह ही नही) यहाँ तो सम्भावनाओके वियावानको हमने केवल एक चरण-चिह्नके रूपमे पा लिया है (सम्भावनाओका बियाबान एक ही कामनाके चरणमे समाप्त हो गया !) ।

---

१ कामना, २ हे ईश्वर, ३ सम्भावनाका वियाबान, ४. चरण-चिह्न ।

स्वभावतः इस निर्बाध कामनाके स्वादके आगे, इस्लाम धर्ममे पवित्र लोगोको मिलनेवाले विहिश्त (स्वर्ग) की क्या हस्ती ? गालिब इस संसारके आनन्दको किसी भी सम्भावित, भावी परलोकगत सुखसे बदलनेको तैयार नही। उनके जीवनकी जडें इसी ससारकी भूमिमे इतनी गहराई तक चली गयी है कि ऐसे किसी भी प्रलोभनको, विना एक क्षण विचार किये, वह ठुकरा देता है। शायद ही संसारके किसी दूसरे कविने स्वर्गका ऐसा उपहास किया होगा जितना गालिबने किया है। फारसी और उर्दू काव्यमे बार-बार उन्होने बिहिश्तका मजाक उड़ाया है। एक उर्दू शेर है :—

उनके जीवनकी जड़ें इसी संसारकी धरतीमें गहरी गयी है

देते हैं जन्नत[1] हयाते देह[2] के बदले,
नशा बअन्दाज़ए ख़ुमार नहीं है।

वह सासारिक जीवनके बदले जन्नत देते है। यह नशा मेरे खुमारके अनुरूप नही है।

फिर एक नास्तिककी भाँति कहते है :—

हमको मालूम है जन्नत की हक़ीक़त[3] लेकिन
दिल के खुश रखने को ग़ालिब य ख़याल अच्छा है

स्वर्गकी बाते चढा-चढाकर उससे की जाती है; उसकी तारीफके पुल बाँधे जाते है पर यहाँ माशूकके जल्व गाह (संसार) का जो सौन्दर्य उसकी आँखोंमे बसा है उसपर दूसरा रंग चढनेका नही :—

---

१ स्वर्ग, २. सांसारिक जीवन, ३ वास्तविकता।

सुनते जो है बिहिश्तकी तारीफ़ सब दुरुस्त,
लेकिन खुदा करे वह तेरी जल्वःगाह[1] हो।

पर उपदेश देनेवाले कब मानते है ? वे तो अपनी ही कहते जाते है; उनकी वड़ जारी रहती है। यहाँ तक कि गालिब चिढ़कर कहते है :—

ताअत[2] में ता रहे न मय वो वॉगवी[3] की लाग,
दोज़ख[4] में डाल दो कोई लेकर बिहिश्त[5] को।

उपासनाके पीछे शराब और शहदकी लाग (लालच) न रह जाय इसलिए कोई स्वर्गको उठाकर नरकमे डाल दो। [इस्लाममे माना गया है कि परहेजगारी और इबादतकी जिन्दगी बिताने- वालोको स्वर्ग मिलता है जिसमे हूरें खिदमतको मिलती है और शराब व शहद पीने-खानेको। इसी प्रलोभन भरे विश्वास- की हँसी उडाई गयी है।]

जन्नतका लोभ हेय है

एक जगह और कहते है .—

क्यों न फिरदौस[5] को दोज़ख़[4] में मिला लें यारब !
सैर के वास्ते थोड़ी सी फ़िज़ा और सही।

हे ईश्वर ! स्वर्गको क्यो न नरकमे मिला ले जिससे दिल-बहलाव और सैरके लिए थोडी फिजा और बढ जाय।

वह बिहिश्तके दिलदादः इसलिए भी न हुए कि वहाँ मिलनेवाला सौन्दर्य सीमित है, जब उनकी कामना बिखरे हुए सम्पूर्ण सौन्दर्यको कलेजेसे लगा लेनेको छटपटाती है। इस प्रकार कामनाकी पूर्ति स्वर्गकी अपेक्षा ससारमे कही अधिक हो सकती है। चुनांचे एक खतमे लिखते है—

---

१ छविधाम, छविकक्ष, २ उपासना, भक्ति। ३. मधु। ४. नरक। ५ स्वर्ग।

"जब मैं बिहिश्तका तसव्वुर[1] करता हूँ और सोचता हूँ कि अगर मगफिरत[2] हो गयी और एक कस्र[3] मिला और एक हूर[4] मिली, अकामत[5] जाविदाँ[6] है और एक नेकबख्तके साथ जिन्दगानी है तो इस तसव्वुरसे जी घबराता है और कलेजा मुँहको आता है। हय, हय, वह हूर अजीरन हो जायगी। तबीयत क्यूँ न घबरायगी? वही जमुर्रदी काख[7] और वही तूबा[8] की एक-शाख!"

बिहिश्तके तसव्वुरसे कलेजा मुँहको आता है

स्वर्गकी वस्तुओंकी हँसी उड़ानेका कोई मौका हाथसे जाने नही देते। चुनांचे कहते है:—

> वाइज़[9] न तुम पियो न किसीको पिला सको,
> क्या बात है तुम्हारी शराबे-तहूर की।

ऐ उपदेशक! तेरी शराबे तहूर (स्वर्गमे पी जानेवाली मदिरा) का क्या कहना है, जिसे न तू पी सकता है न दूसरे ही किसीको पिला सकता है? (ऐसी ख्याली शराब लेकर क्या होगा?)

× ×

युवावस्थामे गालिबके उस्तादने उनसे कहा था—"शकरका मजा चख लेना मगर मक्खी बनकर शहदपर कभी न बैठना नहीं तो उड़नेकी शक्ति बाकी न रहेगी।" यह बात गालिबके हृदयमे पैठ गयी थी। यही उनके जीवनका मेरुदण्ड है। एकमे केन्द्रित होना, एक जगह बैठकर पीना, बँधकर रहना उन्होने कभी स्वीकार न किया। इसीलिए सरदार जाफरीके शब्दोमे "वह मंजिलका

मंज़िलका नहीं, राहका; तृप्तिका नहीं, तृष्णाका कवि

---

१ कल्पना, ध्यान, २ छुटकारा, मुक्ति, ३ महल, ४ परी, स्वर्गाङ्गना, ५. निवास, ६. नित्य, शाश्वत, ७. पन्ना (हीरा) का घर, ८. कल्पवृक्ष, ९. उपदेशक।

नही, पथका, तृप्तिका नही तृष्णाके रसका कवि है।" प्यास बुझाना उसका उद्देश्य नही, प्यास बढाना उसका आदर्श है । 'प्रसाद' की तरह वह—

इस पथका उद्देश्य नहीं है श्रान्त भवनमें टिक रहना ।

राहमे चलते हुए रस लूटते जाना ही उसके सुख और जीवनका तत्त्व है । उसे मंजिलपर पहुँचकर तृप्त हो जानेवाले पथिकसे कभी ईर्ष्या न हुई क्योकि तब वह पथिक ही कहाँ रह गया ? उसे ईर्ष्या यदि होती है तो मार्गमे अकेले भटकनेवाले पिपासाकुल राहीसे होती है, जैसा ख़ुद फारसीमे कहा है —

रश्क बरतश्नः-ए-तनहा रवे वादी दारम,
न बर आसूदः दिलाने हरमो ज़मजमे शॉ ।

इस आदमीकी प्यास कभी न बुझी । वह कभी बुझनेके लिए पैदा ही न हुई थी । हाथोमे जब गति ही न रह गयी, तब भी यह प्यास नही मिटी, तब भी वह चीखकर कहता है —

गो हाथको जुंबिश[1] नहीं, आँखोंमें तो दम है,
रहने दो अभी साग़रो[2] मीना[3] मेरे आगे ।

× ×

पर ग़ालिबकी दार्शनिक सफलता, जीवनके स्तरपर यह है कि तीक्ष्ण एवं प्रबल कामनाओसे लिपटे हुए भी उसमे घटनाओके प्रति, परिणामके

हँसीमें रोदन,
रोदनमें हँस !

प्रति गहरी अनासक्ति है । इसी कारण ग़ममें पलकर भी वह हँस सका है और हँसते हुए भी रो सका है । हास्य और रुदन, सुख और दु.ख, उस स्तरपर है जहाँ उनका भेद मिट जाता है । दिलकी निहाईपर दु.खके

---

१. गति, २ चषक, मद्यका प्याला, ३ मद्यकी सुराही या बड़ा कटर ।

इतने हथौडे पड़े है कि वह और दृढ हो गयी है—दु ख इतने देखे है कि वे मिटकर रह गये हैं। कठिनाइयाँ इतनी आई है कि उनकी डँसनेकी शक्ति समाप्त हो गयी है; वे कठिनाइयाँ रही ही नही; आसान हो गयी है। मुश्किलोंको आसान बनानेका गुर इनके हाथ आ गया है। कहते है—

रंजसे ख़ूगर[1] हुआ इंसाँ तो मिट जाता है रंज,
मुश्किलें इतनी पड़ीं मुझपर कि आसाँ हो गयीं।

अर्थात् यदि किसीको दु:खकी आदत पड़ जाती है तो फिर दु ख दुःख नही रह जाता। मुझपर इतनी कठिनाइयाँ पड़ी है कि मै उनका अभ्यस्त हो गया हूँ और यो मुश्किलें आसान हो गयी है।

आसक्तियोसे इस तरह लिपटा हुआ कि आसक्तियाँ अनासक्तिकी गोदमे सो जाती है—कुछ ऐसा इन्सान था गालिब। उत्तरकालमे तो यह बात बहुत स्पष्ट हो जाती है। एक बारकी बात है कि उनके परमप्रिय शिष्य हरगोपाल 'तुफ्ता' निराशाके कारण संसार-त्यागको तैयार हुए। उस समय गालिबने जो ख़त उन्हे लिखा था, उससे उनके मानसिक सन्तुलनका पता चलता है। लिखते है.—

जिसमें आसक्तियाँ अनासक्तिकी गोदमें सो जाती है

"क्यों तर्के लिबास[2] करते हो? पहननेको तुम्हारे पास क्या है जिसको उतारकर फेकोगे? तर्के लिबाससे कैदे हस्ती[3] मिट न जायगी। बगैर खाये-पिये गुजारा न होगा। सख्ती व सुस्ती[4], रज वो अलम[5] को हमवार[6] कर दो। जिस तरह हो उसी सूरत व हर सूरत गुजरने दो।"

एक दूसरे ख़तमे उन्हीको फिर लिखते है·—

---

१. अभ्यस्त, व्यसनी, २. वस्त्र-त्याग, ३. जीवनका बन्धन, ४. दृढ़ता और शिथिलता, ५. दु:ख-कष्ट, ६. समतल।

"मुझको देखो कि न आजाद हूँ, न मुकय्यद[1], न रंजूर[2] हूँ न तन्दुरुस्त, न खुश हूँ न नाखुश, न मुर्दा हूँ न जिन्दा। जिये जाता हूँ, बातें किये जाता हूँ, रोटी रोज खाता हूँ, शराब गाह-गाह[3] पिये जाता हूँ। जब मौत आयेगी, मर रहूँगा। न शुक्र है, न शिकायत। जो तकरीर है बसबीले हिकायत।"

मुंशी बदरुद्दीनको एक पत्रमे लिखते है—"नैरंगिए कुदरतके तमाशाई रहो।" फिर कहते है—

रात-दिन गर्दिशमें हैं सात आसमाँ,
हो रहेगा कुछ न कुछ घबरायँ क्या ?

हर रंगमे मिलकर मस्ती लेनी चाहिए। दर्शनोत्कण्ठासे ही दृश्यमे सौन्दर्य उत्पन्न हो जाता है—

बख़्शे है जल्वए गुल ज़ौके तमाशा 'ग़ालिब',
चश्मको चाहिए हर रंगमें वा हो जाना।

एक ओर दृष्टिकी विशालता, दूसरी ओर इस उच्च मनोभूमिकाने उन्हे सम्पूर्ण धार्मिक परम्पराओ और विभेदोंके ऊपर उठा दिया था।

मूढ़ परम्पराओंसे ऊपर

उनमे धार्मिक मूढग्राह जरा भी न थे। 'मीर' भी इससे बहुत ऊपर थे पर वह एक सूफी के पुत्र थे, फकीरी उनका जज्बा थी, इश्क उनका मजहब था। इस धार्मिक सकुचिततासे ऊपर उठना उनकी खुदापरस्तीका एक सुबूत प्रेमधर्मकी उपासनाके लिए अनिवार्य। गालिब रईसी तबकेके आदमी एक दूसरे वातावरणमे पले थे फिर भी उनमे विचार और तर्कना की लता थी और वह मूढ परम्पराओके सामने सिर झुकानेको तैयार न हम देख चुके है कि रोजा, नमाज़, परहेजगारी और स्वर्ग-लोभका ७

---

१ बन्दी, बन्धनमय, २ बीमार, ३. जब-तब, कभी-कभी।

किस प्रकार बार-बार उपहास किया है। यह भावनाके उत्कर्षका प्रमाण नहीं है, यह एक अविश्वासीके उच्चतर जीवन-मूल्योंके प्रति निष्ठाका प्रमाण है। इसीलिए दैरोहरम (मन्दिर-मस्जिद) उनके लिए, अधिकसे अधिक अभिलाषाकी पुनरुक्तिका एक दर्पणमात्र बनकर रह गया है—

दैरो हरम आईन-ए-तकरारे-तमन्ना।

या कहीं भी उपासनामें निष्ठा हो तो वह हर स्थानपर वन्दनीय है किसकी हिम्मत है जो उनकी तरह कहे—

वफ़ादारी बशर्ते इस्तवारी अस्ले ईमाँ है,
मरे बुतख़ानामें तो का'बः में गाड़ो बिरहमनको।

यदि निष्ठामें दृढता हो तो वही धर्मका तत्त्व है। यदि ब्राह्मण मूर्ति-धाम (मन्दिर) में मरे तो उसे (सम्मानपूर्वक) काबःमें दफन करो।

फारसीमें भी कहा है—

दिलम दर का'बा अज़ तंगी गिरफ़्त आदारए ख़्वाहम,
कि बामन वसअते बुतखानाहाए हिन्दूचीं गोयद।

× ×

इस प्रकार गालिब तत्त्ववेत्ता न होकर भी तत्त्ववेत्ता है क्योंकि जीवन और जगत्का दर्शन करते हुए वह अनुभूतिकी ऐसी गहराइयोंमें उतर जाता है जिनसे तत्त्वज्ञानकी ज्योति जन्म लेती है। गालिबकी विशेषता यह है कि वह संसारको केवल भावनाके आकाशमें उडते हुए ही नहीं देखता, उसे बुद्धिकी ठोस भूमिसे भी देखता है इसीलिए उसमें कल्पनाकी उड़ानके साथ गम्भीर दृष्टि-निक्षेपकी स्थिरता भी है। और यही ठहराव तत्त्वज्ञानकी अनेक झलकियाँ उसके दिलके आईनेमें उतारता है। चूँकि वह कवि है इसलिए इन झलकियोंमें भी तरह-तरहके रंग खिल उठे हैं। वे तत्त्वज्ञानीकी शुद्ध ज्ञानचर्चासे नहीं, कविके सौन्दर्य-बोधसे उत्पन्न चित्र हैं।

तत्त्ववेत्ता न होकर भी तत्त्ववेत्ता

मौलान 'नियाज' फतहपुरीने लिखा है कि यदि गालिबका कोई दर्शन है तो वह आनन्दका दर्शन है। यदि इसका अभिप्राय यह हो कि गालिब केवल सुख, वैभव और खुशीका शाइर है तो यह बात बिलकुल ही तथ्य-हीन है। गालिबके काव्यमे दुःख और दर्दकी तस्वीरे सुखके चित्रोसे कही ज्यादा है। पर यदि इसका यह अर्थ है कि गालिबका गम उसे निष्क्रिय नही करता, निराश नही करता और उस गमकी घटाओके बीच मुस्कराहटकी बिजलियाँ तड़पती और चमकती है तथा आँसूके बादलोमे जिन्दगी की हज़ार-हजार लज्जते तीव्र प्रकाश-रेखाकी भाँति प्रविष्ट हो जाती है तो यह सत्य है।

जिन्दगी और कामनाकी अगणित भंगिमाएँ उसके काव्यमें मचलती हैं

गालिब ऐसी उद्दाम कामनाका कवि और चित्रकार है जो कभी शान्त नही होती, जो इसी दुनियाके सहस्र-सहस्र रूपोमे अपनेको खोजती और पाती है, जो मरती है और मर-मरकर जी उठती है, जिससे ज़िन्दगीकी अगणित भंगिमाएँ नित्य नूतन स्वादका सर्जन करती है; नई-नई अदाएँ, नई-नई तस्वीरे, नये-नये रग सामने आते है और एक ऐसा तमाशा हो रहा है जो कभी ख़त्म नही होता और जहाँ तमाशाई खुद एक तमाशा है, बल्कि तमाशेमे, दर्शनीयमे, दृश्यमे ही दर्शक मिल जाता है। माशूककी छवि यहाँ चारो ओर बिखरी हुई है, पर्दा उठानेकी देर है; हर जगह उसे नयन भरके देखा जा सकता है। यह ससार, दुःखकी घटाओके साथ भी, कलेजेसे लगा लेने, हजार जानसे फिदा होनेके योग्य है। गालिब शत-शत जिह्वाओसे संसारके सौन्दर्यकी ओर इशारा करता है.—

नहीं निगारको उल्फ़त, न हो, निगार तो है।
नहीं बहारको फ़ुर्सत, न हो, बहार तो है॥

यही शतधा बहनेवाला संसार एवं जीवनका सौन्दर्य गालिबका दर्शन है।

ग़ालिबकी रचनाएँ

फ़ारसी रचनाएँ

मिर्ज़ा ग़ालिब फ़ारसीके उस्ताद थे। उन्हें अपनी फ़ारसीपर नाज था। कभी-कभी उर्दू लिखते थे पर फारसी-रचनाओंपर आसक्त थे। बचपनसे ही फारसीमे शेर कहना शुरू कर दिया था और अन्तकालतक लगभग ग्यारह हजार शेर लिखे।

फ़ारसी पद्य—फ़ारसीके लगभग ग्यारह हजार शेरोंमे ग़जलें, कसीदे, मस्नवियाँ, तर्कीबबन्द इत्यादि शामिल है। इनका मोटा विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है—

ग़जल—लगभग साढ़े चार हजार शेर।

मस्नवी—दो हजारसे ऊपर।

कसीदे इत्यादि—लगभग चार हजार।

फारसीकी अधिकांश गज़लोमे 'बेदिल'का रंग है। मस्नवियाँ ग्यारह है जिनमे तीन (चिराग़े देर, बादे मुखालिफ और अब्र गुहरबार) ज्यादा प्रसिद्ध है। अब्र गुहरबार सबसे अच्छी है। फ़ारसी कसीदे कुल तैतीस है जिनमे १२ धार्मिक है, शेष २१ दिल्ली, अवध और रामपुरके शासकों, मित्रो एवं अंग्रेज अधिकारियो तथा महारानी विक्टोरियाकी प्रशसामे लिखे गये है। क़सीदोमे यह सौदासे बहुत नीचे और दूर मालूम पडते है फिर भी कही-कही उनमे इनकी प्रतिभा ग़जलोसे अधिक चमकी है और इनका काव्य-शिल्प उभर आया है।

कुल्लियाते नज्मफ़ारसी—३५-३६ सालकी उम्र तक मिर्जाके फ़ारसी

कलामका अच्छा-खासा संकलन हो चुका था जिसे उन्होने १८३५ ई० मे 'मयखानए आर्ज़ू' (कामनाकी मधुशाला) के नामसे सम्पादित और क्रम-वद्ध किया। पर यह दस वर्ष तक अप्रकाशित पड़ा रहा। १८४५ ई० मे नवाव जियाउद्दीन अहमदखाँ 'नय्यर'ने इसे संशोधित और सम्पादित कर मतवअ दारुलसलाम देहलीसे प्रकाशित कराया। इसमे ५०६ पृष्ठ है, और अन्तमे ३ पृष्ठका परिशिष्ट है। इसमे ६६७२ शेर है।

इसके वादका फारसी कलाम नवाव ज़ियाउद्दीन और नाजिर हुसेन मिर्जाके पास एकत्र होता रहा। १८५७की उथल-पुथलमे इन दोनोके घर ऐसे लुटे कि किताबे भी न बची। यह सग्रहीत काव्य भी उसीमे स्वाहा हो गया। १८६२ ई० तक प्रयत्न करके जो कुछ दूसरी वार एकत्र किया जा सका उसे लखनऊके मुंशी नवलकिशोरने नवाव ज़ियाउद्दीन अहमदखाँ-के पुत्र मीरजा शहावउद्दीन 'साकिव'से मँगवा लिया और अपने प्रेससे जून १८६३मे प्रकाशित किया। इसमे 'मयखानए आर्ज़ू'के शेरोंके अलावा ३७५२ शेर है अर्थात् कुल शेरोकी संख्या १०४२४ है।

अब्रे गुहरवार—शाब्दिक अर्थ है 'मुक्तावर्षक मेघ'। ग़ालिवकी यह सवसे वडी मस्नवी है। यह कुल्लियातमे सम्मिलित है पर कुल्लियातके मुद्रणके कुछ दिनो वाद एक मित्रके आग्रहपर अलग छापी गयी। इसमे ४२ पृष्ठ है। इसमे ग्यारह सौसे अधिक शेर है। वस्तुतः यह एक अपूर्ण मस्नवी है जिसे मिर्जा फिर्दौसीके 'शाहनाम.'के ढंगपर लिखना चाहते थे पर वह शान्ति, जिसमे इसे पूरा कर सकते, नसीव न हुई। मिर्जाके उत्तर-जीवनकी मानसिक स्थितिके अध्ययनके लिए इसमे पर्याप्त सामग्री मिलती है। इस कालमे जव भौतिक सुख, विलास और भोगकी कामनाएँ शिथिल पड़ती जा रही थी उनका मन वीच-वीचमे भगवान्के चरणोमे निवेदित होना चाहता था पर अभी तक उनमे सशयके पूर्व संस्कार बने हुए थे इसलिए ईशस्तवन तथा विनयमे भी वह प्राण-वेदन नही है जो अनुताप-दग्ध भक्तके हृदयसे फूटता है।

इस संस्करणमे मस्नवीके अन्तमे दो क़सीदे और दो किते भी है जो कुल्लियातके प्रकाशनके बाद लिखे गये थे। इनके अतिरिक्त चन्द रुबाइयाँ (चतुष्पदियाँ) भी है जो कुल्लियातमे छपनेसे रह गयी थी।

सबदे चीन—'सबदे चीन'का अर्थ है 'फूल चुननेवालेकी डलिया'। इसमे कुल्लियातके प्रकाशनके अनन्तर लिखे हुए कसीदे, किते तथा अन्य कलाम है जिनमे से कुछ तो 'अब्रे गुहरबार'मे भी छप चुके थे। इसे अगस्त १८६७ ई० मे मतबअ मुहम्मदीने प्रकाशित किया था। १९३८ ई० मे इसका दूसरा परिवर्द्धित सस्करण श्री मालिकरामने सम्पादित करके मकतब जामिअः दिल्लीसे प्रकाशित कराया। इसमे ग़ालिबकी बिखरी हुई कुछ और रचनाएँ भी जोड़ दी गयी। इसमे एक कसीदा रामपुरके नवाब क़लबअलीख़ाँकी प्रशंसामे है। 'सबदे चीन'के इस संस्करणमे ८०७ शेर है।

सबद बाग़े दोदर—इसका पता कुछ समय पूर्व चला है। अभी तक अप्रकाशित है। इसकी जो पाण्डुलिपि देहली यूनिवर्सिटीके फ़ारसी-अरबी विभागके अध्यक्ष प्रो० सय्यद वजीर हसनके पास है उसे लिपिकने ग़ालिबके शिष्य मुंशी हीरासिंह खत्रीकी फर्माइशपर तैयार किया था। किताबका लेखन-कार्य तो ग़ालिबके जीवनमे ही शुरू हुआ था पर उसकी पूर्ति उनकी मृत्युके सवा सालसे भी अधिक समयके बाद, ७ जुलाई १८७० ई० को हुई। ग़ालिबने इसका अधिकांश भाग देखा था।

दुआए सबाह—इस पुस्तकके दो खण्ड है। पहिले खण्डमे सबदे चीन (प्रथम संस्करण) तथा कुछ थोड़ी अन्य नज्मे है। दूसरे खण्डमे कुछ गद्य रचनाएँ है। 'दुआए सबाह'का अर्थ है 'प्रातः प्रार्थना' या 'सुन्दर स्तव'। एक मस्नवी है जिसे गालिबने अपने भाजे मीरजा अब्बास बेग एक्स्ट्रा असिस्टेण्ट कमिश्नर लखनऊकी फ़र्माइशपर लिखी थी और नवल-

किशोर प्रेस लखनऊसे छपी थी। मई १९४१के 'निगार' (लखनऊ) मे मौलाना इम्तियाज अली अर्शीने पुनः प्रकाशित करायी।

फ़ारसी गद्य—मिर्जा जितने अच्छे शाइर थे उतने ही उच्चकोटिके गद्यकार भी थे। योवन कालके आरम्भसे ही उन्होने फारसीमे गद्य लिखना शुरू कर दिया था। अधिकाश फारसी गद्य-रचनाएँ २८ से ४० सालकी उम्रतक की लिखी हुई है। वादमे उर्दू गद्य लिखने लगे थे और फारसीमे लिखना छोड़ दिया था।

पंच आहंग—यह फारसी गद्यमे मिर्जाकी पहली रचना है। इसमे पाँच खण्ड है। १८२५ ई० मे जव अंग्रेजोने भरतपुरपर चढ़ाई की तो मिर्जा गालिवके चचिया ससुर नवाव अहमद वख्श खाँ भी उनके साथ युद्धमे सम्मिलित थे। इस अवसरपर गालिव तथा उनके साले अलीवख्श खाँ 'रंजूर' भी वहाँ थे। रजूरने गालिवसे अनुरोध किया कि आप पत्र-लेखनके नियमादिपर एक पुस्तक लिख दे। इसी अनुरोधके फलस्वरूप इस पुस्तककी नीव पड़ी। उस समय इसके दो खण्ड लिखे गये। फिर तीसरे खण्डमे वे शेर दीवानसे लेकर एकत्र किये जिनका पत्र-लेखनमे उपयोग किया जा सकता है। चतुर्थ खण्डमे स्फुट पद्य-गद्य रचनाएँ है। सवसे महत्त्वपूर्ण पंचम खण्ड है जिसमे मिर्जाके वे फारसी पत्र है जो उन्होने ग़दरसे पहिले अपने मित्रोको लिखे थे और जिनसे उनके जीवनपर प्रकाश पड़ता है।

मेह्र नीमरोज—इसका शाब्दिक अर्थ है मध्यदिवसका सूर्य। जव अग्रेजोकी चेष्टा और प्रभावसे हकीम अहसन उल्ला खाँ शाहके वजीर नियुक्त हुए तो उन्होने अंग्रेजोके और शुभैपियोके लिए भी दरवारमे जगह पैदा करनेकी कोशिश की। इन्हीमे एक मिर्जा गालिव भी थे जो अंग्रेजोके पेन्शनख्वार और प्रिय थे। अवसर पाकर हकीम साहवने वादशाहका ध्यान इस ओर आकर्पित किया कि गालिव जैसा विद्वान् और कवि दिल्लीमे उपस्थित हो और उसे शाही दरवारमे जगह न मिले, यह आश्चर्यकी वात है। इसपर गालिव ४ जुलाई १८५० ई० को राजकीय इतिहासकारके पदपर

नियुक्त किये गये और उन्हे तैमूर वंशका इतिहास फ़ारसीमे लिखनेका काम सौपा गया । शुरूमे बहादुरशाह 'जफर' के आदेशके अनुसार यह तय पाया कि तैमूरसे लेकर वर्तमान दिल्लीपति तकका विवरण पुस्तकमे दिया जाय । जनवरी १८५१ तक तैमूरसे आरम्भ कर बाबर तकका वृत्तान्त पूर्ण कर दिया और फिर मार्च १८५१के अन्ततक निर्वासनसे हुमायूँके लौटने तकका इतिहास लिख डाला ।

जव मिर्जा हुमायूँ तकका इतिहास लिख चुके तब बहादुर शाहने आज्ञा दी कि इतिहास सृष्टिके आरम्भसे लिखा जाय । मिर्जाको इस विषयमे कोई दिलचस्पी न थी, न उन्हे सृष्टिके आरम्भके बारेमे कोई विशेष जानकारी थी, इसलिए वजीरने ऐतिहासिक तथ्य एव आँकड़े एकत्र कर देनेकी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ली । एक प्रकारसे वजीर उसे उर्दूमे लिखते और ग़ालिब फ़ारसी रूप देते थे । अब मिर्जाने योजना बनाकर इतिहासके दो भाग कर दिये । पूरे ग्रन्थका नाम परतवस्तान और प्रथम भागका 'मेह्र नीमरोज' एवं दूसरेका 'माहे नीम माह' रखना तय किया । यह भी निश्चय हुआ कि प्रथम भागमे हुमायूँ तकके और दूसरे भागमे अकबरसे बहादुरशाह तकके वृत्तान्त दिये जायँ । बीच-बीचमे अनेक प्रकारके विघ्न पड़ते रहे, कभी हकीम साहबकी ओरसे ढिलाई होती, कभी ग़ालिबकी ओरसे । किसी तरह पहला भाग अर्थात् मेह्र नीमरोज अगस्त १८५४ ई० मे समाप्त हुआ और १८५५ मे फखरुलमताबअसे प्रकाशित हुआ । इसका दूसरा संस्करण प्रोफेसर औलादहुसेन शादाँने, संशोधन एवं सम्पादनके बाद, मतबअ करीमी लाहौरसे प्रकाशित कराया । दूसरा भाग लिखा ही नही गया ।

दस्तम्बू—'दस्तम्बू' उस पुष्प गुच्छको कहते है जो हाथमे लेकर सूँघनेके लिए बनाया जाता है । जब ग़दरका हड़कम्प मचा और मिर्जाका किलेमे आना-जाना या बाहर निकलना बन्द हो गया तो बेकारीमे उन्होने गदरका हाल लिखना शुरू किया । इस पुस्तकका आरम्भ मई १८५७ ई०मे हुआ और अगस्त '५७ मे वह समाप्त हो गयी । ज्यों-ज्यों लिखते थे, एक

नकल मीर मेहदी 'मजरूह' को भी भेजते जाते थे। अभिप्राय यह था कि हंगामेमे यदि एकके यहाँ नष्ट हो जाय तो दूसरेके यहाँ सुरक्षित रहे। पुस्तक पहिली वार मतवअ मुफीदुल्खलायक आगरासे नवम्वर १८५८के प्रथम सप्ताहमे प्रकाशित हुई। पाँच महीनेमे ५०० प्रतियोका यह संस्करण समाप्त हो गया। अधिक विक्री पजावमे हुई। १८६५ ई०में दूसरा और और १८७१ ई० मे तीसरा संस्करण प्रकाशित हुआ। इस पुस्तककी मुख्य विशेषता यह है कि यह ठेठ फारसीमे है और सिवाय व्यक्तिवाचक नामोके एक भी अरवी शब्दका प्रयोग नही किया गया है।

कुल्लियाते नस्र—इसमे उपर्युक्त तीनो पुस्तकें संकलित कर दी गयी है। लखनऊके मुशी नवलकिशोरने जनवरी १८६७ ई० मे पहिली वार इस ग्रन्थका प्रकाशन किया। १८७१ और १८८४ ई० मे इसके द्वितीय, तृतीय संस्करण हुए। १८७५ मे नवलकिशोर प्रेसकी कानपुर शाखासे भी इसका एक संस्करण निकला था।

क़ातअ बुरहान—गदरके दिनोमे घरमे वन्द होनेके कारण, वक्त वितानेके ख्यालसे, गालिवने 'वुरहान कातअ' को पढना शुरू किया। यह मौलवी मुहम्मद हुसेन तव्रेजीका लिखा फारसीका प्रसिद्ध शब्दकोश है। जव पढने लगे तो उन्हे उसमे वहुतेरी गलतियाँ दिखायी दी। वह पुस्तकके पृष्ठोके हाशियेपर अपनी आपत्तियाँ लिखते गये। वादमे उन सवको एकत्र करके 'कातअ वुरहान' नामसे एक पुस्तक वना दी। १८६० मे पूरी हो गयी थी परन्तु दो साल वाद १८६२ ई० मे नवलकिशोर प्रेस लखनऊसे पहिली वार प्रकाशित हुई।

दुरफ्श कावयानी—काव ईरानमे एक लोहार था जिसने 'जहहाक'के अत्याचारोसे तग आकर उसके विरुद्ध विद्रोह एवं युद्ध किया और उसे हराकर 'फ़रीदूँ' को उसके स्थानपर वैठाया। दुरफ्शका अर्थ - झण्डा या पताका है। भावार्थ है विद्रोहका झण्डा। 'कातअ वुरहान' के प्रकाशनके वाद साहित्य-जगत्मे एक तहलका मच गया और मिर्जाकी कड़ी आलो-

चनाका जवाब अनेक पुस्तकोंके रूपमें प्रकट हुआ। कई साल तक यह तूफान चलता रहा। जब उसका वेग कम हुआ तब कातअ बुरहानमे कुछ नयी आपत्तियाँ और अन्य बातें सम्मिलित करके दिसम्बर १८६५ ई० मे इस नामसे एक नया सस्करण प्रकाशित किया गया।

मआसिर ग़ालिब—शाब्दिक अर्थ है गालिबके अच्छे स्मृति चिह्न या सुकृतियाँ। इसमे गालिबके ३२ फारसी पत्र है जो उन्होने कलकत्ता और ढाकाके अपने कुछ मित्रोंको लिखे थे। बैरिस्टर अब्दुल वदूद पटनाने इन पत्रों तथा कुछ अन्य उर्दू-फारसी रचनाओंका सकलन-सम्पादन कर इस नामसे प्रकाशित कराया था।

मुतफ़र्रक़ाते ग़ालिब—इसमे कलकत्ताके मित्रोके नाम लिखे गालिवके कुछ फारसी पत्र तथा कलकत्ता-प्रवासमे लिखी कुछ नज्मे है। एक अच्छी भूमिका और टिप्पणियोके साथ सय्यद मा'सूद हसन रिज्वीने इन रचनाओंको उपर्युक्त नामसे १९४७ मे रामपुरसे प्रकाशित किया। इसमे ४९ पत्र हैं जिनमेसे अनेक पचआहगमे भी सम्मिलित है।

उर्दू रचनाएँ

उर्दू पद्य :—

मिर्जा गालिबने अपने काव्यका आरम्भ उर्दूसे ही किया था परन्तु सामन्ती अहने शीघ्र फारसीकी ओर आकर्षित कर दिया। फिर भी आज गालिबको जो इतना यश मिला है वह उर्दू कविके रूपमे ही मिला है। पाँवकी धूल कभी-कभी सिरपर चढकर बोलती है।

दीवाने ग़ालिब (उर्दू)—इनकी प्रारम्भिक उर्दू शाइरी वेदिलकी फारसी शाइरीकी नकल है। वह बोझिल, कृत्रिम है। जब इनपर तीव्र आक्षेप होने लगे तब अपने परम प्रिय मित्र मौलवी फजलहक खैरावादी तथा दूसरे हितैषियोकी सलाहपर अपने संकलनसे सैकडो शेर काटकर निकाल दिये और काट-छाँटकर चुने शेरोका एक दीवान सम्पादित किया।

इसमे नमूनेके तौरपर अपने प्रारम्भिक काव्यके भी बहुतसे शेर रहने दिये। यह दीवान पहिली बार १८४२ ई० मे सय्यदुल मतावअ दिल्लीसे प्रकाशित हुआ। इसमे कुल १०९५ शेर है, यद्यपि इसमे गणना १०७० की ही दी हुई है। यह संस्करण दुर्लभ है।

इसका दूसरा सस्करण मई १८४७ मे मतवअ दारुलसलाम दिल्लीसे छपकर निकला। इसमे ११५९ शेर है।

गालिबने मई १८५७ मे, गदरसे दो-चार दिन पहिले, अपने उर्दू दीवान-की एक हस्तलिपि रामपुरके नवाव यूसुफअलीखाँके पास भेजी थी। इसीकी प्रतिलिपि लेकर मतवअ अहमदी दिल्लीसे २९ जुलाई १८६१मे और मतवअ निजामी कानपुरसे जून १८६२ मे दीवाने उर्दूके दो संस्करण और निकले। इनमे पहिला बहुत अशुद्ध और भद्दा छपा है। दोनो संस्करणोमे शेरोकी सख्या एक ही, १७९६ है पर पृष्ठ कम-ज्यादा है। दिल्ली संस्करणमे ८८ तथा कानपुरवालेमे १०४ पृष्ठ है। १८६३मे १७९५ शेरोका एक और सस्करण मुशी शिवनारायणने मतबअ मुफीदुल खलायक आगरासे निकाला था जिसमे १४६ पृष्ठ है।

गालिबके जीवन-कालमे उनके उर्दू काव्यके यही चार सस्करण प्रकाशित हुए। उनके जीवनके बाद तो दीवाने गालिब उर्दूके बीसियो सस्करण हुए है।

नुस्खः हमीदियः या नुस्खः भूपाल—मिर्जा साहबने अपना उर्दू दीवान रदीफवार—अक्षरानुक्रमसे—१८२१ ई० मे साफ कराया था, जब वह केवल २४ वर्षके थे और वेदिलके रंगमे रगे हुए थे। इसकी एक प्रति भूपालके राजकीय पुस्तकालयमे थी। १६३१ ई० मे नुस्खः हमीदिय.के नामसे वह प्रकाशित कर दी गयी। इसके आरम्भमे ६० शेरोका एक फारसी कितअ है, फिर उर्दूके तीन कसीदे है जिनमे क्रमश· ११०, ६८ और २९ शेर है। इसके बाद गजले है जिनमे १८८३ शेर है। जब दीवाने गालिबका चयन किया गया तब पहिले और दूसरे क़सीदेके केवल २८ एवं ३३ शेर

उसमे लिये गये, तीसरा बिलकुल निकाल दिया गया। इसी प्रकार गजलोके १८८३ शेरोंमेसे लगभग साढे चार सौ लिये गये ।

आजकल दीवाने गालिबके जितने संस्करण मिलते है वे वही है जिन्हे खुद या अपनी देख-रेखमे चुनाव करके गालिबने अपने जीवनकालमे प्रकाशित कराया था। इनमे मालिकरामजी द्वारा सम्पादित सस्करण सबसे शुद्ध है।

अर्शी-सम्पादित दीवाने ग़ालिब—रामपुरके राजकीय पुस्तकालयके अधीक्षक श्री इम्तियाजअली अर्शी वर्षोसे गालिबपर परिश्रम कर रहे थे। १९५८ ई०के मध्य उन्होने कृपापूर्वक मुझे सूचित किया कि मैने गालिबका सम्पूर्ण प्राप्त उर्दू काव्य एकत्र कर दिया है और वह छप रहा है। शीघ्र ही आपको मिल जायगा। अब यह संस्करण अंजुमनतरक्किए उर्दूसे प्रकाशित हो गया है। निश्चय ही अर्शी साहबने इसमे शुद्धताका बहुत ध्यान रखा है और पाद-टिप्पणियोमे पाठभेदका संकेत भी विभिन्न प्रतियोंके आधारपर कर दिया गया है।

दीवाने गालिबके अनेक सुन्दर सस्करण निकले है। इनमे बर्लिनवाला संस्करण, चगताईके चित्रयुक्त संस्करण, सरदार जाफरी सम्पादित संस्करण तथा पूर्णताकी दृष्टिसे अर्शी संस्करण उल्लेखनीय है परन्तु इनके मूल्य अधिक है और साधारण हैसियतके पाठक उनसे लाभ उठानेमे असमर्थ है।

उर्दू गद्य :—

ऊदे हिन्दी—१८४९ ई० तक मिर्जा अपने पत्र फ़ारसीमे ही लिखा करते थे पर इसके बाद उर्दूमे लिखने लगे, फ़ारसीमे लिखना प्राय छोड़ दिया। मिर्जाके उर्दू पत्र उर्दू गद्यमे बहुत ऊँचा स्थान रखते है। श्रीमुम्ताज अली मेरठीने बडे परिश्रमसे गालिबके १३७ पत्र एकत्र किये और 'ऊदे हिन्दी'के नामसे मतबअ मुजतबाई मेरठमे छापकर २७ अक्टूबर १८६८को, अर्थात् ग़ालिबकी मृत्युसे लगभग चार मास पूर्व प्रकाशित किया।

उर्दूए मुअल्ला—मार्च १८६९ ई० मे, गालिबकी मृत्युके १९ दिन वाद, इस नामसे, उनके पत्रोका एक दूसरा संकलन अकमलुलमताबअ द्वारा प्रकाशित हुआ। यह प्रथम भाग था। इसमे ४६४ पृष्ठ है। इसी प्रेससे इसका दूसरा संस्करण ११ फरवरी १८९१को प्रकाशित हुआ।

एप्रिल, १८९९ मे मतबअ मुजतबाई देहलीसे प्रथम भागके साथ ही दूसरा भाग भी मिलाकर, पहली बार प्रकाशित किया गया। मौलाना हालीने इसका सम्पादन किया था। पुन यह पूरा ग्रन्थ १९०२ ई० मे मुबारकअलीने करीमी प्रेस लाहौरसे छापकर प्रकाशित किया। इसके बाद तो कई संस्करण निकल चुके है। एक सस्ता-सा पर असम्पादित सस्करण इलाहाबादके प्रकाशक लाला रामनारायण लालने भी निकाला है।

मकातीबे ग़ालिब—जीवनके उत्तरकालमे ग़ालिबका रामपुर दरबारसे घनिष्ट सम्बन्ध रहा इसलिए १८५७ से मृत्युपर्यन्त उन्होने अनेकानेक पत्र लिखे। अधिकाश पत्र रामपुरके सरकारी साहित्य-विभागमे सुरक्षित थे। उन्हे सकलित और सम्पादित कर मौ० इम्तियाजअलीखॉ अर्शीने १९३७ ई० मे 'मकातीबे गालिब'के नामसे प्रकाशित कर दिया। तबसे इसके कई संस्करण निकल चुके है और प्रत्येक संस्करणमे कुछ न कुछ वृद्धि होती गयी है। इसका छठा संस्करण, जो १९४९ ई० मे निकला था, मेरे पास है। इसमे १३० पत्र है। गालिबके उत्तरजीवन तथा उनकी मानसिक एव शारीरिक स्थितिके ज्ञानके लिए यह ग्रन्थ बहुत जरूरी है। इस पुस्तकमे गालिबके पत्र तो है ही, जहाँ तक सम्भव हो सका है उनके उत्तर भी सकलित किये गये है तथा उपयुक्त टिप्पणियॉ देकर घटनाओपर प्रकाश डाला गया है।

नादिराते ग़ालिब—इसमे गालिबके ७४ ऐसे पत्र है जो इस पुस्तकके पूर्व (दो पत्रोके सिवा) कही प्रकाशित नही हुए थे। श्रीआफाकहुसेन 'आफाक'ने, एक अच्छी भूमिका और परिशिष्टके साथ, इस नामसे, १९४९ ई० मे 'अदाराए नादिरात' कराचीसे छपवाया था। मेरे पास

इसकी जो प्रति है उसमे डा० अब्दुलहक़की एक छोटी प्रस्तावना भी है। अब यह पुस्तक भी बाजारमे नहीं मिल रही है।

ख़ुतूते ग़ालिब—हिन्दू विश्वविद्यालयके फारसी-अरबी विभागके प्रोफेसर स्व० मौलवी महेशप्रसाद आलिम फाजिलने गालिबपर बहुत काम किया था। उन्होने गालिबपर अनेक भागोंमे एक महाग्रन्थ लिखनेकी योजना बनाई थी। इस सिलसिलेमे उन्होने ग़ालिबके बहुतसे पत्र भी एकत्र किये थे। इन पत्रोंको 'ख़ुतूते गालिब' के नामसे सम्पादित किया था और उसका प्रथम भाग १९४१ ई० मे हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबादसे प्रकाशित भी कराया था, पर असमय उनकी मृत्युसे वह महान् कार्य पूर्ण होनेसे रह गया। यह भी पता नही चला कि वह सब सामग्री, जो उन्होने एकत्र की थी, अब कहाँ है।

नकाते ग़ालिब—छोटी-सी पुस्तक है जिसमे फारसी व्याकरणके नियम है। मिर्जाने इसे शिक्षा विभाग पंजाबके सचालक मेजर फुलरके अनुरोधपर लिखा था।

नामए ग़ालिब—कातअ बुरहानके झगडेके वक्त 'सातअ बुरहान' नामक पुस्तिकाके उत्तरमे मिर्जाने यह पुस्तिका लिखी थी। बादमे वह 'ऊदे हिन्दी' मे सम्मिलित कर दी गयी।

इसके अतिरिक्त 'तेगेतेज' तथा क़ादिरनाम (पद्य) दो और छोटी पुस्तके गालिबकी लिखी है। गालिबके खतोमेसे साहित्यिक पत्र छाँटकर स्व० मिर्जा मुहम्मद अस्करीने १९५४ मे कराचीसे 'अदबी ख़ुतूते ग़ालिब'के नामसे प्रकाशित किया है। इसमे ९८ पत्र है। गालिबके साहित्य-सम्बन्धी विचार जाननेके लिए यह पुस्तक बडे कामकी है।

इस प्रकार हम देखते है कि छोटेसे उर्दू दीवाने गालिबने गालिबको अमर कर दिया। इस छोटेसे ग्रन्थपर न जाने कितने भाष्य लिखे गये है और अब भी लिखे जा रहे है। इनमे हसरत मोहानी, तबातबाई, बेख़ुद, आसी, जोश मल्सियानी, अर्श मल्सियानी और बाकरकी टीकाएँ अपेक्षाकृत

अच्छी है । पर इनमे भी कही-कही इतनी खीचतान है कि कविके काव्यका अर्थ अँधेरेमे पड जाता है और टीकाकारोकी विद्वत्ता जरूर सामने आ जाती है । अब भी एक शुद्ध, सरल टीकाकी जरूरत बनी हुई है ।

पद्यकी भाँति गालिबका उर्दू गद्य भी बहुत महत्त्वपूर्ण है । सच पूछिये तो गद्यकारके रूपमे उर्दूके लिए गालिबकी देन उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है जितनी पद्यकार या कविके रूपमे है । कविके रूपमे उनपर पर्याप्त कार्य हुआ है, समीक्षाएँ, टीकाएँ और प्रशंसा-ग्रन्थ लिखे गये है, परन्तु गद्यकार गालिबपर बहुत कम काम हुआ है । कोई अच्छा और प्रामाणिक समीक्षा-ग्रन्थ मेरी जानकारीमे नही निकला है । गालिबके उर्दू पत्रोकी शैली अनोखी है । इनमे वह लिखते नही, बल्कि बोलते है—जैसे दूरके मित्र, शिष्य, प्रियजन उनके सामने बैठे हो और वह उनसे बातें कर रहे हो ।

गालिबका काव्य : १ :

विकास-रेखा

गालिब उर्दूके सबसे लोकप्रिय कवि है । कदाचित् ही किसी दूसरे उर्दू कविकी कविताओके इतने संग्रह निकले हो या उनपर चर्चा एव समीक्षा हुई हो । कुछ विरोध करते हैं, कुछ प्रशसाके पुल बाँधते है, कुछ खडे तमाशा देखते है । कुछ अभिनेता है, कुछ दर्शक है पर सबकी दिलचस्पी यहाँ है । सब कुछ न कुछ कहना चाहते है, सब कुछ न कुछ सुनना चाहते है, सब कुछ न कुछ देखना चाहते है । उन्हे भूलना, उनकी उपेक्षा करना मुश्किल हो गया है ।

इन आलोचनाओंमें प्रकाश उतना नहीं जितना अन्धकार है

पर भीड सदा भ्रमित करती है । उसमे एक सामूहिक उत्कण्ठा और मनोवृत्ति होती है । उससे तर्क करना कठिन होता है । वह समझने या समझानेके 'मूड' मे नही होती । निरपेक्ष दर्शकके लिए किसी समस्याकी तहतक पहुँचना कठिन कर देती है । गालिबपर निकली आलोचनाएँ भी कुछ ऐसी ही है । उन्होने जितना प्रकाश दिया, उससे ज़्यादा अन्धकार फैलाया; जितना सुलझाव नही रखा, उससे ज़्यादा उलझने पैदा कर दी । इनमे इतनी अतियाँ है कि जो समझना चाहता है वह विमूढ हो जाता है । आलोचको या प्रशंसकोकी भीड़की एक अति है स्व० डा० अब्दुर्रहमान बिजनौरी जिनका फतवा है:—

"हिन्दुस्तानकी इलहामी किताबे दो है : मुकद्दस वेद और दीवाने गालिब ।"*

---

* मुहासिन कलामे गालिब, चतुर्थ संस्करण, पृ० ५ ।

भीडकी दूसरी अति है डा० सय्यद अब्दुललतीफ, जो कहते हैं—

"उसकी शायराना पैदावारमे न तो वह मुहब्बत है जो हयातअफरो[1] होती है, न वह हमआहंगी[2] जो हकाइक[3] से पैदा होती है।........एक नये सितारेकी आनमे चमकनेकी आरजूमे वह अपने हकीकी मनसब[4] को भुला बैठा और उस रब्बानी तजल्ली[5] को, जो बहैसियत शायर उनको अता[6] की गयी थी, उसने अपने हाथसे दे दिया।"†

इन दो दलोके बीच कुछ और लोग है जो 'रामाय स्वस्ति, रावणाय स्वस्ति', 'यह भी ठीक है, वह भी ठीक है' कहते रहते है। जब उर्दू

यह अन्धपूजा !

आलोचनाकी यह स्थिति हो तब निरपेक्ष भावसे गालिबको देखना और उनके सम्बन्धमें निर्णय करना और कठिन हो जाता है। डा० बिजनौरीने तो दुनियाके सबसे बडे कवियोसे गालिबकी तुलना की और उनकी श्रेष्ठताकी घोषणा की है। गालिब एक गजलगो शायर थे। गजलका क्षेत्र सीमित है, वह मुक्तकका क्षेत्र है। उसका हर मिसरा स्वतन्त्र होता है। उसमे केवल झाँकियाँ मिलती है। पर बिजनौरीने राफेल, रुबेस, वर्जिल, गेटे, रैम्बो, मेटरलिक, इब्सन, शेक्सपियर, काण्ट, हेगेल, स्पाइनोज़ा, बेकन, बर्कले, वालेस, स्पेंसर, हर्गेल, बर्गसाँ इत्यादिको गालिबकी अदालतमे लाकर खड़ा कर दिया है और गालिबकी विशेषताएँ समझानेके स्थानपर अपने किताबी ज्ञानका प्रदर्शन अधिक किया है। उनकी विवेचना और निर्णय-शक्ति भावावेग एव अन्धनिष्ठाका शिकार हो गयी है। बहरलाल, हमे इन अतियोसे दूर रहकर गालिब और उनके काव्यको समझनेकी चेष्टा करनी चाहिए।

---

१ जीवनवर्द्धक, २. समवृत्ति, एक-सी आवाज़, एक-सा इरादा, ३ सत्यो, यथार्थताओ, ४ वास्तविक स्थान, ५ ईश्वरीय ज्योति, ६ प्रदान।

† 'गालिब' लाइफ ऐण्ड क्रिटिकल एप्रीसियेशन आफ हिज पोएटरी (उर्दू संस्करण) अब अलभ्य है।

गालिबके काव्यको, ऐतिहासिक विकास-क्रमकी दृष्टिसे चार भागोमे बाँटा जा सकता है :—

१. प्रारम्भिक : १८२१ तक (१८११-२१ ई०)। भूपालवाली प्रतिमे सुरक्षित है। इस काव्यका बहुत सा अंश ग़ालिबने अपने दीवानका सपादन-संकलन करते समय निकाल दिया था।

२. मध्यकालिक : १८२१ से १८३२ ई० तक। भूपाली प्रतिके हाशियेपर मिलता है।

३. प्रौढ़ : १८३३ से १८५५ तक, जो भूपाली प्रतिमे नहीं है किन्तु रामपुरवाली प्रतिमे है।

४. उत्तरकालिक : १८५६ से १८६९ तक।

१. प्रारम्भिक काव्य :

प्रारम्भिक एवं मध्यकालिक जीवनमे कविपर फ़ारसीका नशा इतना प्रबल था कि वह उर्दूमे शेर कहनेको लज्जाका कारण मानते थे। एक क़ितेमे कहा भी है :—

> फ़ारसीबीं ताब:बीनी नक़्शहाए-रंग-रंग,
> बगुज़र अज़ मजमूअए उर्दू कि बेरंगे मन अस्त।

पर आश्चर्य तो यह है कि शेरगोई पहिले उर्दूमे ही शुरू की,* और उसी उर्दू काव्यके कारण उर्दू साहित्यमे अमर हो गये।

जो हो फ़ारसीयत उनके ख़ूनमे मिली हुई थी। स्वाभाविक था कि

---

* "दर आग़ाज ख़ार ख़ार जिगर कावी शौकम हमः सिर्फ़ निगारिश अशआर उर्दू जबान बूद।"

—गुलेराना

"इब्तिदाई फ़िक्रे सखुन में····रेख़्त लिखता था।"

—शाकिरके पत्र में।

पूर्वार्द्ध कालमे, विशेपत: किशोरावस्थामें, जव दिल दिमाग़के ऊपर छा जाता है और मानव भावावेगके आकाशमे उडता रहता है, उनपर इस वातावरणका अधिक प्रभाव पडता। हम देखते है कि इनके प्रारम्भिक काव्यपर 'वेदिल' का प्रभाव अत्यधिक है। वेदिलकी शाइरी दिमाग़ी जोड़-तोडकी शाइरी है जिसमे शव्द भावनाका शृंगार नही करते, नटो-सी क़लावाजी दिखलाते है। इसी तरहके शेरोको देखकर मीरतकीने भविष्यद्वाणी की थी कि 'इस लड़केको अगर कोई कामिल उस्ताद मिल गया और उसने इसे सीधे रास्तेपर डाल दिया तो लाजवाव शाइर वन जायगा वर्नः महमिल वकने लगेगा।'

वे दिलका प्रभाव

इस युगका काव्य फारसी तर्कीवोसे भरा हुआ है। भाषा क्लिप्ट है; भावानुभूतिके स्थानपर कल्पनाकी उडान है; काव्य-सौन्दर्य वहुत कम है। स्वाभाविकता नही, कृत्रिमता वहुत अधिक है। कोई नई वात कहने, नये ढंगपर कहने और घुमा-फिराकर असामान्य ढगसे कहनेको ही काव्य समझते थे। इसीलिए इनपर आक्षेप भी होते थे पर यह 'वेदिल' पर इस तरह रीझे हुए थे कि उसके अनुकरणको वहुत वड़ी वात समझते थे :—

कृत्रिमताका आधिक्य

तर्ज़े बेदिल में रेख़्तः कहना,
असद् उल्लाखॉ क़यामत है।

दूसरोके आक्षेपसे चिढ़ते थे पर कभी-कभी अनुभव भी करते थे कि मैं जो लिखता हूँ वह वहुत अच्छा नही है। एक गजल लिखी जिसका मतलअ था :—

क़तरए मय वस कि हैरत से नफ़स परवर हुआ,
ख़त्ते जामे मय सरासर रिश्तए-गौहर हुआ।

आक्षेप हुआ। जवाव देते हुए लिखते है :—"इस मतलअमे ख़याल

है दक़ीक मगर कोह कुन्दन व काह बर आवर्दन यानी लुत्फ़ ज्यादा नही।"

उस जमानेके काव्यकी भाषा देखिए, कैसी बोझिल है :

करे गर फ़िक्र ता'मीरे खराबीहाय दिल गर्दूं,
न निकले ख़िश्त मिस्ले इस्तख़्वाँ बेरूँ ज़क़ालिब हा।
असद हर अश्क है यह हल्क़ः बरज़ंजीर अफ़ज़ूदन,
ब बन्दे गिरियः है नक्शे बर आब उम्मीदे रस्तन हा।
ब हसरतगाहे नाज़े कुश्तए जाँ बख़्शिए ख़ूबाँ!
खिज़िर को चश्मए आबे बक़ा से तरजबीं पाया।
रखा ग़फ़लत ने दूर उफ़्तादए ज़ौक़े फ़ना वर्ना,
इशारत फ़ह्म को हर नाख़ुने बुरींदः अबरू था।

बादमे जब चुनी हुई गजलोका दीवान सम्पादित किया तब भी उसमे अनेक शेर इस रंगके रह गये—

हवाए सैरे गुल आईनए बेमेहिए क़ातिल[1],
कि अन्दाज़े बख़ूँ ग़लतीदने बिस्मिल[2] पसन्द आया।

× ×

शब ख़ुमारे चश्मे साक़ी रुस्तख़ेज़ अन्दाज़ः था[3],
ता मुहीते बादः[4] सूरत-ख़ानए-ख़मियाज़ः[5] था।

× ×

---

१. क़ातिलकी निर्दयताका दर्पण, २. घायलके पलटने—करवट लेनेका ढग, ३. रातको साकीकी आँखोका खुमार कयामतके अन्दाजके समान था, ४. मदिराका सागर, ५. अँगड़ाइयोकी चित्रशाला।

ब तूफ़ाँ गाहे जोशे इज़्तराबे शामे तनहाई,[१]
शुआए आफ़ताबे सुबहे महशर तारे बिस्तर है।[२]
अभी आती है बू बालिशसे[३] उसकी ज़ुल्फ़े मुश्कींकी[४],
हमारी दीदको ख़्वाबे ज़ुलेखा आरे बिस्तर है।[५]

फ़ारसीयतसे लदी हुई भाषाके इन नमूनोमे भावका उत्कर्ष भी कही नही मिलता। दिमाग खुर्चकर और खीच-तानकर अर्थ निकालना पड़ता है। जहाँ सरल भाषा है, वहाँ भी काव्य काव्य नही पद्य एवं तुकबन्दी मात्र बनकर रह गया है, उसमे शब्दोका जोड़-तोड़ है पर अर्थ या भावका सौन्दर्य नही, जैसे एक बेजान ख़ूबसूरत लाश हो—

ख़ूबसूरत लाशानी कविता

पाँवोंमें जब वह हिना[६] बाँधते हैं,
मेरे हाथोंको जुदा बाँधते हैं।

× ×

शायद कि मर गया तेरा रुख़सार[७] देखकर,
पैमाना रात माहका लबरेज़े-नूर[८] था।

---

१. मैं अपनी एकान्त सन्ध्या (शामे तनहाई) मे इतना बेकरार हूँ कि मेरी बेचैनीके जोशने एक तूफान उठा रखा है, २. मुझे अपने बिस्तरका हर तार प्रलय-प्रभातके सूर्यकी किरणके समान लगता है, ३. तकिया, ४ सुगन्धित अलकोकी, ५ हमारी आँखोके लिए जुलेखाका स्वप्न (जिसमे उसने युसूफके दर्शन किये थे) लज्जा और ग़ैरतकी बात है (जुलेखाकी तरह स्वप्न-दर्शनको हम और हमारा बिस्तर अच्छा नही समझता।) ६ मेहदी, ७ कपोल, ८. ज्योतिसे परिपूर्ण।

इस जमानेका अधिकाश काव्य काल्पनिक है, उसमे एक दिमागी कसरत है। वह एक ऐसा जगल है जिसमे झाड़ियाँ बेतरह बढी हुई है, कोई क्रम, व्यवस्था या सजावट नही। उलझनें है और उलझनें है। पर ऐसा भी नही कि इस कालका समस्त काव्य नीरस और सौन्दर्यहीन हो। इस जंगलमें भी ऐसे फूल है जिनकी सुगन्ध मन-प्राणमे बस जाती है। इसमे भी ऐसे शेर है जो अनुभूति, भावना, अर्थ एवं काव्यके अन्य गुणोसे पूर्ण है, विशेषतः वे जो इस अवधिके अन्तिम दिनो, २४ वर्षकी आयुके आस-पास, (१८१९–२१ ई०) लिखे गये। उदाहरणके तौरपर हम यहाँ उनके कुछ शेर देते है, जिनमे उनको प्रतिभा और भावी सफलताकी स्पष्ट झलक है। कविको प्रिय होनेके कारण ये शेर वादके दीवानमे भी रख लिये गये है।

इस जंगलमें प्राणोन्मादक फूल भी है

आहको चाहिए एक उम्र असर होने तक,
कौन जीता है तेरी ज़ुल्फ़के सर होने तक।

आशक़ी सब्रतलब और तमन्ना बेताब,
दिलका क्या रंग करूँ ख़ूने जिगर होने तक।

हमने माना कि तग़ाफ़ुल[1] न करोगे लेकिन
ख़ाक हो जायँगे हम, तुमको ख़बर होने तक।

× ×

जब तक दहाने ज़ख़्म[2] न पैदा करे कोई,
मुश्किल कि तुमसे राहे सखुन वा[3] करे कोई।

---

१. उपेक्षा, २. घावका मुँह, ३. खोले, मुक्त।

नाकामिए निगाह है बर्क़े नज़ार:सोज़,[1]
तू वह नहीं कि तुझको तमाशा करे कोई।
सरबर हुई न वादए सब्रआज़मा[2] से उम्र,
फ़ुर्सत कहाँ कि तेरी तमन्ना करे कोई।
हुस्ने-फ़रोग़[3] शमए-सखुन[4] दूर है 'असद',
पहले दिले-गुदाख़्त:[5] पैदा करे कोई।

× ×

आइन: क्यों न दूँ कि तमाशा कहें जिसे,
ऐसा कहाँ से लाऊँ कि तुझसा कहें जिसे।
फूँका है किसने गोशे-मुहब्बतमें ऐ ख़ुदा,
अफ़सूने-इन्तज़ार[6] तमन्ना कहें जिसे।
सरपर हुजूमे दर्दे ग़रीबीसे डालिए,
वह एक मुश्ते ख़ाक कि सेहरा कहें जिसे।
दरकार है शिगुफ्तने गुलहाए ऐशको,
सुबहे बहार पंबए मीना[7] कहें जिसे।
ग़ालिब बुरा न मान जो वाइज़ बुरा कहे,
ऐसा भी कोई है कि सब अच्छा कहें जिसे।

इसी युगमे उन्होने वह शोक-गीत भी लिखा था, जिसमे उनका दिल टुकडे-टुकडे होकर बहा है, जिसमे अपने यौवनकी आशा, राग, आसक्तियो

---

१ दर्शनको जाननेवाली बिजली, २ धीरजको डिगानेवाला वादा, ३. प्रकाशपूर्ण सौन्दर्य, ४. वाणी-दीप, ५ द्रवित हृदय, ६. प्रतीक्षाका जादू, ७ शराबके शीशेपर लगी रुई या डाट।

और अभिलापाके चिता-भस्मपर बैठकर वह रोते है और जो उनके काव्यमे अमर हो गया है.—

दर्दसे मेरे है मुझको बेक़रारी हाय हाय,
क्या हुई ज़ालिम तेरी गफ़लतशआरी हाय हाय।
ज़ह्र लगती है मुझे आबो - हवाए ज़िन्दगी,
यानी तुझसे थी उसे नासाज़गारी हाय हाय।
किस तरह काटे कोई शबहाय तारे बरशकाल,[1]
है नज़र[2] ख़ूकर्दए[3] अख़्तरशुमारी[4] हाय हाय।
गोश[5] महजूरे-पयाम[6] वो चश्म[7] महरूमे जमाल[8],
एक दिल तिसपर यह नाउम्मीदवारी हाय हाय।

ग़ालिबके इस दौरके कलाममे उपमाओं और रूपकोंकी भरमार है। कितनी ही गजलें ऐसी है जिनके द्वितीय मिसरे उदाहरण एव उपमासे पूर्ण हैं। इनमे गालिबकी कोशिश यह रहती है कि उपमाएँ नई-नई हो, और हो सके तो विषय—मजमून—भी नये हों। देखिये.—

सरापा[9] रेहने इश्क़ वो नागुज़ीरे[10] उल्फ़ते हस्ती[11],
इबादत[12] बर्क़[13] की करता हूँ और अफ़सोस हासिलका[14]।

× ×

थी वतनमें शान क्या ग़ालिब कि हो ग़ुर्बतमें क़द्र,
बेतक़ल्लुफ़ हूँ वह मुश्ते ख़स कि गुलख़न[15] में नहीं।

---

१ बरसातकी अँधेरी राते, २. दृष्टि, आँखें, ३ अभ्यस्त, ४ तारे गिनना, ५ कान, ६ सन्देशसे हीन, ७ आँख, ८ दर्शनहीन, ९. आपाद मस्तक, १० अनिवार्य, जिससे छुटकारा न हो, ११. जीवनका, प्राणका मोह, १२. उपासना, १३. विद्युत्, १४ खलिहान, १५ भट्टी।

पहिले शेरमे कहते है कि सिरसे पाँवतक, आपादमस्तक प्रेममे रेहन–गिरवी—हूँ और उधर अपने प्राणको प्रिय समझनेपर भी मजबूर हूँ। विद्युत्‌की उपासना करता हूँ और खलिहानके जल जानेका शोक भी है। (प्रेमको विद्युत् और प्राणको अन्नभण्डार या खलिहान कहा हैं।)

दूसरे शेरमे कहते है कि वतनमे ही मेरी क्या शान थी कि परदेशमे सम्मान हो। मै वह मुट्ठी भर घास हूँ जो भट्ठीमे पडे तो वह उसे जला दे और भट्ठीसे बाहर (परदेश) जाय तो वहाँ उसे कोई न पूछे।

इन बातोसे यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि लड़कपनमे उनपर बेदिल, सायब इत्यादिका रंग छाया हुआ था और कलाममे बडी दुर्बोधता एवं कृत्रिमता थी, पर उनमे जन्मजात प्रतिभा भी थी और किशोरावस्थाकी ड्योढी पार करते-करते वह सँभलने लग गये थे तथा बीस सालकी उम्रके बाद जबानमे सफाई और व्यजनामे सुघडता आने लगी थी। इसी जमानेके दो शेर है, जिनके पीछे उनकी भावी श्रेष्ठता और ऊपर उठनेके लिए संघर्ष करती हुई प्रतिभाके दर्शन होते है:—

भावीकी झलक

रात के वक़्त मय पिये साथ रक़ीब[1] को लिये,
आये वह याँ ख़ुदा करे पर न ख़ुदा करे कि यों।
मैने कहा कि बज़्मे नाज़[2] चाहिए ग़ैर से तिही[3],
सुन के सितमज़रीफ़[4] ने मुझको उठा दिया कि यों।

२ मध्य युगका काव्य :

इसमे उस दूसरे तरुणकालके श्रेष्ठ काव्यकी झलक है जिसने उर्दू काव्यके इतिहासमे गालिबको अमर कर दिया है। यह दूसरा युग १८२१

१. प्रतिस्पर्द्धी, २. प्रेमिकाकी गोष्ठी, ३. रिक्त, शून्य, ४ हँसी-हँसीमे अत्याचार करनेवाला।

से १८३२ तकका है, यद्यपि कई साहबोंने इसको भी दो भागोंमे विभाजित कर दिया है। इस कालका काव्य भूपाल वाली प्रतिके मुख्य भागमे तो नही है पर उसके हाशियेपर लिखा हुआ मिलता है।

इस युगके काव्यका अध्ययन करनेसे ज्ञात होता है कि कविकी मानसिक उलझनें कम होती गयी है, कल्पनामे यथार्थता है, अनुभूति दृढ होती गयी है, जबान ज्यादा साफ है, ऊपरसे फारसी तर्क़ीबोका बोझ कम होता गया है। जहाँ पहिले 'बेदिल' और 'सायब' मानस क्षितिजपर छाये हुए थे तहाँ उर्फ़ी और नजीरीका रंग चढता गया है। उपमाएँ, रूपक, उत्प्रेक्षाएँ स्वाभाविक होती गयी है। विषय काल्पनिक (खयाली) की जगह यथार्थ (हाली) है, अभिव्यक्तिमे बॉकपन है।

उर्फ़ी और नजीरीका रंग

इस युगके उनके काव्यमे, स्वभावतः प्रेमल भावनाएँ प्रधान है। सौन्दर्यकी शत-शत भंगिमाएँ उसमे प्रकट हुई है। पर प्रेम और सौन्दर्यके अतिरिक्त अन्य मानवी अभिलाषाओका सागर भी उसमे उमडता दिखाई देता है। मानव-हृदयके प्रच्छन्न कोनोको अपनी ज्योतिर्मयी कल्पनासे कवि प्रकाशित कर देता है। देखिए—

ज्योतिर्मयी कल्पना

इस नामुराद दिलकी तसल्लीको क्या करूँ,
माना कि तेरे रुख़[1] से निगह कामयाब[2] है।

यद्यपि तुम्हारे मुखको देखकर मेरी दृष्टि सफल हो गयी है पर अपने नामुराद दिलको किस तरह आश्वासन प्रदान करूँ? (केवल दर्शनसे हृदयको सन्तोष नही हो सकता।)

मत पूछ कि क्या हाल है मेरा तेरे पीछे,
तू देख कि क्या रंग है तेरा मेरे आगे।

---

१. मुख, २. सफल।

मुझसे क्या पूछते हो कि तुम्हारे पीछे, तुम्हारे विरहमे मेरा क्या हाल होता है, यह देखो कि मेरे सामने तुम्हारा क्या रंग होता है (तुम मेरे सामने कितने परीशान हो जाते हो ? अपनी इस परीशानीसे ही तुम अपने वियोगमे मेरी हालतका अन्दाज कर सकते हो !)

देखना तक़रीरकी लज़्ज़त[1] कि जो उसने कहा,
मैने यह जाना कि गोया यह भी मेरे दिलमें है।

अर्थ स्पष्ट है।

संशोधनकी कलाका निखार

इसी कालके उत्तरार्द्धमे मिर्जाने 'दीवाने गालिब'का सम्पादन किया था और उसमे पहिले लिखे हुए शेरोमे जो परिवर्तन तथा संशोधन उन्होने किये है उनसे पता चलता है कि न केवल उनकी कल्पना, अनुभूति तथा अभिव्यक्ति अधिकाधिक सशक्त होती जा रही थी वरं काव्य-शिल्प भी अधिकाधिक उभरता और निखरता जा रहा था। कुछ उदाहरण लीजिए। पहिले उन्होने लिखा था—

गर निगाहे गर्म फ़र्माती रही ता'लीमेज़ब्त[2],
शो'लः ख़समें जैसे ख़ूँ दर रग निहाँ[3] हो जायगा।

अब इसे यो कर दिया—

गर निगाहे गर्म फ़र्माती रही ता'लीमे ज़ब्त,
शो'लः खसमें जैसे ख़ूँ रगमें निहाँ हो जायगा।

पहिले लिखा था—

इशरत ईजाद चः बूए गुलो कूदूदे चिराग़,
जो तेरी बज़्मसे निकला सो परीशाँ निकला।

---

१ वाणीका स्वाद, २. संयमकी शिक्षा, ३ प्रच्छन्न।

अब यों कर दिया—

> बूए गुल[1], नालए दिल[2] दूदे चिराग़े महफ़िल[3],
> जो तेरी बज़्म[4] से निकला सो परीशाँ[5] निकला।

कहीं-कहीं पहिले लिखे हुए शेरोमे एकाध शब्द ऐसे बदल दिये कि जमीन ही बदल गयी और नया मजमून निकल आया। जैसे पहिले लिखा था—

> नहीं बन्दे .ज़ुलेख़ा बेतकल्लुफ़ माहे कनआँ[6] पर,
> सफ़ेदी दीदए याक़ूब[7] की फिरती है ज़िन्दाँपर।

अब यो कर दिया—

> न छोड़ी हजरते यूसुफ़ने याँ भी ख़ाना आराई,
> सफ़ेदी दीदए याक़ूबकी फिरती है ज़िन्दाँपर।

पहिलेकी उपमाओ, रूपको या तर्कीबोमे शब्दोकी जोडतोडको ऐसा बदल दिया है कि वे चमक उठी है और एक नई दुनिया, जैसे, व्यक्त हो गयी है। जैसे पहिलेका शेर था—

> आता है दाग़े हसरते दिलका[8] शुमार[9] याद,
> मुझसे हिसाबे बेगुनही ऐ ख़ुदा न माँग।

इसमे 'दागे हसरते दिल'के ख्यालसे 'बेगुनही' शब्दका जोड़ ठीक था किन्तु इसके कारण अर्थ-वैचित्र्यमे दुर्बलता आ गयी थी इसलिए गालिबने जरा-सा बदल दिया और शेर जमीनसे आस्मानपर पहुँच गया—

---

१. पुष्पगन्ध, २. हृदयका रोदन, ३. महफिलके दीपकका धुवाँ, ४. सभा, ५. बिखरा हुआ, अव्यवस्थित, ६ पैलेस्टाइनका चाँद, (यूसुफ), ७. यूसुफके पिता जो इनके विरहमे अन्धे हो गये थे, ८. हृदयकी वासनाओके धब्बे, ९ गणना।

आता है दाग़े हसरते दिलका शुमार याद,
मुझसे मेरे गुनहका हिसाब ऐ ख़ुदा न माँग।

३. प्रौढ़ युगका काव्य :

तीसरे दौर (१८३३–५५) मे मिर्जाने उर्दूकी अपेक्षा फारसीकी ओर ज्यादा ध्यान दिया। इस जमानेकी अधिकाश फारसी गजले 'गुल्ले रा'ना'मे एकत्र है। ज़्यादातर गजलें १८३८के पहिलेकी है। कुछ १८३८ तथा १८४५ के बीच लिखी गयी है। समय-समयपर उर्दू गजले भी लिखते थे पर कम। १८४७के बाद बादशाह बहादुरशाहसे उनके सम्बन्ध अच्छे हो गये, तब उनके लिए फिर उर्दूमे लिखने लगे। इस जमानेका कलाम थोड़ा है किन्तु उसमे गालिबका शिल्प और सौन्दर्य अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया है। शाही दरबारसे सम्बन्ध होनेके कारण भी इनमे भाषाकी सादगी, मुहाविरोका प्रयोग, रोजमर्रेका आग्रह बढ गया है क्योकि दरबार-पर शाह नसीर और 'जौक'का रग चढा हुआ था। इस आग्रहके कारण कही-कही स्तर गिर भी गया है। जैसे—

शिल्प और सौन्दर्यकी पराकाष्ठा

वाइज़[1]! न तुम पिओ न किसीको पिला सको,
क्या बात है तुम्हारी शराबे तहूर[2]की।

× ×

दर्दे मन्नतकश[3] दवा न हुआ,
मै न अच्छा हुआ, बुरा न हुआ।

× ×

१ धर्मोपदेशक, २ स्वर्गीय मदिरा, ३. आकाक्षी, प्रत्याशी।

ग़म खानेमें बोदा दिले नाकाम बहुत है,
यह रंज कि कम है मये-गुलफ़ाम[1] बहुत है।

पर ऐसे शेर तादादमें कम हैं। अछूते मजमून और अभिव्यजनाके खास अन्दाजवाले एकसे एक शेर मिलते हैं। जैसे—

बस कि मुश्किल है हर एक कामका आसाँ होना,
आदमीको भी मयस्सर[2] नहीं इंसाँ होना।

या—

हविस[3]को है निशाते-कार[4] क्या था,
न हो मरना तो जीनेका मज़ा क्या?

× ×

य' न थी हमारी क़िस्मत कि विसाले यार[5] होता,
अगर और जीते रहते यही इन्तज़ार[6] होता।

× ×

दिल ही तो है न संगो-ख़िश्त[7] दर्दसे भर न आये क्यों?
रोयेंगे हम हज़ार बार कोई हमें सताये क्यों?

नीचेके शेर देखिए। छोटी कायामें एक-एक दुनिया आबाद है—

मुनहसिर[8] मरने पै हो जिसकी उमीद,
नाउमेदी उसकी देखा चाहिए।

× ×

---

१. पुष्पागना, २. प्राप्त, ३. कामना, वासना, ४ कामकी उमग, ५. प्रिय-मिलन, ६ प्रतीक्षा, ७ पत्थर-ईट, ८. निर्भर।

दैर[1] नहीं, हरम[2] नहीं, दर[3] नही, आस्ताँ[4] नहीं,
बैठे हैं रहगुजर[5] पै हम ग़ैर हमें उठाये क्यों ?

× ×

जब मैकदः[6] छुटा तो फिर अब क्या जगहकी क़ैद
मस्जिद हो, मदरसा हो, कोई ख़ानकाह[7] हो।

× ×

वफ़ादारी बशर्ते इस्तवारी अस्ले ईमाँ है,
मरे बुतख़ानेमें तो का'बेमें गाड़ो बिरहमनको।

४. उत्तरकालिक काव्य :

चौथा और अन्तिम युग, जिसका आरम्भ गदरकी भूमिकासे और अन्त गालिबकी मृत्युसे होता है, बहुत उपजाऊ नही। चूँकि गदरके बाद दिल्ली की बादशाहत खतम हो गयी, और एक ओर दिन-दिन गिरते हुए स्वास्थ्य तथा दूसरी ओर बढती जानेवाली आर्थिक कठिनाइयोके कारण गालिबमे काव्यकी उमंग भी गिरती गयी इसलिए बहुत कम लिखा है। जो लिखा भी वह अधिकाश फारसीमे लिखा या फिर पत्रोके रूपमे गद्यमे जो उर्दू साहित्यके अभिमानकी वस्तु है।

१८५५ के बाद उनकी मानसिक स्थिति खराब होती गयी। १८५७-५८ मे वह अन्दरसे इतने टूटे हुए थे कि गजल लिखनेकी ओर तबीयत ही न होती थी। एक पत्रमे स्वयं लिखते है—

---

१ मन्दिर, २ का'बा, ,खुदाका घर, ३ द्वार, ४. ड्योढी, निवास-स्थान, ५ आम रास्ते, ६ मद्यशाला, ७ तकिया, फकीरों एवं साधुओके रहनेकी जगह, आश्रम।

"....मियाँ, तुम्हारी जानकी क़सम, न मेरा अब रेख़्त: लिखनेको जी चाहता है, न मुझसे कहा जाय। इस दो बरसमे सिर्फ वह पचीस शेर बतरीक क़सीद: तुम्हारी ख़ातिरसे लिख भेजे थे। सिवाय इसके अगर कोई रेख़्त कहा होगा तो गुनहगार बल्कि फारसी गजल भी वल्लाह नहीं लिखी।....क्या कहूँ कि दिलोदिमाग़का क्या हाल है ?"

अब न वह जवानी थी जो प्रत्येक रूपसीमें स्वर्गका चित्र देखती है और जिसमे राहके काँटे भी फूल हो जाते है, न वे उमंगें, वे वलवले थे जो जमीनसे उठते है पर आकाशमे जीते और पुष्ट होते है। सच है—

थी वह यक शख़्सके तसव्वुरसे,
अब वह रा'नाइए ख़याल कहाँ ?

१८५९से १८६३ तक कुछ निश्चिन्तता आई थी किन्तु उसके बाद जो बीमारी शुरू हुई वह जानलेवा बन गयी। सच पूछें तो इनके तीसरे दौरके काव्यमे जो शोख़ी, जो शिल्प, जो उच्च कल्पना तथा अनुभूतिका सगम है वह फिर दिखाई न दिया। काव्य-सौन्दर्यकी दृष्टिसे दूसरे तथा तीसरे युगकी कविताएँ श्रेष्ठ है।

ग़ालिबका काव्य : २ :

लोकप्रियताका रहस्य

उर्दू काव्यमे एकसे एक कवि हुए है; मीरकी गहराई, सौदाकी उत्फुल्लता, नासिखकी संस्कारनिष्ठ भाषा, मीर दर्दकी आध्यात्मिक दृष्टि, इंशाकी विशिष्ट व्यंजना, मोमिनकी आर्द्रता, जौककी नीति-प्रधानताका लाभ काव्य-प्रेमियोको मिला है पर यह एक करिश्मा-सा मालूम पड़ता है कि लोक-मानसमे जो जगह गालिबको मिल गयी है वह किसीको नही मिली। आप उनकी प्रशसा करे या विरोध, पर आप उनकी उपेक्षा नही कर सकते। खुद गालिबने कभी न ख्याल किया होगा कि जीवनभर अपने जिस उर्दू-काव्यको अपने फारसी काव्यके आगे वह तुच्छ समझते रहे, वही आगे इतना लोकप्रिय होगा और उन्हे उर्दू कवियोमे शीर्षस्थानपर बिठानेका कारण होगा।

गालिब न केवल उर्दूके सबसे लोकप्रिय कवि है किन्तु सबसे अधिक ज़िन्दा शाइर भी है। उनकी मृत्युको लगभग ९० वर्ष हो गये है किन्तु

उर्दूका सबसे ज़िन्दः शाइर

आज भी वह उर्दू कविताके मनस्वी पाठकोके हृदय और मनपर उसी प्रकार छाये हुए हैं। वह एक नये युग, एक नई परम्पराके जनक है। उनकी शाइरीमे कुछ ऐसी बात है जो पुरानी होकर भी नई-सी लगती है; एक ऐसी वाणी जिसे हमने किसी-न-किसी रूपमे पहिले भी और बाद भी, बार-बार सुना है फिर भी ऐसा जान पडता है जैसे वह क्षितिजपर फूटने

वाली पहिली किरणकी भाँति नई-नई-सी है और जिसमे एक आह्वान, एक पुकार है जिसे सुनते ही दिल बेचैन हो उठता है।

गालिबके पाठकोमे हर तरहके इंसान मिलेंगे। लफंगेसे लेकर परम सुसंस्कृत पाठक तक सबके ओठोपर उसका गान है; सबके दिलमे उसकी

विविधताका कवि

'अपील' है। यह एक रहस्य-सा लगता है पर इसमे कोई रहस्य नहीं। गालिब बहुदिशाओंके कवि हैं, उनमे इतनी विविधता है, इतना विस्तार है कि वह अपनी एक छोटी दुनियामे सैकड़ों दुनियाएँ छिपाये हुए है। हर इंसानकी एक अपनी दुनिया होती है, उसके दिलकी अपनी दुनियापर यहाँ एक कवि, एक इंसान है जिसमे असीम संसार उभरते और विलीन होते, विलीन होते और उभरते है। यहाँ सबको अपनी दुनिया मिल जाती है; यहाँ उसके दिलकी उमंगें, उसकी निराशाएँ, उसकी घुटन, तड़प और उभार, उसके वलवले और उसकी कामनाएँ उसे मिलती है। यहाँ उसे अपना चेहरा दिखता है, अपने अन्तर और बाह्य दोनोंकी छाया मिलती है। गालिबका काव्य एक व्यापक चित्रशालाकी भाँति है जिसमे मानवताकी हजारो आकृतियाँ, चित्र-पटोंपर व्यक्त दिखाई पड़ती है, आकृतियाँ जिनमे रेखाएँ ही नही है, ख़ूनकी गर्मी, मॉसका चीत्कार, सर्वग्राही प्रेम और सौन्दर्यकी मोहक भंगिमाएँ है, जो चुप रहकर भी दर्शकसे बोलती है, उसे गुदगुदाती है, उसे छेड़ती है, उससे खामखा उलझती है, कुछ इस तरह कि एक बीती दुनिया-

राहमें चलते-चलो

की सैकड़ो सोई स्मृतियाँ जल-जल उठती है। फिर छेड़कर चुप हो जाती है, और अपने मौन-मे कहती है—आगे बढो, अभी तुम्हे जिन्दगी जीनी है, दर्शनमे ही न खो जाओ, जिन्दगी बडी है, इंसान बड़ा है, मार्गमे चलते चलो, चलते चलो और देखते चलो, देखते चलो और चलते चलो।

कवि ग़ालिबका व्यक्तित्व बड़ा रंगीन और पहलूदार है। उसमे अनेक रंग है; उसके अनेक पहलू है। उसकी दुनिया इसी विविधताके कारण,

वेहद दिलचस्प है। उसमे अनुभूतिकी गहराइयाँ है तो कल्पनाकी उडान भी है, वल्कि कल्पनाका कुछ ऐसा रग है कि वह खुद अनुभूतिकी सतह-पर उठ जाती है। उसमे चिन्तनशीलता भी है, पर वह व्यंजनाके सौन्दर्यमे लिपटी हुई है। डा० अब्दुर्रहमान विजनौरीने भावावेशमें गालिवको महा-मानवका रूप दिया है और न जाने क्या-क्या वना दिया है पर एक वात उन्होने विल्कुल ठीक लिखी है कि उनके काव्यमे प्रत्येक पाठक-वर्गकी दिलबस्तगीका सामान है। वह लिखते है—

''लौह[1] से तम्मत[2] तक मुश्किलसे सौ सफहे है। लेकिन क्या है जो यहाँ हाजिर नही, कौन-सा नग्मः[3] है जो इस जिन्दगीके तारोमे बेदार[4] या ख्वाबीद:[5] मौजूद नही है।''*

काव्यकी अनेक परम्पराएँ, अनेक सम्प्रदाय है। कोई काव्यमे भावको, कोई व्यंजनाको, कोई अलंकरणको, कोई ध्वनिको प्रधान मानता है पर गालिवका काव्य इनमेसे किसी एक परम्परा, एक सम्प्रदायमे समाप्त होकर रह नही जाता;

अनेक रूपरूपाय

वह जीवनका चित्रण है और जिन्दगी किसी एक दिशा, एक परम्परा, एक ढंग, एक देशमे सीमित नही। उसमे इतनी विविधता है कि अनेक वार वह स्वय अपनेको ही काट देती है, एक रूप खीचती है और दूसरी जगह उसे ही मिटा देती है। यहाँ वह 'अनेक रूप-रूपाय' है। यह भी उसका है, वह भी उसका है। इसीलिए हर आदमीको उसमे अपनी तस्वीर मिल जाती है, पूरी नही तो उसकी स्फुट रेखाएँ, या चेहरा जो खिच गया है, दिल जो बर्फ होकर भी धडकता है या ऑखे जो प्रतीक्षा वनकर रह गयी है, या हाथ-पाँव जो सकतेमे है पर जिनमे एक गतिकी

---

१. आरम्भ, २ अन्त, ३ राग, ४ जागरित, ५. स्वप्नावशिष्ट।
*मुहासिन कलामे गालिव। डा० बिजनौरी-पृ० १।

लोच अब भी है। "इस साजमे बेशुमार नग्मे है और हर नग्मः दिलावेज[1] है।" †

गालिबने दुनिया देखी थी, उसके हर पहलूका मजा लिया था। रईसोंमे रईस थे, शराबियोमे शराबी थे, जुआरियोंमे जुआरी; जवानोमे जवान, बूढ़ोंमे बूढे, कवियोमे कवि, विचारकोमे विचारक। उनके काव्यमे यह अनेकता है। उसमे उनके लिए पर्याप्त सामग्री है जो चुलबुलापन, शोख़ी और विनोद चाहते है, उनको भी सन्तोष है जो तसव्वुफ़ और गहराईके प्रेमी है; उनकी तृप्तिके लिए बहुत कुछ है जो हुस्नो इश्ककी नैरंगियोके दिलदादः है और उनके लिए भी कम सामग्री नही जो वेदना और करुणाके उपासक है। हर प्रकारके पाठकको इसमे कुछ न कुछ मिल ही जाता है।

अनेक शैलियाँ

शैलीकी दृष्टिसे भी उनमे कई-कई शैलियाँ मिलती है। एक ओर फ़ारसीकी उच्च संस्कृतिसे लदी भाषा है तो दूसरी ओर ठेठ बोलचालकी जबान है; कही बेदिलका रंग है, कही उर्फीका तो कही 'मीर' का है। कही अर्थोमे अजीब लपेट और घुमाव है तो कही इतनी सरलता है, मानो जबान नही दिल बोल उठा हो। कही इतनी सजावट, इतना शृंगार है कि आँखे नही ठहरती; कही वह सादगी है कि अल्ला रे अल्ला! कही बज्मे निशात है; मय है, मीना है, साकी है, उसकी मख़मूर निगाहे है, उसकी सौ-सौ अदाएँ है, आँखोकी हैरत है, शौकका हुजूम है, कहकहे है; कही इतनी तनहाई है कि अपनी आवाज भी गुम हो गयी है, शमा जलकर चुप हो चुकी है, विरहकी वेदना केवल मौनमे बोलती है, सब कुछ खो गया है, पानेका एहसास भी। मजबूरियाँ है और मजबूरियाँ। कही यह अहं है कि काबेका दरवाजा भी स्वागतके लिए खुला न हो तो लौट आते

१. चित्ताकर्षक।

†'गालिबनामा' : मुहम्मद एकराम पृ० २७१।

है, और कही यह गुण्डागर्दी है कि माशूकका आँचल खीचनेके हौसले है। कही यह गहराई है कि इश्क अभिरुचि और आचरण बन जाता है तथा माशूकका हुस्न विश्व-सौन्दर्यमे परिणत हो जाता है, कही यह उथलापन है कि मासके चीत्कारसे शेरका एक-एक अक्षर कम्पित है। कहीं वह सौन्दर्य है कि आँखोको शान्ति और दिलको तस्कीन देता है, उच्च प्रेरणाएँ उत्पन्न करता है, कही वह रूपसज्जा है कि दिलमे एक आग लग जाती है और आँखोमे वासनाके शत-शत दीप जल उठते है, दीप जिनसे रोशनी नही मिलती, आगकी लपटे निकलती है, लपटे जिनमे पशुका पैशाचिक आनन्द है। कही थकावट मंज़िलकी हसरत बनकर रह गयी है तो कही शाश्वत पद-चापसे राहका चप्पा-चप्पा मुखरित है, ऐसा कि जिसमे चलना ही सत्य है, चलना ही जीवन है, चलना ही सौन्दर्य है।

गहरी मानवीय अपील

दूसरी बात जिसके कारण गालिबको इतनी लोकप्रियता प्राप्त हो रही है उसकी गहरी मानवी अपील है। आजका युग देवताओका युग नही है, आजका युग उपासनाका युग नही है। आजका युग मानवका युग है; आजका युग कर्म-का युग है, आजका युग भोगका युग है। इस युगका देवता अभी ढल नही पाया और जबतक वह ढलता नही इंसान ही इस युगका देवता है। आदर्शकी कडियाँ टूट रही है; सपने बिखर रहे है। मन और प्राणमे वह उडान, वह ठहराव नही है कि मानवीमे भी देवीको खोज ले, इंसान क्या पत्थरमे भी देवताकी सृष्टि कर दे। आकाशमे हम उड़ने जरूर लगे है पर हमारा मन ज़मीनसे बँध गया है, वहाँ हमारा शरीर ही उड़ता है; अन्त-रिक्षकी यात्राएँ होने लगी है परन्तु वहाँ उड़ते हुए भी हम मिट्टीकी ठोस शारीरिकतामे बँधे हुए रहते है। आजका इंसान धरतीपर खड़ा है, वह धरतीका रस लेकर पनपा है और धरतीका ही समस्त रस लेना चाहता है। इसलिए आजके काव्यके पाठकमे इसी धरतीके रसकी कामना अधिक है।

ग़ालिब हमे यही धरतीका रस देता है। वह इसी दुनियाके सौन्दर्यका कवि है। वह जब प्रेम देता है तो उस प्रेममे यौवनकी कामनाएँ मुखर होती हैं; कामनाएँ जो केवल प्राणोकी अनुभूति नही, इन्द्रियोका भी भोजन है। वह जब सौन्दर्यकी छवि अंकित करता है तो उसमे वह लोच, वह जादू होता है जो स्पर्श एवं आलिगनकी भुजाओमे बँधनेको आतुर है। ग़ालिब अतीन्द्रिय, स्वप्निल, गूढ और रहस्यमय प्रेम एव सौन्दर्यके स्थान-पर नयनाभिराम, इन्द्रियगम्य, सरल और जीवन्त प्रेम एव सौन्दर्यके चित्र देता है, जिनमे ख़ूनकी गर्मी और गति तथा जीवनकी अँगड़ाइयाँ होती है। वह हमारे मन-प्राणको स्वप्न-मुग्ध करके दूर, इस जगत्के पार किसी ऐसे लोकमे नही ले जाता जहाँ बुद्धिकी गति नही और जिसे न हम देख सकते, न छू सकते है, केवल सूक्ष्म और पकड़मे न आनेवाली अनुभूतियोकी झलक मात्र पा सकते है। वह इसी वसुधापर मनोरम और पकड़मे आनेवाले सौन्दर्यकी सृष्टि करता है। यो भी कह सकते है कि वह धरतीको उड़ाकर स्वर्गमे नही ले जाता बल्कि स्वर्गको अपने दृढ पंजोसे खीचकर धरतीपर उतार लाता है।

इसीलिए ग़ालिबके काव्यमे मानवकी पकड़ है, उस पारके सौ-सौ स्वर्ग इस धरतीपर निछावर है। उसका गान यहीका गान है; उसकी ख़ुशी यहीकी ख़ुशी है; उसका रोदन यहीका रोदन है। वह उस शराबकी बात नही करता जिसका स्वाद ख़ुद उसके प्रचारकको भी नही मिल पाया[1], वह उस शराबकी बात करता है जो इसी जगत्मे प्राप्त है।[2] वह उस जामेजमकी कामना नही करता जिसका मिलना भी संशयास्पद है, वह

१. वाइज़ न तुम पियो, न किसीको पिला सको,
क्या बात है तुम्हारे शराबे तहूरकी।

२. जॉफ़िज़ा है बादः जिसके हाथमें जाम आ गया,
सब लकीरे हाथकी गोया रगे जॉ हो गयीं।

मिट्टीके पात्रपर ही मोहित है।[1] वह यही किसी मुक्तकुन्तला रूपसीको देखना चाहता है, स्वर्गकी परियोको नही।[2] वह उसीको पानेकी उत्कण्ठा रखता[3] है। स्वभावत आजकी वस्तुवादी दुनियामे यह दृष्टिकोण अधिक प्रिय है।

फिर उर्दूके पुराने कवियोमे गालिब ही पहिला कवि है जिसमे आजकी दुनियाका मानसिक द्वन्द्व दिखाई पड़ता है, जिसमे पुराने विश्वासो तथा पौराणिक परम्पराओके प्रति गहरे व्यंगका स्वर है। वही है जिसने स्वर्गकी बार-बार हँसी उड़ाई है, उसके अस्तित्वपर शंका की है, और खुदाको भी इसानी जज्बेपर खीच लाया है।

इन कारणोसे ही उसकी दिलकी पकड़ इतनी स्पष्ट है। इन्ही कारणोसे वह इतना लोकप्रिय है।

---

१. और बाजारसे ले आये अगर टूट गया,
जामे जमसे तो मेरा जामे सिफ़ाल अच्छा है।

२. माँगे है फिर किसीको लबे बाम पर हविस,
जुल्फ़े सियाह रुख पै परीशाँ किये हुए।

३. नींद उसकी है, दिमाग़ उसका है, राते उसकी हैं,
तेरी जुल्फें जिसके बाज़ूपर परीशाँ हो गयीं।

ग़ालिबका काव्य : ३ :

प्रेम और सौन्दर्य

प्रेम जीवनका उत्स है !

प्रेम जीवनका उत्स है। जीवन उसी ज्योति·पुजकी किरण-माला है। इन किरणोमे उसीके कारण आकर्षण है। वही है जिसपर अपनेको लुटा-कर अपनेको निवेदितकर वह सार्थक हो जाता है। जीवन उसीसे है, उसीका है और उसीके लिए है। मानवकी समस्त अभिव्यक्तियोमे वही बोलता है, मौनमे भी और वाणीमे भी। स्वभावतः विश्व-काव्यपर इस प्रेमकी गहरी छाप है। संसार-का सर्वोत्तम काव्य प्रेम-काव्य ही है। कविकी वृत्ति, संस्कार, दृष्टिकोण, सामर्थ्यके अनुसार प्रेमके विविध रूप और विविध श्रेणियाँ उसमे व्यक्त हुई है। प्रत्येक जातिका हृदय उसके साहित्यमे स्पन्दित है। इसलिए प्रत्येक देश वा जातिके प्रेम-काव्यमे अपनी एक परम्परा, अपनी एक विशिष्टता दिखाई पडती है।

फ़ारसी-काव्यकी ज़मीन

फारसी-काव्यकी भी अपनी एक विशिष्टता है। उसका एक खास रंग है। वह वैभव एवं विलासकी रंगभूमिमे पल्लवित हुआ, गुलमे खिला, बुलबुलके गानमे उभरा, बहारमे हँसा, ख़िज़ॉमे रोया; सेहरामे मारा-मारा फिरा। वह हुस्नकी अदाओमे मचला, नयनोमे मख़मूर हुआ, जुल्फोंकी अमामे सोया, मुखकी पूर्णिमामे दीवाना हुआ, पावोंकी ठोकरोसे मरा और हाथों या तेवरके स्पर्शसे

जी उठा। उसका प्रेम उसके सौन्दर्यपर दीवाना हुआ। उसके प्रेमके सोते इसी हुस्नपरस्तीसे फूटते है।

प्रेमी सौन्दर्यपर रीझता है, उसका हृदय-पक्षी खुद उड़कर पिंजरेमे चला जाता है। बन्द होकर फडफडाता है—बाहर निकलनेके लिए पर बाहर निकलनेपर भी नही निकलता। यो उसके दिलपर माशूकका अधिकार हो जाता है। अब माशूक है

प्रेमीकी मुसीबतें

कि उसे अपने हुस्नपर नाज है, वह देखकर भी उधर नही देखता। आशिकसे आँखे चुराता है; उसे जरा छेड़ देता है, फिर उपेक्षा करता है, बल्कि उसे व्यथित करनेके लिए ग़ैरोसे हँसता है, बोलता है, उनकी तरफ ज्यादा ध्यान देता है। उसके बज्ममे अगियारका स्वागत और अभिनन्दन है। इधर आशिक तड़प-तडपकर रह जाता है। कलेजा मुँहको आता है, रकावत या ईर्ष्याके बिच्छुओके हज़ार-हजार डक उसका कलेजा छेद देते है। राते काटे नही कटती। आँखोसे दरिया वह निकलता है। यहाँ तक कि आशिक विरहमे पागल हो जाता है, बस्तीसे सेहराकी ओर भागता है, गिरेबाँ फाड़ता है, वाल नोचता है। घुल-घुलकर मरता है पर मरकर भी चैन नही पाता। मजारके तले भी, माशूककी छेड़नेवाली अदाओके कारण, बेचारा सो नही पाता। कोई भूले-भटके चिराग जला देता है तो हवा (आह भरकर) उसे सरेशाम ही बुझा देती है। ऐन वहारमे वुलवुलका आशियाँ उजड़ता है, तिनके बिखर जाते है। पतंगा शमाके हुस्नके जल्वेमे जल जाता है पर शमा खुद भी तिल-तिल जलती है। इस जलनेके कारण ही उसमे सौन्दर्य ज्योतित है। प्याससे गला सूख रहा है, प्याला है, सुराही है, शराब भी है पर साकी नही जो दो चुल्लू पिला दे। या है भी तो यह शोखी है कि प्याला भरकर भी नही देते। आँखोमे शराब है पर वे बन्द कर ली जाती है; कपोलोपर गुलाब खिलते है पर वे हटा लिये जाते है, मुखपर चाँदनी फूटी है कि मुख चुरा लिया जाता है।

उधर वह यौवन, वे अदाएँ, वे शोखियाँ, और इधर यह गुरबत, यह आह, यह कराह, यह बेचैनी !

यही दुनिया, यही वातावरण फारसी शाइरीमे मिलता है। उर्दू पली हिन्दुस्तानकी धरतीपर किन्तु उसमे दिलकी क़लम लगी ईरानकी।

ईरानका गुल है, भारतका कमल नहीं

ज्यादातर कवि वहीसे आये थे या उनकी सन्तति थे जो वहाँसे आये या जिनपर वहाँके सपने और नशे हिन्दुस्तानमे भी छाये हुए थे। कुछ लोगोने पुराने वक्तोमे और एक अच्छी तादादने आजकल इस फिजाको बदलनेकी कोशिश की पर सब मिलाकर आज भी उर्दू शाइरी वह है जिसमे हिन्दुस्तानके दिलका सुकून नही, ईरानके दिलकी बेकरारी है, जिसमे ईरानका गुल खिलता है पर भारतका कमल नही; जिसमे ईरानका बुलबुल गाता है किन्तु हिन्दुस्तानकी कोयल नही कूकती; जिसमे कोहकन-की कुदालके शब्द प्रेमको अर्घ्य देते है और शीरींका हुस्न अँगडाइयाँ लेता है पर कृष्णकी बाँसुरीसे प्रेमकी रागिनी नही फूटती, न राधाका पद-चाप किसी मल्लिका-कुंजमे सुनाई देता है।

गालिबके जमानेमे तो यह बात और भी सत्य थी। खुद वह फार-सीयतसे ओतप्रोत थे, फारसीके कवि थे। स्वभावतः उनमे भी इश्कोहुस्नकी वही परम्पराएँ मिलती है। उनके प्रारम्भिक काव्यमे ये अधिक है और परम्परागत एवं काल्पनिक मालूम पडती है पर बादके काव्यमे उनमे निजी अनुभूतियोंके स्पर्शसे एक जीवित आकर्षण आ गया है।

आँख और दिल शृंगार-काव्यके प्रेरक अंग है। आँखसे दर्शन होता है, दिलसे अनुभूति आती है। दर्शन (आँख) सौन्दर्य और अनुभूति (दिल)

आँख और दिलका खेल

प्रेमका साधन है। जो कुछ है आँख और दिलका खेल है। आध्यात्मिक प्रेमका सम्बन्ध शाश्वत सम्बन्ध है; वह देखनेसे पहिले आराध्यका हो चुकता है। वह पैदा होनेके दिनसे ही उसीका है, बल्कि उसीसे पैदा हुआ है; आराध्यका सौन्दर्य भी खुद

उसकी अपनी आँखोके सुप्त सौन्दर्यकी छाया है। वह अपनेको ही उसमे देखता है। पर ऐसा सौन्दर्य-दर्शन, ऐसी प्रेमानुभूति, ऐसा सर्वस्व-निवेदन संसारमे किसी-किसीको मिलता है।

प्राकृत मानवमे प्रेमके पूर्व दर्शन और सौन्दर्य है। वह पहिले देखता है, तब रीझता है। स्वभावत. शरीर और उसका चरम सौन्दर्य दृष्टिको लुभाता है। दृष्टि ही सौन्दर्यका आधान है, इससे दिलमे एक आलोडन होता है, एक सम्मोहन-सा होता है, एक बेचैनी, एक गर्मी पैदा होती है, एक द्रवण होता है। प्रेमकी यह गर्मी, दिलकी यह वेचैनी सौन्दर्यको और आकर्पक बना देती है। दिलके इसी द्रवणसे कविताकी धारा वहती है। इसके लिए दिलकी तपिश जरूरी है। गालिवने इसे अनुभव किया था। कहते है—

दृष्टि सौन्दर्यका आधान है

हुस्ने फ़रोग़ शमअ सुखन दूर है 'असद',
पहले दिले गुदाख्त:[1] पैदा करे कोई।

[ऐ असद ! काव्यकी शमाका ज्योतिर्मय सौन्दर्य अभी दूर है; पहले कोई द्रवणशील हृदय तो पैदा करे। (तव वह प्राप्त होगा)]

मै इसे कह चुका हूँ कि गालिवका प्रेम एक मानवका प्रेम है। यह प्रियतमाके शारीरिक सौन्दर्यपर आसक्त है। इस सौन्दर्यमे शरीरकी गढन, छवि, आकार, शृंगार सव सम्मिलित है। उसकी लचक और सगीतकी भाँति लहराती उसकी गति और चाचल्यपर वह मुग्ध है।

चंचलता

है साइक:[2] व शोल: वो सीमाब[3] का आलम,
आना ही समझमें मेरी आता नहीं गो आय !

---

१ पिघला हुआ, २ विद्युत्, ३ पारद।

[तड़पती हुई बिजली, लपट और पारदकी-सी अवस्था है, वह आती है तब भी उसका आना समझमे नही आता ।]

उनके उर्दू-फ़ारसी काव्यमे प्रियतमाके कद-कामतका जिक्र बार-बार आता है । इसपर उनकी दृष्टि पहिले जाती है—

क़द्-क़ामत

अगर वह सरोक़द गर्मे ख़रामेनाज़ आ जावे,
कफ़े हर ख़ाके गुल्शन शक्ले क़मरी नालःफ़र्सा हो ।

निश्चय ही वह लम्बे, छरहरे बदनकी है—

ब यादे क़ामत अगर हो बुलन्द आतिशे ग़म,
हर एक दाग़े जिगर आफ़ताबे महशर हो ।

या

असद उठना क़यामत क़ामतोंका वक़्ते आराइश,
लिबासे नज़्ममें बालीदने मज़मूने आली है ।

बाल

कद-कामतके अलावा उसके बालोमे बड़ा आकर्षण और सौन्दर्य है । उसपर वह मुग्ध हैं । उनकी खुशबू उन्हे मस्त कर देती है—

अभी आती है बू बालिशकी उसकी ज़ुल्फ़े मुश्कींसे ।

× ×

तेरी ज़ुल्फ़ें जिसके बाज़ूपर परीशाँ हो गयीं ।

× ×

तू और आराइशे ख़मे काकुल ।

× ×

ज़ुल्फ़े ख़याले नाज़ुको इज़्हार बेक़रार ।

× ×

कौन जीता है तेरी ज़ुल्फ़के सर होने तक।

कभी उनका दिल सौन्दर्यके जादूसे आक्रान्त पूछता है—

शिकने ज़ुल्फ़े अम्बरीं क्यों है ?
निगहे चश्मे सुर्मःसा क्या है ?

यह 'जुल्फे अम्बरी' (सुगन्धित अलके) और 'निगहे चश्मे सुर्मः सा' (सुर्मई आँखोकी दृष्टि) उन्हे कभी नही भूलती। सुर्मई आँखें उन्हे सदा खीचती रहती है, वार-वार याद आती है।

आँखें

ख़मोशियोंमें तमाशा अदा निकलती है,
निगाह दिलसे तेरे सुर्मः सा निकलती है।

× ×

हल्क़े हैं चश्महाय कशादः बसूए दिल,[1]
हर तारे ज़ुल्फ़को निगहे सुर्मःसा कहूँ।[2]

× ×

सुर्मए मुफ़्ते नज़र हूँ, मेरी क़ीमत यह है—

ये आँखे, यो भी, हर हालतमे उनके लिए काम्य है—

मुँह न दिखलावे न दिखला पर बअन्दाज़े इताब[3],
खोलकर पर्दः ज़रा आँखें ही दिखला दे मुझे।

('आँखे ही दिखला दे' मे मुहाविरेका क्या प्रयोग है !)

अश्रुसे आर्द्र नयनोका सौन्दर्य और मोहक हो जाता है—

क़यामत है सरिश्क आलूदः[4] होना तेरी मिज़गाँका।

---

१ तेरी जुल्फोमे जितने भी पेच या घूँघर है सब मेरे दिलपर आँख (घात) लगाये हुए है, २ तेरी जुल्फके हर तारको सुर्मई दृष्टि कहना चाहिए, ३ ज़रा गुस्सेमे, ४ अश्रुमय।

या—

करे है क़त्ल लगावटमें तेरा रो देना,
तेरी तरह कोई तेग़े निगहको आब तो दे।

(इसमे भी तलवारको पानी देनेके मुहाविरेका कैसा निर्वाह है !)

अधखुली आँखोमे और ही असर है—

कोई मेरे दिलसे पूछे तेरे तीरे नीमकशको,[1]
यह ख़लिश[2] कहाँ से होती जो जिगरके पार होता।

कभी-कभी वह जिगर तक चोट करती है—

दिलसे तेरी निगाह जिगर तक उतर गयी।

वह देखते-देखते आँखें चुरा लेना, या बनावटी क्रोध ग़जब ढा देता है—

लाखों लगाव एक चुराना निगाहका,
लाखों बनाव एक बिगड़ना इताब[3]में,

(बनाव और बिगड़नाका विरोधाभास तो देखिए !)

वे आँखें ऐसी है कि—

आँखोंको रखके ताक़ पै देखा करे कोई।

माशूक पर्देमे है; त्योरी चढी हुई है और पर्देमे होकर भी वह पर्देसे बाहर है—

है तेवरी चढ़ी हुई अन्दर नक़ाबके,
है इक शिकन पड़ी हुई तर्फ़े नक़ाबमें।

---

१ आधे खीचे हुए, २. साल, करकराहट, ३. गुस्सा।

उनकी छवि स्वयं देखे जानेकी कामनासे भरी हुई है। आईनेका जौहर भी पलके होना चाहता है—

जल्वः अज़ बस कि तक़ाज़ाए निगह करता है,
जौहरे आईनः भी चाहे है मिज़गाँ होना।

कभी-कभी घूँघटसे सौन्दर्य बढ़ जाता है—

मुँह न खुलने पर है वह आलम कि देखा ही नहीं,
ज़ुल्फ़से बढ़कर नक़ाब उस शोख़के मुँहपर खुला।

कभी मेहदी-रंजित अँगूठा लुभाता है—

दिलसे मिटना तेरी अंगुश्ते हिनाईका ख़याल,
हो गया गोश्तसे नाख़ुनका जुदा हो जाना।

उसकी चाल, उसके चरण सब मोहक है—

दिल हवाए ख़रामे नाज़से फिर,
महशरिस्ताने बेक़रारी[1] है।

आये बहारे नाज़ कि तेरे ख़रामसे[2],
दस्तारे गिर्द शाख़े गुल नक़्शे पा करूँ।

या—

देखो तो दिल फ़रेबिए अन्दाज़े नक़्शे पा,
मौजे ख़रामे यार भी क्या गुल कतर गयी!

लज्जासे सौन्दर्य और अनावृत हो जाता है—

शर्म इक अदाए नाज़ है अपने ही से सही
है कितने बेहिजाब कि हैं यों हिजाबमें।

---

१. बेचैनीका प्रलयस्थल, २. चरण-प्रक्षेप।

उनकी हर बात अच्छी लगती है। हर बात प्राणलेवा है—

बलाए जान है ग़ालिब उनकी हर बात,
इबारत क्या, इशारत क्या, अदा क्या ?

इस सौन्दर्यने दिलमें तमन्नाओंकी एक दुनिया जगा दी है। गालिबका प्रेम ऐसा नही कि वह देखकर तृप्त हो जाय, उसमे उपासना नही, कामना है। उसमें इस सौन्दर्यको छूने, गले लगाने, चूमने और उससे तृप्त होनेकी वासना है। कलीसे ओठोको चूमनेकी इच्छा उसमे है—

गुंचए नाशिगुफ़्तः[1] को दूरसे मत दिखा कि यों,
बोसेको पूछता हूँ मैं मुँहसे मुझे बता कि यों।

उसमे वार्तालापकी प्यास है—

बिजली एक कौंद गयी आंखोंके आगे तो क्या,
बात करते कि मै लब तिश्नए तक़रीर[2] भी था।

उनका प्रेम शीतल नही है, उसमे शान्ति नही है; उसमे विद्युत्की गर्मी, चपलता और प्रकाश है; उसमे वेदनाका, दर्दका आनन्द है और यही दर्द जीवनका स्वाद है—

रौनक़े हस्ती[3] है इश्क़े ख़ानः वीरां साज़[4]से,
अंजुमन बेशमअ है गर बर्क़[5] ख़िरमनमें नही।

× ×

इश्क़से तबीयतने ज़ीस्तका[6] मज़ा पाया,
दर्दकी दवा पाई, दर्द लादवा पाया।

---

१. बे-खिली कली, २. बातचीतकी प्यास, ३ जीवनकी शोभा, ४. घरको वीरान करनेवाला प्रेम, ५. विद्युत्, ६. अस्तित्व।

पर माशूकके सौन्दर्यके वर्णन, उसकी अदाओंके जिक्रमे, सर्वत्र गालिब-के प्रेममे स्वाद लेने और पानेकी कामना है। इस कामनाकी तृप्तिके लिए

लज्जतपरस्ती

शारीरिक सीमाओको स्पर्श करते है। वह कही उस रूपको छूते है, कही उसकी वाणी सुनते है, कही उसे देखते है, कही उसका आलिगन करते है, कही चुम्बन लेते है, कही चरणामृत लेनेकी चेष्टा करते है, कही वक्ष-सौन्दर्यपर मुग्ध है। उससे हर तरहकी तृप्ति हर तरहका स्वाद चाहते है—

ग़ालिब मुझे है उससे हम आग़ोशी[1] की आर्ज़ू,
जिसका ख़याल है गुलें जेबे क़बाए गुल।[2]

× ×

'असद' बंदे क़बाए यार है फ़िरदौसका गुंचः[3],
अगर वा[4] हो तो दिखला दूँ कि यक आलम[5] गुलिस्ताँ है।

साक़िया ! दे एक ही साग़र[6] में सबको मय[7] कि आज,
आर्ज़ूए बोसए लबहाय मैगूँ[8] है मुझे।

यह सौन्दर्योपासना और प्रेम जीवन-भर चलता है। जब उम्र ढल जाती है, प्रिय-मिलनको युग बीत जाते है तब भी वह उनकी कल्पनामे जीवित मिलता है। कहते है—

मस्तानः तय करूँ हूँ रहे वादिए ख़याल[9],
ता बाज़गश्त[10] से न रहे मुद्दआ मुझे।

---

१. आलिगन, २ फूलके परिच्छद, ३. स्वर्गकी कलिका, ४ खुली, ५. स्थिति, अवस्था, ६. पात्र, ७. मदिरा ८. मदिरा-जैसी लालिमावाले (रक्ताभ) ओठोके चुम्बनकी कामना है, ९. कल्पनाकी घाटीका रास्ता; १०. प्रत्यावर्त्तन, लौटना।

तब पुरानी स्मृतियोंको लौटा लानेकी कामनामे उन स्मृतियोंका स्वाद लेते हैं—

मुद्दत हुई है यारको मेहमाँ किये हुए,
जोशे कदह[1] से बज़्म चराग़ाँ किये हुए।
फिर वज़अ इहतियातसे रुकने लगा है दम,
बरसों हुए हैं चाक गिरेबाँ किये हुए।
फिर पुर्सिशे जराहते दिल[2] को चला है इश्क़,
सामाने सद हज़ार नमकदाँ किये हुए[3]।
फिर शौक़ कर रहा है ख़रीदारकी तलब,
अर्ज़े मुताए अक़्लो दिलोजाँ किये हुए।
माँगे है फिर किसीको लबे[4] बामपर हविस,
ज़ुल्फ़े सियाह रुख़ पै परीशाँ किये हुए[5]।
चाहे है फिर किसीको मुक़ाबिलमें आर्ज़ू,
सुर्मेसे तेज़ दश्नए मिज़्गाँ[6] किये हुए।
जी ढूँढ़ता है फिर वही फ़ुर्सत कि रातो-दिन,
बैठे रहें तसव्वुरे जानाँ किये हुए।

यदि यह लज्जत-परस्ती, यह स्वादलोलुपता गुनाह है तो वह अपने गुनाहको स्वीकार करते है, डकेकी चोटके साथ स्वीकार करते हैं—

---

१. मधुपात्रकी उमंग, उफान, २. दिलके घावकी पूछताछ करने (सहानुभूति प्रकट करने), ३. लाखो नमकदाँ लिये हुए (घावपर नमक छिड़कनेकी अमित सामग्रीके साथ), ४. कोठेके किनारे, ५. मुँहपर काली अलकें फैलाये हुए, ६. पलकोकी बरछियोको ।

तमाशाए गुलशन, तमन्नाए चीदन,[1]
बहार आफरीना! गुनहगार हैं हम।

इस स्वाद-प्रियताके कारण ही कुछ-न-कुछ छेड चली जानेका उपक्रम करते रहते है। कृपा न सही, दुश्मनी सही, जुल्म सही पर किसी-न-किसी तरह उनसे सम्बन्ध तो बना रहता है—

हमको सितम अज़ीज़, सितमगरको हम अज़ीज़,
नामेहबाँ नहीं हैं, अगर मेहबाँ नहीं।

× ×

क़तअ कीजे न तअल्लुक़ हमसे,
कुछ नहीं है तो अदावत ही सही।

शुरू जवानीमे लज्जतपरस्तीकी यह स्थिति ज्यादा स्पष्ट थी। उत्तर-जीवनमे अक्लका बन्धन कामनाओपर बढता गया। यहाँ तक कि बिना बन्धनमे फँसे, बिना आसक्तिके भी एक मजा ले लेने, एक चर्का देनेकी कला उनमे आ जाती है—

आशिक़ हूँ पै मा'शूक़फरेबी है मेरा काम,
मजनूँको बुरा कहती है लैला मेरे आगे।

× ×

हूँ मैं भी तमाशाइए नैरंगे तमन्ना[2],
मतलब नहीं कुछ इससे कि मतलब ही बर[3] आवे।

---

१. चुननेकी कामनाएँ, २. कामनाके इन्द्रजालका दर्शक, ३. पूर्ण हो।

स्पष्ट ही गालिबके प्रेम और सौन्दर्यका सम्पूर्ण दृष्टिकोण मानवी है; उसमे स्वाद लेनेकी, भोगकी कामना है। यह कवि उन्माद तक बढे हुए प्रेमको, अतीन्द्रिय प्रेमको, उपासना युक्त प्रेमको समझ ही नहीं सकता; उसका मानसिक निर्माण ही वैसा नही है। वह ऐसे प्रेमको पागलपन, मस्तिष्ककी विकृति मात्र समझता है। स्पष्ट कहा है—

उपासनापूर्ण प्रेमपर व्यंग

> बुलबुलके कारोबार पै हैं ख़न्दःहाय[1] गुल,
> कहते हैं जिसको इश्क़ ख़लल है दिमाग़का।

उसके कामनाजनित आकर्षणको जब कुछ लोग, भ्रमवश, प्रेमोपासना समझ लेते है तब वह चिढकर कहता है—

> ख़्वाहिशको अहमक़ोंने परस्तिश[2] दिया क़रार,
> क्या पूजता हूँ उस बुते बेदादगरको मैं ?

सच पूछें तो गालिब उस स्थलपर है जहाँ ईश्वरीय प्रेम तथा भौतिक प्रेम दोनोके भ्रमसे प्रेमी ऊपर उठ जाता है—

> ऐ वहमतराज़ाने मजाज़ी व हक़ीक़ी,
> उश्शाक़ फ़रेबे हक़ों बातिलसे जुदा हैं।

इसीलिए इस कामनापूर्ण स्वाद-ग्रहणमे लफगई नही है; उसमे स्वस्थ मानवका शारीरिक आकर्षण है पर पतनशील प्रवृत्तियोका नर्त्तन नही है। उसमे दिलकी गर्मी है, शरीर-सौन्दर्यका लोच और संगीत है, कामनाका डक है, पर निम्न-स्तरकी इन्द्रियलुब्धता नही है। उलटे उन्हे शिकायत है कि सौन्दर्योपासना और प्रेमकी परम्पराको प्रलुब्धजन, निम्न-

कामनाका डंक है इन्द्रिय लुब्धता नहीं

---

१ खुश, हास्यपूर्ण, २. पूजा।

स्तरपर लाते जा रहे है और उसे तिनकेकी तरह जल उठने और बदनामीका कारण बना दिया है—

हर बुलहवस[1] ने हुस्नपरस्ती शआरकी[2],
अब आबरूए शेवए अहले नज़र[3] गयी।
फरोगे़ शोलए ख़स[4] एक नफ़स है[5],
हविसको पासे नामूसे वफ़ा क्या[6]?
अहले हविसकी फ़तह है तर्के नबर्दे इश्क[7]।

फिर गालिब एक सामन्ती युगकी उपज थे। वह चाल-चलन, शिष्टाचारकी एक परम्परासे बँधे हुए थे। उनमे अहं भी था। यह अहं उस

अहं जो समर्पणमें बाधक है

पूर्ण आत्मार्पणमे बाधक था जिसके विना प्रेम स्वर्गकी ऊँचाइयो तक नही पहुँचता; जिसके विना उसमे आध्यात्मिक दृष्टि और सौन्दर्य नही आता। अहं तो उनमे इतना है कि समर्पण और मिलनमे बाधक हो उठता है। वह नही बोलते तो हम क्यो बोले, वह अपना ढंग नही छोडते तो हम अपना तर्ज क्यो छोडे? वह अपनी महफ़िलमे बुलायेंगे नही और हम रास्तेमे उनसे मिलेगे नही (क्योकि यह शराफ़त नही।) इनमे लज्ज़त-परस्ती जरूर है। पर उसपर भी खुदपरस्ती छा गयी है। कहते है—

वह अपनी ख़ू[8] न छोड़ेंगे, हम अपनी वज़अ क्यों छोड़ें,
सुबुक सिर[9] बनके क्यों पूछें कि आखिर सरगिराँ[10] क्यों हो?

---

१. लोभी, लोलुप, २ ग्रहण किया, ३ शिष्टो (आँखवालो) की शैली, ४. तिनके या घासके शोलेका प्रकाश, ५. क्षणिक है, ६. लोलुपताको निष्ठा निभाने या उसकी बदनामीकी क्या परवा? ७. लोलुपकी विजय प्रेम-युद्धके त्यागके तुल्य है। ८. आदत, ९. नतशिर १०. रुष्ट।

या—

वाँ वह ग़ुरूरे इज़्ज़ो नाज़[1] याँ यह हिजाब पासे वज़अ[2],
राहमें हम मिले कहाँ, बज़्ममें वह बुलाये क्यों ?

अहंजनित ईर्ष्या भी बाधक है—

हम रश्कको अपने भी गवारा नहीं करते,
मरते हैं वले उनकी तमन्ना नहीं करते।

सबसे पूछते फिरते है कि किधर जायँ पर रश्कका यह आलम है कि जबानसे उसका नाम नही लेते—

छोड़ा न रश्कने कि तेरे घरका नाम लूँ,
हर यकसे पूछता हूँ कि जाऊँ किधरको मैं।

शाश्वत जलन वाली तृष्णा

इस प्रकार उनका दिल अनेक मानवी भावनाओंका आकर है, वह हुस्नको देखना, छूना, उसका स्वाद लेना चाहते है पर अपनी शिष्टता, अपने ढंग, अपनी वजअको छोड़ना भी उन्हे गवारा नही। उनमे तृष्णा है, पर वह क्षण-भर भकसे जलकर बुझ जानेवाली घासकी आग-जैसी नही है। यह वह तृष्णा है जिसमे दिल एक शाश्वत अग्निकुण्ड बन-कर रह जाता है; वह उसी प्रेमकी जलन, व्यथा-वेदनाको चाहते है जिससे जीवन सचमुच जीवन है; वह उस उत्सको, उस जीवन-स्रोतको चाहते है जिससे समस्त क्रियाएँ, समस्त उत्कण्ठाएँ उत्पन्न और ऊर्जस्वित होती है। उनके मतसे जो दिल आगकी भट्टी न हो वह भी कोई दिल है !

---

१. नाज व सम्मानका गर्व, २. अपने वजअकी लाज।

है नंगे[1] सीनः दिल अगर आतिशकदः[2] न हो,
है आरे दिल[3] नफ़स अगर आज़ुरफिशाँ[4] न हो।

जो दिल और जो सीना अपने अन्दर आगकी भट्ठी न छिपाये हो वह सीना और दिलको लज्जित करनेवाला है; जिस श्वाससे स्फुल्लिग न निकलें वह क्या श्वास है।

वह प्रेमकी उस अग्निके कायल हैं जिसके सूत्र शमअकी तरह ऊपरसे नीचेतक फैल जाते हैं—

वह तपे इश्क़ तमन्ना है कि फिर सूरते शमअ,
शोलअ तानब्ज़[5] जिगररेशः दवानी[6] माँगे।

अर्थात् प्रेमकी उस जलन और गर्मीकी तमन्ना रखता हूँ कि जिसकी लौ मेरे जिगरकी रगोतक इस तरह फैल जाय जिस तरह शोलेकी लौ शमअके जिगरतक फैली हुई होती है।

एक जगह फिर कहते हैं—

हमने वहशतकदए बज़्मे जहाँमें जूँ शमअ,
शोलए इश्क़को अपना सरो सामाँ समझा

यानी संसारके पागलखानेमे हमने शमअकी तरह प्रेमकी आगको ही अपना सर्वस्व समझ रखा है।

यही आग उनके इन्द्रियलब्ध प्रेमको भी ऊँचा उठा देती है और इस कामनाके खेलमे भी एक दार्शनिक सलग्नता पैदा कर देती है। यह

---

१ लज्जा योग्य, २ भट्ठी, अग्निशाला, ३ दिलके लिए गैरत या लज्जाकी वात, ४ जिससे चिनगारियाँ निकले, ५. जिगरकी रग, ६ रेशोका दौड़ना।

आग आसानीसे न लगाये लगती है, न बुझाये बुझती है* पर इसीके कारण जीवनका आनन्द है§, इसी ज्वलनशील विद्युत्के कारण जीवनका अन्न भाण्डार प्रकाशित† है, इसीके कारण जीवनकी शोभा है, और इसीके कारण गालिब बुलबुलकी तरह चहकता फिरता है—

हूँ गर्मिए निशाते तसव्वुरसे नग्मःसंज[1],
मैं अंदलीब गुलशने नाआफरीदः हूँ[2]।

१–२ ध्यानानन्दकी गर्मीसे मै गाता हूँ। मै उस उद्यानका बुलबुल हूँ जो अभी उत्पन्न नही हुआ।

*इश्क़ पर ज़ोर नहीं है वह आतिश ग़ालिब,
कि लगाये न लगे और बुझाये न बने।

§इश्क़से तबीयतने ज़ीस्तका मज़ा पाया।

†रौनक़े हस्ती है इश्क़े ख़ानः वीरांसाज़से,
अंजुमन बेशमअ है गर बर्क़ ख़िरमनमें नही।

ग़ालिबका काव्य : ४ :

काव्य-शिल्प

काव्य शब्दकी साधना है। जब शब्द मुँहसे जादू उगलते है, जब उनके अन्दरसे एक प्रच्छन्न दुनिया निकलकर आँखोके आगे सज उठती है, तब काव्यकी कला निखरती है। ललित-कलाओमे काव्यका स्थान सबसे ऊपर है क्योकि इसमे सब कलाओके तत्त्व है। इसमे नृत्यकी गतिशीलता, भूर्तिकलाका सौन्दर्य, चित्रकलाका रेखाङ्कन और रंग तथा संगीतकी गूँज अथवा ध्वनि है। वही सौन्दर्य जो फूलमे मचलता है, कविके श्वाससे नि.सृत होता है। ख़ुद ग़ालिबके शब्दोमे—

वही यक बात है जो याँ नफ़स वाँ नक्हते गुल है,
चमनका जल्वा बाइस है मेरी रंगींनवाईका।

काव्य-शास्त्रमे यथातथ्य चित्रण, भंगिमाका नावीन्य, रंग और पालिश, सूक्ष्मता, अनुभूति एवं कल्पनाकी घुलावट, अभिव्यजनाका वैलक्षण्य तथा भावोद्रेककी गहराईको महत्त्व दिया गया है। ग़ालिबके काव्यमे इनमेसे अधिकाश गुण पाये जाते है। मौलाना हालीने उनके काव्यकी विशेपताओमे विषय-नावीन्य (जद्दते मजामीन), कल्पना-वैचित्र्य (तुर्फ़गीए ख़्याल), नवीन उपमा-रूपक-विधान, शोखी और विनोदको प्रधान स्थान दिया है।

ज़बान :

गालिबकी जवानके वारेमे लोगोके परस्पर-विरोधी मत है। कुछने उसकी अत्यधिक प्रशंसा की है; कुछ इस क्षेत्रमे मीर और सौदाको उनसे

बहुत ऊपर मानते हैं। सत्य इन दोनोंके बीच है। इसमें तो सन्देह नहीं कि मीरकी भाषाकी घुलावट और सादगी तथा सौदाका शब्द-सौन्दर्य गालिबमे नही है पर साथ ही विषयके अनुरूप भाषाका चयन उनकी विशेषता है। जहाँ फारसी वातावरण, सामन्ती श्रेष्ठता और संस्कारकी बात है तहाँ वह फ़ारसीयतसे लदी है, पर जहाँ दिलकी गहराईसे निकली भावनाओंका सवाल है वहाँ ठेठ हिन्दुस्तानी जबान है। कही कहते है—

हवाए सैरे गुल आईनए बेमेह्रिए क़ातिल,
कि अन्दाज़े बख़ूँ ग़लतीदने बिस्मिल पसन्द आया।

तो कहीं अत्यन्त सरल ठेठ शब्दोंकी गजलमें भावनाओंकी एक ऐसी दुनिया करवट लेती दिखाई देती है कि जिसमें सादगीके सौन्दर्यका जादू है—

मौतका एक दिन मोअय्यन[1] है,
नींद क्यों रात भर नहीं आती।
पहले आती थी हाले दिल पै हँसी,
अब किसी बातपर नहीं आती।

भाषा उनके हाथमे एक अस्त्र है, जब जैसा चाहते है, उसको रखते है। जहाँ शृंगार और सजावटका वातावरण है वहाँ शृंगार और सजावट इतनी है कि कुछ न पूछिए, और जहाँ सादगीसे असर पैदा किया जा सकता है वहाँ सादगी है। शब्दोंका चयन और उपयुक्त स्थानपर उनको बैठानेकी कलामे गालिब एक ही है। मुहम्मद एकरामने लिखा है—

"अगर हम जबानसे मुराद लें अल्फाजका इन्तखाब[2], उनकी हमआहंगी[3] और निशस्त[4] तो मिर्जाका मर्तबः[5] तमाम उर्दू शुअरा[6] से बुलन्द

---

१. निश्चित, २. शब्द-निर्वाचन, ३. सन्तुलन, ४. बैठक, स्थान, ५. दर्जा, ६. शाइरका बहुवचन।

है। वह सिर्फ मा'नीपरस्त न थे वल्कि हुस्न जाहरी[1] की क़द्र व कीमत भी पहचानते थे।''''उनके अशयार[2] मे अलफाज[3] फकत इजहारे मतलबका[4] ही वसील.[5] नही वल्कि शायरान: हुस्न पैदा करनेका ज़रिया भी है।''

हमआहंगी गालिवकी कोई खास विशेपता नही है क्योकि जहाँ वह है वहाँ खूब है और जहाँ नही है वहाँ फिर नही ही है। उनके दीवानमें काफी वद आहंग शेर भी है। अपनी समीक्षा-पुस्तक 'उर्दू शाइरीपर एक नजर'मे श्री कलीमउद्दीन अहमद लिखते है—''गालिवने हुस्ने अल्फाज[6] तो सौदासे नही सीखा लेकिन ख्यालातकी वुलन्दी और तखय्युलकी परवाज[7] मे सौदाका अत्वाअ[8] किया।'' उन्होंने सौदाका अनुकरण किया हो या न किया हो पर इतना तय है कि वह शब्दोंको पहचानते है, उनके भीतरकी दुनियाको पहचानते है और उनसे यो काम लेते है जैसे वे उनके सेवक हो।

छन्द सीमाका विस्तार :

गजलकी दुनिया वहुत छोटी होती है। उसमे हर शेर एक नया मजमून लेकर आता है। इस छोटे शेरके नन्हे कलेवरमे कोई वड़ा मजमून नही बाँधा जा सकता। आधुनिक उर्दू-काव्यमे इसीलिए गजलके विरुद्ध एक बगावत खडी हो गयी है और 'नज्म'का प्रचार वढ रहा है। गालिव स्वयं इसे अनुभव करते थे। लिखा है—

> वक़दरे, शौक़ नहीं, ज़र्फ़े तंगहाय ग़ज़ल,
> कुछ और चाहिए वसअत मेरे बयाँके लिए।

---

१ बाह्य सौन्दर्य, २ शेरका बहुवचन, ३. लफ्ज़ (शब्द) का बहुवचन, ४. अर्थ-प्रकाश, ५. साधन, ६ शब्द-सौन्दर्य, ७. कल्पनाकी उड़ान, ८ अनुकरण।

गजलकी इस मर्यादाके होते हुए भी गालिबने उसे खींचकर काफी बढ़ा दिया है और उसके क्षितिजको विस्तृत कर दिया है। उसमे महा-काव्यत्वकी विशालता तो सम्भव नही, पर गीति-काव्यका पूर्ण सौन्दर्य है। गालिबमे तुलसीकी विराटता या 'प्रसाद' की सूक्ष्म सौन्दर्य-दृष्टि एवं सृष्टि नहीं है फिर भी अनुभूतियोकी अँगड़ाई और कल्पनाकी उड़ान है। शेरमे कई सुसम्बद्ध विचार तो संकलित नही हो सकते पर गालिबकी विशेषता यह है कि उसके एक शेरमें भाव या विचारकी व्यंजना कुछ ऐसे ढंगपर होती है कि भावोकी एक श्रृंखला आरम्भ हो जाती है। एक भावना अपने-मे ही समाप्त होकर नहीं रह जाती। "गालिब एक ख्यालको इस पैराये-मे बयान करते है जिससे दूसरे ख्यालातकी तरफ तवज्जुह मुनअतफ[1] होती है और शेर पढ़कर जेहन इन दूसरे खयालातकी जुस्तजू[2] मे महो[3] हो जाता है गोया महशरिस्ताने ख्यालका[4] दरवाजा खुल जाता है।"

उदाहरण लीजिए—

देह जुज़ जल्वए यकताइए माशूक़ नहीं,
हम कहाँ होते अगर हुस्न न होता ख़ुदबीं।

× ×

फूँका है किसने गोशे मुहब्बतमें ऐ ख़ुदा,
अफ़सूने इन्तज़ारे तमन्ना[5] कहें जिसे।

ये शेर अपने ही मे खत्म होकर नही रह जाते। इनमे आबाद दुनिया नयी दुनियाओके द्वार खोल देती है। इनमे एक संकेत, एक इशारा है। हमारी आँखे दूर क्षितिजपर किसीको खोजती हैं।

---

१. फिरना, फेरना, २ अन्वेषण, ३. निमग्न, ४ कल्पनाका प्रलय-स्थल, ५. कामनाकी प्रतीक्षाका जादू।

व्यंजनाका प्रवाह (जोशे बयान) :

कही-कही शेरोमे तीव्र प्रवाह और गति है। जो कहते है, जोशके साथ कहते है, उसमे भावनाकी हरहराती नदीकी आवाज है; उबलती और बलखाती बरसाती नदीकी जवानी है, देखिए—

ऐ अन्दलीब[१] ! यक कफ़े खस बहे आशियाँ,[२]
तूफ़ान आमद आमदे फ़स्ले बहार है[३]।

× ×

चाक मतकर जेब बेअय्याम गुल,
कुछ उधरका भी इशारा चाहिए।

× ×

लरज़ता है मेरा दिल ज़हमते मेहरे दुरख़्शाँ[४] पर,
मैं हूँ वह क़तरए शबनम कि हो ख़ारे बयाबाँ पर।

× ×

मुनहसिर मरने पै हो जिसकी उमीद,
नाउमीदी उसकी देखा चाहिए।

इन शेरोमे आन्तरिक अनुभूतियाँ दिलके पर्देको उठाकर अभिव्यंजना-की खिडकियोसे झाँक-झाँक उठती है।

अंगसौष्ठव और चित्रांकन :

मूर्तिकलाको कलाओका नमूना—माडल—कहा जाता है। इसमे अंगोका सौष्ठव, सतुलन और सामञ्जस्य होता है। अंग साँचेमे ढले-से होते हैं। काव्यमे भी यही संतुलन शिल्पका प्राण है। गालिबमे कही-कही यह खूब

---

१ बुलबुल, २ आशियाँके लिए, ३ वसंत ऋतुके आगमनमे तूफ़ान आया है, ४ प्रकाशमान सूर्यकी विपत्ति।

उभरा है; शेर ऐसे जान पड़ते हैं जैसे मूर्तियाँ किसी दक्ष मूर्तिकारने पत्थरमे काट दी हो, या भावका चित्र रूपसीकी छवि-सा बोल-बोल उठता हो। एक मशहूर गजलका क़ितअ है—

ऐ ताज़ः वारिदाने[1] बिसाते हवाए दिल,
ज़िनहार अगर तुम्हें हविसे नायनोश[2] है।
देखो मुझे जो दीदए इबरत निगाह[3] हो,
मेरी सुनो जो गोशे नसीहत नयोश[4] है।
साक़ी बजल्वः दुश्मने ईमानो आगही[5],
मतरिब[6] बनग़मः रहज़ने[7] तमकीनो होश है।
या शब को देखते थे कि हर गोशए बिसात,
दामाने बाग़बाँ ब कफ़े गुलफ़रोश है।
लुत्फ़े खरामे साक़ी[8] व ज़ौक़े सदाए चंग,
यह जन्नते निगाह वह फ़िर्दौसे गोश है।
या सुबह दम जो देखिए आकर तो बज़्ममें,
नै वह सरूरो सोज़ न जोशो ख़रोश है।
दाग़े फ़ुराक़े सोहबते शबकी जली हुई,
इक शमअ रह गयी है सो वह भी ख़मोश है।

कहते है, हृदयकी आकाक्षाओकी फर्शपर आकर नये बैठनेवालो! (प्रेमकी दुनियाके नवागन्तुको!) यदि तुम्हे गान और पानका लोभ है किन्तु शिक्षा लेनेवाली दृष्टि सुरक्षित है तो मुझे देखो; अगर उपदेश सुनने-

---

१. हृदयाकाक्षाकी भूमिपर नये आने वालो, २. गान-पान, ३. शिक्षा लेने योग्य दृष्टि, ४ उपदेश श्रवण करने योग्य कान, ५. बुद्धि, ६. गायक, ७. डाकू, ८. साकीके चरणनिक्षेपका सौन्दर्य या आनन्द।

व्यंजनाका प्रवाह (जोशे बयान) :

कही-कही शेरोमे तीव्र प्रवाह और गति है। जो कहते है, जोशके साथ कहते है; उसमे भावनाकी हरहराती नदीकी आवाज है; उबलती और बलखाती बरसाती नदीकी जवानी है, देखिए—

ऐ अन्दलीब[१] ! यक कफ़े खस बहे आशियाँ,[२]
तूफ़ान आमद आमदे फ़स्ले बहार है[३] ।

× ×

चाक मतकर जेब बेअय्याम गुल,
कुछ उधरका भी इशारा चाहिए।

× ×

लरज़ता है मेरा दिल ज़हमते मेहरे दुरख़्शाँ[४] पर,
मैं हूँ वह क़तरए शबनम कि हो ख़ारे बयाबाँ पर।

× ×

मुनहसिर मरने पै हो जिसकी उमीद,
नाउमीदी उसकी देखा चाहिए।

इन शेरोमे आन्तरिक अनुभूतियाँ दिलके पर्देको उठाकर अभिव्यंजनाकी खिडकियोसे झाँक-झाँक उठती है।

अंगसौष्ठव और चित्रांकन :

मूर्तिकलाको कलाओका नमूना—माडल—कहा जाता है। इसमे अंगोका सौष्ठव, संतुलन और सामञ्जस्य होता है। अंग साँचेमे ढले-से होते है। काव्यमे भी यही संतुलन शिल्पका प्राण है। ग़ालिबमे कही-कही यह खूब

---

१. बुलबुल, २. आशियाँके लिए, ३ वसंत ऋतुके आगमनमे तूफान आया है, ४ प्रकाशमान सूर्यकी विपत्ति।

उभरा है; शेर ऐसे जान पड़ते हैं जैसे मूर्तियाँ किसी दक्ष मूर्तिकारने पत्थरमे काट दी हों, या भावका चित्र रूपसीकी छवि-सा बोल-बोल उठता हो। एक मशहूर गजलका क़ितअ है—

ऐ ताज़ः वारिदाने[1] बिसातें हवाए दिल,
ज़िनहार अगर तुम्हें हविसे नायनोश[2] है।
देखो मुझे जो दीदए इबरत निगाह[3] हो,
मेरी सुनो जो गोशे नसीहत नयोश[4] है।
साक़ी बजल्वः दुश्मने ईमानो आगही[5],
मतरिब[6] बनग़मः रहज़ने[7] तमकीनो होश है।
या शब को देखते थे कि हर गोशए बिसात,
दामाने बाग़बाँ ब कफ़े गुलफ़रोश है।
लुत्फ़े ख़रामे साक़ी[8] व ज़ौक़े सदाए चंग,
यह जन्नते निगाह वह फ़िर्दौसे गोश है।
या सुबह दम जो देखिए आकर तो बज़्ममें,
नै वह सरूरो सोज़ न जोशो ख़रोश है।
दाग़े फ़ुराक़े सोहबते शबकी जली हुई,
इक शमअ रह गयी है सो वह भी ख़मोश है।

कहते हैं, हृदयकी आकांक्षाओंकी फर्शपर आकर नये बैठनेवालो! (प्रेमकी दुनियाके नवागन्तुको!) यदि तुम्हे गान और पानका लोभ है किन्तु शिक्षा लेनेवाली दृष्टि सुरक्षित है तो मुझे देखो; अगर उपदेश सुनने-

---

१. हृदयाकाक्षाकी भूमिपर नये आने वालो, २. गान-पान, ३ शिक्षा लेने योग्य दृष्टि, ४. उपदेश श्रवण करने योग्य कान, ५. बुद्धि, ६ गायक, ७. डाकू, ८. साकीके चरणनिक्षेपका सौन्दर्य या आनन्द।

वाले कान रखते हो तो मेरी बात सुनो। यहाँ साकी अपना रूप, अपनी छवि (जल्व) दिखाकर ईमान और अक्लको लूट लेता है, गायक अपना गान सुनाकर स्थिरता और चेतनापर डाके डालता है। रात इस विलास-कक्षका यह हाल था कि खुशीकी बिसातका हर कोना मालीके दामन और फूल बेचनेवालेके हाथकी तरह फूलोसे भरा हुआ था (इसमे रूपसियोका जमघट था)। साकीके चरण-निक्षेप एव सारंगीकी धुनें आँखों और कानोके लिए स्वर्गकी सृष्टि करती थी। किन्तु सुबह उसी महफिलमे आकर देखता हूँ तो यह हाल है कि न वह आनन्द है, न प्रेमका वह उत्ताप (सोज) है, न वह उमग-उत्साह है। रातके आमोद-प्रमोदके विरह-दु:खमे जली हुई एक शमअ रह गयी है किन्तु वह भी मौन है। (महफिलका अन्तिम चिह्न भी मिट गया है)।

कैसा जीवन्मय चित्र है। रातके विलास-कक्ष और प्रात.कालीन उदासीकी मूर्त्ति शब्दोके पत्थरोपर उभर आई है। आँखोमे प्रियतमाके हाव-भाव, बेहोशीसे भरी और बेहोश करनेवाली आँखे फिर जाती है; उसकी कोकिल-तान शब्दोके पर्देमे गूँज रही है, और फिर जब सब मिट गया है, कोई ठोस स्मृति भी शेष नही है, तबकी उदासी और नीरवता चतुर्दिक् छा गयी है।

कलीमने लिखा है—"एक नई दुनिया जल्वःअफरोज है। बेरब्ती[1] और परागन्दगीका[2] यककलम[3] नामोनिशान नही। यहाँ तामीरी यकसानी[4] का वजूद[5] है यानी इब्तिदा, वस्त व इन्तिहा[6] मे रब्त व मुताबिकत है।....एक नक्शे कामयाब दिमाग व तखय्युलके सामने अपना हुस्न मुरत्तब[7] करता है।....गालिबने इस मामूली और आम ख्यालको शायराना हुस्न और शायरान. सदाकतके साथ बयान किया है। "अल्फाज अपनी

१ असंतुलन, २ असम्बद्धता, ३ बिलकुल, ४ निर्माणकी समानता, ५ अस्तित्व, ६ आरम्भ, मध्य एवं अन्त, ७ सम्पादित।

जगहोंपर किस पुख्तगीसे जमअ है, गोया उन्हे अपनी क़द्र व कीमतका एहसास[1] है।''''तस्वीरे मस्नूई[2] व ख्याली नही, कैसी दिलकश है।''

इनके शिल्पके और नमूने देखिए—

मैं नामुराद दिलकी तसल्लीको क्या करूँ,
माना कि तेरे रुख़से निगह कामयाब है।

चित्रकारी—

रौमें है रख़्शे उम्र कहाँ देखिए थमे,
नै हाथ बाग पै है न पा है रकाबमें।

वेदना और तड़प—

जान दी हुई उसीकी थी,
हक़ तो यह है कि हक़ अदा न हुआ।
ज़िन्दगी यूँ भी गुज़र ही जाती,
क्यों तेरा राहेगुज़र याद आया।

गालिबके कलाममे एक समत्व और एक तेवर है जो उसीका है; उसकी अभिव्यंजनामे उसके व्यक्तित्वकी गूँज है। उसमे दार्शनिक पकड न हो पर जिज्ञासा अवश्य है। वह कभी आश्चर्य-विमुग्ध होकर दुनिया और उसके सौन्दर्यको देखते है, उनके जेहनमे आता भी है कि ये हस्तीके फरेब है, सारी दुनिया कल्पनाका चक्रमात्र है पर फिर वह दृश्य सौन्दर्यमे डूब जाते है, जो सामने है उसे पकड़नेको आतुर हो उठते है और जिज्ञासासे यह कहकर पल्ला छुड़ा लेते है—

कह सके कौन कि यह जल्वःगरी किसकी है,
पर्दः छोड़ा है वह उसने कि उठाये न बने।

---

१. अनुभूति, २. कृत्रिम।

प्रकृतिके चित्र :

गालिव क्या उर्दूके सभी कवियोका काव्य प्रकृतिके सुन्दर चित्रणोसे खाली है। कही-कही रेखाएँ भर हैं, फिर भी गालिबमे एकाध नमूने मिल ही जाते है, और अच्छे नमूने—

फिर इस अन्दाज़से बहार आई,
कि हुए मेह्रो मह[1] तमाशाई[2]।
देखो ऐ साकिनाने ख़त्तए खाक[3],
इसको कहते हैं आलम आराई[4]।
कि ज़मीं हो गयी है सर ता सर[5],
रूकशे[6] सतहे चर्ख़े मीनाई[7]।

बहार इस जोशके साथ आई है कि सूर्य-चन्द्र भी दर्शक बन गये है। हे पृथ्वीके रहनेवाले, देखो, ससारका शृङ्गार इसे कहते है। सारी धरती ऐसी सज उठी है कि रंगीन आकाशकी बराबरी करने लगी है।

चिन्तन एवं अनुभूतिका सन्तुलन :

चिन्तन एवं अनुभूतिका गहरा सन्तुलन तथा सामञ्जस्य गालिबके काव्यकी एक विशेषता है। दो-तीन शेर देखिए—

दीदार बादः हौसलः साक़ी निगाहे मस्त,
बज़्मे ख़याल मयकदए बेख़रोश है।

(ख्यालकी महफिलमे प्रियतमाका दर्शन शराबका काम देता है। आँख पीकर मस्त हो जाती है। यह मधुशाला दूसरोसे भिन्न, नीरव है।)

---

१ सूर्य-चन्द्र, २ दर्शक, ३. धरतीके निवासी, ४ ससारका शृंगार, ५. एक सिरेसे दूसरे सिरे तक, पूरीकी पूरी, ६ प्रतिद्वन्द्वी, ७. नील, (रंगीन) नभ।

मक़तलको किस निशातसे जाता हूँ मैं, कि है,
पुरगुल ख़याले ज़ख़्मसे दामन निगाहका ।

(वधस्थलमे जो जख्म लगेंगे उनकी कल्पना मात्रसे निगाहका आँचल फूलोंसे भर गया है और मै किस उमंगसे वहाँ चला जा रहा हूँ ।)

तबअ है मुश्ताक़े लज़्ज़तहाय हसरत क्या करूँ,
आरज़ूसे है शिकस्ते आरज़ू मतलब मुझे ।

(तबीयत हसरत—निराशामयी लालसा—की लज़्ज़तोंके लिए उत्कण्ठित है; यों मै कोई अभिलाषा भी करता हूँ तो मेरा अभिप्राय अभिलाषाकी असफलता ही होता है ताकि इस असफलता से फिर हसरतका जन्म हो और तबीयतको बराबर उसका स्वाद मिलता रहे ।)

भावना एवं अनुभूतिकी विविधता :

भावना और अनुभूतिकी विविधता गालिबमे खूब पाई जाती है । सबसे बड़ी बात तो यह है कि व्यंजनामे एक अजब शोखी है, जैसे दूसरोंको जवाब दे रहे हो—

इन आबलोंसे पाँवके घबरा गया था मैं,
जी ख़ुश हुआ है राहको पुरख़ार देखकर ।

(निरन्तरके चलनेसे, सेहरानवर्दीसे पाँवमे जो छाले पड़ गये हैं उनको देख-देखकर मै घबरा गया था कि इनमे टीसकी लज्जत कैसे भर दूँ । अब रास्तेको काँटोसे भरा देखता हूँ तो तबीयत ख़ुश हो गयी है; अब काँटों और आबलोमे अच्छी पटेगी ।)

क्यों गर्दिशे मुदामसे घबरा न जाय दिल,
इंसान हूँ पियालः वो साग़र नहीं हूँ मैं ।

(इस सदा चक्कर काटनेसे दिल क्यों न घबरा जाय ? मै भी इंसान हूँ, कोई प्याला नही हूँ—प्याला सदा फ़िरता रहता है ।)

नवीन उपमाएँ, रूपक, उत्प्रेक्षाएँ :

ग़ालिबकी एक बड़ी विशेषता उनकी उपमाएँ और रूपक है। वह प्रचलित और पिटी-पिटाई उपमाओ और रूपकोंका प्रयोग नही करते; सदा नयी उपमाएँ और रूपक ढूँढते है। मुहम्मद इकरामने लिखा है—"मिर्ज़ा तश्बीह और इस्तआर.के बादशाह थे।" उनकी उपमाएँ और रूपक ऐसे है कि उपमेय तथा विषयको स्पष्ट और ज़ोरदार बना देते है। एक अदृश्य जगत् अनावृत हो जाता है। इस प्रकारकी नवीनता प्रारम्भिक काव्यमे भी है। जैसे श्वासकी उपमा तरंग (लहर) से, बेखुदीकी दरियासे, आहोंकी फटे गलेके बख़ियेसे, निष्ठा-मार्गकी तलवारकी धारसे, पाँवकी जंजीरकी पाँवके चक्करसे।

बादमे तो काव्यमे इसकी और पुष्टि होती गयी है। कुछ उदाहरण लीजिए—

हैं ज़वालआमादः अजज़ा आफरीनशके तमाम,
मेह्र गर्दू है चिराग़े रहगुज़ारे बाद याँ।

इसमे सूर्यकी उपमा वायु-मार्गमे प्रज्वलित दीपकसे दी गयी है। (इस संसारके सभी अंग पतनोन्मुख है, क्षयशील है। इसमे सूर्य हवाके रास्तेमे रखा गया दीपक है।)

ग़मे हस्तीका 'असद' किससे हो जुज़ मर्ग इलाज,
शमअ हर रंगमें जलती है सेहर होने तक।

इस शेरमे मृत्युको प्रभात बताया गया है क्योकि प्रभात शमअके लिए मृत्युका कारण है। (ऐ असद ! जीवनके दुःखोकी चिकित्सा मृत्युके सिवा कौन कर सकता है ? शमअको प्रभात होने तक हर रंगमे जलना ही पड़ता है।)

जूए खूँ आँखोंसे बहने दो कि है शामे फ़िराक़,
मैं यह समझूंगा कि दो शमएँ फरोज़ाँ हो गयीं।

विरहकी सन्ध्यामे, रोनेसे हुई रक्ताभ आँखोंकी दो जलती ज्योतियोसे उपमा दी गयी है।

*किनाय. (लुप्तोपमा) के भी अनेक अच्छे उदाहरण गालिबके काव्यमे मिलते है। देखिए—

बिजली एक कौंद गयी आँखोंके आगे तो क्या ?
बात करते कि मैं लब तिश्नए - तक़रीर[1] भी था।

प्रियतमा एक झलक दिखाकर चली गयी है। इसी बातको पहिले मिस्रेमे कहा है कि आँखोके आगे एक बिजली कौदकर लुप्त हो गयी।

दम लिया था न क़यामतने हनोज़,
फिर तेरा वक़्ते सफ़र याद आया।

प्रियतमाकी विदाईके समय जो दर्दनाक हालत हुई थी और जो उसके चले जानेके बाद रह-रहकर याद आती है उसमे जो कभी-कभी विराम-काल आ जाता है उसे क़यामतका दम लेना कहा है (अभी क़यामतने दम भी न लिया था कि तेरी विदाईका समय याद आ गया !)

पेनहाँ[2] था दामे सख़्त क़रीब आशियानके,
उड़ने न पाये थे कि गिरफ़्तार हम हुए।

आशियाँके समीप ही कोई कठोर-जाल छिपा हुआ था। उड़ने भी न पाये थे कि उसमे गिरफ़्तार हो गये। वास्तविक अभिप्राय यह है कि हमारे

---

१. वार्तालापके लिए पिपासित ओठोवाला, २. प्रच्छन्न।

* शब्दार्थ—छिपी, बात, गुप्त संकेत। उर्दू साहित्यकी परिभाषामे उपमेयका वर्णन न करके केवल उपमानका वर्णन करना। जैसे नर्गिससे मोती गिर रहे है। मतलब तो यह है कि उनकी नर्गिस-सी आँखोसे अश्रु-मुक्ता झर रहे है पर आँखे और अश्रु पदसे लुप्त है।

आस-पास कठिनाइयो और मुसीबतोके जाल बिछे थे और होश सँभालनेके पहिले ही हम उसमे फँस गये ।

शोख़ी :

मिर्जाकी तबीयत ही चुलबुली और विनोदप्रिय थी । उनके काव्यमे उनकी शोख़ीकी झलक प्रायः मिलती है—

पकड़े जाते हैं फ़रिश्तोंके लिखे पर नाहक़,
आदमी कोई हमारा दमे तहरीर भी था !

फ़रिश्तोके लिखनेपर हम नाहक पकड़े जा रहे है । उनके रिपोर्ट लिखते वक्त कोई हमारा भी आदमी उपस्थित था ? बेगवाहीकी तहरीरपर पकडना भी कोई न्याय है !

जमअ करते हो क्यों रक़ीबोंको,
एक तमाशा हुआ गिला न हुआ ।

मैने शिकायत की थी; तुमने तमाशा बना लिया । यह मेरे प्रतिस्पर्धियोको क्यो एकत्र कर रहे हो ? (शिकायतका क्या जवाब मिला है !)

ग़ालिब गर इस सफ़रमें मुझे साथ ले चलें,
हजका सवाब[1] नज़र करूँगा हुज़ूर की ।

यदि इस यात्रामे मुझे भी साथ ले चलें तो हजका जो पुण्य होगा उसे मै हुजूरकी नज़र कर दूँगा ।

वाइज़ न तुम पिओ न किसीको पिला सको,
क्या बात है तुम्हारी शराब तहूर[2] की ।

---

१. पुण्य, २. स्वर्गीय मदिरा ।

'क्या बात है' शेरकी जान है ।

हम जो कहते हैं कि हम हश्रमें लेंगे तुमको
किस रुऊनत[1] से वह कहते हैं कि "हम हूर नहीं ।"

इस्लाम धर्मका विश्वास है कि प्रलयके समय खुदा लोगोको पुरस्कार देता है; उसमे हूरें (अप्सराएँ) मिलती है । उसीपर छेड़ते है कि हम प्रलयके समय तुम्हीको लेंगे और वह किस गर्वसे जवाब देती है कि मै कोई हूर तो नही हूँ ।

व्यंग-विनोद :

गालिबके काव्यकी एक बहुत बड़ी विशेषता वह प्रच्छन्न व्यंग और विनोद (तज और जराफत) है जो उनके लहजेमे पाई जाती है । व्यगमे उन्होने किसीको छोड़ा नही । यहाँ तक कि "उर्दू शाइरीमे गालिब पहिले शख्स है जिन्होने तजमे ख़ुदाको मुख़ातिब किया है ।" उनमे 'सेल्फह्यूमर' (अपनेपर हँसनेका गुण) भी था और इसी गुणने उन्हे मुसीबतोकी घाटीमे चलनेका बल दिया ।

चन्द शेर देखिए—

की मेरे क़त्लके बाद उसने जफ़ासे तौबः,
हाय उस ज़ूदपशेमाँ[2] का पशेमाँ होना ।

जब कोई देरसे आता है तो लोग व्यंगमे कहते है—बहुत जल्द आये ! यहाँ भी गालिब उसी तर्जमे व्यंग करते है । "अपने कियेपर शीघ्रतासे पछतानेवालेकी वह लज्जा ! उसने मेरा कत्ल करनेके बाद ही जफासे तौबा कर ली ।"...(जब कत्ल कर लिया, गुनाह पूर्णतापर पहुँच गया और इतनी देर हो गयी कि अनुतापसे पूर्ति न हो सके तब वह अपने किये पर लज्जित हो उठा !)

---

१ गर्व, २. शीघ्र पछतानेवाला ।

हूँ मुनहरिफ़[1] न क्यों रहो रस्मे सवाब[2] से,
टेढ़ा लगा है क़त क़लमे सरनविश्त[3] को ।

मै पुण्यकी परम्पराओके प्रति विद्रोही क्यो न होऊँ जव मेरी भाग्यलिपि लिखनेवाली लेखनीमे ही कत टेढा लग गया है ?

मिटता है फ़ौते फ़ुर्सते हस्तीका ग़म कोई,
उम्रे अज़ीज़ सर्फ़े इबादत ही क्यों न हो ?

चाहे यह प्यारी उम्र उपासनामे ही खर्च कर दी जाय पर क्या जीवन-की इस सूक्ष्म अवधिके नष्ट होनेका दु ख मिट सकता है ? (तव भी दु.ख रहेगा कि और बहुतसे काम न कर सका और उम्र बीत गयी ।)

हमको मालूम है जन्नतकी हक़ीक़त लेकिन,
दिलके बहलानेको ग़ालिब य' खयाल अच्छा है ।

हमको स्वर्गकी वास्तविकताका पता है, पर हाँ दिल बहलानेके लिए यह एक अच्छी कल्पना है !

वह दूसरोपर ही नही अपनेपर भी हँस लेते है, व्यंग कर लेते है—

ग़ाफ़िल इन महतलअतोंके वास्ते,
चाहनेवाला भी अच्छा चाहिए ।
चाहते हैं ख़ूबरूयोंको 'असद'
आपकी सूरत तो देखा चाहिए ।

आप सुन्दरियोको चाहते है, जरा अपना मुँह तो देखिए । ऐ गाफिल ! इन चन्द्रमुखियोके लिए चाहनेवाला भी तो अच्छा—सुन्दर—होना चाहिए ।

---

१ उलटा चलनेवाला, विद्रोही, २. धर्म-परम्परा और मार्ग, ३ भाग्यलिपि ।

बादशाहकी नौकरीकी विवशताका अनुभव करते हुए अपनेपर फब्ती कसी है—

ग़ालिब वज़ीफ़ःख़्वार हो दो शाहको दुआ,
वह दिन गये कि कहते थे—नौकर नहीं हूँ मैं।

अर्थ-वैचित्र्य :

बहुतसे शेर ऐसे है जिनसे यों देखनेपर एक अर्थ निकलता है पर सोचनेके बाद दूसरा अर्थ समझमे आता है। शेर पहलूदार है, जैसे—

कोई वीरानी-सी वीरानी है,
दश्तको देखकर घर याद आया।

ऊपरी अर्थ यह है कि दश्तकी बीरानी और कष्टको देखकर घर और उसका आराम याद आ गया।

सोचनेपर दूसरा अर्थ यह निकलता है कि घर इतना वीरान था कि दश्तकी वीरानी देखकर घरकी वीरानी याद आ गयी।

क्योंकर उस बुतसे रखूँ जान अज़ीज़,
क्या नहीं है मुझे ईमान अज़ीज़ ?

एक अर्थ यह है कि अगर उससे प्राण अधिक प्रिय रखूँगा तो वह ईमान ले लेगा इसलिए जानको प्रिय नही रखता। दूसरा अर्थ यह है कि "उस बुतपर जान निछावर करना तो ईमान है, फिर उससे जानको क्योंकर अज़ीज रख सकता हूँ ?"

प्रेमका चित्रण और उसका दर्शन, तसव्वुफका हलका रग, वेदना और आर्द्रता (सोज़ो गुदाज़), निराशाके चित्र (कनूतियत), घटना-चित्रण तथा कथोपकथन (मुहाकात) तथा मुआमल'बंदी* गालिबके काव्यके मुख्य विषय है। इनके चंद नमूने यहाँ दिये जाते है—

---

*काव्यमे नायक-नायिकाके प्रेमके मुआमिलोको इस प्रकार बाँधना कि उनका प्राकृतिक चित्र आँखोके सामने फिर जाय।

प्रेमदर्शन :

परतवे ख़ुर[1] से है शबनमको फ़ना[2] की तालीम,
मैं भी हूँ एक इनाअतकी नज़र होने तक।
मुहब्बतमें नहीं है फ़र्क़ जीने और मरनेका,
उसीको देखकर जीते है जिस काफ़िर पै दम निकले।
इशरते क़तरा है दरियामें फ़ना हो जाना,
दर्दका हदसे गुज़रना है दवा हो जाना।
जबतक दहाने ज़ख़्म न पैदा करे कोई,
मुश्किल कि तुझसे राहे-सखुन वा[3] करे कोई।

तसव्वुफ़ :

हम वहाँ हैं जहाँसे हमको भी,
कुछ हमारी खबर नहीं आती।
था ख़्वाबमें ख़यालको तुझसे मुआमिलः,
जब आँख खुल गयी न ज़ियाँ था न सूद था।
थक थकके हर मुक़ाम पै दो चार रह गये,
तेरा पता न पायें तो नाचार क्या करें?

वेदनाविह्वलता और आर्द्रता :

आगे आती थी हाले दिल पै हँसी,
अब किसी बात पर नहीं आती।
रगोंमें दौड़ने फिरनेके हम नहीं क़ायल,
जब आँख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है?

---

१. सूर्य-प्रकाश, २. विनाश, ३. अनावृत करे, खोले।

इब्न मरियम हुआ करे कोई,
मेरे दुःखकी दवा करे कोई।
कहता है कौन नालए बुलबुल[1] को बेअसर,
पर्देमें गुलके लाख जिगर चाक हो गये।
करने गये थे उनसे तग़ाफुलका हम गिल:,
की एक ही निगाह कि बस ख़ाक हो गये।

निराशा:

जब तवक़्क़अ[2] ही उठ गयी ग़ालिब,
क्यों किसीका गिल: करे कोई।
मुनहसिर[3] मरनेपै हो जिसकी उमीद,
नाउमेदी उसकी देखा चाहिए।
सँभलने दे मुझे ऐ नाउमेदी, क्या क़यामत है,
कि दामाने ख़याले यार छूटा जाय है मुझसे।
रहिए अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो,
हमसुखन कोई न हो और हमज़बाँ कोई न हो।
पड़िए गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार,
और अगर मर जाइए तो नौह:ख़्वाँ कोई न हो।

मुहाकात:

देके ख़त मुँह देखता है नाम:बर,
कुछ तो पैग़ामे ज़बानी और है।
जाता हूँ थोड़ी दूर हर यक तेज़रौके साथ,
पहचानता नहीं हूँ अभी राहबरको मैं।

---

१. बुलबुलके रोदनका चीत्कार, २. आशा-भरोसा, ३. निर्भर।

वह आयें हमारे घर ख़ुदाकी क़ुदरत है,
कभी हम उनको कभी अपने घरको देखते हैं।

सुआमिलःबंदीः

किस मुँहसे शुक्र कीजिए उस लुत्फ़े ख़ासका,
पुर्सिश[1] है और पाए सुख़न दरमियाँ नहीं।
हर एक बातपै कहते हो तुम कि तू क्या है,
तुम्हीं कहो कि यह अन्दाजे गुफ़्तगू क्या है?
ग़लत है ज़ज़्बे दिलका शिकवः देखो जुर्म किसका है,
न खींचो गर तुम अपनेको कशाकश दरमियाँ क्यों हो?

इनकी कवितामे अर्थ-चमत्कार (मा'नी आफरानी) भी ख़ूब मिलता है—

हस्ती हमारी अपनी फ़ना पर दलील है,
याँ तक मिटे कि आप हम अपनी क़सम हुए।
मरते हैं आरज़ूमें मरनेकी,
मौत आती है पर नहीं आती।
नक़्शको उसके मुसव्विर[2] पर भी क्या क्या नाज़ हैं,
खींचता है जिस क़दर उतना ही खिंचता जाय है।

उलटवासियाँ :

इनके काव्यमे पेचसे, घुमा-फिराकर, विरोधी शब्दो द्वारा भी किसी तथ्यकी अभिव्यक्ति की गयी है —

---

१ पूछ-ताछ, स्वागत-सत्कार, २ चित्रकार।

बस कि दुश्वार[1] है हर कामका आसाँ होना,
आदमीको भी मयस्सर नहीं इंसाँ होना।
मिलना तेरा अगर नहीं आसाँ तो सहल है,
दुश्वार तो यही है कि दुश्वार भी नहीं।

दोष :

ऐसा नही है कि ग़ालिबमे काव्य-दोषोका अभाव है। पहला दोष तो यह है कि उनकी भाषामे प्रसाद गुणकी बहुत कमी है। उसमे सरलता नहीं है। उसमे कुमारीत्वका सरल सौन्दर्य नहीं, शृंगारभारावनता रूपसी-का हुस्न है। डा० अब्दुललतीफके इस कथनमे पर्याप्त सत्य है कि "उसकी लफ़्ज़ियात और अस्लूब इस कदर गरीब थे कि आम लोग उसके पुरजोश और बाज औकात निराले तखय्युलकी रविशोमे उसका साथ नही दे सकते थे।"

असल दोष स्वय गालिबमे था और वह यह कि उनकी जिन्दगी शुरू-से अन्ततक अशान्तिसे, बेइत्मीनानीसे परिपूर्ण थी। समाजने उन्हे सर, आँखोपर जगह दी, दिल्लीमे उनका जो सत्कार हुआ वह दूसरे किसी सम-कालिक कविको नसीब न हुआ, आर्थिक दृष्टिसे भी वह कुछ बुरे न थे पर उनमे असन्तोषकी वृत्ति कुछ इस तरह उभरी थी कि कभी उन्हे अपनेसे, अपने सम्मानसे, अपनी स्थितिसे सन्तोष न हुआ। उन्हे जिन्दगी-भर दो बातोकी शिकायत बनी रही—१. साहित्यिक क्षमता और कार्यकी नाकदरी और २. आर्थिक कठिनाइयाँ। इसी असन्तोषके कारण उनमे परस्पर विरोधी तत्त्व मिलते है। उनके तीव्र अहंके बावजूद उन्हे जन्मभर हम सबके आगे हाथ फैलाते देखते है। उनका अहं मीरका आन्तरिक तुष्टिवाला वह अहं नही था जो आपत्तियोकी ओरसे बेपर्वा है। वह लिखते थे—आराम

---

१. कठिन।

के लिए, यशके लिए, पैसेके लिए। यही भौतिकताका स्तर उनका दोष है, पर यही उनका गुण भी है। उनके काव्यके सम्बन्धमे यही बात है। उनकी दृष्टि यथार्थ जगत्की दृष्टि है। एक पत्रमे लिखते है :—

"मैने नवाब मुख्तारुमुल्कको कसीद भेजा, कुछ कद्रदानी न फ़रमाई ...मस्नवी ...मुहीउद्दौलाको भेजी, रसीद भी न आई। एक कम सत्तर बरसकी उम्र हुई। सिवाय शोहरतके फने शेरका फल न पाया।"

फिर लिखते है —"मेरा मकसूद तो इतना है कि कसीदे गुजरे और कुछ हमारे-तुम्हारे हाथ आये।"

निराशामे भौतिक तृष्णा इतनी यथार्थ हो उठी है कि साफ-साफ लिखते है:—"बू अली सीना[1] के इल्म और नजीरी[2] के शेरको जाय और बेफायद: और मौहूम[3] जानता हूँ। जीस्त[4] बसर करनेको कुछ थोड़ी राहत दरकार है और बाकी हिक्मत व सल्तनत व शाइरी और साहिरी[5] सब खुराफात है। हिन्दुस्तानमे कोई औतार हुआ तो क्या, मुसलमानोमे नबी बना तो क्या, दुनियामे नामआवर हुए तो क्या और गुमनाम जिये तो क्या? कुछ वजहे-मआश[6] हो और कुछ सेहत जिस्मानी[7], बाकी सब वहम।"

इसीलिए उनकी शाइरीमे दिलोकी गहराइयाँ उतनी नही जितनी मस्तिष्क और कल्पनाकी उडाने है। यो कह सकते है कि शाइरीसे अधिक शिल्प है।

गालिबके काव्यका बहुत-सा भाग ऐसा है जिसमे अनुभूतियोका नर्त्तन नही, दिलकी गहरी पकड़ नही। वह बौद्धिक या चेतनाका स्पर्श मात्र बन-कर रह गया है। शेर दिमागको छूते है पर दिलको ठण्डा छोड़ जाते है। जैसे —

---

१. एक तत्त्वज्ञ, २ फारसीका एक प्रसिद्ध कवि, ३. भ्रमात्मक, ४. जीवन, ५ जादूगरी, ६. जीविकाका साधन, ७. शारीरिक स्वास्थ्य।

अह्ले बीनश ने बहैरतकदए शोख़िए नाज़,
जौहरे आईनः को तूतिए बिस्मिल बाँधा।
न लेवे गर खसे जौहर तरावत सब्ज़ए ख़तसे,
लगा दे ख़ानए आईनः में रूए निगार आतिश।
शब खुमारे शौक़े साक़ी रस्तखेज़ अन्दाजः था,
ता मुहीते बादःसूरत खानए ख़मियाज़ः था।

भारी-भरकम शब्दोंकी कायामे डोलती हुई खोखली, बेजान कल्पना दिखाई देती है।

इन सब त्रुटियोके होते हुए भी गालिबकी आवाजमे एक जोर है, एक निष्ठा है, एक कड़क है। उन्होने गजलके तंग दायरेको विस्तृत किया; उसमे एक ऐसी चोट है जो दूसरे गजलगो शाइरोमे नही मिलती। गजलकी शाइरीपर गहरा प्रहार करनेवाले कलीमउद्दीन अहमदको भी इतना तो मानना ही पड़ा है:—"मै गजल और गजलके अशआरको जराहते पैका[1] से ता'बीर[2] करता हूँ और इसीलिए उसमे वह राहत नही पाता जो तबीयत ढूँढती है और जो नज्मोमे मिलती है, लेकिन गालिबके अशआरमे जख्मे तेगका लुत्फ़ मिलता है।"*

गालिबके काव्यमे आत्माभिव्यक्ति, जगत्के सौन्दर्यकी विविधताको ग्रहण करनेकी कामना, कल्पना और यथार्थका सामञ्जस्य, फारसीकी अत्यधिक शृङ्गार-प्रियताके साथ देशी सरलताका मिश्रण, मिटते हुए

---

१. तीरकी नोक, २. समता (स्वप्न-फल बयान करना या बताना)।

* उर्दू शाइरीपर एक नजर : पृ० १३९। गालिबका खुद भी यही दावा है.—

नहीं जरीयए राहत जराहते पैकां,
वह जख़्मे तेग है जिसको कि दिलकुशा कहिए।

मुगल वैभवकी वेदनाओका चित्रण, पर उसके साथ आशाकी झलक तथा भूत एवं भविष्यको वर्तमानसे मिलानेकी चेष्टा पाई जाती है।

उसकी सबसे बडी विशेषता यह है कि वह यथार्थकी भूमिपर खड़ा है। उसमे निजी कामनाओकी दुर्बलता है पर निर्माणकी आकाक्षा भी है। गालिब अपने युगसे निराश था। उसे इतना यश मिला पर उसने उसे बहुत कम समझा; उसे इतना सरक्षण प्राप्त हुआ पर वह और पानेके लिए दॉत निपोरता रहा। मीरका झटका देकर वातावरणको दूर फेक देना उसे कभी न आया। उसने अयोग्य लोगो एवं इस मुल्कको पामाल करनेवाले अंग्रेज अफसरोकी प्रशंसामे कसीदे कहे, भीखपर जिन्दगी विताता रहा, खून उगलता रहा, पर कर्जकी शराब पीता रहा। पर इसी अन्तर्द्वन्द्वमे उसने उर्दू काव्यको एक यथार्थताका स्वर दिया। उसमे भावनाका वेग वुद्धिसे नियन्त्रित है। उसकी कल्पना यथार्थके नीड़से उडती है पर फिर उसीमे लौट आती है। सब बुराइयोके बावजूद उसमे हँस-हँसकर चोट खानेका सामर्थ्य है; वह हँसीके आँचलसे आँसुओको पोछता दीखता है, वह गमको मुसकराते ओठोसे पी जाता है, वह अपनेपर, अपनी किस्मतपर, विनाशपर हँसना जानता है—मौतको, कठिनाइयोको चुनौती देता चलता है। तकलीफमे, दर्दमे, तूफानमे भी चलना नही छोड़ता। जब पाँव जख्मी हो जाते है तब सीनेके वल चलता है।‡ रुकता है और चलता है, पर चलता जरूर है।

जीवनके प्रति इस आस्थाके साथ उसके काव्यकी चित्रण-शीलता है

---

‡ एक फारसी शेरमे गालिबने कहा है—"जिन्दगीकी एक ऐसी दुर्गम घाटीमे, जहाँ खिज्रकी रहनुमाई भी काम नही देती और जहॉ मेरे पाँव चलनेसे वेबस है, वहॉ मै सीनेके बल चल रहा हूँ।"

श्री रशीद अहमद सिद्दीकीने लिखा है:—"गालिबने किसी हालमे अपना साथ न छोडा। वह हर मिस्मारीके नीचेसे फटे हाल लेकिन मुसकराते हुए निकलते थे।"

जिसके विषयमे मैं सरदार जा'फरीके शब्दोको यहाँ दोहरा भर देना चाहता हूँ:—

"......इसके साथ गालिबकी मुतहरक और रक्साँ 'इमेजरी' है जो तस्वीरगरीकी मे'राज है। जब वह अपनी अछूती तश्वीहो और नादिर इस्तआरोका जादू जगाता है तो एक-एक अक्षर नृत्य करने लगता है। ठहरे हुए नकूश सय्याल हो जाते है, मुजरिद खयाल एक पैकरे रंगोबू बनकर सामने आ जाता है, दश्त गर्मिए रफ्तारसे जलने लगते है, सेहराके जिस्ममे रास्ते नब्जोकी तरह धड़कने लगते है; बेजान पत्थरोंके सीनेमे नातराशीद: बुत नाचने लगते है, आईनोके जौहरोमे पलकें लर्जने लगती है; शराबके प्यालोंको उठाये हुए हाथोंकी लकीरोमे खून दौड़ने लगता है। मा'शूककी गुफ्तारसे दीवारोमे जान पड़ जाती है।" अर्थात्—"इसके साथ गालिबकी गतिशील एवं नर्तित इमेजरी है जो चित्राङ्कनकी पराकाष्ठा है। जब वह अपनी अछूती उपमाओ और अनुपम रूपकोंका जादू जगाता है तो एक-एक अक्षर नृत्य करने लगता है। स्थिर चित्र तरल बन जाते है। एकाकी विचार रग एवं सुगन्धका शरीर धारण कर सामने आता है; अरण्य गतिके उत्तापसे जलने लगते है ; मरुस्थलकी कायामे मार्ग नाड़ी-तुल्य धडकने लगते है; बेजान पत्थरोके सीनोमे अनगढी मूर्त्तियाँ नाचने लगती है, आईनोके जौहरोमे पलके कम्पित होने लगती है; जिन हाथोमे मधुपात्र होते है उनकी रेखाओमे रक्त दौड़ने लगता है। मा'शूकके वचनोसे दीवारोमे प्राण थिरकने लगते है।"*

गालिबकी सबसे बड़ी देन इन्सानके लिए उनका अदम्य प्यार और इस दुनियाके लिए उनकी कभी न बुझनेवाली तृष्णा है। वह ससारकी तृष्णाके कवि है। वह कही हो, इस धरतीसे उनका सम्बन्ध बना रहता है। श्री रशीदअहमद सिद्दीकीने ठीक ही लिखा है:—"वह कही हों,

* 'दीवाने-गालिब'की भूमिका : बम्बई संस्करण, पृ० २०–२१।

उनका पाँव जमीनपर ही रहता है। किसी हालमे वह हमसे जुदा होना या जुदा रहना गँवारा नही करते।"† निश्चय ही गालिवने उर्दूकी पुरानी शाइरीको एक नया स्वर, एक नया लहजः, एक नई दृष्टि दी और गजलको प्रेम-वर्णनके वाहनसे जीवन-वर्णनका विषय बना दिया। विषय पुराना है पर उसे प्रस्तुत करनेमे कविका तेवर नया है। उसके काव्यमे अतीतका मोह, वर्तमानकी संलग्नता और भविष्यकी आशा है। उसमे उस रातकी वेदना है जिसमे मा'शूक़की अदाएँ और अठखेलियाँ है, उसकी सौ-सौ चितवनोकी चुभन है; उस महफिलका नग्म' है जो उजड़ चुकी है, उसमे उस शमअकी राख है जो रातभर जलकर मौन हो गयी है, पर उसमे उस प्रभातीका जीवन-स्पर्श भी है जो शत-शत कलियोके निद्रित नयन-पटल उन्मीलित कर देता है, इसके साथ ही उसमे उस भविष्यके चरणोकी धमक है जो अभी दूर है पर जिसको आना ही है और जिससे कल जीवन-पन्थ मुखरित हो उठेगा।

† 'नक्दे गालिब' पृ ३१७ ('कोई बतलाओ कि हम बतलाये क्या ?')

ग़ालिब तथा अन्य कवि

तुलना

मीर और ग़ालिब :

प्राय· गालिवकी तुलना 'मीर' तथा अन्य उर्दू कवियोसे की जाती है। किसी कविके अध्ययनकी यह कोई उत्तम प्रणाली नही है फिर भी यह युग ही तुलनात्मक समीक्षाका है इसलिए इस विषयपर संक्षिप्त चर्चा कर लेना अच्छा ही है। गालिबके काव्यका रंग सबसे अलग है। वह किसी उर्दू कविको अपने सामने कुछ समझते न थे। आरम्भमे जब उनपर फ़ारसीयतका रंग चढा हुआ था, वह अपने उर्दू काव्यको भी तुच्छ समझते थे और कहा करते थे कि मेरा महत्त्व आँकना हो तो मेरे फारसी काव्यको देखो। इसलिए उनकी किसी उर्दू कविसे तुलना क्या करें ? पर इतना मानना पडेगा कि यदि किसी उर्दू कविसे वह विशेष प्रभावित थे तो यह कवि 'मीर' थे। वह दूसरे कवियोकी प्रशसा बहुत कम करते थे किन्तु 'मीर'की प्रशंसा उन्होने कई स्थानोपर की है। अपने शिष्योको जो पत्र लिखे है उनमे भी 'मीर'के शेर बार-बार उद्‌धृत करते है। उत्तर कालमे जब उनकी तूफानी जिन्दगीमे एक सामञ्जस्य आया और सामन्ती अहंकार तथा फारसीयतका नशा कुछ धीमा पड गया तब वह जमीनपर उतरे और 'मीर'की सरल शैलीका अनुकरण किया तो छोटी बहरोमे जो गजले लिखी वे उनकी सर्वोत्तम गजलोंमेसे है और सामान्य लोगोकी जबानपर चढ गयी है।

इस प्रभावके होते हुए भी गालिबकी जीवन-दृष्टि मीरकी जीवन-दृष्टिसे बिलकुल भिन्न है। मीर अन्त.स्थ, अपनी दुनियामे खोये हुए है। उनमे

आत्म-विस्मरणका तत्त्व बहुत अधिक है। वह यह सोचकर बहुत कम लिखते हैं कि दूसरे लोग भी हमारी कविता पढेगे। अक्सर शेर कहते

जीवन-दृष्टिकी भिन्नता

समय वह उसीके वातावरणमे डूव जाते है और आत्मविस्मृति एवं निमग्नताकी यह अवस्था आ जाती है कि लोग आते है, सलाम करते है, वैठते है और उठकर चले भी जाते है पर उन्हे कोई खवर नही होती। वगलमे बाग है पर अपने भावोद्यानके सौन्दर्यमे ऐसे डूवे कि उसकी तरफ खिड़कियाँ नही खुलती, न यही ख्याल होता है कि यहाँ कोई वाग़ भी है। यह तत्त्व उनमे अपने सूफी पिता और चचा तथा उस वातावरण-से आया है जिसमे उनका वचपन बीता।

गालिब प्रधानतः बाह्य-जगत् और उसके वैभवके कवि है। उनके मजे इसी दुनिया तक हैं। आन्तरिक जगत्मे प्रवेश करते भी है तो दर-

इस धरतीके पथिक

वाजा कभी वन्द नही करते, खुला रखते है, बल्कि होशियार रहते है कि निकलनेका रास्ता बन्द न हो जाय। और अन्तर्जगत्की एकाध झाँकी लेनेके वाद, फिर अपनी दुनियामे और अपनी जमीनपर लौट आते है। उनमे 'मीर'का आत्मविस्मरण कही नही दिखाई पड़ता। उन्हे अपना कलाम सुनानेकी उत्कण्ठा, बल्कि लालसा रहती है। जब नज़दीक कोई नही रहता तो दूरके शिष्यो एवं मित्रोको, पत्रोके द्वारा अपना कलाम सुनाने से नही चूकते।

'मीर' अरवीके अच्छे जानकार एव फारसीके उस्ताद, एक फारसी दीवानके रचयिता तथा कई गद्य-पुस्तकोके लेखक होकर भी, भारतीय

दिल्ली और शीराज-का वातावरण

वातावरणमे साँस लेते है, वह दिल्लीमे दिल्ली-के होकर रहते है, उर्दूमे फारसी तरकीबोका सही और सुन्दर प्रयोग करके भी वह उर्दूके ही है, उर्दूपर उनको गर्व है। गालिब जब उर्दू लिखते है तब भी

फ़ारसीयत उनपर गालिब रहती है। उर्दूके प्रति उनमें तुच्छताका भाव है। भावना एवं दृष्टिकोणसे वह ईरानी अधिक, भारतीय कम है। दिल्लीमे रहते हुए भी वह शीराजके निवासी मालूम पडते है। जहाँतक गहराईका सम्बन्ध है उर्दूका दूसरा कोई कवि मीर तक नही पहुँचता। पर जहाॅ तक विस्तृतिका सम्बन्ध है गालिब सबसे आगे है।

ग़ालिबकी जटिलता- मीर सरल, दिलसे सीधे जबानपर आनेवाली भाषाका प्रयोग करते है; गालिब बातोको घुमा-फिराकर उसमे जद्दत पैदा करनेकी कोशिश करते है। दिमाग खुरचना पडता है तब उनका मतलब समझमे आता है। गालिबके पूर्वार्द्ध जीवनका काव्य तो हिन्दी कवि केशवकी भाँति (जिन्हे 'कठिन काव्यका प्रेत' कहा गया है) जान-बूझकर दुर्बोध बनाया हुआ काव्य है। जनाब 'असर' लखनवीने गालिबका ही एक शेर उद्धृत करके इस विषयपर प्रकाश डाला है :

लेता न अगर दिल तुम्हें देता कोई दम चैन,
करता जो न मरता कोई दिन आहो फुग़ाँ और।

जब किसीने इसका मतलब पूछा तो गालिबने कहा :

"यह बहुत लतीफ़ तक़रीर[1] है। लेताको रब्त[2] चैनसे, करता मरबूत[3] है आहोफुगाँसे। अरबीमे ता'क़ीद लफ्जी[4] व मान'वी[5] दोनों मा'यूब[6] है। फ़ारसीमे ता'क़ीदे मान'वी[7] ऐब और ता'कीद लफ़्जो जायज बल्कि फसीह[8] व मलीह[8]। रेख्तः तकलीद[9] है फारसीकी। हासिल मा'नी मिस्र-

१. सुन्दर वाणी, २ सम्बन्ध, ३. क्रमबद्ध, प्रसगयुक्त, ४. किसी वाक्य या शेरमे शब्दोका ऐसा उलट-फेर जिससे अर्थ बदल जाय, ५ किसी वाक्य या शेरमे किसी शब्दका ऐसा अर्थ लेना जो उसके साधारण अर्थके विपरीत हो, ६. दूषित, ७. सरल एव प्रचलित, ८. सुन्दर, लावण्ययुक्त, ९. अनुकरण।

ऐन[1] यह कि अगर दिल तुम्हे न देता तो कोई दम चैन लेता, न मरता तो कोई दिन आहो फुगाँ करता।"

यह कलाबाजी गालिबका अंदाज है। वर्ना शेरको निम्नलिखित रूपमें लिखा गया होता तो सबकी समझमे बात आजाती.

देता न अगर दिल तुम्हें लेता कोई दम चैन,
मरता न तो करता कोई दिन आहोफ़ुग़ाँ और।

इसी घुमावके कारण उनके जमानेके बहुतसे लोग उनका मजाक उड़ाया करते थे।*

'मीर' और गालिबके प्रेम एवं सौन्दर्यकी धारणाएँ भी एक दूसरेसे भिन्न है। 'मीर'के लिए प्रेम जीवन और जगत्का तत्त्व, उसका लक्ष्य, साधन और नियामक है। जहाँ सौन्दर्य शरीरी है तहाँ भी उसमे ईश्वरकी झलक है।† पर गालिबका प्रेम मुख्यतः शरीरी है, उनकी सौन्दर्यकी धारणा रूपगत एवं इन्द्रियलब्ध सौन्दर्यकी धारणा है जिसमे शारीरिक भूख और प्यास प्रधान है।

प्रेम एवं सौन्दर्यकी धारणामें अन्तर

दोनोकी काव्य-दृष्टि, जीवन-दृष्टिकी भिन्नताने दोनोके काव्यका वातावरण एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न कर दिया है। जनाब 'असर' लखनवीने

---

१. इन मिस्रोका तात्पर्य।

* अगर अपना कहा तुम आपही समझे तो क्या समझे,
मजा कहनेका जब है एक कहे और दूसरा समझे।
कलामे मीर समझे और ज़बाने मीरज़ा समझे,
मगर इनका कहा यह आप समझें या खुदा समझे।

† बुर्केको उठा चेहरेसे वह बुत अगर आवे।
अल्लाहकी क़ुदरतका तमाशा नजर आवे।

ठीक ही लिखा है—" 'मीर' रूमानी (रोमैंटिक) शायर था और गालिब क्लासिस्ट। मीरकी शायरीसे शख्सीयत (पर्सनैलिटी) झलकती है; गालिब-की शायरी करदार (कैरेक्टर) की आईन.दार है।" मीरमे अनुभूति प्रधान है। गालिबमे कल्पना प्रधान हे। मीरका काव्य भावावेश, भावानुभूतिकी प्रबलताका चित्र है; गालिबमे अभिव्यंजनाका नावीन्य एवं अर्थ-गाम्भीर्य है। मीरमे तरकीब भी है पर अर्थ (मानी) समन्वित; गालिबमे वह अर्थपर छा गई है।'*

मीरका प्रभाव

फिर भी, जैसा मैं कह चुका हूँ, गालिब मीरसे काफ़ी प्रभावित है। अनेक स्थानोंपर तो भाव क्या शब्द भी टकरा गये है। देखिए—

मीर :

होता है याँ जहाँमें हर रोज़ोशब तमाशा,
देखो जो ख़ूब तो है दुनिया अजब तमाशा।

ग़ालिब :

बाज़ीचए इतफ़ाल है दुनिया मेरे आगे,
होता है शबोरोज़ तमाशा मेरे आगे।

मीर :

बेख़ुदी ले गयी कहाँ हमको,
देरसे इन्तज़ार है अपना।

ग़ालिब :

हम वहाँ हैं जहाँसे हमको भी,
कुछ हमारी ख़बर नहीं आती।

---

*'असर' : मुता'लए गालिब पृ० ९।

मीर :

इश्क़ उनको है जो यारको अपने दमे रफ़्तन[1],
करते नहीं ग़ैरतसे ख़ुदाके भी हवाले।

ग़ालिब :

क़यामत है कि होवे मुद्दईका हमसफ़र 'ग़ालिब',
वह काफ़िर जो ख़ुदाको भी न सौंपा जाय है मुझसे।

मीर :

आदमे ख़ाकीसे आलमको जिला[2] है वर्ना,
आइना था तो मगर क़ाबिले दीदार[3] न था।

ग़ालिब :

लताफ़त बेकसाफ़त जल्वा पैदा कर नहीं सकती,
चमन ज़ंगार है आईनए बादे बहारीका।

कही जमीन मिलती है, कही भाव मिलते हैं। जो साम्य है वह भावका कम, वाह्य अधिक है। एक ही 'तरह'की गजलोमे यह समता अधिक दिखाई पड़ती है—

मीर :

क्या तरह है आशना गाहे गहे नाआशना,
या तो बेगाने ही रहिए हूजिए या आशना।

ग़ालिब :

ख़ुदपरस्तीसे रहे बाहम दिगर नाआशना,
बेकसी मेरी शरीक आइना तेरा आशना।

---

१. विदा या प्रवासके समय, मरनेके वक्त, २ आभा, चमक, ३. देखने योग्य।

मीर :

दिल इश्क़का हमेशा हरीफ़े नबर्द[1] था,

ग़ालिब :

धमकीमें मर गया जो न बाबे नबर्द था।

मीर :

मरते हैं तेरी नर्गिसे बीमार देखकर,
जाते हैं जीसे किस क़दर आज़ार देखकर।

ग़ालिब :

क्यों जल गया न ताबे रुखे यार देखकर,
जलता हूँ अपनी ताक़ते दीदार देखकर।

कही-कही तो मीरके पदके पद गालिबमे मिलते है—

मीर :

तेज़ यूँ ही न थी शब आतिशे शौक़[2],
थी ख़बर गर्म उनके आनेकी।

ग़ालिब :

थी ख़बर गर्म उनके आनेकी,
आज ही घरमें बोरिया[3] न हुआ।

मीर :

न हो क्यों ग़ैरते गुलज़ार वह कूचः ख़ुदा जाने,
लहू इस खाकपर किन-किन अज़ीज़ोंका गिरा होगा।

---

१ लड़ाईका प्रतिद्वन्द्वी, २ उत्कण्ठाकी अग्नि, ३. (खजूरकी) चटाई।

ग़ालिब :

ख़ुदा मालूम किस-किसका लहू पानी हुआ होगा,
क़यामत है सरश्क आलूद[1] होना तेरी मिज़गाँ[2] का।

मीर :

आवेगी इक बला तेरे सिर सुन ले ऐ सबा[3],
ज़ुल्फ़े सियहका उसके अगर तार जायगा।

ग़ालिब :

हम निकालेंगे सुन ऐ मौजे सबा बल तेरा,
उसकी ज़ुल्फ़ोंके अगर बाल परीशां होंगे।

एक जमीनपर लिखते है पर दोनोके दृष्टिकोणकी भिन्नता स्पष्ट हो जाती है। 'मीर' कभी प्रियतमासे शिकायत करते है, यहाँतक कि उलझते भी है तो भी शराफतको नही छोड़ते, शिकायत बात-चीत तक रह जाती है, कर्ममे नही रूपान्तरित होती :

शिकवः करूँ हूँ बख़्तका, इतने ग़ज़ब न हो बुतां,
मुझको ख़ुदा न ख़्वास्ता तुमसे तो कुछ गिला[4] नहीं।

× ×

नाले किया न कर सुना, नौहे[5] पै मेरे अन्दलीब[6],
बातमें बात ऐब है, मैंने तुझे कहा नहीं।

बल्कि उनकी उच्च नैतिकता अपनेसे ही शिकायत, आत्म-प्रतारणा करती है :

इतनी भी बद-मिज़ाज़ी हर लहजः मीर तुमको,
उलझाव है ज़मींसे झगड़ा है आसमां से।

---

१. अश्रुपूरित, २. पलकें, ३ पुरवैया, मृदुसमीर, ४ शिकायत, ५ रोदन, ६ वुलवुल।

गालिब तो दया-प्रार्थनाके असफल होनेपर गुण्डई तक पर तुल जाते है, वही सामन्ती ढंग :

इज्ज़ो-नियाज़से तो वह आया न राहपर,
दामनको आज उसके हरीफ़ाना[1] खींचिए।

'मीर' मे सादगी है। उनके कलाम लम्बे, सुलझे हुए है। उनमे लोकवाणीकी छाया है। लोक-जीवन बोलता है। गालिबमे बनावट, घुमाव, शृगार-सजावट है। वह बातको सक्षेपमे और जटिल रूपमे कहते है। उनकी वाणी उच्चवर्गकी वाणी है।

गालिबकी जबानमे वह सफाई नही जो मीरमे है, न वह घुलावट, वह तड़प, वह बेचैनी और वह दर्द है जो 'मीर' मे प्राय: मिलता है। पर 'मीर' के काव्यमे वह समतलता (हमवारी) नही जो गालिबमे है। जहाँ मीरके शेर अच्छे है तहाँ बहुत अच्छे है। पर उनका बहुत-सा काव्य सामान्य कोटिका है। कदाचित् इसका कारण यह हो कि गालिबने 'मीर'के मुकाबले बहुत कम लिखा; उनका काव्य-विस्तार बहुत कम है या उनकी चुनी हुई गजलें ही उपलब्ध है।

ग़ालिब और मोमिन :

गालिब (१७९७ ई०—१८६९ ई०) और मोमिन (१७९८–१८५१ ई०) दोनों एक ही कालके कवि है। मोमिनकी मृत्यु गालिबके जीवन-कालमे ही हो गयी थी। मोमिनकी भाषा बहुत साफ है, उनमे कल्पनाकी तरलता एवं सूक्ष्मता है; शब्दोका चुनाव प्रशंसनीय है। उनकी तबीयत गजलखानीके लिए बहुत उपयुक्त थी, अपनी अनुभूतियोकी अभिव्यक्तिमे उन्हे कमाल हासिल था पर वह गालिबकी भाँति शब्दोके

---

१. प्रतिस्पर्द्धीकी भाँति।

दाँव-पेच और व्यजनाकी गुत्थियोसे उलझ गये और उर्दू काव्य उनकी प्रतिभाका लाभ उस सीमातक नही उठा सका जिस सीमा तक उठा सकता था।

समता

श्री मुहम्मद एकरामने ठीक ही लिखा है—"दोनोको ख़ुदाने शानदार दिल व दिमाग दिये थे, दोनोमे ख़ुदपसन्दी बहुत थी। दोनो नासिखके मद्दाह[1] और मुकल्लिद[2] थे और दोनोकी जबानमे फारसीयत और तसन्नो[3] का अंसर[4] नुमायाँ[5] है। दोनो मा'नी आफरीनी[6] और ख़याल बंदी[7] पर शैदा[8] थे। दोनों जबान और मजमूनमे ऊँचे तवके[9] के तर्जुमान[10] थे। "नाजुक ख्याली और दिक्कतपसन्दीके गालिब और मोमिन दोनो दिलदाद थे और पुराने मजामीनके लिए नये अस्लूबे बयान[11] इख़्तराअ[12] करनेमे दोनो बड़ा जोर व दिमाग सर्फ[13] करते थे। इस मकसद[14] के हुसूल[15] के लिए दोनो एक ही तरहका तकियए-फन[16] (Mannerism) इस्तेमाल करते है। मस्लन् महज़ूफातके[17] दोनो आदी है। और दोनोके कई अशआरमे किसी वाकय' या हालत का बयान करते हुए कई ऐसे अजजा[18] छोड़ दिये गये है जिन्हे पूरा करनेके लिए दिमागपर जोर देना पड़ता है। ग़ालिबका मशहूर शेर है—

> क़फ़समें मुझसे रूदादे चमन कहते न डर हमदम,
> गिरी थी जिसपे कल बिजली वह मेरा आशियाँ क्यों हो?

---

१ प्रशसक, २ अनुकरणकर्ता, ३ वनावट, ४ तत्त्व, ५ प्रकट, ६ अर्थ-वैचित्र्य, ७ कल्पनाकी उड़ान, ८. आसक्त, ९ कोटि, १० रूपान्तरकार, अनुवादक, ११ कहनेका ढग, १२ उत्पन्न करने, निकालने, १३ व्यय, १४ उद्देश्य, १५ प्राप्ति, १६ शिल्प-शैली, १७ शब्द-लोप, १८ अंश।

इस क़बीलके अशआर कुल्लियाते मोमिनमे कई है—

"ऐ काश उदू[1] को ग़ैरत आये,
मैं मुन्तज़िर अपनी मौतका हूँ।
मेरे तग़य्युरे रंग[2] को मत देख,
तुझको अपनी नज़र न हो जाये।"

ग़ालिबकी विशेषता

पर ग़ालिबमे एक विशेषता थी, वह जमानेसे सीखते थे। अपनी काव्य-कलामे सदैव नूतन प्रयोग करते रहते थे; बडा श्रम करते थे। इसलिए उत्तरकालके उनके काव्यमे वह नाजुक-ख्याली और दिक्कत-पसन्दी, जो उनकी विशेषता थी, कम होती गयी। गालिब और मोमिन दोनोमे अहं था और दोनों शेर कहनेकी कलामे अपने बराबर किसीको न मानते थे परन्तु जहाँ गालिबने इस अहंके होते हुए भी अपने काव्यमे निरन्तर संशोधन और सुधारका प्रयत्न किया, मोमिनने नही किया। फिर भी तगज्जुल और मुआमिलाबन्दीमे मोमिन ग़ालिबके आगे है।

मोमिनमे गजबकी 'जद्दते-अदा' (अभिव्यञ्जना) मिलती है। उनके निम्नलिखित शेरको सुनकर अहंमे डूबे हुए गालिब भी झूम पडे थे और कहते थे—"काश मोमिन खाँ मेरा सारा दीवान ले ले और यह शेर मुझे दे दे।"

तुम मेरे पास होते हो गोया,
जब कोई दूसरा नहीं होता।

इन दोनो कवियोके भाव भी अक्सर टकरा गये है। ढंग अपना-अपना पर जमीन एक है। कुछ शेर देखिए—

---

१ दुश्मन, २ रंग-परिवर्तन।

मोमिन :

शब तुम जो बज़्मे ग़ैरमें आँखें चुरा गये,
खोये गये हम ऐसे कि अग़यार[1] पा गये।

ग़ालिब :

गर्चः है तर्ज़ेतग़ाफुल[2] पर्दःदारे राज़े इश्क़,[3]
पर हम ऐसे खोये जाते हैं कि वह पा जाय है।

मोमिन :

घुटकर कहाँ असीरे मुहब्बतकी[4] ज़िन्दगी,
नासेह ! यह बंदेग़म नहीं क़ैदे हयात[5] है।

ग़ालिब :

क़ैदे हयात वो बंदेग़म अस्लमें दोनों एक हैं,
मौतसे पहिले आदमी ग़मसे नजात पाये क्यों ?

ग़ालिब :

दिले नातवाँ तुझे हुआ क्या है ?
आखिर इस दर्दकी दवा क्या है ?

मोमिन :

मरीज़े इश्क़ पर रहमत खुदाकी,
मरज़ बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।

ग़ालिब :

काबा किस मुँहसे जाओगे 'ग़ालिब'
शर्म तुमको मगर नहीं आती।

---

१ प्रतिस्पर्धी, २ उपेक्षाका ढंग, ३. प्रेम रहस्यको छिपानेवाला, ४ प्रेम-वन्दी, ५ जीवन-बन्धन।

मोमिन :

उम्र सारी तो कटी इश्क़े बुतांमें 'मोमिन'
आख़री वक़्तमें क्या ख़ाक मुसलमाँ होंगे ?

ग़ालिब और दाग़ :

'दाग' शब्द-चित्रके उस्ताद है; गालिब अर्थ-वैचित्र्यके पर एक ही जमीनमें कहे हुए दोनोके कई शेर मिलते है:—

ग़ालिब :

दरियाए मआसी[1] तुनुक आबीसे[2] हुआ ख़श्क
मेरा सिरे दामन भी अभी तर न हुआ था।

दाग़ :

यह मैं हज़ार जगह हश्रमें[3] पुकार आया,
कि और भी कोई मुझसा गुनाहगार आया ?

जुदाईका मजमून पुराना है। विरह-वेदनाका पार कौन पा सका है ? पातियाँ लिखी जाती है। लिखनेमे मिलनका स्वाद है इसलिए पत्र लम्बे होते जाते है। सन्देश-वाहक (दूत, नाम.बर) को जानेमे देर हो रही है डर भी है कि लम्बा पत्र देखकर और न चिढ़ जाय। इसी जमीनपर दोनों कहते है :—

ग़ालिब :

न दे नामेको इतना तूल 'ग़ालिब' मुख़्तसर लिख दे,
कि "हसरत संज हूँ अर्ज़ो सितमहाए जुदाईका[4] !"

---

१ पाप-नद, २. जलाभाव, ३. प्रलय, ४ विरहके उत्पीड़नोंकी लालनाओंको व्यक्त कर रहा हूँ।

दाग़ :

लिक्खें जो और कुछ तो हमारी मजाल क्या,
इतना ही लिखके भेज दिया है—"तरस गये।"

दागका सक्षेप देखिए, जैसे तारके शब्द हो। गालिबमे न उत्कण्ठाका जोश है, न बेचैनी है, जैसे अपना नही किसी दूसरेका अनुभव वयान कर रहे हो।

ग़ालिब :

क़यामत है कि होवे मुद्दईका हमसफ़र 'ग़ालिब'
वह काफ़िर जो खुदाको भी न सौंपा जाय है मुझसे।

दाग़ :

दावरे हश्र[1] से अब तक है उमीदे इंसाफ़,
क्या करेंगे जो पसंद उसकी अदाएँ आई।

गालिब कहते है कि जो मेरे लिए इतना प्रिय है कि जुदाईके समय 'खुदा हाफिज' कहने या उसे ख़ुदाको सौपनेमे भी मै असमर्थ हूँ (किसी भी दूसरेको, फिर चाहे वह ख़ुदा ही हो, उसे सौपनेको तैयार नही), कैसा गजब है कि वही मेरे प्रतिद्वन्द्वीका सहयात्री हो (उसके साथ चला जाय।)

गालिबकी प्रियतमा ऐसी है कि उसके बारेमे वह खुदापर भी भरोसा करनेको तैयार नही, वही विरोधीके साथ चली गयी, तब परिणाम क्या होगा!

दागकी प्रियतमा ऐसी है कि उसकी ज्यादतियोका इन्साफ प्रलयके समय ख़ुदासे करनेका आसरा तो लगाये बैठे है पर कहते है, कही उसकी अदाएँ ख़ुदाको भी पसन्द आ गयी तब मै क्या करूँगा?

---

१ प्रलयके दिन न्याय करनेवाला ईश्वर।

ग़ालिब :

हवा मुख़ालिफ़ो शबतारो बह्र तूफ़ाँख़ेज़,
गसस्तः लंगरे कश्ती व नाखुदा खुफ़्तः अस्त ।*

दाग़ :

पा बिरहनः दश्त वीरां, दूर मंज़िल राहसख़्त,
तू बता ऐ शामे गुर्बत, मैं करूँ तो क्या करूँ ।

गालिब कहते है कि हवा प्रतिकूल है, रात अँधेरी है, समुद्रमें तूफान उठ रहे है, नौकाका लगर टूटा हुआ है, और कर्णधार सुप्त है । पर यह परिस्थितिका आशिक चित्र मात्र है । इस परिस्थितिमे खुद उनकी, नौकाके आरोहीकी, क्या हालत है, यह कुछ नही बताते ।

दागकी तड़प

'दाग'का चित्र अधिक स्पष्ट है, स्थिति भी अधिक दर्दनाक है । 'गालिब'-के साथ कश्तीका कर्णधार है । क्या हुआ जो सो गया है । उसे जगाया जा सकता है । कश्ती उलट जाय तो भी दरियामें तैरा जा सकता है, हाथ-पाँव तो मार ही सकते है । पर 'दाग' तो अकेले है, कही कोई नही । नगे पाँव, निर्जन वन प्रान्त या मरुभूमि, मंजिल दूर है, रास्ता कठिन, शाम हो गयी है । ऐसे समय क्या उपाय है ? दागकी भाषामे प्रवाह और तड़प है ।

ग़ालिब :

यह मसायले तसव्वुफ[1] य' तेरा बयान 'गालिब',
तुझे हम वली[2] समझते जो न बादःख्वार[3] होता ।

---

* हाफिजका शेर है:—

शबे तारीको बीमे मौजो गर्दाबे चुनीं हाइल ।
कुजा दानिन्द हाले मा सुबुकसाराने साहिलहा ॥

दाग़ :

वाक़िफ़[1] रमूज़े इश्क़ो मुहब्बत[2]से 'दाग़' है,
मिलता अगर तो पूछते कुछ इस वलीसे हम।

गालिबमे अन्तर्विरोध है; दागमे सामञ्जस्य है।

ग़ालिब :

इशरते क़तरा है दरियामें फ़ना हो जाना,
दर्दका हदसे गुज़रना है दवा हो जाना।

दाग़ :

कमाले इश्क़ है ऐ दाग़ महो हो जाना,
मुझे ख़बर ही नहीं नफ़अ क्या ज़रर[3] क्या है।

गालिब समुद्रमे बूँदके विलीन हो जानेको बूँदका ऐश्वर्य मानते है। ऐसा करनेसे बिन्दुको अपने लक्ष्यका लाभ मिल जाता है। दर्दका सीमासे वढ जाना, असीम हो जाना ही उसकी दवा है। (गोया फ़ना ही दवा है।)

दाग प्रेमकी अधिक ऊँची स्थितिमे है। वह कहते है कि निमग्न हो जाना ही प्रेमकी सीमा है, आदर्श है। मै नही जानता कि हानि-लाभ क्या है? (दागका प्रेम हानि-लाभके विचारसे परे है, जब ग़ालिवमे एक बचाव, एक 'रिजर्व' है।)

ग़ालिब :

सब कहाँ कुछ लालः वो गुलमें नुमायाँ हो गयी,
ख़ाकमें क्या सूरतें होंगी कि पेनहाँ हो गयीं।

---

१ जानकार, २. प्रेम-प्रीतिका रहस्य, ३. हानि।

दाग़ :

क़ातिलने देखे उसमें हज़ारों परीजमाल,
दिल चाक क्या हुआ कि परीख़ाना खुल गया ।

ग़ालिबके कहनेमें वैलक्षण्य है, शोख़ी है । जमीनके नीचे न जाने कितना रूप, कितनी सूरतें प्रच्छन्न हैं । इनमेंसे कुछ ही लाला वो गुल्के [illegible] फूट निकली हैं । दाग़ मिट्टीको नहीं दिलको हसीनोंकी जगह मानते हैं । कहते हैं—क़ातिलने मेरा दिल चीर दिया तो देखा कि उसमें हज़ारों [illegible] परियाँ उपस्थित हैं । मेरा दिल क्या चाक हुआ कि परीख़ानेके द्वार खुल गये ।

ग़ालिब :

पिला दे ओकसे साक़ी जो हमसे नफ़रत है,
पियालः गर नहीं देता न दे, शराब तो दे ।

दाग़ :

कब गदाए दरे मयख़ाना[1] को आर[2] आती है,
ओकसे पी जो मयस्सर क़दहे मुल[3] न हुआ ।

ग़ालिबके यहाँ साक़ीसे नोक-झोंक चल रही है । कहते हैं कि [illegible] अगर हमसे घृणा है, अपना प्याला नहीं देना चाहता तो न दे, [illegible] क्या ? मुझे तो शराब चाहिए । [illegible]

भिखारीका तर्क

तुम्हारे [illegible] नहीं [illegible] ([illegible] अमल्य चीज है), मुझे ओकसे पिला दे ।

उँडेल दूँ। पर भिखारीके पास पात्र भी नही है। वह कहता है, फ़क़ीरको क्या शर्म, लाइए ओकसे पिला दीजिए, पात्रकी जरूरत ही क्या है ?

ग़ालिब :

सँभलने दे मुझे ऐ नाउमीदी क्या क़यामत है,
कि दामाने ख़याले यार छूटा जाय है मुझसे।

दाग़ :

बरसोंसे लग रही थी लबे बाम टकटकी,
थक-थकके गिर पड़ी निगहे इन्तज़ार आज।

गालिबमे जो शोखी है, जो अपील है वह दागमे नही है। गालिब कहते है—"अरो निराशा, कैसी ज्यादती है तेरी, जरा मुझे सँभल तो जाने दे। प्रियतमके ध्यानका आँचल मेरे हाथसे छूटा जा रहा है।" दागमे निराशा-की सीमा है। वह बरसो तक छतकी ओर टकटकी लगाये रहे है, आज प्रतीक्षाकी वह दृष्टि थककर गिर पड़ी है, अब उठनेवाली नही है।

ज़ौक़ और ग़ालिब :

जौकने केवल पद्य लिखा है,—जब गालिबने पद्य-गद्य दोनोमे सफलता प्राप्त की है। जौक कसीदःके बादशाह है; इस क्षेत्रमे वह उर्दूके खाकानी है। अच्छे गजलगो उर्दूमे अनेक हुए है पर उर्दू कसीद.गोई सौदा, इंशा और जौक़पर खत्म हो गयी है। यदि क़सीदः को ले तो गालिब और जौककी कोई तुलना नही। जहाँ तक गजलकी बात है, दोनोमे अपनी-अपनी विशेपताएँ है। भाव-चित्रण (जज्बात निगारी) मे गालिबका पल्ला जौकसे कुछ भारी पड़ता है। दूसरी ओर जबानकी सफाई; प्रसादगुण-मे जौक गालिबके ऊपर है। कोई भी बात हो, उसे घुमा-फिराकर, कुछ वैचित्र्य उत्पन्न कर, कहनेका रोग गालिबको था, जब जौक सीधे ढङ्गसे बात पसन्द करते थे।

उर्दू कसीदः का सीमित क्षेत्र

तरही गजलके कुछ शेर देखिए :—

ग़ालिब :

मिसाल यह मेरी कोशिश की है कि मुर्ग़े असीर[1],
करे क़फ़स[2] में फ़राहम[3] ख़श[4] आशियाँ[5] के लिए।

ज़ौक़ :

सबा[6] जो आई ख़सो ख़ार गुलिस्ताँ[7] के लिए,
क़फ़समें क्योंकि न फड़के दिल आशियाँ के लिए।

जमीन एक होते हुए भी ग़ालिबका शेर ऊंचा है। ज़ौक़ने जो कुछ कहा है, वह सदासे कहा जाता रहा है। उसमें कुछ नवीनता नहीं। कहते हैं— पुरवैया पुष्पोद्यानके तिनके और कांटे लिये आई है, तब पिंजड़ेमें हमारा दिल घोसलेके लिए क्यों न फड़के, क्यों न बेचैन हो (इस खारोखारको देखते ही आशियांका स्मरण आना स्वाभाविक है। ऐसा भी तो हो सकता है कि गुलिस्तांमें एक डालपर बने मेरे आशियांके ही खारोखार यह उड़ा लाई हो; मतलब वह भी उजड़ गया हो तब अपने उजड़े आशियानेके लिए मज-बूरियोंमें बँधा हुआ, क़फ़समें पड़ा हुआ मैं और मेरा दिल क्यों न तड़पे?)

ग़ालिब किसी भी स्थितिमें निराश होकर बैठनेवाले जीव नहीं हैं। वह प्रयत्नशीलतामें विश्वास रखते हैं। कहते हैं कि मेरी प्रयत्नशीलताका उदाहरण यह है कि बन्दी पक्षी क़फ़समें भी आशियांके लिए तिनके चुनता है।

ग़ालिब :

नवेदे अम्न है बेदादे दोस्तजां[1] के लिए,
रहे न तर्ज़े सितम कोई आस्मां के लिए।

ज़ौक़ :

नहीं सबात[१] बुलन्दीए इज़्ज़ोशाँ के लिए,
कि साथ औज[२] के पस्ती[३] है आस्मांके लिए !

ग़ालिब कहते है कि प्रियका अत्याचार मेरे प्राणके लिए शान्तिका निमन्त्रण है क्योकि उसने सितमका हर एक ढङ्ग मुझीपर खत्म कर दिया है और आस्माँके लिए कुछ नही छोडा है। (आस्मान मुझे क्योकर सतायेगा ? उनके जुल्म सह-सहकर मै ऐसा हो गया कि आस्मानके जुल्म-जुल्म न रहे।)

जौक नीतिकी बात कह रहे है कि शान-शौकत वा ऐश्वर्यकी उच्चता सदा नही रहती; उसमे स्थिरता नही है। आसमानमे ऊँचाई है (जैसी हमे दिखाई देती है) पर पस्ती, गिरावट, निचाई (क्षितिजमे दिखाई देती है) भी लगी हुई है। 'जोश' मल्सियानीके शब्दोमे "मिर्ज़ाके मतलअमे मानी-आफरीनी तो बहुत है मगर मजमून नेचुरल नही यानी हकीकतसे बईद है।" जौकमे स्वाभाविकता अधिक है, ग़ालिबमे वैचित्र्य है।

ग़ालिब :

फ़लक न दूर रख उससे कि एक मैं ही नहीं,
दराज़ दस्तिए[४] क़ातिलके इम्तहाँके लिए।

ज़ौक़ :

वह मोल लेते है जिस दम कोई नई तलवार,
लगाते पहिले मुझीपर हैं इम्तिहाँके लिए !

दराजदस्तीका तात्पर्य जुलमसे है पर 'दराज' शब्दसे ध्वनि यह निकलती है कि 'जुल्म दूरसे हो रहे है इसलिए ऐ आस्माँ ! तू मुझे उनसे दूर न रख,

---

१. स्थिरता, २. उत्थान, ३. पतन, शैथिल्य, ४. सितम, अत्याचार।

उनके नजदीक कर दे क्योंकि दूरके जुल्मो सितम सहनेके लिए तो और भी लोग मौजूद हैं। (उनकी निकटतामें आनेके लिए क्या तर्क है!) अर्थ-वैचित्र्य तो इसमें खूब है पर कृत्रिमता आ गयी है। जौकने अपनी बात बड़ी सरल रीतिसे कही है। कल्पनाकी सूक्ष्मतामें ग़ालिब बाजी ले गये हैं; स्वाभाविकता और बेतकल्लुफीमें जौक आगे हैं।

ग़ालिब :

यह लाश बेकफ़न 'असद' ख़िस्तःजाँकी है,
हक़ मग़फ़रत[1] करे, अजब आज़ाद मर्द था।

ज़ौक़ :

कहते हैं आज 'ज़ौक़' जहाँसे गुज़र गया,
हक़ मग़फ़रत करे अजब आज़ाद मर्द था।

कहते हैं, 'जौक'ने मरनेके चन्द मिनट पहले यह शेर कहा था।

मिर्जा यद्यपि जीवनकी तृष्णाके कवि हैं और उनके ग़ममें भी एक प्रकारका आह्लाद एवं उल्लास है पर जब ग़म आता है तो घबरा जाते हैं :—

हैराँ हूँ दिलको रोऊँ कि पीटूँ जिगरको मैं,
मक़दूर[2] हो तो साथ रखूँ नौहःगर[3] को मैं।

दिल दे तो इस मिज़ाजका परवरदिगार दे,
जो रंजकी घड़ी भी ख़ुशीसे गुज़ार दे।

किसीका एहसान और अवलम्ब न लेनेकी भावना दोनोमे प्रधान है :—

दीवार बार[1] मन्नते मज़दूरसे है ख़म[2],
ऐ खानमाँ ख़राब न एहसां उठाइए।

—ग़ालिब

न पकड़ें दामने इलियास[3] गिर्दाबे बला[4] में हम
कि बदतर डूबकर मरनेसे है जीना सहारे का।

—ज़ौक़

तसव्वुफका रङ्ग, प्रेमप्रणय-दर्शन एवं रिन्दाना शोख़ीमे ग़ालिब जौकसे बढ़े हुए है और इसीलिए उनके काव्यमे अर्थवैचित्र्य, कल्पनाकी उड़ान और कथनकी नवीनता (जद्दततराजी) है। नैतिकताका रङ्ग, ज़बानकी सफाई, बयानकी सादगी और मुहाविरेके शिल्पमे जौक ग़ालिबसे आगे है।

सौदा और ग़ालिब :

यद्यपि दोनोके काव्यमे बहुत ज्यादा समता नही पाई जाती पर दोनोकी रुझान और तबीयत एक-सी थी। दोनोमे उत्फुल्लता और उमङ्गके तत्त्व अधिक है। दोनोमे शोखी है। हाँ, ग़ालिबकी भाषामे निखार आ गया है।

अन्य कवि :

कही-कही अन्य कवियोके भावोके साथ भी ग़ालिब टकरा गये है :—

---

१. बोझ, २. टेढी, ३ एक पैग़म्बर जो (हमारे लोमशकी भाँति) सदा जीवित रहते है, समुद्रोके संरक्षक है और डूबतोको बचानेका काम करते रहते है, ४ विपत्तियोकी भँवरमे।

ग़ालिब :

सताइशगर[1] है ज़ाहिद[2] इस क़दर जिस बाग़े रिज़्वाँका[3],
वह इक गुलदस्तः है हम बेख़ुदोंके ताक़े निसियाँका ।

अमीर मीनाई :

बहारे ताज़ए दिल देख अगर शौक़े तमाशा है,
बिहिश्त[4] एक फूल मुरझाया हुआ है इस गुलिस्ताँका ।

ग़ालिब कहते हैं—"जाहिद जिस स्वर्गोद्यानकी इतनी प्रशंसा कर रहा है वह हमारे लिए केवल ऐसा पुष्प-गुच्छ है जिसे हम ताक़पर रखकर भूल गये हैं ।"

अमीर मीनाईकी बात साफ है और उसमें चुनौतीका स्वर है । कहते हैं, अगर देखनेका, तमाशेका शौक है तो दिलके नवीन—ताजा—चमन को देख । स्वर्ग तो इस (दिलके चमनके) पुष्पोद्यानका एक मुरझाया हुआ फूल मात्र है ।

ग़ालिब और फ़ारसी कवि :

रूपक भी दोनोंसे अच्छे है। तबीयत और विचारस्वातन्त्र्यकी दृष्टिसे ग़ालिब फैजीके अधिक नजदीक है। उदारताके कारण ही फैजीपर पुरानी परम्परा-के मुस्लिम धर्माचार्योंने वे जुल्म किये कि इस्लामसे उनका विश्वास ही उठ गया था। स्पष्ट कहता है :—

अगर हक़ीक़ते इस्लाम दर जहाँ ईं अस्त,
हज़ार खन्दए कुफ़्र अस्त बर मुसलमानी।

अगर दुनियामे इस्लामकी हकीकत यही है तो मुसलमानोंसे कुफ़्र सहस्र-गुण प्रकाशमान है।

उसने बार-बार प्रेमकी राहको का'बेकी राहपर तर्जीह दी है। कहता है, काबा और शिष्टाचार-शिक्षणपर क्या ध्यान दूं; तीव्र गतिसे चलने-वालोको इन बूढोकी भाँति फुर्सत कहाँ है? फिर कहता है—

कारवाने का'बः शुद मंज़िलनशीं,
रहरवाने इश्क़ रा आराम नेस्त।

काबेका कारवाँ तो मंज़िलपर बैठा हुआ है। किन्तु प्रेमके पथिकोंको विश्राम कहाँ?

ग़ालिबने भी धार्मिक कट्टरताको बार-बार चुनौती दी है, स्वर्गका मज़ाक उड़ाया है, ख़ुदाकी ओर तक सन्देह भरा इशारा किया है पर आश्चर्य है कि फैजीकी प्रशसा खुलकर नही करते। बात यह है कि फ़ैज़ीमे जो खोज है, जो गहराई है, वह ग़ालिबमे नही। फैज़ी और इकबाल दार्शनिक थे और अपने सत्यान्वेषणमे बार-बार बुद्धिकी पंगुता अनुभव करते है। फैजी तो बेचैन होकर कह उठता है—"बुद्धिके अन्धकारमे बड़ा सघर्ष, खिंचाव हो रहा है। तू अपनी कृपा वा इच्छाकी शमा जला दे।" पर ग़ालिब इसी दुनियाके जीव होनेके कारण अपनी बुद्धिपर गर्वित है। फैज़ी और ग़ालिब दोनो मुग़ल संस्कृतिकी अभिव्यक्तियाँ है पर फैज़ीमे मुग़ल शासनके उत्थान-की झलक है, वही उच्चता, जब ग़ालिबमे मिटती हुई मुग़ल हुकूमतकी

टिमटिमाहट है। फ़ारसी कवियोंमें ग़ालिब 'उर्फी'के सबसे निकट मालूम पड़ते हैं। दोनोंके कलाममें वही जोर, वही कल्पनाकी उड़ान, वही नई बात पैदा करनेकी उत्कण्ठा, वही पेंचदार, अभिव्यक्ति है। पर उर्फी तरुणावस्थामें ही परलोकगामी हुआ और गालिबकी भाँति उसे अपने शिल्पमें निखार लानेका अवसर नहीं मिला।

इसी प्रकार गालिब और इकबालमें भी बड़ा फ़र्क़ है। दोनों दो भिन्न जगत्के निवासी हैं। गालिब कवि हैं, इकबाल दर्शनवेत्ता हैं। गालिब चित्रकार हैं, उनके निकट जिन्दगीका हर पहलू सुन्दर है; इकबाल सन्देश देनेवाले हैं; उनपर एक नई दुनिया बनाने, नई दुनियाका सन्देश देनेका नशा छाया हुआ है। गालिबमें सामान्य मानवकी उमंगें, उसकी भावनाएँ, उसकी निराशाएँ हैं, इकबाल सतहके नीचे प्रवेश करनेवाले दार्शनिक हैं। दोनोंका दृष्टिकोण भिन्न है; वातावरण भिन्न है, जीवन-दर्शन भिन्न है।

व्याख्या-भाग

कुछ शेर

[१]

कहते हो "न देंगे हम दिल अगर पड़ा पाया"
दिल कहाँ कि गुम कीजे, हमने मुद्दआ पाया ।

अगर किसीकी खोई चीज किसी औरको मिल जाती है तो वह छेड़ने-के लिए कहता है कि अगर हमें मिल गयी तो हम नहीं देंगे । कभी दूसरेकी चीज लेनेकी मनमें आती है उसे छिपाकर कहते हैं कि तुम्हारी चीज हमें मिल गयी तो हम न देंगे । यही स्थिति इस शेरमें है ।

"तुम कह रहे हो कि अगर तुम्हारा दिल हमें कहीं पड़ा मिल गया तो हम न देंगे । पर वह है कहाँ ? हमारे पास तो है नहीं कि खोनेका डर हो । हाँ, तुम्हारी बातसे मैं तुम्हारा मतलब समझ गया कि तुम्हें मेरे दिलकी कामना है या तुम उसे पहिले ही पा चुके हो; वह तो तुम्हारे ही पास है । तब मुझे क्यों नाहक़ छेड़ रहे हो ?"

[२]

इश्क़से तबीयतने ज़ीस्तका मज़ा पाया
दर्दकी दवा पाई, दर्द बेदवा पाया ।

जीवनका आनन्द प्रेमसे ही है। प्रेमशून्य जीवन स्वादहीन, नीरस है। 'गालिब'ने स्वयं अन्यत्र कहा है —

रौनक़े हस्ती है इश्क़े - ख़ानः वीराँसाज़से,
अंजुमन बेशमअ है गर बर्क़ खिरमनमें नहीं।

यह एक दर्द है जो दर्द भी है, दवा भी है। इसमे एक ऐसा दर्द मिलता है जिसकी दवा अब तक नही बन पाई, पर मजा यह है कि इसी दर्दको पानेके लिए आदमी तडपता है क्योकि उस तडपमे, उस जलनमे भी एक स्वाद है।

गालिबकी जमीनपर ही मौलाना रूम और फारसीके प्रसिद्ध कवि जहूरी-ने भी शेर कहे है। मौलाना रूम कहते हैं —

मर्हबा ऐ इश्क़ खुश सौदाए मा,
ऐ तबीबे जुम्लः इल्लतहाए मा।

"वाह! ऐ प्रेम! तुम मेरे प्रिय उन्माद और सम्पूर्ण व्यथाओके वैद्य हो।" कुछ लोगोने मर्हबासे 'तुम्हारा स्वागत है' अर्थ भी किया है पर यहाँ 'मर्हबा' शब्द आनन्दातिरेकका एक उद्‌गार है। अनुभूतिकी आर्द्रता शब्दोमे उतर आई है। प्रेमी अनुभव करता है कि यह प्रेम मेरे सम्पूर्ण रोगोका वैद्य है। यह आ गया है तो सब व्यथाएँ मिट जायँगी, सम्पूर्ण रोग-कष्ट चले जायँगे। मौलाना रूम बहुत ऊँची मानस-भूमिपर खडे है जहाँ प्रेम ही सम्पूर्ण प्रश्नो एव शंकाओका समाधान है।

'जहूरी' कहता है :—

शद तबीबे मा मुहब्बत मन्नतश बरजाने मा,
मेहनते मा, राहते मा, दर्द मा, दरमाने मा।

इसमे काव्यका स्वाद ज्यादा उभरा है। वह भी कहता है कि 'मुहब्बत मेरा तबीब है और मै प्राणसे उसके प्रति कृतज्ञ हूँ। वही मेरा श्रम है,

वही विश्राम है, वही मेरा दर्द है और वही दवा है।' इनमें मेहनत, राहत, दर्द और दरमान शब्द जिस क्रमसे आये है उसमे कविका चमत्कार है। इनसे स्पष्टत. यह ध्वनि भी निकलती है कि तेरे आते ही मेरा श्रम विश्राम और दर्द दवा बन गया है।

इसमे सन्देह नही कि गालिबमे शोखी ज्यादा है पर इसमें गहराई और जहूरीमे काव्य-चमत्कार कही अधिक है। गालिब पहिले जिन्दगीको एक दर्द करार देते है, फिर कहते है कि प्रेमके बिना जीवन स्वादहीन है। दूसरे मिस्रेमे और आगे बढते है—इस स्वादहीनताकी, इस दर्दकी दवा, प्रेमके रूपमे, मिल गयी। पर दवा भी कैसी है? स्वय एक बेदवा दर्द है। इसकी अनुभूतिमे प्रेम जीवनके सम्पूर्ण प्रश्नोका हल, सम्पूर्ण कष्टोकी दवा है। शब्द ऐसे है, जैसे वह उसकी लज्जत पा रहे हो। पर शब्दके स्तरसे ऊँचा अनुभूतिका स्तर है। जहूरी सम्पूर्ण प्राणसे प्रेमके प्रति निवेदित है। वही उनका श्रम और विश्राम दोनो है बल्कि उनने श्रमको विश्राम और दर्दको दवा बनाकर द्वन्द्वको मिटा दिया है।

[२]

है कहां तमन्नाका दूसरा कदम यारब !
हमने दश्ते इम्कांको एक नक्शेपा पाया।

[४]

बूए गुल, नालए दिल, दूदे चिराग़े महफ़िल,
जो तेरी बज़्मसे निकला सो परीशाँ निकला।

इस शेरकी सजावट देखने योग्य है। फिर पहिले मिस्रेके शब्दों और पदोमे ध्वनि और सगीत तथा अनुप्रासका ऐसा संयोग है, मानो तब्लेपर कोई ठेका दे रहा हो। 'बूए गुल'से 'नालए दिल'के उच्चारणमे कुछ अधिक समय लगता है, फिर 'दूदे चिरागे महफिल'मे कुछ और ज्यादा पर इनमे ताल है और सब एक समपर समाप्त होते है।

गालिब कहते है कि तेरी सभामे जितनी भी चीजे है—गुल है (तेरे और तेरे कक्षके शृङ्गारके लिए), दिल है (तेरे प्रेमियोके जो तेरी बज्मसे आबद्ध है), दीपक या शमअ है। पर सबमे एक हलचल है, एक परीशानी है। फूलके प्राण गन्ध बनकर बिखर रहे है, दिलकी आह उड़ी जा रही है, दीपकका धुवाँ ऊपर लहराते हुए बिखर रहा है। तुम्हारी बज्मसे जो भी निकलता है परीशान निकलता है। क्या इसका कारण तुम्हारी निर्दयता है ? या यह इसलिए भी तो हो सकता है कि सबमे तुम्हारे लिए तडप है, कोई तुमसे जुदा होना नही चाहता, पर जुदा होना पडता है इसलिए तुमसे जुदा होकर जो भी निकलता है परीशान नज़र आता है।

[५]

कुछ खटकता था मेरे सीनेमें लेकिन आखिर,
जिसको दिल कहते थे सो तीरका पैकाँ निकला।

मेरे सीनेमें कुछ खटकता तो था। मै उसे अपना दिल समझ रहा था पर आखिर देखा गया तो वह तीरका पैकाँ (नोक) निकला। ऑखोके बाणसे दिल तो बिंधता ही है, वह तो एक सामान्य-सी बात है पर यहाँ बाण ही दिल बन गया है।

उर्दू गजलके अप्रतिम कवि जिगर मुरादाबादीने लिखा है—

कुछ खटकता तो है पहलूमें मेरे रह-रहकर
अब ख़ुदा जाने तेरी याद है या दिल मेरा।

मेरे पहलूमें कुछ खटकता तो जान पड़ता है। पर यह खुदा ही जानता है कि वह तेरी याद है या मेरा दिल है।

याद करना दिलका काम है। यहाँ दिलको ही याद बना दिया है।

[६]

सताइशगर है ज़ाहिद इस क़दर जिस बाग़े रिज़्वाँका,
वह इक गुलदस्तः है हम बेख़ुदोंके ताक़े निसियाँका।

गालिबने बार-बार स्वर्ग एवं स्वर्गमे प्राप्त चीजोंकी हँसी उड़ाई है। यहाँ भी कहते है कि जाहिद (परहेजगार, संयमी) जिस स्वर्गोद्यानकी इतनी प्रशंसा करता है वह मेरे जैसे बेखुदों (आत्मलीनो) के ताक़े निसियाँ (वह ताक जिसपर कुछ रखकर भूल जांय) का एक गुलदस्तः मात्र है। चूंकि नन्दन काननकी बात है इसलिए (विस्मृतिके) गुलदस्तेसे उसकी उपमा दी है। फिर गुलदस्ता प्राय. ताक़मे ही सजाया जाता है।

मतलब जिस स्वर्गोद्यानकी वह इतनी प्रशंसा करता है और हमे प्रलोभन देकर उधर आकर्षित करना चाहता है हमारे—जैसे बेखुद लोग उसकी पर्वा भी नही करते, उसे रखकर भूल जाते है। स्वर्गकी तुच्छता प्रकट की गयी है।

[७]

ख़मोशीमें निहाँ ख़ूँगश्तः लाखों आरज़ूएँ हैं,
चिराग़े मुर्दः हूँ मैं बेज़बाँ गोरे ग़रीबाँका।

चिराग़े मुर्दः = बुझा हुआ या मौन दीपक। जिस प्रकार परदेसियों और अभागोंकी क़ब्रोंपर बुझे हुए दीपक उनकी लाखों कामनाओंको अपने

कलेजेमे छिपाये होते है वैसे ही मेरे सीनमे भी रक्तरंजित लाखों कामनाएँ निहित है। दीपककी ज्योतिकी प्राय. जबानसे उपमा दी जाती है इसलिए 'चिरागे मुर्द' (मृत या बुझा दीपक) को बेजबान कहना बहुत सार्थक है।

[८]

वक़द्रे ज़र्फ़ है साक़ी! खुमारे तश्नःकामी भी
जो तू दरियाए मय है, तो मैं ख़मियाजः हूँ साहिलका।

खुमार = नशेका उतार। तश्न कामी = प्यासकी कामना, प्यास। खमियाज = अँगडाई। साहिल = तट जो ऊँचा-नीचा (अँगडाई—जैसा) होता है।

ऐ साकी! प्यासकी कामना भी अपने-अपने हौसलेके अनुसार होती है। कुछ लोग एक चुक्कडकी, थोडी-सी पीनेकी, तमन्ना रखते है किन्तु मेरा हाल दूसरा है। अगर तू मयका सागर है तो मै उसके तटकी अँगडाई हूँ। समस्त दरियाको भी अपने आलिंगन (आगोश) मे लेकर तटकी प्यास नही बुझती, वह नशेके उतार (खुमार) की अँगडाई लेता रहता है। मेरा भी वही हाल है। यहाँ भी गालिबकी कामना और तृष्णाका अन्त नही है।

[९]

मुँह न खुलने पर है वह आलम कि देखा ही नहीं,
जुल्फ़से बढ़कर नक़ाब उस शोख़के मुँहपर खुला।

गोरे-गोरे मुखपर काली-काली छिटकी हुई अलके गोराई और सौन्दर्यमे चार चाँद लगा देती है। ग़ालिब कहते है कि उस शोख़के मुँहपर जो घूंघट है वह अलकोसे भी अधिक उसके सौन्दर्यको बढा रहा है। मुँह न खुलनेपर यह आलम है कि मैने (अन्यत्र) नही देखा। शेरका सौन्दर्य 'देखा ही नही' और 'मुँह न खुलनेमे' है। मुँह नही खुला है तब कोई देखेगा

क्या। पर इस न देखनेमे ही प्रलय है। न देखकर भी ऐसा देखा है कि वैसा कही नही देखा।

[१०]

जल्वः अज़ बस कि तक़ाज़ाए निगह करता है,
जौहरे आईनः भी चाहे है मिज़गाँ होना।

उनकी छवि देखनेका आग्रह करती है। कहती है—मुझे देखो। दर्पण स्वयं नयन बन गया है और उसका जौहर पलकोंके रूपमे बदल जानेको बेचैन है। रूपका कमाल है कि जिस दर्पणमे वह अपनेको देखते हैं वह स्वयं उनको एकटक देख रहा है।

[११]

तेरे वादेपर जिये हम, तो यह जान, झूठ जाना,
कि ख़ुशीसे मर न जाते, अगर एतबार होता।

उर्दू काव्यमे माशूक़के वादेपर न जाने कितने शेर लिखे गये होंगे पर मिर्ज़ाने अपने कहनेके ढंगसे उसमे एक जद्दत पैदा कर दी है। और लोग उनके वादे (आश्वासन) के विश्वासपर जीते हैं परन्तु ग़ालिब इसलिए जीते हैं कि उनके वादेको झूठा समझते हैं।

कहते हैं—"तेरे वादेपर जो हम जीते रहे तो समझ ले कि उसे झूठा ही समझता था। अगर तेरे वादेका विश्वास होता तो मारे ख़ुशीके मर न जाते।" माशूक़से [illegible] कैसा तीखा [illegible] है।

[१२]

कोई मेरे दिलसे पूछे तेरे तीरे नीमकशको,
यह ख़लिश कहाँसे होती जो जिगरके पार होता;

[illegible]

[illegible]

वाहर चले जाते और यह जो स्थायी वेदना, रह-रहकर जो करकराहट, टीस होती है उसका मजा क्योकर मिलता ?

कहते है—तेरे आधे खिचे तीरका स्वाद कोई मेरे दिलसे पूछे (अर्थात् उसे मेरा दिल ही जानता है)। अगर वह जिगरके पार हो गया होता तो यह टीस कैसे होती !

[१३]

दिले हर क़तरः है साजे अनलबह्र,
हम उसके हैं हमारा पूछना क्या ?

अनलवह्र—मै समुद्र हूँ।

हर वूँदका दिल एक साज (वाद्य) है जिससे निरन्तर ध्वनि उठ रही है कि मै समुद्र हूँ। हम तो उसके है ही, हमारा क्या पूछना !

कतर. और दरियाके द्वारा प्रकृति और व्रह्म या उपासक उपास्यकी एकता न जाने कवसे काव्यमे प्रतिपादित होती चली आ रही है। उसी वातको नये ढंगसे कहा है। फारसी कवि 'गनीमत' ने भी कहा है—

ज़ मुहरश सीनःहा जौलाँ गहे वर्क़,
दिले हर ज़र्रः दर जोशे अनलशर्क।

उसकी मुहव्वतने सीनेको विजलीकी दौडका मैदान वना दिया है। विजलीकी तड़प सिद्ध है। उसका सीनेपर गिरना ही क्या कम है ? यहाँ तो सीना ही विजलीका "रेसिग ग्राउण्ड" है। 'असर' लखनवीने ठीक ही लिखा है कि ग़नीमतका शेर बहुत ऊँचा है। विजलीकी दौड़ है, सीनेका मैदान है जिसे (प्रेम) की विजली रौंद रही है। उधर प्रत्येक कणका हृदय नृत्य करता हुआ कहता है—मै सूर्य हूँ।

[१४]

बंदगीमें भी वह आज़ादो, ख़ुदबीं है कि हम,
उलटे फिर आये, दरे काबः अगर वा न हुआ ।

हम बंदगीमें, उपासनामें भी इतने स्वतन्त्र और अभिमानी हैं कि अगर क़ाबाका द्वार भी खुला नहीं मिलता तो प्रतीक्षा नहीं करते, लौट आते हैं। दरवाजा खटखटाना शानके खिलाफ समझते हैं।

गालिबको अपने सम्मानका बड़ा ख्याल रहता था। वह अपनेको रीति-परम्परासे ऊपर समझते थे। इसलिए भाव उनके अनुकूल ही है। फ़ारसीमें भी, उन्होंने, एक जगह कहा है—

तश्नःलब बर साहिले दरिया ज़ग़ैरत जाँ दहम,
गर ब मौज उफ़्तद गुमाने चीने पेशानी मरा ।

[१५]

कोई वीरानी-सी वीरानी है,
दश्तको देखके घर याद आया ।

वैसे सरल है पर इसमें दो प्रकारके अर्थ छिपे हैं। यह वीरानी अप्रतिम है। जंगलको देखकर, उसकी वीरानीको देखकर घरकी याद आ गयी। दूसरा अर्थ यह है कि जंगलको देखा तो वीरान घर याद आ गया।

[१६]

बिजली एक कौंद गयी आँखोंके आगे, तो क्या,
बात करते कि मैं लब-तश्नए तक़रीर भी था ।

[illegible] और [illegible] निपुण हैं। [illegible] हैं—[illegible]

[१७]

मशहदे आशिक़से कोसों तक जो उगती है हिना,
किस क़दर यारब ! हलाके हसरते पाबोस था ।

मशहदे आशिक = प्रेमीकी बलिवेदी । हलाके हसरते पाबोस = पाँव चूमनेकी कामनाका मारा हुआ ।

जिस जगह प्रेमीका रक्त बहा है वहाँ कोसो तक मेहदी उगती है । क्यो ? इसलिए कि जिन्दगीमे तो उनका चरण चूमनेकी कामना पूरी न हुई और दिलकी हसरत दिलमे ही रह गयी । अब खून मिट्टीमे मिलकर उनका पाँव चूमनेके लिए मेहदीकी शक्लमे उगा है । (उसमे भी वही खूनका रग छिपा है) जब वह मेहदी उनके चरणोमे लगेगी तो (चरण चूमनेकी) उसकी कामना पूरी हो जायगी ।

[१८]

लबे खुश्क दर तश्नगी मुर्दगॉका
ज़ियारतकदः हूँ दिल आज़ुर्दगॉका
हमः नाउमीदी, हमः बदगुमानी
मैं दिल हूँ, फ़रेबे वफ़ा खुर्दगॉका ।

जियारतकदः = तीर्थस्थल, आजर्द = खिन्न, दु:खी, हम = समग्र, साकार ।

कैसी करुणा है । कहते है—मै उनलोगोका शुष्क अधर हूँ जो (•प्रेमकी कामनाकी) पिपासामे मर गये है । मै सताये हुए दुखित लोगोका तीर्थस्थल हूँ । मै निराशा एवं शकाकी साकार प्रतिमा, वफा (निष्ठा) का फरेब खाये हुए लोगोका हृदय हूँ ।

[१९]

आईनः देख, अपना-सा मुँह लेके रह गये,
साहबको, दिल न देने प, कितना ग़ुरूर था ।

शेरमे क्या शोखी पैदा की है। कहते हैं, उन्हे दावा था कि मैं किसी-को चाहता नही, किसीको दिल नही देता, किसीपर आशिक नहीं हो सकता। पर दर्पणमे अपनेको देखा तो अपना-सा मुँह लेके रह गये— लज्जित हो गये। अपनी छायाका सौन्दर्य देख यह भी भूल गये कि यह मेरा प्रतिबिम्ब मात्र है। उसे दूसरा व्यक्ति समझ लिया और उसे दिल दे बैठे।

ध्वनि यह है कि तुम्हारा सौन्दर्य ही ऐसा है कि जो देखता है तुम्हें दिल दे देता है। तुम्हारी समझमे यह बात नही आती थी पर जब तुम अपने अक्सपर मुग्ध हो गये तब तुम्हारा गरूर टूटा। (जब तुम अपनी छायापर इतने मुग्ध हो और उसे दिल दे दिया तब मैं तुम्हें दिल दे बैठा, तो क्या अपराध किया ?)

[२०]

शायद कि मर गया, तेरे रुख़सार देखकर,
पैमानः रात माहका लब्रेज़े नूर था।

पैमानः लब्रेज होना या प्याला भरवाना एक मुहाविरा है जिसका अर्थ होता है अब विनाशका समय आ गया है। प्रियतमाके कपोलों-का वर्णन करते हुए कहते हैं कि रात चाँदका पैमाना प्रकाशसे भर गया था (पूर्ण चन्द्रकी ओर संकेत है) पर कदाचित् उसने तुम्हारे कपोलोंको देख लिया और ग्लानिसे मर गया (क्योंकि तुम्हारे कपोलोंकी छवि और ज्योतिके सामने उसकी ज्योति निष्प्रभ थी।)

[२१]

जाते हुए कहते हो, "क़यामत को मिलेंगे,
क्या ख़ूब ! क़यामत का है गोया कोई दिन और।

प्रियतमका वियोग ही प्रसंग है। [illegible]
[illegible] है। [illegible] और कहते हैं कि अब [illegible] ([illegible])

के दिन भेट होगी। क्या खूब, अब कयामतका दिन और क्या होगा? (तुम्हारी जुदाई ही तो कयामतका दिन है!)

[२२]

रुखे निगारसे, है सोजे जाविदानिए शमअ,
हुई है आतशे गुल आबे ज़िन्दगानिए शमअ।

निगार = प्रियतमा। जाविदानी = अमरत्व। आबेजिन्दगानी = आबे-हयात, अमृत। कहते है:—प्रियतमाके मुख (के सौन्दर्य) से ही शमअको यह जलनकी अमरता प्राप्त हुई है (उनके मुखको देखकर शमअ ईर्ष्यासे जल रही है।) उस फूलके (सौन्दर्य) की आग शमअके लिए अमृत बनी हुई है।

[२३-२४]

आशक़ी सब्रतलब और तमन्ना बेताब
दिलका क्या रंग करूँ खूने जिगर होने तक।
हमने माना, कि तग़ाफ़ुल न करोगे, लेकिन
खाक हो जायँगे हम, तुमको खबर होने तक।

प्रेममे हृदयकी क्या दशा होती है। उसमे धैर्यकी आवश्यकता होती है, वह लम्बी साधना है, जिसमे भावनाओपर नियन्त्रण रखना पड़ता है। तूफान उठता है पर उसे बाँधकर रखना पड़ता है। इधर प्रेममे धीरज और संयमकी जरूरत है, उधर कामनाकी बेचैनी गजब ढाती है। प्रेमी इन दो चक्कियोके बीच पिसता है। उसे नही सूझता कि वह क्या करे। उधर उसकी बेचैनीकी, उसकी वेदनाकी उन्हे खबर भी नही। खबर लगेगी तब सम्भव है वह ध्यान दे, कृपा करे परन्तु जब तक उन्हे खबर होगी, बेचारा प्रमी मिट जायगा।

कहते है:—प्रेम धीरज चाहता है और इधर कामना बेचैन है।

जिगरका खून हो जाने तक, सफल हो जाने तक, दिलको किस तरह सँभालकर रखूँ? मैं मानता हूँ तुम गफलत न करोगे, जल्द लौट आओगे पर तुम्हारे विरहमे हमारी क्या दशा होगी? जब तक तुम तक मेरी दुरवस्थाका समाचार पहुँच पायेगा, हम मिट चुके होंगे।

[२५]

परतवे ख़ुर से, है शबनम को, फ़नाकी ता'लीम
मैं भी हूँ, एक इनाअतकी नज़र होने तक।

परतवे खुर = सूर्य-प्रकाश। जिस तरह सूर्यकी रोशनी शबनमको विनाशकी शिक्षा देती है—उसे पी जाती है उसी तरह तुम्हारी कृपा-दृष्टि होने तक ही मेरा अस्तित्व है। तुम्हारी कृपा हुई और मेरा निजत्व, विशिष्ट व्यक्तित्व गया। कृपा-दृष्टिको सूर्यकी रोशनी और अपने अस्तित्वको शबनम कहकर कविने एक दार्शनिक तथ्यको प्रकट किया है। जब तक प्रियतमसे मिलन नहीं हुआ, जब तक यह विरह है, विभेद है तभी तक जीवन है, उसका अस्तित्व है। उनकी कृपा होनेपर, मिलन होनेपर मैं कहाँ रह जाऊँगा।

[२६]

तेरे ही जल्वःका है यह धोका कि आज तक
बे इख़्तियार दौड़े है गुल दर-क़फ़ाए गुल।

फूल खिलता है तो कलियाँ समझती हैं कि तू ही फूलके परदेमें शोभाय-मान हो रहा है इसलिए तेरा सौन्दर्य, तेरी शोभा देखनेके लिए वे भी फूल बन-बनकर दौड़ी आ रही हैं।

[२७]

आज हम अपनी परेशानिए ख़ातिर उनसे
कहने जाते तो हैं, पर देखिए क्या कहते हैं।

प्रेमकी दुनिया ही दूसरी है। आदमी छटपटाता है; पागल होता है। उधर वह है कि जैसे कुछ हुआ नही। यह उदासीनता गज़ब ढाती है। कभी दिलमे आता है कि उनसे मिलूँ और कुछ अपनी व्यथा, अपना दर्द उनसे कहूँ, शायद वह पसीजे। पर जब सामने होते है, बात नही निकलती। इसी भावको इस शेरमे व्यक्त किया गया है। कहते है—आज हम अपने दिलकी परीशानी उनसे कहने जा रहे है, पर देखिए कुछ कह पाते है या नही ?

कुछ लोग यह अर्थ भी लगाते है कि आज हम अपनी हृदय-व्यथा उनसे कहने जा रहे है, देखिए (वह) क्या कहते है। पर यह अर्थ नहीं, अनर्थ है और जबर्दस्ती है।

इसीसे मिलती-जुलती जमीनपर हसरत मोहानीने कहा है—

कुछ समझमें नहीं आता कि यह क्या है 'हसरत'
उनसे मिलकर भी न इज़हारे तमन्ना करना।

[२८]

हो गये है जमअ, अज्ज़ाए निगाहे आफ़ताब,
ज़र्रे उसके घरकी दीवारोंके रौज़नमें नहीं।

दीवारोमे जो छिद्र या रोगनदान होते है उनपर जब सूर्यकी किरणे पड़ती है तो अगणित कण आते या उडते हुए दिखाई देते है। इसी तथ्यको लेकर क्या शेर कहा है। दीवारोके छिद्रोमे जो बेशुमार ज़र्रे चमकते दिखाई दे रहे है वे ज़र्रे नही है बल्कि सूर्यकी मुग्ध दृष्टिके कण है जो उसे देखने और झाँकनेके लिए एकत्र हो गये है। (सूर्य भी तेरी छवि देखनेके लिए बेचैन है और किरणरूपी आँखोसे तुम्हारी ओर ताक-झाँक कर रहा है।)

[२९]

तमाशा कि ऐ महवे आईनःदारी
तुझे किस तमन्नासे हम देखते हैं ।

सरल शेर है पर दूसरा मिस्रा जोरदार है । [illegible] देखनेमें तल्लीन ! ज़रा इधर भी तो देख कि हम किस तमन्नासे [illegible] देख रहे हैं !

[३०]

ता फिर न इन्तज़ारमें, नींद आये उम्र भर,
आनेका अहद कर गये, आये जो ख़्वाबमें ।

प्रियतमकी छेड़ और शोखी देखिए । ऐसा प्रतीक्षा [illegible] गया है । यह सोना भी उनको गवारा नहीं । [illegible] आये भी तो फिर आनेका वादा करके चले गये [illegible] प्रतीक्षामें उम्रभर नींद न आये । (क्योंकि [illegible] कर गये हैं इसलिए उम्रभर प्रतीक्षा करनी पड़ेगी ।)

प्रतीक्षाकी लम्बी घड़ियाँ, नींद न आना, [illegible] नींदमें एकत्र हो गये हैं ।

[३१]

हैं तेवरी चढ़ी हुई, अन्दर निक़ाबके,
है इक शिकन पड़ी हुई, [illegible] ।

उनके बिगड़नेका क्या चित्र हैं। आगे और कहते है—

[३२]

लाखों लगाव, एक चुराना निगाहका,
लाखों बनाव, एक बिगड़ना इताबमें।

लगाव = लगावट, मुहब्बत। इताव = क्रोध।

बात मामूली है, उनकी लाखो लगावटे, प्रेमके हाव-भाव एक ओर और निगाहका चुराना एक ओर। लाखो बनाव-शृंगार एक तरफ और गुस्सेमे बिगडना एक तरफ। मा'शूककी लगावट प्रेमीके लिए बड़ी चीज है पर उसका आँख चुराना उन लगावटोसे कही मोहक होता है। इसी प्रकार बनाव-शृंगारसे उसका सौन्दर्य अवश्य बढ़ जाता है पर गुस्सेमे बिगड़नेपर उसकी शोभाका क्या पूछना ?*

जिसने प्रेम किया है और प्रेमकी आँखोसे प्रियतमाका आँख चुराना और चिढना देखा है वही इस शेरके सौन्दर्यको पूर्णतः हृदयंगम कर सकता है। मौलाना हालीने लिखा है—"यह शेर सहल है। अगर अल्फाजकी तरफ देखिए तो ताज्जुब होता है कि क्यो कर ऐसे दो हमपल्ल. मिस्त्रे वहम पहुँच गये जिसमे हुस्ने तर्सीअका पूरा-पूरा हक अदा किया गया है और अगर मा'नीपर नजर कीजिए तो हर मिस्त्रअमे एक ऐसा मुआमिल. बाँधा गया है जो फिलवाकअ आशिक व मा'शूकके दरमियान हमेश गुज़रता रहता है। मा'शूककी लगावट आशिकके लिए बहुत बडी चीज़ है मगर उसका आँख चुराना जो लगावटकी जिद है वह आशिककी नजरमे लगावटसे बहुत ज्याद. दिलफरेब दिलावेज होता है।

---

* किसीका शेर है—

उनको आता है प्यारपर गुस्सः,
हमको गुस्स' प प्यार आता है।

[३५]

है ग़ैब ग़ैब जिसको समझते हैं हम शुहूद,
है ख्वाबमें हनोज़, जो जागे हैं ख़्वाबमें ।

शुहूद वह अवस्था होती है जब साधकको सब वस्तुओंमे ईश्वर ही ईश्वर दिखाई पडता है । गैब गैबका मतलब गैबुलगैब या परोक्षका परोक्ष है । कहते है जिसे हम सर्वत्र उपस्थित देखते है वह भी अत्यन्त परोक्ष ही है । जैसे स्वप्नमे जो जागरण होता है वह जागरणका अनुभव होते हुए भी स्वप्न ही है । हम सपनेमे ही जगते है, कुछ देखते है परन्तु सारी कार्रवाई सपनेमे ही होती है ।

[३६]

वह आये घरमें हमारे, खुदाकी क़ुदरत है,
कभी हम उनको, कभी अपने घरको देखते है ।

मशहूर शेर है और प्राय किसी दुर्लभ आगमनपर पढा जाता है । कभी उम्मीद नही थी कि वह हमारे घर आयेगे । निराशा चरम सीमापर पहुँच गयी हे । हम चुप हो बैठे है । एकाएक वह आये । कैसे यह सम्भव हुआ ? निश्चय ही यह प्रभुका चमत्कार है । आश्चर्यसे कभी हम उनको, कभी अपने घरको देखते है (जैसे अब भी यह अविश्वसनीय घटना समझमे नही आ रही है ।) आश्चर्यका अनुपम चित्र है ।

[३७]

रंजसे खूगर हुआ इंसॉ, तो मिट जाता है रंज,
मुश्किलें इतनी पड़ी मुझपर, कि आसाँ हो गयीं ।

जब आदमी दु ख-शोकका अभ्यस्त हो जाता है तो दु ख स्वयं मिट जाता है । मुझपर इतनी कठिनाइयॉ आई है कि सहन करते-करते वे कठिनाइयाँ कठिनाइयाँ नही रह गयी है—सरल हो गयी है ।

[३८]

दिल ही तो है, न संगोख़िश्त दर्दसे भर न आये क्यों ?
रोयेंगे हम हज़ार बार, कोई हमें सताये क्यों ?

वह ज़ुल्म भी करते है और रोने भी नही देना चाहते। प्रेमी सहन करता है पर जब सहन शक्तिका अन्त हो जाता है तब कहता है—आखिर दिल ही तो है, कोई ईंट-पत्थर नही है, फिर दर्दसे क्यो भर न आये ? हम हजार बार रोयेगे। कोई हमे क्यो सताता है ?

यहाँ 'कोई' शब्द काव्यकी जान है।

[३९]

जब वह जमाले दिल फ़रोज, सूरते मेह्र नीमरोज़,
आप ही हो नज़्ज़ारः सोज़, पर्देमें मुँह छिपाये क्यों ?

मेह्र नीमरोज = मध्याह्नका सूर्य जिसे तीव्र प्रकाशके कारण नहीं देखा जा सकता। चमक इतनी होती है कि आँख नहीं ठहरती। कहते है—जब वह दिलको मुग्ध और प्रकाशित न करनेवाला सौन्दर्य मध्याह्नके सूर्यकी तरह दृष्टिको जला देता है तो फिर उसे पर्देमें मुँह छिपानेकी क्या जरूरत है ? क्योंकि उसके मुखको ओर तो कोई देख पाता नहीं है।

[४०]

है आदमी बजाए ख़ुद, एक महशरे ख़याल,
हम अंजुमन समझते हैं, ख़िल्वत ही क्यों न हो ?

गालिब कहते है कि आदमी स्वयं अपनेमे कल्पना एवं विचारका प्रलय लिये हुए है (जैसे महशरमे मुर्दे जी उठते है वैसे ही मनमे नाना प्रकारके विचार उठते रहते है) इसलिए एकान्तमे रहते हुए भी मानो हम अजुमनमे, भीडमे, सभामे रहते है।

[४१]

शबको किसीके ख़्वाबमें आया न हो कहीं,
दुखते है आज उस वुते नाज़ुकबदनके पाँव।

सदासे प्रेयसीका तन्वगी—नाजुक—होना काव्यका एक विपय रहा है। सदासे कवि इस विपयपर उक्तियाँ कहते आये है। हिन्दी कवि विहारीने कहा है.—

भूषन-भार सँभारिहै, क्यों यह तन सुकुमार।
सूधो पाँव न धरि परत, शोभा ही के भार॥

यह सुकुमार तन आभूपणोका वोझ कैसे सँभाल सकेगा, जव शोभाके बोझसे ही तुम्हारे पाँव सीधे नही पडते, डगमगाते है।

गालिवकी नायिका इस सीमा तक नही पहुँच पाई है पर उसकी नाजुकी भी गजवकी है। कहते है, आज उस तन्वंगी, उस नाजुकवदनके पाँव दुख रहे है। कही वह किसीके स्वप्नमे न आई हो। स्वप्नमे आनेसे भी पाँव दुखनेकी कल्पना विल्कुल नई है।

[४२]

यह कह सकते हो "हम दिलमें नहीं है ?" पर यह बतलाओ,
कि जब दिल में तुम्हीं तुम हो तो आँखों से निहाँ क्यों हो ?

तुम यह तो कह नही सकते कि मेरे दिलमे तुम नही हो। वह तो तुम जानते हो। पर यह वताओ कि जव दिलमे तुम्ही तुम भरे हुए हो तो आँखोसे क्यो छिपे रहते हो, दर्शन क्यो नही देते। यह क्या ढव है कि दिलमें तो घर कर लेना और आँखोसे दूर रहना !

[४३]

चश्मे-ख़ूबाँ ख़ामुशीमें भी नवा पर्दाज़ है,
सुर्मः तू कहवे कि दूदे शोलए आवाज़ है।

चश्मे खूबाँ = रूपसियोके नयन। खामुशी = मौन। नवापर्दाज = स्वर-साधक, गानेवाला। दूदे शोलए आवाज = ध्वनि-ज्वालाका धूम्र।

आँखोंको नयन नही होते ('नयन बिनु बानी'—तुलसीदास)' पर अपने मौनमे भी उनका बोलना गजबका होता है। उनकी वाणी दिलमें सीधे उतर जाती है। फ़ारसीमे तो, इसीलिए, 'चश्मे सुखनगो' (बात करनेवाली आँखे) 'कहते है' जिसका उर्दूमे भी प्रयोग होता रहा है, जैसे—

क्या चश्मे सुख़नगो ने कहा तूने सुना भी,
नज़रों का निशानः कहीं होता है खता भी।

गालिब कहते हैं रूपसियोके नयन अपने मौनमे भी बोल-सा रहे हैं। उनकी आँखोमे सुर्मा नही है बल्कि उसी ध्वनिकी ज्वालाका धुआँ है।

कहा जाता है कि यदि कोई व्यक्ति सुर्मा खा ले तो उसकी आवाज सदाके लिए बैठ जाती है और वह बात नही कर सकता। पर मिर्जा कहते है कि मा'शूकोका सुर्मा वह सुर्मा नही, वह ध्वनिकी ज्वालाके धुएँसे बनाया गया है इसलिए इनसे नयनोकी ज्योति ही नही बढ़ती, उनकी वाक्शक्ति भी बढ़ जाती है। यहा मा'शूकको समझ, उसकी वाणीको ज्वाला और ज्वालाके धुएँको ऐसा सुर्मा कहा गया है जो और सुर्मोसे भिन्न दृष्टिको वचन-चातुरी प्रदान करता है।

[४४]

आँख की तस्वीर सरनामे प खींची है, कि ता,
तुझ प खुल जावे, कि इसको हसरते दीदार है।

कैसे लगेगा ? इसलिए लिफाफेके ऊपर ही आँखका चित्र बना दिया है ताकि बिना पढ़े भी उन्हे मालूम हो जाय कि इसको मेरे दर्शनकी लालसा है। यहाँ 'खुल जावे' क्रिया बहुत उपयुक्त है जिसमे 'पता लग जाय' का अर्थ भी छिपा है और चित्रकी आँखे खुली होनेकी ध्वनि भी है।

'जौक़' ने भी कहा है—

यह चाहता है शौक़ कि क़ासिद बजाय मुह्र,
आँख अपनी हो लिफ़ाफ़ए खतपर लगी हुई।

[४५]

नज्ज़ार:ने भी काम किया वाँ निक़ाबका,
मस्तीसे हर निगह तेरे रुख पै बिखर गयी।

मेरी निगाह तेरे मुख तक पहुँच कर ऐसी बदमस्त हुई कि वह बिखर गयी और बिखर जानेके कारण तुझे देख भी न सकी। मतलब दृष्टि ही तुम्हारे सौन्दर्य-दर्शनमे पर्देका काम कर रही है।

दृष्टि दर्शनमे बाधक है, इस बातको गालिबने अनेक प्रकारसे कहा है। देखिए—

नज्ज़ार: क्या हरीफ हो उस बर्क़े हुस्नका,
जोशे बहार जल्वेको जिसके निकाब है।

(दृष्टिमे यह शक्ति नही कि उसकी सौन्दर्य रूपी उस बिजलीका सामना कर सके जिसकी छविके लिए स्वयं वसन्तकी उत्कण्ठा-उत्सुकता घूँघट बन गयी है। बहारकी रगीनीका जोश निकाबका काम कर रहा है या उसके जल्वेमे बहारका वह जोश है कि उसने स्वयं छविको छिपा लिया है।)

यह अर्थ भी निकलता है कि दृष्टि सदैव निकाबपर, उस अन्त:-सौन्दर्यके आवरणपर पड़ती है—यानी दृष्टि केवल शरीर तक पहुँचेगी,

जगत्के सौन्दर्यमे फँसकर रह जायगी। इस सौन्दर्यके पीछे जो परम प्रियतमकी विद्युज्ज्योति है वह छिप गयी है।

एक दूसरी जगह कहते है—

देखना क़िस्मत कि आप अपने प रश्क आ जाये है,
मैं उसे देखूँ भला कब मुझसे देखा जाये है।

दर्शनका अवसर आया है। पर इस सौभाग्यपर अपनेसे ही ऐसी ईर्ष्या होती है कि उन्हे देख नही पाता हूँ। क्या किस्मत है।

अन्यत्र कहा है—

तकल्लुफ़ बर तरफ़ नज़्ज़ारगीमें भी सही लेकिन,
वह देखा जाय, कब यह ज़ुल्म देखा जाये है मुझसे।

बहुतसे लोग उन्हे देख रहे है, इसका रश्क इतना है कि यह (दूसरे भी उन्हे देखें) जुल्म मुझसे नही देखा जाता, इस रश्कमे उन्हे भी नही देख पाता।

[४६]

हम वहाँ है जहाँसे हमको भी,
कुछ हमारी ख़बर नहीं आती।

बेख़ुदीमे ऐसे स्थानपर पहुँच गये है कि अपनी भी कोई ख़बर नही रह गयी है।

[४७]

ज़ुल्मतकदः में मेरे शबे ग़मका जोश है,
इक शमअ है दलीले सहर, सो ख़मोश है।

[४८]

काँटोकी ज़ुबाँ सूख गयी प्याससे, यारब !
इक आबल: पा वादिए पुरख़ारमें आवे ।

प्रेमकी घाटीमें काँटोकी जिह्वा प्याससे सूख रही है । ऐ ख़ुदा ! (इस काँटोकी घाटीमे) कोई ऐसा निकल आवे जिसके पाँवमें चलते-चलते छाले पड गये है (जिससे छालोंके पानीसे काँटोंकी प्यास बुझ जाय ।)

[४९]

उनके देखेसे जो आ जाती है मुँहपर रौनक़,
वह समझते है कि बीमारका हाल अच्छा है ।

जब तक मा'शूक प्रेमीकी दुर्दशा और विरह-विदग्धताको न देखे, उसे कैसे ज्ञान हो सकता है कि वह मुझे कितना चाहता है और इस चाहमें उसपर क्या गुज़र रही है । पर कठिनाई यह है कि जब माशूक नही होता, जब विरह-काल आता है तब तो वेदनासे प्राण निकलते होते है किन्तु जब उसका दर्शन होता है तो उसके कारण प्रसन्नतासे मुँहपर एक रौनक, एक शोभा खिल उठती है । वह आये तो बीमारको देखने पर देखते यह है कि इसका हाल तो अच्छा है, ख़ामख़ा बीमारीका बहाना किये पड़ा है । ऐसी हालतमे वह क्या करुणा मुझपर करेंगे ?

[५०]

हमको मालूम है जन्नतकी हक़ीक़त लेकिन,
दिलके ख़ुश रखनेको ग़ालिब य' ख़याल अच्छा है ।

हम स्वर्गकी वास्तविकता जानते है कि किस प्रकार सब्ज बाग दिखाया गया है । हाँ, इतना लाभ है कि इसकी कल्पनासे दिल बहला रहता है, उसे एक प्रकारकी प्रसन्नता होती है ।

[५१]

रगोंमें दौड़ने फिरनेके हम नहीं क़ायल,
जब आँख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है ?

क्या उम्दा शेर है—दर्द और सोजसे भरा हुआ। अर्थ स्पष्ट है।

[५२]

इश्क़पर ज़ोर नहीं, है यह वह आतश ग़ालिब,
कि लगाये न लगे और बुझाये न बने।

इश्कपर जोर नहीं चलता। यह वह आग है जो न लगानेसे लगती है, न लग जानेपर बुझाये बुझती है। मतलब प्रेम न अपने चाहनेसे पैदा होता है, न अपनी इच्छासे छोड़ा ही जा सकता है।

[५३]

करे है क़त्ल लगावटमें तेरा रो देना,
तेरी तरह कोई तेग़े निगहको आब तो दे।

लगावटमें, मुहब्बतमें तुम्हारा रो देना क़त्ल कर देना है। इस तरह आँसूसे निगाहकी कटारीपर पानी देना उसे आबदार बनाना कोई तुमसे सीखे।

[५४]

वाय ! वाँ भी शोरे महशरने न दम लेने दिया,
ले गया था गोरमें ज़ौक़े तन आसानी मुझे।

आरामतलबीके स्वाद और उत्कण्ठा मुझे कब्रमें ले गयी थी। सोचा था, वहाँ तो आरामसे सोयेंगे, दुनियाकी झिकझिकों और झगड़ोंसे निजात मिल जायगी मगर अफ़सोस कि क़यामतके शोरने वहाँ भी मुझे दम न मारने दिया, विश्राम न लेने दिया।

इस जमीनपर 'जौक' का मशहूर शेर याद आता है—

अब तो घबराके यह कहते हैं कि मर जायँगे,
मरके भी चैन न पाया तो किधर जायँगे ?

[५५]

खुदा या ! जज़्बए दिलकी मगर तासीर उलटी है
कि जितना खींचता हूँ और खिंचता जाये है मुझसे ।

कहते है, ऐ खुदा ! मेरे हृदयके भावोद्वेगका शायद उलटा प्रभाव होता है क्योकि मै उसे जितना ही अपनी ओर खीचता हूँ, उतना ही वह मुझसे खिचता जाता है, खफा होता जाता है। मुहाविरेका प्रयोग देखने योग्य है। खूबी यह है कि इसमे आश्चर्य और निवेदन दोनो है ।

[५६]

उधर वह बदगुमानी है, इधर यह नातवानी है,
न पूछा जाये है उससे, न बोला जाये है मुझसे ।

वह तो मेरे बारेमे बदगुमाँ है, समझते है कि मेरा प्रेम झूठा है इसलिए मेरा हाल भी नही पूछते । इधर मै इतना नातवाँ, इतना क्षीण और दुर्बल हो चुका हूँ कि मुझसे बोला नही जाता, अपना हाल कहा नही जाता । अजब मुश्किल है ।

[५७]

सँभलने दे, मुझे ऐ नाउमीदी, क्या क़यामत है ,
कि दामाने ख़याले यार छूटा जाये है मुझसे ।

ऐ निराशा, तू क्या कयामत ढा रही है, वह स्वयं तो दूर है ही, मैं उनके ध्यानका अञ्चल पकडकर चल रहा था, तेरे कारण वह भी मुझसे छुटा जा रहा है। अरे, जरा मुझे सँभल तो लेने दे। यह जरा-सा सहारा तो न छुड़ा ।

निराशाकी तस्वीर-सी खीच दी है। इसकी चित्रात्मकता देखने योग्य है। कोई चित्रकार इसपर सुन्दर चित्र बना सकता है।

[५८]

लाग़र इतना हूँ कि गर तू बज़्ममें जा दे मुझे,
मेरा ज़िम्मः देखकर गर कोई बतला दे मुझे।

अतिशयोक्ति है। कहते है—मै इतना क्षीण हो गया हूँ कि अगर तू मुझे अपनी महफिलमे जाने दे तो इसका जिम्मा लेता हूँ कि वहाँ मुझे कोई देख ही न पायेगा। (अपना काम बनाने और प्रियतमाको निन्दासे बचानेका हल एक साथ निकाला है।)

क्षीणताके सम्बन्धमे उर्दू कवियोंने सैकडों शेर कहे है परन्तु बहादुरशाह जफरकी अतिशयोक्ति इन सबके ऊपर है। वह कहते है :—

नातवानी ने बचाई जान मेरी हिज्र में,
कोने-कोने ढूँढ़ती फिरती कज़ा थी, मैं न था।

[५९]

मुह न दिखलावे, न दिखला, पर ब अन्दाज़े इताब,
खोलकर पर्दः, ज़रा आँखें ही दिखला दे मुझे।

मुहाविरोके प्रयोगमे एक सौन्दर्य और शोख़ी पैदा कर देनेमे गालिब बेजोड़ है। आँख दिखाना एक मुहाविरा है (न कि आँखे दिखाना जैसा कि शेरमें है पर काव्यमे इतना परिवर्तन क्षम्य है।) जिसका अर्थ होता है रोष करना, रुष्ट होना। इसी मुहाविरेको लेकर गालिबने बातमे बात पैदा की है।

कहते है, तू मुझसे रुष्ट है इससे दर्शन नही देता, अपना मुँह मुझे नही दिखाता। अच्छा मुँह नही दिखलाता तो न दिखा पर अपने गुस्सेके अन्दाजमे घूँघटको हटाकर जरा आँख ही दिखा दे, अपना गुस्सा ही प्रकट

कर दे। (क्या तर्कीब निकाली है कि वह आँख दिखाकर अपना गुस्सा भी प्रकट कर दें तो हजरतको दीदार भी नसीब हो जाय)। यहाँ बारीक़ी यह है कि आँखे दिखायेगी तो मुँह अपने आप दिख जायगा।

[६०]

मत पूछ, कि क्या हाल है मेरा तेरे पीछे,
तू देख, कि क्या रंग है तेरा मेरे आगे।

शब्द वैषम्यसे गालिबने क्या रङ्ग पैदा किया है। यहाँ रङ्ग और आगे-पीछे पदोने शेरमे जान डाल दी है।

कहते है, यह न पूछ कि तेरे पीछे, तेरे विरहमे मेरा क्या हाल होता है। यह देख कि मेरे आगे तेरा क्या रङ्ग हो जाता है, तू मेरे सामने आकर कितना बेचैन हो जाता है। इसीसे अनुमान कर ले कि तेरे विरहमे मेरा क्या हाल होता होगा।

[६१]

ईमाँ मुझे रोके है तो खींचे है मुझे कुफ़्र,
का'बः मेरे पीछे है कलीसा मेरे आगे।

'आसी' साहब इस शेरकी प्रशंसामे लिखते है—"बेमिस्ल शेर कहा है, खुसूसन मिस्रए सानी। अगर दीवानके दीवान इसपर सिद्के कर दिये जायँ तो बजा है।"

काबाको ईमान और कलीस (गिर्जाघर) को कुफ़्र कहा गया है। काबा (ईमान) पीछेसे खीच रहा है, रोक रहा है कि आगे मत बढ़ो। कलीसा (कुफ़्र) आगेसे अपनी तरफ खीच रहा है कि इधर आओ।

ईमानमे साधक या सूफीकी चरमावस्था, जिसमे वह 'अनलहक' (अहं ब्रह्मास्मि) कहता है कुफ़्र है। कुफ़्र आगेकी तरफ़ है जिधर मै जा रहा हूँ, उसमे आकर्षण इतना है कि काबेको पीछे छोड़ चुका हूँ। बीच रास्तेमे हूँ,

दोनोके बीच विमूढ़ हो रहा हूँ कि किधर जाऊँ। ईमान या परम्परागत मजहब मुझे रोकता है और कहता है—पीछे लौट आओ। कुफ़ या उन परम्परागत रूढियोका त्याग मुझे आगेकी ओर खीच रहा है और कहता है—पीछे लौटे तो माशूकके दर्शनसे वंचित रह जाओगे।

[६२]

ख़ुश होते हैं, पर वस्लमें यों मर नहीं जाते,
आई शबे हिजरॉंकी तमन्ना, मेरे आगे।

ऊँचे पायेका शेर है। जोश मलिसयानीने इसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है—"यह शेर हर साहिबे जौकको दीवानः कर देनेके लिए काफी है।....मिर्जा अगर और कुछ न कहते, सिर्फ यही एक शेर कहते तो यह उनकी अजमत और ए'तराफे कमालके लिए काफी था।" तबातबाई लिखते है—"वस्लकी खुशीमे मर जाना और लोग भी बॉधा करते है मगर यह बात ही और है। सारी करामात मुहाविरः और जबानकी है जिसने मरनेके मजमूनको जिन्द. कर दिया है।"

कहते है—मिलनमे सभी खुश होते है पर मेरी तरह कोई मर नही जाता। जुदाई (विरह) की रातोमे जो बार-बार तमन्ना किया करता था कि मरूँ तो तुम्हारे मिलन-क्षणमे मरूँ वह मेरे आगे आई—पूर्ण हुई।

[६३]

गो हाथको जुम्बिश नहीं, आँखोंमें तो दम है,
रहने दो अभी साग़रो मीना मेरे आगे।

अन्तिम क्षण आ गया है। कमजोरीका यह हाल है कि हाथोमे हिलनेकी भी ताकत नही रही पर कहते है कि हाथोमे शक्ति नही तो क्या हुआ? आँखोमे तो अभी दम मौजूद है। प्याले और सुराहीको मेरे सामनेसे क्यो हटाते हो, मेरे सामने ही पड़ा रहने दो ताकि मै अपने दिलको तस्कीन दूँ।

जो वस्तु सबसे प्रिय होती है मरते समय उसीको देखनेकी कामना हुआ करती है। पहिले मिस्रेमे नज़अ (मरण काल) का चित्र है; अङ्ग शिथिल और निष्प्राण है, हाथ-पाँवमे गति नही है। केवल आँखोमे जीवन-का चिह्न शेष है।

कहते है—यद्यपि हाथोमे गति नही है, उनमे शक्ति नही है कि सुराहीसे मदिरा निकालकर प्यालेमे भर सके और प्यालेको उठाकर मुँह तक ला सकें किन्तु जान अभी आँखोमे है इसलिए प्याले और सुराहीको मेरे सामने पड़ा रहने दो कि मै उन्हे देखता तो रह सकूँ।

लालसाका कैसा चित्र है!

[६४]

करने गये थे उससे तग़ाफ़ुलका हम गिला
की एक ही निगाह, कि बस ख़ाक हो गये।

सामान्य अर्थ तो यह है कि उनसे हम उपेक्षाकी शिकायत करने गये थे। उन्होने एक बार ही आँख उठाकर देखा कि हम मिट्टी हो गये।

इस शेरमे तसव्वुफका रंग है। जब परम प्रियतमसे आँखें मिलती है तब दर्शकका अस्तित्व उसीमे विलीन हो जाता है। 'सहाबी'ने, फारसीमे, कहा है—

ऐ ज़ाहिदो आशिक़ ज़तू दर नालः व आह
दूर तू व नज़दीक तेरा हाले तबाह
कस नेस्त कि जाँ तू अज़ सलामत बबुर्द
आँरा बतग़ाफुल कुशी ईंरा बनिगाह।

(जाहिद और आशिक दोनो नाल और आह द्वारा तुझसे फर्याद कर रहे है। जो तुझसे दूर है वह भी तबाहहाल है और जो तुझसे नजदीक है वह भी बर्बाद है। ऐसा कोई नही जो तुझसे जान बचा ले जाय। उसको

(जाहिदको) तगाफुलसे, उपेक्षासे कत्ल करते है और इसे (आशिकको) निगाहसे ।)

[६५]

जबतक दहाने ज़ख़्म न पैदा करे कोई,
मुश्किल, कि तुझसे राहे सुख़न वा करे कोई ।

जबतक चोट या घावका मुँह न पैदा हो किसीके लिए तुझसे बात करनेका रास्ता निकालना सम्भव नही ।

अर्थात् प्रेमका घाव लगे बिना प्रियतमसे बात नही की जा सकती ।

[६६]

मुहब्बतमें नहीं है फ़र्क़, जीने और मरनेका,
उसीको देखकर जीते हैं, जिस काफ़िर प दम निकले ।

प्रेममे जीवन और मरणमे कोई अन्तर नही है क्योकि जिस काफिर पर मरते है, जिसपर दम निकलता है उसीको देखकर जीते है ।

[६७]

बेगानए रसूमे जहाँ है मज़ाक़े इश्क़ ,
तर्ज़े जदीद ज़ुल्म -कुछ ईजाद कीजिए ।

प्रेम संसारकी रीतियों एवं परम्पराओकी पर्वा नही करता । इसलिए वही पुराने जुलमके ढंग छोड़िए, जुलमका कोई नया तरीका पैदा कीजिए ।

किसीने कहा है—

वस्लसे इन्कार है यह तो पुरानी बात है ,
अब नये अन्दाज़ सीखो जी जलानेके लिए ।

[६८]

वह शोख़ अपने हुस्न प मग़रूर है 'असद' ,
दिखलाके उसको आईनः तोड़ा करे कोई ।

वह शोख़ (चंचल माशूक) अपने सौन्दर्यपर गर्व कर रहा है। क्या अच्छा हो कि कोई उसे दिखाकर दर्पणको तोड़ा करता।

दर्पण दिखाना इसलिए कहा कि वह उसमे अपना जवाब–प्रतिद्वन्द्वी–देख ले। आईन तोडना इसलिए कहा कि उसके हजारो टुकड़ोमे वह प्रतिबिम्ब दिखाई दे।

बिहारीने, दूसरी जमीनपर कहा है :

हौ समुझ्यो निरधारि, यह जग काँचो काँच सम,
एकै रूप अपार, प्रतिबिम्बित लखियत जहाँ।

किसी उर्दू कविने कहा है :

नज़र आते कभी काहेको इतने खूबरू यकजा,
यह हुस्ने इत्तिफ़ाक़ आईनः उसके रूबरू टूटा।

दर्पणको लेकर एक दूसरा शेर है·

आईनः उठा लाये और अक्ससे यूँ बोले,
क्यों बात नहीं करता जो तू है वही मै हूँ।

[९६]

बाग़ तुझ बिन गुले नर्गिससे डराता है मुझे,
चाहूँ गर सैरे चमन आँख दिखाता है मुझे।

नर्गिस एक फूल है जिसकी आँखसे उपमा दी जाती है। 'आँख दिखाना' मुहाविरा है जिसका अर्थ है—नाराज होना। इसी मुहाविरेपर यह शेर खड़ा है।

मै विरह-कालमे तेरे विना यदि पुष्पोद्यानकी सैरको जाता हूँ तो उद्यान मुझे डराता है। किस प्रकार कि मुझे नर्गिसके फूल यानी आँख दिखाता है।

किसी उर्दू कविका शेर है—

मुझे नर्गिसका दस्तः ग़ैरके हाथोंसे क्यों भेजा,
अगर आँखें दिखानी थीं, दिखाते अपनी आँखोंसे।

[७०]

भूँचालमें गिरा था यह आईनः ताक़से,
हैरत शहीद जुंबिशे अबरूए यार है।

हैरत एक दर्पण थी और माशूककी दृष्टिका दोलन एक भूचाल। जबसे ताक-जैसी उनकी भौंहोंमे दोलन हुआ, हैरत शहीद होकर रह गयी। जैसे जलजला आया हो और उसमे ताकसे गिरकर दर्पण टूट जाय।

[७१]

साक़िया! दे एक ही साग़रमें सबको मय, कि आज,
आर्ज़ूए बोसए लबहाय मैगूँ है मुझे।

आर्जुए वोसए लबहाय मैगूँ = शराबसे लाल ओठोंको चूमनेकी कामना।

कहते है—ऐ साकी! मेरी कामना यह है कि आज तू एक ही प्यालेमे सब पीनेवालोको शराब पिलादे ताकि इस बहानेसे मै उन रक्तिम ओठोका चुम्बन ले सकूँ। उनके ओठ प्यालेको लगेगे, वही प्याला मेरे ओठों तक पहुँचेगा। इस प्रकार मै उनके ओठोंका चुम्बन ले सकूँगा।

इस प्रकारके मजमून वहुत लोगोंने कहे है। किसीका एक प्रसिद्ध शेर है—

पसे मुर्दन बनाये जायँगे साग़र मेरी गिलके,
लबेजाँ बख़्शके बोसे मिलेंगे ख़ाकमें मिलके।

मरनेके बाद मेरी मिट्टीके प्याले बनाये जायंगे। इस प्रकार मिट्टीमे मिलकर मै उस प्राणदाताके ओठोके चुम्बन पा जाऊँगा।

[७२]

शफ़क़ बदावए आशिक गवाहे रंगी है,
कि माह दुज़्द हिनाए कफ़े निगारीं है।

शफक = उषा। दुज्द = तस्कर, चोर।

उषालालिमारजित चाँदको देखकर प्रेमी दावा करता है कि चाँदने मेरी प्रियतमाकी मजुल हथेलियोंसे मेहदी चुरा ली है। इसका गवाह रक्तिम उषा है।

दूसरा अर्थ यह है कि चाँद दुज्दे हिना (हिनाका चोर) है और यह वह चोर है जो मेरी प्रियतमाकी मजुल हथेलियोंमे रह गया है। दुज्दे हिना उस सफेदीको भी कहते है जो मेहदी लगाते समय चित्राकनका सौन्दर्य बढानेके लिए छोड दी जाती है। उसी रिक्त स्थानको चन्द्र बताया गया है। उषाको इस दावेकी गवाहीमे पेश किया है।

[७३]

चमनज़ारे तमन्ना हो गयी सर्फ़े ख़िज़ाँ लेकिन,
बहारे नीमरंगे आह हसरतनाक बाक़ी है।

मेरी पुष्पित कामनाके बहारको खिजाँने लूट लिया किन्तु हसरतनाक आहकी अर्द्ध रँगीली बहार अब भी बाकी रह गयी है।

'सिराज' औरंगाबादीका एक शेर है—

चली सिम्ते ग़ैबसे इक हवा कि चमन सुरूरका जल गया,
मगर एक शाख़े निहाले ग़म जिसे दिल कहें सो हरी रही।

परोक्षसे, अदृष्टसे एक ऐसी हवा चली कि सुरूर (आनन्द, उत्फुल्लता) का चमन (उद्यान) जल गया। किन्तु गम (दुःख) के पौधेकी एक शाख, जिसे दिल कहेंगे, हरी रह गयी।

[७४]

हज़ार क़ाफ़लए आर्जू बयाबाँ मर्ग,
हनोज़ महमिले हसरत बदोशे ख़ुदराई ।

यद्यपि मेरी सहस्रों कामनाओंके काफले निराशाकी मरुभूमिमें तडप-तडपकर मर गये हैं परन्तु मेरी लालसाकी पालकी (महफिल) अब भी स्वयंसज्जा—आत्मश्रृंगारके कन्धेपर बैठी चली जा रही है ।

[७५]

देखना तक़्रीरकी की लज़्ज़त कि जो उसने कहा,
मैंने यह जाना कि गोया यह भी मेरे दिलमें है ।

उसकी वाणीका स्वाद यह है कि जो कुछ उसने कहा उसे सुनकर मैंने अनुभव किया कि यह तो मेरे ही दिलकी बात है । वाणीका प्रभाव तभी पड़ता है जब श्रोता वक्ताकी बातको अपने ही दिलसे निकलता हुआ अनुभव करे ।

[७६]

मरते हैं आर्ज़ूमें मरनेकी ।
मौत आती है पर नहीं आती ।

स्पष्ट है ।
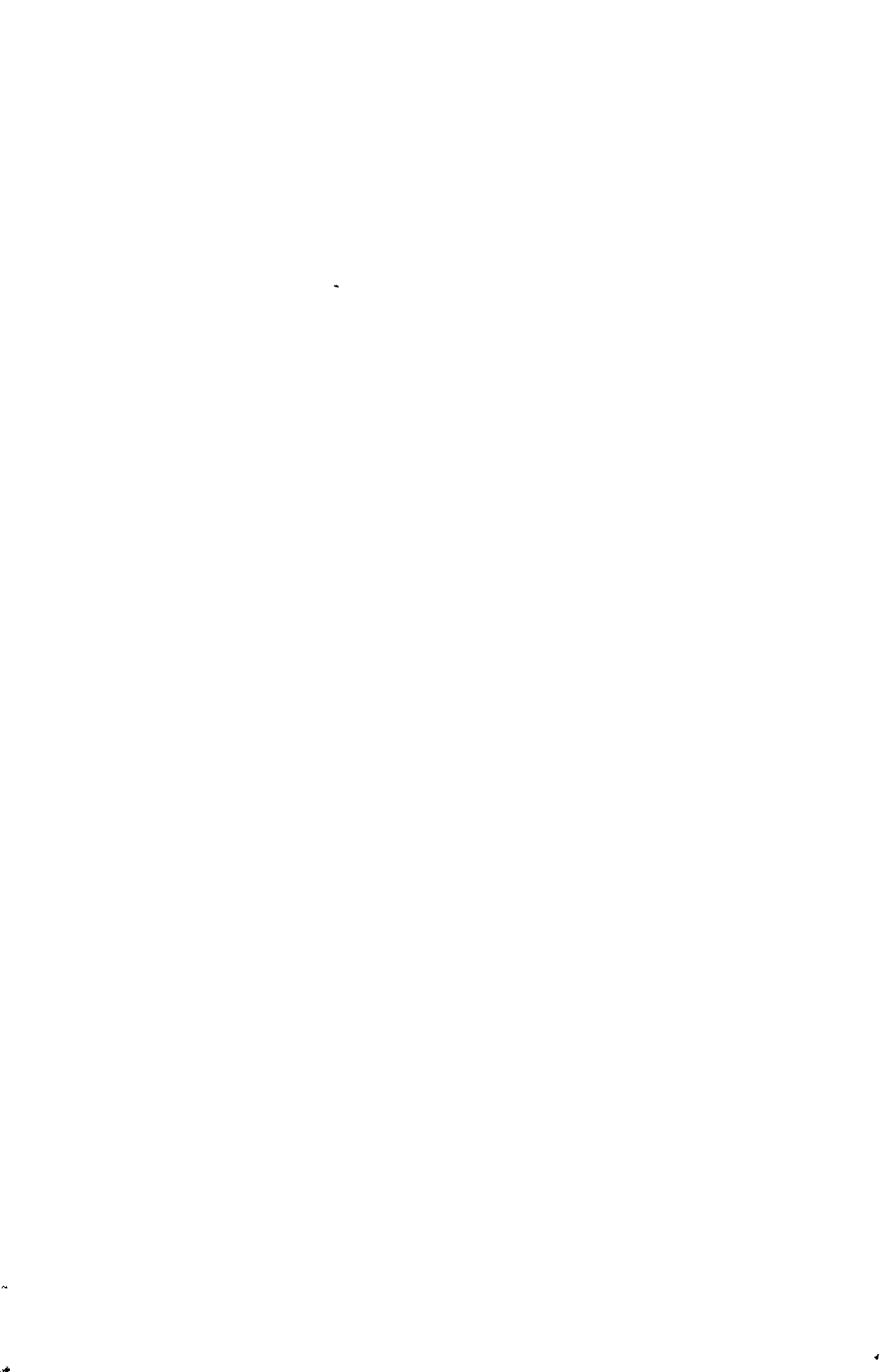
काव्य-भाग

दीवाने ग़ालिब

रदीफ़ अलिफ़ :

[१]

नक़्श[1] फ़रियादी है किसकी शोख़िए तहरीरका[2],
काग़ज़ी है पैरहन[3], हर पैकरे तस्वीरका[4] ।

[२]

था ख़्वाबमें, ख़यालको तुझसे मु'आमिलः[5],
जब आँख खुल गयी न ज़ियाँ[6] था न सूद[7] था ।
तेशे[8] बग़ैर मर न सका कोहकन[9] 'असद',
सरगश्त ए ख़ुमारे रुसूमो क़यूद[10] था ।

[३]

इश्क़से तबीअतने ज़ीस्तका[11] मज़ा पाया,
दर्दकी दवा पाई, दर्द बे दवा पाया ।

---

१ निशान, चिह्न, चित्र (नामरूपात्मक जगत्), २. लिखावटका, चित्राङ्कनका बाँकपन, ३. वस्त्र, टिप्पणी—प्राचीन ईरानकी प्रथा थी कि फ़रियाद करनेवाला कागजके कपडे पहिनकर आता था, ४. चित्रका आकार, चित्र-यष्टि, ५. सम्बन्ध, ६. हानि, ७. लाभ, ८. कुदाल, ९. फरहाद, शीरीका प्रेमी, १०. परम्पराओके बन्धनके नशेमे भ्रान्त, ११. जीवन ।

हाले दिल नहीं मालूम लेकिन इस क़दर यानी,
हमने बारहा ढूँढ़ा तुमने बारहा पाया।
शोरे पन्दे नासेहने[1] ज़ख़्मपर नमक छिड़का,
आपसे कोई पूछे, तुमने क्या मज़ा पाया।

[४]

दिल मेरा सोज़े निहाँ[2] से बे महाबा[3] जल गया,
आतिशे ख़ामोशकी[4] मानिन्द गोया जल गया।
दिलमें ज़ौक़े वस्लो यादे यार तक बाक़ी नहीं,
आग इस घरमें लगी ऐसी कि जो था जल गया।
अर्ज़ कीजे जौहरे अन्देशः की गर्मी कहाँ!
कुछ खयाल आया था वहशतका कि सेहरा जल गया।

[५]

बूए गुल[5], नालए दिल[6], दूदे चिराग़े महफ़िल[7]
जो तेरी बज़्मसे[8] निकला सो परीशाँ निकला।
चन्द तस्वीरे बुताँ चन्द हसीनोंके ख़ुतूत,
बाद मरनेके मेरे घरसे यह सामाँ निकला।

---

१. उपदेशकके उपदेशके शोर (नमक अर्थ भी होता है), २. अन्तरकी अग्नि, ३. विना किसी लिहाजके, ४. मौन अग्नि, ५. पुष्प-गन्ध, ६. दिलकी फ़रियाद, ७. सभाके दीपकका धुवाँ, ८. महफिल।

[६]

दह्रमें[1] नक़्शे वफ़ा[2] वज्हे तसल्ली न हुआ,
है यह वह लफ़्ज़, कि शर्मिन्दए मा'नी[3] न हुआ।
मैंने चाहा था कि अन्दोहे वफ़ासे[4] छूटूँ,
वह सितमगर मेरे मरने पै भी राज़ी न हुआ।
किससे महरूमिए क़िस्मतकी[5] शिकायत कीजे,
हमने चाहा था कि मर जायँ, सो वह भी न हुआ!

[७]

सताइशगर[6] है ज़ाहिद[7] इस क़दर, जिस बाग़े रिज़्वाँका[8]
वह इक गुलदस्तः है हम बेखुदोंके ताक़े निसियाँका[9]।
ख़मोशीमें निहाँ खूँगश्तः लाखों आरज़ूएँ हैं[10],
चिराग़े मुर्दः हूँ मैं बेज़बाँ गोरे ग़रीबाँका[11]।
नहीं मालूम किस-किसका लहू पानी हुआ होगा,
क़यामत है सरश्क आलूदः[12] होना तेरी मिज़ग़ाँका[13]।
नज़रमें है हमारी जादए राहे फ़ना[14] 'ग़ालिब',
कि यह शीराजः[15] है आलमके अज्ज़ाए परीशाँका[16]।

---

१. काल, जगत्, २. निष्ठाका चित्र, ३ सार्थक, ४. (प्रेमकी) निष्ठाका दुःख, ५. भाग्य-हीनता, ६. प्रशंसक, ७ सयमी (उर्दू-फारसी शाइरीमे पाखण्डी समझकर जाहिदका मजाक उड़ानेकी परम्परा है), ८. स्वर्गोद्यान, नन्दन-कानन, ९ ताक जिसमे कोई चीज रखकर उसे भूल जाते हैं, १०. खून हुई लाखो कामनाएँ मौनमे छिपी हुई है, ११. कब्रिस्तान, १२. अश्रुपूर्ण, १३. दृगञ्चल, १४. मृत्यु-मार्ग, १५ शृंखला, १६. विशृंखल अङ्गों।

[८]

सरापा[१] रहने इश्क़ो[२] नागुज़ीरे[३] उल्फ़ते हस्ती[४],
इबादत[५] बर्क़की[६] करता हूँ और अफ़सोस हासिलका[७]।
ब क़द्रे ज़र्फ़ है साक़ी ख़ुमारे तश्नःकामी[८] भी,
जो तू दरियाए मय है तो मैं ख़ामियाज़ः[९] हूँ साहिलका[१०]।

[९]

महरम[११] नहीं है तू ही नवाहाए राज़का[१२],
याँ वर्नः जो हिजाब[१३] है पर्दः है साज़का।
तू और सूए ग़ैर नज़रहाए तेज़ - तेज़,
मै और दुख तेरी मिज:हाए दराज़का[१४]।

[१०]

है ख़याले हुस्नमें[१५] हुस्ने अमलका[१६] सा ख़याल,
खुल्दका[१७] इक दर है मेरी गोरके[१८] अन्दर खुला।
मुँह न खुलनेपर है वह आलम[१९] कि देखा ही नहीं,
जुल्फ़से बढ़कर नक़ाब उस शोख़के मुँहपर खुला।

---

१. आपादमस्तक, २. प्रेमके हाथ गिरवी, ३ अनिवार्य, ४. जीवनका प्रेम, ५ उपासना, ६ विद्युत्, ७ आय, खलिहान, ८ प्यासका ख़ुमार, ९ अँगडाई, परिणाम, १० तट, ११ मर्मज्ञ, १२. मर्मके स्वर, १३. पर्दा, लज्जा, घूँघट, १४ लम्बी पलके, १५ सौन्दर्यकी कल्पना, १६. कार्यका सौन्दर्य, १७ स्वर्ग, १८ कब्र, १९ अवस्था।

[११]

बस कि दुश्वार है हर कामका आसाँ होना,
आदमीको भी मयस्सर नहीं इंसाँ होना।
जल्वः अज़ बस कि तक़ाज़ाए निगह करता है[1],
जौहरे आईनः[2] भी चाहे है मिज़गाँ होना।
इशरते पारए दिल[3] ज़ख़्मे तमन्ना[4] खाना,
लज़्ज़ते रीशे जिगर[5] ग़र्क़े नमकदाँ[6] होना।
हैफ़[7] उस चार गिरह कपड़ेकी क़िस्मत 'ग़ालिब',
जिसकी क़िस्मतमें हो आशिक़का गिरेबाँ होना।

[१२]

यह न थी हमारी क़िस्मत कि विसाले यार[8] होता,
अगर और जीते रहते यही इन्तज़ार होता।
तेरे वा'दे पर जिये हम, तो यह जान झूठ जाना,
कि ख़ुशीसे मर न जाते, अगर एतबार होता।
कोई मेरे दिलसे पूछे तेरे तीरे नीमकशको[9],
यह ख़लिश[10] कहाँ से होती जो जिगरके पार होता।
यह कहाँकी दोस्ती है कि बने है दोस्त नासेह[11],
कोई चारःसाज़[12] होता, कोई ग़मगुसार[13] होता।

---

१ छविमे भी देखे जानेकी उत्कण्ठा है, २ आईनेका जौहर, ३. दिलके टुकड़ोका आनन्द, ४. कामनाके घाव, ५. जिगरके जख्मका स्वाद, ६. नमकदाँमे डूबना, ७. अफसोस, ८ प्रिय-मिलन, ९. आधा खिंचा वाण, १०. चुभन, वेदना, ११. उपदेशक, १२ परिचारक, १३. दुःख बांटनेवाला।

रगे संग[1] से टपकता वह लहू कि फिर न थमता,
जिसे ग़म समझ रहे हो, यह अगर शरार[2] होता।
ग़म अगर्चे जाँगुसिल[3] है, प कहाँ बचें कि दिल है,
ग़मे इश्क़ गर न होता ग़मे रोज़गार[4] होता।
कहूँ किससे मैं कि क्या है, शबे ग़म बुरी बला है,
मुझे क्या बुरा था मरना अगर एक बार होता।
यह मसायले तसव्वुफ़[5] यह तेरा बयान 'ग़ालिब',
तुझे हम वली[6] समझते जो न बाद:ख़्वार[7] होता।

[१३]

हवस[8] को है निशाते कार[9] क्या-क्या,
न हो मरना तो जीनेका मज़ा क्या?
दिले हर क़तर:[10] है साज़े अनल बह्[11],
हम उसके हैं हमारा पूछना क्या?
बलाए जाँ है 'ग़ालिब' उसकी हर बात,
इबारत[12] क्या, इशारत[13] क्या, अदा[14] क्या?

[१४]

बन्दगीमें भी वह आज़ाद वो ख़ुदबी[15] हैं कि हम,
उलटे फिर आये दरे का'ब: अगर वा[16] न हुआ।

---

१ पत्थरकी नस, २. (शरर) चिनगारी, ३. जानलेवा, ४. संसारका दुख, ५. तसव्वुफ (ईश्वर-सन्निधान) की समस्याएँ, ६. ऋषि, ७. मद्यप, ८ लालसा, तृष्णा, ९ काम करनेकी उमंग, १०. प्रत्येक विन्दुका हृदय, ११. 'मै सागर हूँ'का स्वर, १२. लेखन-शैली, १३. सकेत, १४. हाव-भाव, १५. अभिमानी, १६. उन्मुक्त।

[१५]

वही इक बात है जो याँ नफ़स[1] वाँ नकहते गुल[2] है,
चमनका जल्वः बाइस[3] है मेरी रंगींनवाई[4] का।
न दे नामेको इतना तूल 'ग़ालिब' मुख़्तसर लिख दे,
कि हसरतसंज[5] हूँ, अर्ज़े सितमहाए जुदाई[6] का।

[१६]

ले तो लूँ सोतेमें उसके पाँवका बोसः मगर;
ऐसी बातोंसे वह काफ़िर[7] बदगुमाँ[8] हो जायगा।
दिलको हम सर्फ़े वफ़ा[9] समझे थे क्या मालूम था,
यानी यह पहिले ही नज़्रे इम्तिहाँ हो जायगा।

[१७]

दर्द मिन्नतकशे दवा[10] न हुआ,
मैं न अच्छा हुआ, बुरा न हुआ।
जमअ करते हो क्यों रकीबोंको,
इक तमाशा हुआ गिला[11] न हुआ।
कितने शीरीं[12] हैं तेरे लब कि रक़ीब,
गालियाँ खाके बेमज़ः न हुआ।

---

१. श्वास, २. कुसुम-सौरभ, ३ कारण, ४. स्वरमोहकता, ५. अभिलाषी, ६. विरहकी विपत्तियोंका कथन, ७. माशूक, ८. सन्देहशील, ९. निष्ठाका लाभ, निष्ठाका निर्वाह करनेवाला, १०. दवाका आभारी, ११. शिकायत, १२. मीठे।

[१८]

घर हमारा जो न रोते भी तो वीराँ होता,
वह[1] अगर वह न होता तो बयाबाँ[2] होता।

[१९]

न था कुछ तो खुदा था, कुछ न होता तो खुदा होता,
डुबोया मुझको होनेने न मैं होता तो क्या होता!
हुई मुद्दत कि 'ग़ालिब' मर गया पर याद आता है,
वह हर इक बातपर कहना कि यों होता तो क्या होता!

[२०]

दम लिया था न क़यामत[3] ने हनोज़[4],
फिर तेरा वक्ते सफ़र याद आया।
ज़िन्दगी यूँ भी गुज़र ही जाती,
क्यों तेरा राहे गुज़र[5] याद आया।
कोई वीरानी-सी वीरानी है,
दश्त[6] को देखके घर याद आया।

[२१]

बिजली इक कौंद गयी आँखोंके आगे तो क्या,
बात करते कि मै लब तश्नए तक़रीर[7] भी था।

---

१ समुद्र, २ मरुस्थल, ३ प्रलय, ४ अभी, ५ मार्ग, ६. जंगल, ७ बातोंका प्यासा।

पकड़े जाते हैं फ़रिश्तोंके लिखे पर नाहक़,
आदमी कोई हमारा दमे तहरीर भी था ?

[२२]

जबतक कि न देखा था क़दे यारका आलम,
मैं मा'तक़दे फ़ितनए महशर[1] न हुआ था।
दरिया'ए म'आसी[2] तुनुकआबी[3] से हुआ ख़ुश्क,
मेरा सरे दामन भी अभी तर न हुआ था।

[२३]

अर्ज़े नियाज़े इश्क़[4]के क़ाबिल नहीं रहा,
जिस दिलपै नाज़ था मुझे वह दिल नहीं रहा।
वा कर दिये हैं शौक़मे बंदेनिक़ाबे हुस्न[5],
ग़ैर अज़ निगाह अब कोई हायल[6] नहीं रहा।
गो मैं रहा रहीने सितमहाए रोज़गार[7],
लेकिन तेरे ख़याल से ग़ाफ़िल नहीं रहा।

[२४]

मंज़र[8] इक बुलन्दीपर और हम बना सकते,
अर्श[9]से इधर होता काशके मकाँ अपना।
घिसते-घिसते मिट जाता, आपने अबस[10] बदला,
नंगे सिज्दः[11]से मेरे संगे[12]आस्तां अपना।

---

१ प्रलयकी मुसीबतोका विश्वासी, २ पाप-सागर, ३. पानीकी दरिद्रता, ४. प्रेमाकांक्षा-निवेदन, ५ उत्कण्ठाने माशूकके सौन्दर्यकी निकाबके बन्धन खोल दिये है, ६. बाधक, ७ संसारके उत्पीडनोका शिकार, ८ दृश्य, ९. गगन, १०. व्यर्थ, ११. सिज्देके कलंक (चिह्न), १२ देहरीका पत्थर।

[२५]

बज़्मे क़दह[1] से ऐशे तमन्ना[2] न रख कि रंग,
सैदे ज़िदाम जस्तः[3] है, इस दामगाह[4] का।
रहमत[5] अगर कुबूल करे क्या बईद[6] है,
शर्मिन्दगीसे उज्र न करना गुनाहका।
मक़्तल[7] को किस निशातसे जाता हूँ मैं, कि है,
पुरगुल ख़यालेज़ख़्मसे दामन निगाहका।[8]

[२६]

जौर[9] से बाज़ आये पर बाज़ आयें क्या,
कहते हैं "हम तुझको मुँह दिखलायें क्या?"
रात-दिन गर्दिश[10] में हैं सात आसमाँ,
हो रहेगा कुछ-न-कुछ घबरायें क्या?
लाग हो तो उसको हम समझें लगाव,
जब न हो कुछ भी तो धोका खायें क्या?
पूछते है वह कि "ग़ालिब कौन है?"
कोई बतलाओ कि हम बतलायें क्या?

[२७]

इश्रते क़तरः[11] है, दरियामें फ़ना[12] हो जाना,
दर्दका हदसे गुज़रना है दवा हो जाना।

---

१ प्यालोंकी महफिल, २. कामना-नर्त्तन, कामनाका विलास, ३ जालसे छूटकर भागा शिकार, ४ जालसे पूर्ण स्थान, ५. प्रभुकृपा, ६. दूर, ७ वधस्थल, ८ दृष्टिका आँचल घावकी कल्पनाओंके पुष्पोंसे भरा हुआ है, ९ जुल्म, १०. चक्कर, ११. बूँदका ऐश्वर्य, १२. विलीन।

दिलसे मिटना तेरी अंगुश्ते हिनाई[1] का ख़याल,
हो गया गोश्तसे नाखुनका जुदा हो जाना।
है मुझे अब्रे बहारीका बरस कर खुलना,
रोते-रोते ग़मे फ़ुर्क़तमें फ़ना हो जाना।
बख़्शे है जल्वए गुल ज़ौक़े तमाशा[2] 'ग़ालिब',
चश्मको चाहिए हर रंगमें वा हो जाना।

रदीफ़ 'बे':

[२८]

है यह बरसात वह मौसिम कि अजब क्या है अगर,
मौजे हस्ती[3] को करे फ़ैज़े हवा[4] मौजे शराब।
चार मौज उठती है तूफ़ाने तरब[5] से हरसू[6],
मौजे गुल[7] मौजे शफ़क़[8], मौजे सबा[9], मौजे शराब।
बस कि दौड़े है रगेताक[10] में खूँ हो-होकर,
शहपरे रंग[11] से है बालकुशा[12] मौजे शराब।

रदीफ़ 'जीम':

[२९]

आता है एक पारए दिल[13] हर फ़ुग़ाँ[14] के साथ,
तारे नफ़स, कमन्दे शिकारे असर है आज[15]।

---

१. मेहदी लगी उँगली, २. दर्शनकी उत्सुकता ही फूलमें छवि उत्पन्न करती है, ३. जीवन-तरंग, ४. वायुकी उदारता, ५. हर्षका तूफ़ान, ६. चतुर्दिक्, ७. पुष्प-तरंग, ८ उषा-तरंग, ९ प्रभातीकी तरंग, १० द्राक्षा (अंगूर) की नसोंमें, ११. रंगके पख, १२. पर खोले हुए, १३ हृदय-खण्ड, १४. रोदन, आर्त्तनाद, १५ आज साँसकी डोरी प्रभावका शिकार करनेवाली कमन्द बन गयी है।

ऐ आफ़ियत[1] किनारः कर, ऐ इन्तिज़ाम चल,
सैलाबे गिरियः दरपैए दीवारो दर है आज[2] ।
लो हम मरीज़े इश्क़के तीमारदार हैं,
अच्छा अगर न हो तो मसीहाका क्या इलाज ।

रदीफ़ 'चे' :

[३०]

नफ़स न अंजुमने आरज़ू[3] से बाहर खींच,
अगर शराब नहीं, इन्तिज़ारे साग़र खींच ।
कमाल गर्मिए सइए तलाशे दीद[4] न पूछ,
बरंगे खार[5] मेरे आइनेसे जौहर खींच ।
तेरी तरफ़ है बहसरत नज़ारए नर्गिस,[6]
बकोरिए दिलो चश्मे रक़ीब[7] साग़र खींच ।

रदीफ़ 'दाल' :

[३१]

शमअ बुझती है तो उसमेंसे धुवाँ उठता है,
शोलए इश्क़ सियहपोश[8] हुआ मेरे बा'द ।
खूँ है दिल खाकमें अहवाले बुताँ[9] पर या'नी,
इनके नाखुन हुए मुहताजे हिना[10] मेरे बा'द ।

---

१ कुशलता, २ आज रोदनका तूफ़ान घर-बार ढा देनेपर तुला हुआ है, ३ अरमानोंकी महफिल, कामनाओंकी भीड, ४ प्रियदर्शनकी खोजमे प्रयत्नकी सीमा, ५ कण्टक-तुल्य, ६ नर्गिसकी दृष्टि तेरी ओर लालसापूर्वक देख रही है, ७. रकीव (प्रतिद्वन्द्वी) के अन्धेदिल और अन्धी आँखके नामपर, ८ काला, ९ मा'शूकोंकी दशा, १०. मेहदीके मुखापेक्षी ।

कौन होता है हरीफ़े मये मर्द अफ़गने इश्क़[1],
है मुकर्रर[2] लबे साक़ी[3] पै सला[4] मेरे बा'द।
आये है बेकसीए इश्क़ प रोना 'ग़ालिब',
किसके घर जायेगा सैलाबे बला मेरे बा'द।

रदीफ़ 'रे':

[३२]

मक़सद है नाज़ो ग़मज़ः[5], वले गुफ़्तगूमें काम,
चलता नहीं है, दश्नः ओ ख़ंजर[6] कहे बग़ैर।
हरचन्द हो मुशाहदः-ए हक़[7] की गुफ़्तगू,
बनती नहीं है, बादः ओ साग़र[8] कहे बग़ैर।

[३३]

साबित हुआ है गर्दने मीना[9] पै ख़ूने ख़ल्क़[10],
लरजे है मौजे मय तेरी रफ़्तार देखकर।
इन आबलोंसे पाँवके घबरा गया था मैं,
जी खुश हुआ है राहको पुरख़ार[11] देखकर।
गिरनी थी हम प बर्क़े तजल्ली[12] न तूर[13] पर,
देते हैं बादः, जर्फ़े क़दह ख़्वार[14] देखकर।

---

१. प्रेमकी विजयिनी मदिराको सहन करनेमे मेरी बराबरी करनेवाला, २. बारम्बार, ३. साकीके अधर, ४. आमंत्रण, ५. रूपगर्व और हाव-भाव, ६. कटार और छुरी, ७. ब्रह्म-दर्शन, ८ मधु एव मधुपात्र, ९ सुराहीकी गर्दन, १० संसारका खून, ११ कण्टकित, १२. ब्रह्मज्योतिकी बिजली, १३. एक पर्वत, १४ शराबका प्याला पीनेवालेका साहस देखकर।

[३४]

लरज़ता है मेरा दिल ज़हमते मेहे दरख़्शाँ[१] पर,
मैं हूँ वह क़तरए शबनम[२] जो हो ख़ारे बयाबाँ[३] पर।
न छोड़ी हज़रते यूसुफ़ने याँ भी खानः आराई,
सफ़ेदी दीदए या'क़ूबकी, फिरती है ज़िन्दाँपर[४]।
मुझे अब देखकर अब्रे शफ़क़ आलूदः[५] याद आया,
कि फ़ुर्क़तमें तेरी आतिश बरसती थी गुलिस्ताँपर।
बजुज़ परवाज़े शौक़े नाज़[६] क्या बाक़ी रहा होगा,
क़यामत इक हवाए तुंद[७] है ख़ाके शहीदाँपर।

[३५]

यारब न वह समझे हैं, न समझेंगे मेरी बात,
दे और दिल उनको, जो न दे मुझको ज़बाँ और।
लेता, न अगर दिल तुम्हें देता, कोई दम चैन,
करता, जो न मरता कोई दिन, आहो फ़ुग़ाँ और।
हैं और भी दुनियामें सुख़नवर बहुत अच्छे,
कहते है, कि ग़ालिबका है अन्दाज़े बयाँ और।

[३६]

लाज़िम था कि देखो मेरा रस्तः कोई दिन और,
तनहा[८] गये क्यों अब रहो तनहा कोई दिन और।

---

१. चमकते सूर्यका कष्ट, २ ओसकी बूँद, ३ वन-कण्टक, ४. या'क़ूब यूसुफके पिता थे, जब यूसुफ मिस्रमे क़ैदकर लिये गये तो बाप रो-रोकर अन्धे हो गये, इसीपर यह उक्ति है, ५ उषालालिमा-रंजित बादल, ६ प्रेमकी उमंगमे उड़ते-फिरते, ७ प्रभंजन, ८. अकेले।

आये हो कल और आज ही कहते हो, कि जाऊँ,
माना कि हमेशः नहीं अच्छा, कोई दिन और।
जाते हुए कहते हो, क़यामतको मिलेंगे,
क्या ख़ूब, क़यामतका है गोया कोई दिन और।
नादाँ हो, जो कहते हो, कि क्यों जीते हो 'ग़ालिब',
क़िस्मत है मरनेकी तमन्ना कोई दिन और।

रदीफ़ 'ज़े' :

[३७]

क्योंकर उस बुतसे रखूँ जान अज़ीज़,
क्या नहीं है मुझे ईमान अज़ीज़ ?
दिलसे निकला प न निकला दिलसे,
है तेरे तीरका पैकान[1] अज़ीज़।

[३८]

नै गुले नग़्मः[2] हूँ, न पर्दए साज़[3],
मैं हूँ अपनी शिकस्तकी आवाज़[4]।
तू, और आराइशे ख़मे काकुल[5]
मैं, और अन्देशहाय दूरो-दराज़[6]।

१. नोक, २. संगीत-पुष्प, ३. बाजेका पर्दा जिससे सुर निकलते हैं, ४. पराजयकी वाणी, ५. कुंचित अलकोका शृंगार; ६. दूर-दूरकी शंकाएँ।

ऐ तेरा ग़मज़ः[1], यक क़लम अंगेज़[2],
ऐ तेरा ज़ुल्म सर बसर अन्दाज़[3]।
मुझको पूछा तो कुछ ग़ज़ब न हुआ,
मैं ग़रीब और तू ग़रीबनवाज़।

रदीफ़ 'शीन' :

[३९]

न लेवे गर ख़से जौहर[4], तरावत[5] सब्ज़ए ख़त[6] से,
लगावे ख़ानः ए आईन[7]: में रूए निगार[8] आतिश।
फ़रोग़े हुस्न[9] से होती है हल्ले मुश्किले आशिक़[10],
न निकले शमअके पा-से निकाले गर न ख़ार आतश।

रदीफ़ 'ऐन' :

[४०]

जादए रह[11] ख़ुर[12] को वक़्ते शाम है तारे शुआअ[13],
चर्ख़ वा करता है माहे नौ[14] से आग़ोशे विदाअ[15]।

[४१]

रुख़े निगारसे, है सोज़े जाविदानिए शमअ[16],
हुई है आतशे गुल[17], आबे ज़िन्दगानिए शमअ।

---

१. कटाक्ष, २ पूर्णत. मनोभावोका उभाड़नेवाला, ३ नखसे शिख तक तेरा हाव-भाव, ४. जौहरके तृण, ५. शीतलता, तरी, ६. मुखलोम, ७. हृदय, ८. रूपसीका मुख, ९. सौन्दर्यकी कान्ति, १०. प्रेमीकी कठिनाइयोका समाधान, ११ पथ-चिह्न, १२ सूर्य, १३ किरणका तार, १४. नवचन्द्र, १५. विदाईकी गोद, १६. शमअ (दीपक) की अमर जलन, १७. पुष्प (माशूक) की कान्ति।

ज़बाने अह्ले ज़बाँ[१] में, है मर्ग ख़ामोशी,
यह बात बज़्ममें, रौशन हुई ज़बानिए शमअ।
ग़म उसको हसरते परवानःका है, ऐ शोलः,
तेरे लरज़नेसे ज़ाहिर है नातवानिए शमअ।

रदीफ़ 'काफ़' :

[४२]

ग़ैरकी मिन्नत न खीचूँगा, पै ए तौकीरे दर्द[२],
ज़ख़्म मिस्ले खन्दःए क़ातिल[३] है, सरतापा नमक।
याद हैं, ग़ालिब, तुझे वह दिन, कि वज्दे ज़ौक़[४] में,
ज़ख़्मसे गिरता, तो मैं पलकोंसे चुनता था नमक।

[४३]

आहको चाहिए इक उम्र, असर होने तक
कौन जीता है तेरी जुल्फ़के सर होने तक।
दामे हर मौज[५] में है, हल्कःए सद कामे निहङ्ग[६],
देखें क्या गुज़रे है क़तरे प, गुहर होने तक।
आशिक़ी सब्रतलब और तमन्ना बेताब,
दिलका क्या रङ्ग करूँ, ख़ूने जिगर होने तक।
हमने माना, कि तग़ाफ़ुल[७] न करोगे, लेकिन,
ख़ाक हो जायँगे हम, तुमको ख़बर होने तक।

---

१. भाषाविदोकी भाषा, २ वेदनाके सम्मानके लिए, ३. क़ातिलकी हँसीके समान, ४. आनन्द एव उमगकी मत्तता, ५ लहरोका जाल, ६. सैंकड़ो मगरोके खुले जबडे, ७. उपेक्षा।

परतवे ख़ुर[1] से है शबनमको फ़नाकी तालीम,
मैं भी हूँ एक इनायतकी नज़र होने तक।
ग़मे हस्तीका, 'असद' किससे हो जुज़ मर्ग[2] इलाज,
शमअ हर रंगमें जलती है सहर होने तक।

रदीफ़ 'गाफ़' :

[४४]

गर तुझको है यक़ीने इजाबत[3] दु'आ न माँग,
या'नी बग़ैर यक दिले बे मुद्'आ[4] न माँग।
आता है दाग़े हसरते दिलका शुमार[5] याद,
मुझसे मेरे गुनहका हिसाब, ऐ ख़ुदा न माँग।

रदीफ़ 'लाम' :

[४५]

है किस क़दर हलाके फ़रेबे वफ़ाए गुल[6],
बुलबुलके कारोबार प हैं ख़न्दःहाए गुल।
शर्मिन्दः रखते हैं मुझे बादे बहारसे,
मीनाए बेशराबो दिले बेहवाए गुल[7]।
तेरे ही जल्वःका है यह धोका, कि आज तक,
बेइख़्तियार दौड़े है गुल दरक़फाए गुल[8]।

---

१. सूर्य-प्रकाश, २ मृत्युके सिवा, ३. स्वीकृतिका विश्वास, ४ निष्काम हृदयके बिना, ५. हृदयकी अपूर्ण कामनाओंके दागकी गिनती, ६ गुलकी वफाके भ्रमका शिकार, ७ मदिरारिक्त मधुपात्र (दीनता) एवं कुसुम-कामना-रहित हृदय (बुझा हृदय) ८. फूलके पीछे फूल।

रदीफ़ 'मीम' :

[४६]

महफ़िलें बरहम[1] करे है, गंजफ़ः बाज़े ख़याल[2],
हैं वरक़ गर्दानिए नैरंगे यक बुतख़ानः हम[3]।
दाइमुल हब्स[4] इसमें है लाखों तमन्नाएँ 'असद',
जानते हैं सीनःए पुरख़ूँको ज़िन्दाँख़ानः हम[5]।

[४७]

मुझको दयारे ग़ैर[6] में मारा, वतनसे दूर,
रखली मेरे ख़ुदाने, मेरी बेकसीकी शर्म।
वह हल्क़हाए ज़ुल्फ़[7], कमीं[8] में हैं, ऐ ख़ुदा,
रख लीजो मेरे दावःए वारस्तगी[9]की शर्म।

रदीफ़ 'नून' :

[४८]

वह फ़ुराक़ और वह विसाल कहाँ,
वह शबोरोज़ो माहोसाल कहाँ?
दिल तो दिल, बस दिमाग़ भी न रहा,
शौरे सौदाए खत्तो खाल कहाँ[10]?
थी वह इक शख़्सके तसव्वुरसे
अब वह रा'नाइए ख़याल[11] कहाँ?

---

१ बखेरना, बिगाड़ना, २ कल्पनाका गजीफबाज या खिलाडी, ३ किसी बुतख़ानेकी तिलिस्मी सूरतोंके उलटते हुए पन्ने, ४. सदाके लिए बन्दी, ५. हम रक्तरंजित सीनेको बन्दीगृह समझते हैं, ६ परदेश, ७ अलक-जाल, ८. घात, ९. स्वतन्त्र होनेका दावा, १०. वह रूपके प्रति उन्मादकी धूप अब कहाँ है? ११ कल्पनाका शृंगार।

[४९]

की वफ़ा हमसे, तो ग़ैर उसको जफ़ा कहते हैं,
होती आई है, कि अच्छोंको बुरा कहते हैं।
आज हम अपनी परीशानिए खातिर[1] उनसे,
कहने जाते तो हैं, पर देखिए क्या कहते हैं।
है परे सरहदे इद्राक[2] से, अपना मस्जूद[3],
क़िबलेको अह्लेनज़र[4] क़िबलःनुमॉ[5] कहते हैं।

[५०]

हो गये हैं जमअ, अज़्ज़ाए निगाहे आफ़ताब[6],
ज़र्रे, उसके घरकी दीवारोंके रौज़न[7] में नहीं।
रौनक़े हस्ती है इश्क़े खानः वीरॉसाज़से[8]
अंजुमन बेशमअ[9] है, गर बर्क़ ख़िर्मनमें नहीं।
थी वतनमें शान क्या ग़ालिब, कि हो ग़ुर्बतमें क़द्र,
बेतकल्लुफ़, हूँ वह मुश्तेखस[10] कि गुलख़न[11] में नहीं।

[५१]

मेहरबॉं होके बुलालो मुझे, चाहो जिस वक़्त,
मैं गया वक़्त नहीं हूँ, कि फिर आ भी न सकूँ।
ज़ह्फ मिलता ही नहीं मुझको, सितमगर वर्नः,
क्या क़सम है तेरे मिलनेकी कि खा भी न सकूँ।

---

१ हृदय-व्यथा, २. ज्ञान-सीमा, ३ उपास्य, ४. ज्ञानी, दृष्टि रखनेवाले, ५. दिगादर्शक, ६ सूर्यके दृष्टि-खण्ड (किरणे), ७. रोशनदान, ८ घरको वीरान कर देनेवाले प्रेमसे ही अस्तित्वकी शोभा है, ९ दीपरहित, १०. मुट्ठीभर घास, ११ भट्ठी।

[५२]

क़र्ज़की पीते थे मय, लेकिन समझते थे, कि हाँ,
रंग लायेगी हमारी फ़ाक़:मस्ती एक दिन।
नग़महाए ग़मको भी, ऐ दिल ग़नीमत जानिए,
बेसदा हो जायगा यह साज़े हस्ती एक दिन।

[५३]

किस मुँहसे शुक्र कीजिए, इस लुत्फ़े ख़ास[1] का,
पुरसिश[2] है और पाये सुख़न[3] दरमियाँ नहीं।
बोसः नहीं, न दीजिए, दुश्नाम[4] ही सही,
आख़िर ज़बाँ तो रखते हो तुम, गर दहाँ[5] नहीं।
है नंगे सीनः[6], दिल अगर आतशकदः[7] न हो,
है आ'रे दिल[8], नफ़स अगर आज़रफ़िशाँ[9] नहीं।

[५४]

कहते हैं, जीते हैं उम्मीद प लोग,
हमको जीनेकी भी उम्मीद नहीं।

[५५]

जहाँ तेरा नक़्शे क़दम[10] देखते हैं,
ख़ियाबाँ-ख़ियाबाँ[11] इरम[12] देखते है।

---

१. विशेष कृपा, २. पूछ-ताछ, ३. वाणीके चरण, ४ गाली, ५. छोटा (सुन्दर) मुँह, ६. वक्षके लिए लज्जाकी बात, ७. अग्निशाला, ८. दिलके लिए लज्जा, ९, अग्निवर्षक, ज्वालामुखी, १०. चरण-चिह्न, ११. क्यारी-क्यारी, १२. नन्दन-कानन।

तमाशा कि ऐ महे आईनःदारी[1],
तुझे किस तमन्नासे हम देखते हैं।

[५६]

ता फिर न इन्तिज़ारमें नींद आये उम्र भर,
आनेका उहद कर गये, आये जो ख़्वाबमें।
क़ासिद[2] के आते-आते, खत इक और लिख रखूँ,
मैं जानता हूँ, जो वह लिखेंगे जवाबमें।
है तेवरी चढ़ी हुई, अन्दर निक़ाबके,
है इक शिकन पड़ी हुई, तर्फ़े निक़ाब[3] में।
लाखों लगाव, एक चुराना निगाहका,
लाखों बनाव, एक बिगड़ना इताब[4] में।

[५७]

जाँ क्यों निकलने लगती है तनसे दमे समाअ[5],
गर वह सदा[6] समाई है चंगो[7] रबाब[8] में।
रौ[9] में है रख़्शे-उम्र[10], कहाँ देखिए, थमे,
नै हाथ बाग़पर है न पा है रिकाबमें।
अस्ले[11] शुहूदो[12] शाहिदो[13] मशहूद[14] एक है,
हैराँ हूँ, फिर मुशाहिदः[15] है किस हिसाबमें।

---

१ अपने श्रृङ्गारमे लीन, २ पत्र-वाहक, ३ निकावके कोनेमे, ४. क्रोध. ५ गान-श्रवणके समय, ६ ध्वनि ७ एक वाद्य, ८ सितार, ९ गति, १०. जीवन-अश्व, ११ मूल, १२. उपस्थित, १३. प्रत्यक्षदर्शी, १४. दर्शनीय, (११–१२–१४ साधक और साध्यकी अवस्थाएँ है), १५ दृश्य, देखना, अवलोकना।

है मुश्तमिल नुमूदे सुवर[1] पर वजूदे बह्र[2]
याँ क्या धरा है क़तरः ओ मौजो हुबाब[3] में।
शर्म इक अदाए नाज़ है, अपने ही से सही,
हैं कितने बेहिजाब, कि हैं यों हिजाबमें।
आराइशे जमाल[4] से फ़ारिग़ नहीं हनोज़,
पेशे नज़र है आइनः दाइम निक़ाबमें।
है ग़ैबे-ग़ैब[5], जिसको समझते हैं हम शुहूद,
हैं ख़्वाबमें हनोज़, जो जागे हैं ख़्वाबमें।

[५८]

हैराँ हूँ, दिलको रोऊँ, कि पिटूँ जिगरको मैं,
मक़दूर[6] हो, तो साथ रखूँ नौहःगर[7] को मैं।
छोड़ा न रश्कने, कि तेरे घरका नाम लूँ,
हर इकसे पूछता हूँ, कि जाऊँ किधरको मैं।
चलता हूँ थोड़ी दूर, हर-इक तेज़रौके साथ,
पहचानता नहीं हूँ अभी राहबरको मैं।
ख़्वाहिशको अहमक़ोंने, परस्तिश[8] दिया क़रार,
क्या पूछता हूँ उस बुते बेदाद[9]गरको मैं।
फिर बेख़ुदीमें भूल गया, राहे कूए यार[10],
जाता वगर्नः एक दिन अपनी ख़बरको मैं।

---

१ रूपाभिव्यक्तिमे सम्मिलित है, २ सागरका अस्तित्व, ३ विन्दु, तरंग और बुद्बुद, ४ सौन्दर्य-शृङ्गार, ५. परोक्षका परोक्ष, ६. सामर्थ्य, ७. शोक मनानेवाला, ८. पूजा, ९ जालिम मा'शूक, १० प्रियकी गलीका मार्ग।

[५९]

मैं जो कहता हूँ, कि हम लेंगे क़यामतमें तुम्हें,
किस रऊनत[1] से वह कहते है कि हम हूर नहीं।

[६०]

दोनों जहान देके, वह समझे, यह ख़ुश रहा,
याँ आ पड़ी यह शर्म, कि तकरार क्या करें।
थक-थकके, हर मक़ाम प दो-चार रह गये,
तेरा पता न पायें, तो नाचार क्या करें।
क्या शमअके नहीं है हवाख़्वाह[2] अह्ले बज़्म,
हो ग़म ही जाँगुदाज़[3], तो ग़मख़्वार क्या करें।

[६१]

यह हम जो हिज्रमें, दीवारो दरको देखते हैं,
कभी सबाको, कभी नामःबरको देखते हैं।
वह आयें घरमें हमारे, खुदाकी क़ुदरत है,
कभी हम उनको, कभी अपने घरको देखते हैं।

[६२]

आहका किसने असर देखा है,
हम भी इक अपनी हवा बाँधते हैं।*
तेरी फ़ुर्सतके मुक़ाबिल, ऐ उम्र,
बर्क़को पा ब हिना[4] बाँधते हैं।

---

१ गर्व, २. शुभचिन्तक, ३ प्राण-लेवा, ४. मेहदी-रंजित चरण (गतिहीन)।

* उर्दूमे वर्णनको मजमून बाँधना कहते है। हवा बाँधनाका अर्थ धाक बांधना, डूनकी लेना है।

[६३]

क्यों गर्दिशे मुदाम[1] से घबरा न जाये दिल,
इंसान हूँ, पियालः वो साग़र नहीं हूँ मैं।†
यारब' ज़मानः मुझको मिटाता है किसलिए,
लौहे जहाँ[2] प हर्फ़े मुक़र्रर[3] नहीं हूँ मैं।
ग़ालिब, वज़ीफ़ःख़्वार हो, दो शाहको दुआ,
वह दिन गये कि कहते थे, नौकर नहीं हूँ मैं।

[६४]

सब कहाँ, कुछ लालः ओ गुलमें नुमायाँ हो गयीं,
ख़ाकमें क्या सूरतें होंगी, कि पिन्हाँ[4] हो गयीं।
थीं बनातुन्ना'श गर्दू[5], दिनको पर्देमें निहाँ,
शबको उनके जीमें क्या आई, कि उरियाँ हो गयीं।
जूए खूँ आँखोंसे बहने दो, कि है शामे फ़िराक़,
मैं यह समझूँगा, कि शमएँ दो फ़रोज़ाँ[6] हो गयीं।
नींद उसकी है, दिमाग़ उसका है, रातें उसकी हैं,
तेरी ज़ुल्फ़ें जिसके बाज़ूपर, परीशाँ हो गयीं।
वह निगाहें क्यों हुई जाती हैं, यारब, दिलके पार,
जो मेरी कोताहिए क़िस्मतसे मिज़्गाँ हो गयीं।

---

१. सदाके चक्कर (परीशानी), २ संसार-पृष्ठ, ३. दुबारा लिखा (फ़ालतू) अक्षर, ४. विलीन, ५ सप्तर्षि-मण्डल, ६ दीप्त।

† प्राचीन कालमे सारी महफिलके लोग एक ही मधु-पात्रसे पीते थे इसलिए वह निरन्तर घूमता रहता था।

जाँफ़िज़ा है बादः, जिसके हाथमें जाम आ गया,
सब लकीरें हाथकी, गोया रगेजाँ हो गयीं।
हम मुव्वहिद[1] है, हमारा केश[2] है, तर्केरुसूम[3],
मिल्लतें जब मिट गयीं, अज्जाए ईमाँ[4] हो गयीं।
रंजसे खूगर[5] हुआ इंसाँ, तो मिट जाता है रंज,
मुश्किलें मुझपर पड़ीं इतनी, कि आसाँ हो गयीं।

[६५]

मिलना तेरा अगर नहीं आसाँ, तो सहल है,
दुश्वार तो यही है, कि दुश्वार भी नहीं।
इस सादगी प कौन न मर जाये, ऐ ख़ुदा,
लड़ते है और हाथमें तलवार भी नहीं।

[६६]

दिल ही तो है, न संगो खिश्त[6], दर्दसे भर न आये क्यों,
रोयेंगे हम हज़ार बार, कोई हमें सताये क्यों?
दैर[7] नहीं, हरम[8] नहीं, दर[9] नहीं, आस्ताँ[10] नहीं,
बैठे है रहगुज़र[11] प हम, कोई हमें उठाये क्यों?
जब वह जमाले दिलफ़रोज़[12], सूरते मेहरे नीमरोज़[13],
आप ही हो नज़ारः सोज़[14] पर्देमें मुँह छुपाये क्यों?

---

१ सृष्टिकी एकतामे विश्वास रखनेवाला, २ ढग, धर्म, ३ परम्परा-त्याग, ४ आस्थाके अंग, ५ अभ्यस्त, ६ पत्थर-ईंट, ७ मन्दिर, ८ मस्जिद, का'ब, ९ द्वार, १० चौखट, ११ मार्ग, १२ दिलको प्रकाशित करनेवाला रूप, १३ मध्याह्नके सूर्य-समान, १४ दृष्टिको जलानेवाला।

दश्नःए ग़मज़ः[1] जाँसिताँ,[2] नावके नाज़ बेपनाह[3],
तेरा ही अक्से रुख सही, सामने तेरे आये क्यों ?
वाँ वह ग़ुरूरे इज़्ज़ोनाज़[4], याँ यह हिजाबे पासे वज़अ[5],
राहमें हम मिलें कहाँ, बज़्ममें वह बुलाये क्यों ?

[६७]

मैंने कहा कि, बज़्मे नाज़[6] चाहिए ग़ैरसे, तिही[7],
सुनके सितम ज़रीफ़[8]ने मुझको उठा दिया, कि यों ।
मुझसे कहा जो यारने, जाते हैं होश किस तरह,
देखके मेरी बेख़ुदी, चलने लगी हवा, कि यों ।
गर तेरे दिलमें हो खयाल, वस्लमें शौक़का ज़वाल[9],
मौज मुहीते आब[10] में, मारे है दस्तो पा, कि यों ।

रदीफ़ 'वाव' :

[६८]

हसदसे दिल अगर अफ़सुर्दः[11] है गर्मे तमाशा हो,
कि चश्मे तंग[12], शायद कसरते नज़्ज़ारः[13] से वा हो ।

---

१ कटाक्ष-कटारी, २ प्राणलेवा, ३. गर्वपूर्ण सौन्दर्यका बाण जिससे रक्षा सम्भव नहीं, ४. अपनी शानका अभिमान, ५ अपनी परम्परा रखनेकी लज्जा, ६ मा'शूककी महफिल, ७. रिक्त, ८ अत्याचारमे भी परिहास करनेवाला, ९. पतन, ह्रास, १०. जलपरिधि, ११ खिन्न, १२. संकीर्ण नयन, १३. दृश्यके आधिक्य ।

अगर वह सरोक़द, गर्मे ख़िरामे नाज़[1] आ जावे,
कफ़े हर खाके गुलशन[2] शक्ले कुमरी नालः फ़र्सा हो[3]।

[६९]

ता'अत[4] में ता रहे न मय ओ बाँगबी[5] की लाग,
दोज़खमें डाल दो कोई लेकर बिहिश्तको।
हूँ मुनहरिफ़[6] न क्यों, रहो रस्मे सवाबसे,
टेढा लगा है क़त, क़लमे सर नविश्त[7] को।

[७०]

है आदमी बजाए खुद इक महशरे ख़याल[8],
हम अंजुमन समझते है, खल्वत[9] ही क्यों न हो।

[७१]

वफ़ादारी, बशर्ते उस्तुवारी[10], अस्ले ईमाँ[11] है,
मरे बुतखानःमें, तो का'बेमें गाड़ो बरहमनको।
शहादत थी मेरी क़िस्मतमें, जो दी थी यह खू मुझको,
जहाँ तलवारको देखा, झुका देता था गर्दनको।
न लुटता दिनको, तो कब रातको यों बेखबर सोता,
रहा खटका न चोरीका, दुआ देता हूँ रहज़न[12] को।

---

१. मन्द मन्थर गतिवाला, २ बागको प्रत्येक मुट्ठीभर मिट्टी, ३ फाख्तेकी तरह अन्तर्नाद कर उठे अर्थात् हजार जानसे आशिक हो जाये, ४ पूजा, ५ मदिरा और मधु, ६ विद्रोही, ७ भाग्यलेखनी, ८. कल्पनाका प्रलय, ९. एकान्त, १० स्थायित्वकी शर्तके साथ वफ़ादारी, ११ धर्मका मूल, १२ लुटेरा।

[७२]

धोता हूँ जब मैं पीनेको, उस सीमतन[1] के पाँव,
रखता है, ज़िदसे, खेंचके बाहर लगनके पाँव।
अल्लह रे ज़ौक़े दश्तनवर्दी, कि बा'दे मर्ग,
हिलते हैं ख़ुद-बख़ुद मेरे, अन्दर कफ़नके पाँव।
शबको किसीके ख़्वाबमें आया न हो कहीं,
दुखते हैं आज उस बुते नाज़ुक बदनके पाँव।

[७३]

वाँ पहुँचकर जो ग़श आता पैहम[2] है हमको,
सदरह[3] आहंगे ज़मीं बोसे क़दम[4] है हमको।
दिलको मैं, और मुझे दिल, मह्वे वफ़ा रखता है,
किस क़दर ज़ौक़े गिरफ़्तारिए हम है हमको।
तुम वह नाज़ुक, कि ख़मोशीको फ़ुग़ाँ कहते हो,
हम वह आजिज़, कि तग़ाफ़ुल भी सितम है हमको।

[७४]

तुम जानो, तुमको ग़ैरसे जो रस्मो-राह हो,
मुझको भी पूछते रहो, तो क्या गुनाह हो।
उभरा हुआ निक़ाबमें है उनके, एक तार,
मरता हूँ मैं, कि यह न किसीकी निगाह हो।
सुनते हैं जो बिहिश्तकी ता'रीफ़, सब दुरुस्त,
लेकिन ख़ुदा करे, वह तेरी जल्व:गाह हो।

---

१. चन्द्रमुखी, रजत कान्तिवाली, २ निरन्तर (पैहम), ३ सौ बार,
४. चरण चूमनेके लिए जमीनपर झुकनेकी आकांक्षा।

[७५]

किसीको देके दिल कोई नवासंजे फ़ुग़ाँ[1] क्यों हो,
न हो जब दिल ही सीनेमें, तो फिर मुँहमें ज़बाँ क्यों हो।
वफ़ा कैसी, कहाँका इश्क़, जब सर फोड़ना ठहरा,
तो फिर, ऐ संगे-दिल, तेरा ही संगे आस्ताँ क्यों हो।
यह कह सकते हो, हम दिलमें नहीं है, पर यह बतलाओ,
कि जब दिलमें तुम्हीं तुम हो, तो आँखोंसे निहाँ क्यों हो।

[७६]

रहिए अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो,
हमसुखन[2] कोई न हो और हमज़ुबाँ[3] कोई न हो।
बेदरो दीवार-सा इक घर बनाया चाहिए,
कोई हमसायः न हो और पास्बाँ[4] कोई न हो।
पड़िए गर बीमार, तो कोई न हो तीमारदार,
और अगर मर जाइए, तो नौःख़्वाँ[5] कोई न हो।

रदीफ़ 'हे' :

[७७]

है सब्ज़ज़ार[6] हर दरो दीवारे ग़मकदः[7],
जिसकी बहार यह हो, फिर उसकी ख़िज़ाँ न पूछ।
नाचार बेकसीकी भी हसरत उठाइए,
दुश्वारिए रह ओ सितमे हमरहाँ[8] न पूछ।

१ रोदनका स्वर उत्पन्न करनेवाला, २ बात करनेवाला, ३ अपनी भाषा बोलनेवाला, ४. पहरेदार, ५ रोनेवाला, ६. हरीतिमा, ७. शोक-पूर्ण गृह-संसार, ८ सहयात्रियोंके अत्याचार।

रदीफ़ 'इये' :

[७८]

सीखे हैं महरुख़ों[1] के लिए हम मुसव्विरी[2],
तक़रीब कुछ तो बहे मुलाकात चाहिए।
मयसे ग़रज़ निशात है किस रूसियाह[3] को,
इक गूनः[4] बेख़ुदी मुझे दिन-रात चाहिए।

[७९]

घरमें था क्या, कि तेरा ग़म उसे ग़ारत करता,
वह जो रखते थे हम इक हसरते ता'मीर[5], सो है।

[८०]

ग़मे दुनियासे, गर पाई थी फ़ुर्सत सर उठानेकी,
फ़लकका देखना, तक़रीब[6] तेरे याद आनेकी।
उन्हें मंजूर अपने ज़ख़्मियोंका देख आना था,
उठे थे सैरे गुलको, देखना शोख़ी बहानेकी।
हमारी सादगी थी, इल्तिफ़ाते नाज़[7] पर मरना,
तेरा आना न था, ज़ालिम, मगर तमहीद[8] जानेकी।

[८१]

दर्दसे मेरे है तुझको बेक़रारी हाय-हाय,
क्या हुई ज़ालिम तेरी [9]ग़फ़लतशि'आरी हाय-हाय।

---

१. चन्द्रवदनियो, २. चित्रकारी, ३. कृष्णमुख, पापी, ४. किंचित्, ५. निर्माणकी कामना, ६. कारण, ७. माशूककी कृपा; ८. भूमिका, ९. असावधान आचरण।

तेरे दिलमें गर, न था आशोबे ग़मका हौसलः[1],
तूने फिर क्यों की थी मेरी ग़मगुसारी हाय-हाय।
क्यों मेरी ग़मख़्वारगीका तुझको आया था ख़याल,
दुश्मनी अपनी थी मेरी दोस्तदारी हाय-हाय।
उम्र भरका तूने पैमाने वफ़ा बाँधा तो क्या,
उम्रको भी तो नहीं है पायदारी हाय-हाय।
शर्मे रुसवाईसे, जा छुपना निक़ाबे ख़ाकमें,
ख़त्म है उल्फ़तकी तुझपर पर्दःदारी हाय-हाय।
हाथ ही तेग़आज़्माका कामसे जाता रहा,
दिल प इक लगने न पाया ज़ख़्मेकारी हाय-हाय।
किस तरह काटे कोई, शबहाए तारे बर्शकाल[2]
है नज़र ख़ूकर्दए अख़्तरशुमारी[3] हाय-हाय।
गोश महजूरे पयाम[4] ओ चश्म महरूमे जमाल[5],
एक दिल, तिसपर यह नाउम्मीदवारी हाय-हाय।
इश्कने पकड़ा न था, 'ग़ालिब', अभी वहशतका[6] रंग,
रह गया, था दिलमें जो कुछ ज़ौकेख़्वारी[7] हाय-हाय।

[८२]

हस्तीके मत फ़रेबमें आजाइयो, असद,
आलम तमाम हल्क़:ए दामे ख़याल[8] है।

---

१ गमकी परीशानी उठानेका साहस, २ बरसातकी अँधेरी रातें, ३. तारे गिननेकी अभ्यस्त, ४ सन्देशसे वंचित कान, ५. रूपसे वंचित नयन, ६. पागलपन, ७ असम्मानकी अभिरुचि, ८ कल्पना-जालका घेरा।

[८३]

जी जले ज़ौके फ़ना[१] की नातमामी पर न क्यों,
हम नहीं जलते, नफ़स हरचंद आतशबार[२] है।
आगसे, पानीमें बुझते वक़्त, उठती है सदा,
हर कोई दरमाँदगी[३] में नालेसे नाचार है।
आँखकी तस्वीर सरनामे प खेंची है, कि ता,
तुझ प खुल जावे, कि इसको हसरते दीदार[४] है।

[८४]

इश्क़ मुझको नहीं, वहशत ही सही,
मेरी वहशत, तेरी शोहरत ही सही।
क़तअ कीजे न तअल्लुक़ हमसे,
कुछ नहीं है, तो अदावत ही सही।
हम कोई तर्के वफ़ा करते हैं!
न सही इश्क़ मुसीबत ही सही।
यारसे छेड़ चली जाये, असद,
गर नहीं वस्ल, तो हसरत ही सही।

[८५]

ढूँढ़े है उस मुग़न्निए आतश नफ़स[५] को जी,
जिसकी सदा हो जल्वःए बर्क़ेफ़ना[६] मुझे।

---

१. मृत्युकी उत्कण्ठा, २. अग्निवर्षक, ३. क्लेश, ४. दर्शनेच्छा,
५. आग लगानेके स्वरमे गानेवाला गायक, ६. मृत्युकी विजलीकी छवि।

मस्तानः तय करूँ हूँ रहे वादिए ख़याल[1],
[2]ता बाज़गश्त[3] से न रहे मुद्द'आ मुझे।
खुलता किसी प क्यों, मेरे दिलका मु'आमलः,
शेरोंके इन्तिखाबने रुस्वा किया मुझे।

[८६]

जिन्दगी अपनी जब इस शक्लसे गुजरी, 'ग़ालिब',
हम भी क्या याद करेंगे कि खुदा रखते थे।

[८७]

नज़्ज़ारः क्या हरीफ़ हो, उस वर्क़े हुस्न[4] का
जोशे बहार, जल्वेको जिसके निक़ाब है।
मैं नामुराद दिलकी तसल्लीको क्या करूँ,
माना, कि तेरे रुखसे निगह कामयाब है।
गुजरा असद, मसर्रते पैग़ामे यार[5]से,
क़ासिद प मुझको रश्के सवालो जवाब है।

[८८]

देखना क़िस्मत, कि आप अपने प रश्क आ जाये है,
मै उसे देखूँ, भला कब मुझसे देखा जाये है।
हाथ धो दिलसे, यही गर्मी गर अन्देशे[6]में है,
आबगीनः[7], तुन्दिए सहबा[8]से पिघला जाये है।

---

१ कल्पनाकी घाटियोके मार्ग, २ जिससे, ३ प्रत्यावर्त्तनमे, लौटते समय, ४ सौन्दर्य-विद्युत्, ५ प्रियके सन्देशके आह्लादसे, ६ चिन्ता, ७. शीशेका पात्र (दिल), ८. मदिराकी तीक्ष्णता।

ग़ैरको, यारब, वह क्योंकर मनए गुस्ताख़ी[1] करे,
गर हया भी उसको आती है तो शर्मा जाये है।
शौक़को यह लत, कि हर दम नालः खैंचे जाइए,
दिलकी वह हालत, कि दम लेनेसे घबरा जाये है।
गरचः है तर्ज़े तग़ाफ़ुल[2], पर्दःदारे राज़े इश्क़[3],
पर हम ऐसे खोये जाते हैं, कि वह पा जाये है।
होके आशिक़, वह परीरुख़, और नाज़ुक बन गया,
रंग खुलता जाये है, जितना कि उड़ता जाये है।
नक़्शको उसके, मुसव्विर पर भी क्या-क्या नाज़ हैं,
खैंचता है जिस क़दर, उतना ही खिंचता जाये है।

[८६]

देखना तक़रीरकी लज़्ज़त, कि जो उसने कहा,
मैंने यह जाना, कि गोया यह भी मेरे दिलमें है।
बस, हुजूमे नाउमीदी, ख़ाकमें मिल जायगी,
यह जो इक लज़्ज़त हमारी सइए बेहासिल[4]में है।
जल्वज़ारे आतशे दोज़ख़[5], हमारा दिल सही,
फ़ितनए शोरे क़यामत[6], किसकी आबोगिल[7]में है।

१. धृष्टतासे मना करना, २. यह उपेक्षाका ढग, ३. प्रेम-रहस्यको छिपानेवाला, ४. निष्फल प्रयत्न, ५. नरककी अग्निसे प्रकाशित, ६. प्रलयके शोरका फ़ितना, ७ पानी-मिट्टी (शरीर)।

[६०]

दिलसे तेरी निगाह जिगरतक उतर गयी,
दोनोंको इक अदामें रज़ामन्द कर गयी।
देखो तो, दिलफ़रेबिए अन्दाज़े नक़्शे पा[1],
मौजे ख़िरामे यार[2] भी, क्या गुल कतर गयी[3]।
हर बुल्हवस[4]ने हुस्नपरस्ती[5] श'आर[6] की,
अब आबरूए शेवःए अहले नज़र[7] गयी।
नज़्ज़ारे[8]ने भी, काम किया वाँ निक़ाबका,
मस्तीसे हर निगह तेरे रुख़पर बिखर गयी।

[६१]

कोई दिन, गर जिन्दगानी और है,
अपने जीमें हमने ठानी और है।
देके ख़त, मुँह देखता है नामःबर,
कुछ तो पैग़ामे ज़बानी और है।

[६२]

कोई उम्मीद बर नहीं आती,
कोई सूरत नज़र नहीं आती।
मौतका एक दिन मुअय्यन[9] है,
नींद क्यों रातभर नहीं आती।

---

१. चरण-चिह्नकी मनमोहकता, २ प्रियकी मथरगतिकी तरंग, ३. फूल बिखेर गयी, ४ लोभी, ५ सौन्दर्योपासना, ६ ग्रहणकी, ७. दृष्टि रखनेवालोके आचरणका सम्मान, ८. दर्शन, दृश्य, ९. निश्चित।

आगे आती थी हाले दिल प हँसी,
अब किसी बातपर नहीं आती।
जानता हूँ सवाबे ताअतो ज़ुह्द,
पर तबीअत इधर नहीं आती।
है कुछ ऐसी ही बात, जो चुप हूँ,
वर्नः क्या बात कर नहीं आती।
हम वहाँ हैं, जहाँ से हमको भी,
कुछ हमारी ख़बर नहीं आती।
मरते हैं आरज़ूमें मरनेकी,
मौत आती है, पर नहीं आती।
का'बः किस मुँहसे जाओगे 'ग़ालिब',
शर्म तुमको मगर नहीं आती।

[६३]

दिले नादाँ, तुझे हुआ क्या है,
आख़िर इस दर्दकी दवा क्या है।
हम है मुश्ताक़[1] और वह बेज़ार[2],
या इलाही, यह माजरा क्या है।
मैं भी मुँहमें ज़बान रखता हूँ,
काश, पूछो, कि मुद्द'आ क्या है।

---

१. उत्सुक, २. रुष्ट,

क़ता

जब कि तुझ बिन नहीं कोई मौजूद,
फिर यह हंगामः ऐ ख़ुदा क्या है।
यह परीचेहरः लोग कैसे हैं,
गमजः-ओ-इश्वः-ओ-अदा[1] क्या है।
शिकने ज़ुल्फ़े अंबरीं[2] क्यों है,
निगहे चश्मे सुर्मःसा[3] क्या है।
सब्ज़ः-ओ-गुल कहाँसे आये हैं,
अब्र क्या चीज़ है, हवा क्या है।
हमको उनसे वफ़ाकी है उम्मीद,
जो नहीं जानते, वफ़ा क्या है।
जान तुमपर निसार करता हूँ,
मै नहीं जानता, दुआ क्या है।

[६४]

है साइक़ः[4] ओ शोलः[5] ओ सीमाब[6] का आलम,
आना ही समझमें मेरी आता नहीं, गो आये।
जल्लादसे डरते हैं, न वाइज़से झगड़ते,
हम समझे हुए हैं उसे, जिस भेसमें जो आये।
हाँ अहले तलब, कौन सुने ता'नए नायाफ़्त[7],
देखा, कि वह मिलता नहीं, अपने ही को खो आये।

---

१ कटाक्ष और हाव-भाव, २. अम्बर-गन्धमयी अलकोके घूंघट, ३ सुरमा (अजन)-रजित नयनोकी चितवन, ४. बिजली, ५. ज्वाला; ६. पारद, ७ वाञ्छित वस्तु न मिलनेका ता'ना।

[६५]

हस्ती हमारी, अपनी फ़नापर दलील[1] है,
याँ तक मिटे, कि आप हम अपनी क़सम हुए।
अहले हवसकी फ़तह है तर्के नबर्दे इश्क[2]
जो पाँव उठ गये वही उनके अलम[3] हुए।
छोड़ी, असद न हमने गदाईमें दिल्लगी,
सायल हुए, तो आशिक़े अहले करम हुए।

[६६]

ज़ुल्मतकदः[4] में मेरे शबे ग़मका जोश[5] है,
इक शमअ है दलीले सेहर, सो खमोश है।
ने मुज़्दए विसाल[6], न नज़्ज़ार ए जमाल[7],
मुद्दत हुई, कि आश्तिए चश्मोगोश[8] है।
दीदार बादः, हौसलः साक़ी, निगाह मस्त,
बज़्मे खयाल[9], मयकदए बेख़रोश[10] है।

क़तअ

ए ताज़ः वारिदाने बिसाते हवाए दिल[11],
ज़िन्हार, अगर तुम्हें हवसे नायो नोश[12] है।

---

१. प्रमाण, २. लोलुपोंकी विजय प्रेमके संघर्षका परित्याग है, ३. झण्डा, ४. तिमिराच्छन्न गृह, ५ गमकी रातका तूफान यानी अँधेरा ही अँधेरा, ६. मिलनका सन्देश, ७ रूप-दर्शन, ८. नयन एवं कानोंकी मैत्री, ९. कल्पनाकी महफ़िल, १०. नीरव मद्यशाला, ११ हृदयकी कामनाओंकी महफिलमें नये आनेवालो, १२. सुनने और पीनेकी लिप्सा, ।

देखो मुझे, जो दीदए इब्रतनिगाह[१] हो,
मेरी सुनो, जो गोशे नसीहत नियोश[२] है।
साक़ी, बजल्वः दुश्मने ईमानो आगही[३]
मुतरिब[४], बनग़मः[५], रहज़ने तमकीनो होश[६] है।
या शबको देखते थे, कि हर गोशए बिसात[७],
दामाने बाग़बानो कफ़े गुलफ़रोश[८] है।
लुत्फ़े खिरामे साक़िओ ज़ौक़े सदाए चंग[९]
यह जन्नते निगाह[१०], वह फ़िर्दौसे गोश[११] है।
या सुबहदम जो देखिए आकर, तो बज़्ममें,
ने वह सुरूरो सोज़[१२], न जोशो ख़रोश है।
दाग़े फ़िराक़े सोहबते शबकी जली हुई[१३],
इक शमअ रह गयी है, सो वह भी ख़मोश है।

[६७]

देते हैं जन्नत, हयाते दह्र[१४] के बदले,
नश्शः बअन्दाज़े खुमार[१५] नहीं है।

---

१. शिक्षा लेनेवाली आँख, २. सदुपदेशपर ध्यान देनेवाले कान, ३. अपनी छविके कारण साकी ईमान व ज्ञान ले लेता है, ४. गायक, ५ संगीत द्वारा, ६. मनकी शान्ति और बुद्धिको लूट लेता है, ७. फर्शका हरएक कोना, ८. मालीका अचल और फूल बेचनेवालेकी हथेली, ९ माशूक (साक़ी) की मथर गति और वाद्य-ध्वनि, १०. स्वर्ग-नयन, ११. स्वर्ग-श्रवण, १२ खुशी और गर्मी, १३. रातकी महफिलके विरहके दागसे जली हुई, १४. इस जगत्के जीवन, १५. मदिरालसके बराबर नशा।

गिरियः निकाले है तेरी बज़्मसे मुझको,
हाय, कि रोने प इख़्तियार नहीं है।

[६८]

जिस बज़्ममें, तू नाज़से, गुफ़्तारमें आवे[1]
जाँ[2], काल्बुदे[3] सूरते दीवारमें आवे।
सायेकी तरह साथ फिरें सरो सनोबर,
तू इस क़दे दिलकशसे, जो गुलज़ारमें आवे।
उस चश्मे फुसूँगर[4] का, अगर पाये इशारा,
तूती[5] की तरह आइनः गुफ़्तारमें आवे।
काँटोंकी ज़बाँ सूख गयी प्याससे, यारब[6]!
इक आबलः पा[7] वादिए पुरख़ार[8] में आवे।
तब चाके गिरेबाँका मज़ा है, दिले नादाँ,
जब इक नफ़स उलझा हुआ, ह र तारमें आवे।

[६९]

और बाज़ारसे ले आये, अगर टूट गया,
साग़रे जम[9] से मेरा जामे सिफ़ाल[10] अच्छा है।
उनके देखेसे, जो आजाती है मुँहपर रौनक़,
वह समझते हैं कि बीमारका हाल अच्छा है।

---

१. बात करे (ग़ालिबके समयमे यह रूप प्रचलित था; अब नही है।), २. प्राण, ३ शरीर, ढाँचा, ४. जादू भरे नयन, ५. तूतीको आइने-के सामने बैठकर बोलना सिखाते है, ६ हे ईश्वर, ७. छाले पड़े चरणवाला, ८. कण्टकमय घाटी, ९ ईरानके प्राचीन सम्राट् जमशेदका मधुपात्र, १०. मिट्टीका प्याला।

हमको मालूम है, जन्नतकी हक़ीक़त, लेकिन,
दिलके खुश रखनेको, ग़ालिब, यह खयाल अच्छा है।

[१००]

एक हंगामे प मौक़ूफ़, है घरकी रौनक़,
नौहःए ग़म ही सही, नग़मए शादी न सही।
न सताइश[1] की तमन्ना, न सिले[2] की परवा,
गर नहीं है मेरे अशआरमें मा'नी न सही।

[१०१]

खुदाके वास्ते, दाद इस जुनूने शौक़की देना,
कि उसके दर प पहुँचते हैं नामःबरसे हम आगे।

[१०२]

हर एक बात प कहते हो तुम, कि तू क्या है,
तुम्हीं कहो कि यह अन्दाज़े गुफ़्तगू[3] क्या है।
न शो'लेमें यह करिश्मः[4], न बर्क़में यह अदा,
कोई बताओ, कि वह शोख़े तुन्द खू[5] क्या है।
जला है जिस्म जहाँ, दिल भी जल गया होगा,
कुरेदते हो जो अब राख, जुस्तजू क्या है।
रगोंमें दौड़ते फिरनेके, हम नहीं क़ायल,
जब आँख हीसे न टपका, तो फिर लहू क्या है।

---

१. प्रशंसा, २ पुरस्कार, ३ बातचीतकी रीति, ४ चमत्कार, ५ तीव्र स्वभाववाला चपल (मा'शूक),

वह चीज़, जिसके लिए हमको हो, बिहिश्त[1] अजीज़,
सिवाय बाद:ए गुलफ़ामे मुश्कबू[2] क्या है।

[१०३]

क़हृ हो, या बला हो, जो कुछ हो,
काशके, तुम मेरे लिए होते।
मेरी क़िस्मतमें ग़म गर इतना था,
दिल भी, यारब, कई दिये होते।

[१०४]

ग़ैर लें महफ़िलमें, बोसे जामके
हम रहें यों तश्न:लब[3], [4]पैग़ामके।
ख़त लिखेंगे, गर्चे मतलब कुछ न हो,
हम तो आशिक़ हैं, तुम्हारे नामके।
रात पी ज़मज़म[5] प मय, और सुबह् दम,
धोये धब्बे जामए अहराम[6] के।
इश्क़ने, ग़ालिब निकम्मा कर दिया,
वर्न: हम भी आदमी थे कामके।

[१०५]

फिर इस अन्दाज़से बहार आई,
कि हुए मेह्रो मह[7] तमाशाई।

---

१. स्वर्ग, २. कस्तूरी गन्धमयी फूलों-सी रगीन मदिरा, ३ पिपासित अधर (प्यासे) ४ सन्देशके, ५ का'बेके निकट एक कुवाँ है। ६. का'बेकी परिक्रमा करते समय हाजियो-द्वारा शरीरपर लपेटा जानेवाला कपड़ा, ७ सूर्य-चन्द्र।

देखो, ऐ साकिनाने ख़ित्तःए ख़ाक[1],
इसको कहते है आलम आराई[2]।
कि ज़मीं हो गयी है सर ता सर[3]
रूकशे सतहे चर्खे मीनाई[4]।
सब्ज़ो[5] को जब कहीं जगह न मिली,
बन गया रूए आब[6] पर काई।
सब्ज़ः ओ गुलके देखनेके लिए,
चश्मे नर्गिसको दी है बीनाई[7]।
है हवामें शराबकी तासीर,
बादःनोशी[8] है बाद पैमाई[9]।

[१०६]

कब वह सुनता है कहानी मेरी,
और फिर वह भी ज़बानी मेरी।
कर दिया ज़ो'फ़[10] ने आज़िज़ ग़ालिब,
नंगे पीरी[11] है, जवानी मेरी।

[१०७]

अच्छा है सर अंगुश्ते हिनाई[12] का तसव्वुर[13],
दिलमें नज़र आती तो है, इक बूँद लहूकी।

---

१ धरतीके अधिवासियो, २ विश्वका शृंगार, ३. सम्पूर्ण, एक सिरेसे दूसरे सिरेतक, ४. नील गगनकी बराबरी करनेवाली, ५. हरीतिमा, ६ पानीके मुख, पानीकी सतह, ७ दृष्टि-ज्योति, ८ मद्यपान, ९ हवा-खाना (बेकार) १०. दुर्बलता, क्षीणता, ११. बुढापेको शर्मानेवाली, १२ मेहदी-रंजित उँगलीका सिरा, १३ ध्यान, कल्पना।

[१०८]

है वस्ल हिज्र, आलमे तमकीनोज़ब्त[१] में,
मा'शूक़े शोख़ो आशिक़े दीवानः चाहिए।

[१०९]

चाक मतकर जैब[२] बेअय्यामे-गुल[३],
कुछ उधरका भी इशारा चाहिए।
दोस्तीका पर्दः, है बेगानगी,
मुँह छुपाना हमसे छोड़ा चाहिए।
मुनहसिर मरने प हो, जिसकी उमीद,
नाउमीदी उसकी, देखा चाहिए।
ग़ाफ़िल, इन महतलअतों[४] के वास्ते,
चाहने वाला भी अच्छा चाहिए।
चाहते हैं खूबरूओंको असद,
आपकी सूरत तो देखा चाहिए।

[११०]

नुक्तःचीं[५] है, ग़मे दिल उसको सुनाये न बने,
क्या बने बात, जहाँ बात बनाये न बने[६]।
मैं बुलाता तो हूँ उसको, मगर ऐ जज़्बए दिल[७],
उस प बन जाये कुछ ऐसी, कि बिन आये न बने।

---

१. सन्तोष और आत्मनियन्त्रणकी दशामे, २. गला, ३. फूलोकी ऋतु (वसन्त) के विना, ४. चन्द्रमुखियों ५. छिद्रान्वेषी (मा'शूक), ६. मनोकामनाकी पूर्ति, ७. मनोभाव।

इस नज़ाकतका बुरा हो, वह भले हैं, तो क्या,
हाथ आवें, तो उन्हें हाथ लगाये न बने।
कह सके कौन, कि यह जल्व:गरी किसकी है,
पर्द: छोड़ा है वह उसने, कि उठाये न बने।
मौतकी राह न देखूँ, कि बिन आये न रहे,
तुमको चाहूँ, कि न आओ, तो बुलाये न बने।
बोझ वह सरसे गिरा है, कि उठाये न उठे,
काम वह आन पड़ा है, कि बनाये न बने।
इश्क़पर ज़ोर नहीं, है यह वह आतश 'ग़ालिब',
कि लगाये न लगे और बुझाये न बने।

[१११]

वह आके ख़्वाबमें, तस्कीने इज़्तिराब[१] तो दे,
वले[२] मुझे तपिशे दिल[३] मजाले ख़्वाब[४] तो दे।
करे है क़त्ल, लगावटमें तेरा रो देना,
तेरी तरह कोई तेग़े निगह[५] को आब[६] तो दे।
पिला दे ओकसे, साक़ी, जो हमसे नफ़रत है,
पियाल: गर नहीं देता, न दे, शराब तो दे।
'असद' खुशीसे मेरे हाथ-पाँव फूल गये,
कहा जो उसने, ज़रा मेरे पाँव दाब तो दे।

---

१. बेचैनीमे सान्त्वना, २. किन्तु, ३. दिलकी तपन, ४ सोने एवं स्वप्नकी ताकत, ५. दृष्टिकी तलवार, ६. पानी देना, चमकाना।

[११२]

ब तूफ़ाँ गाहे जोशे इज़्तिराबे शामे तनहाई[1],
शु'आए आफ़ताबे सुबहे महशर तारे बिस्तर है[2]।
कहूँ क्या दिलकी क्या हालत है, हिज्रे यारमें, ग़ालिब,
कि बेताबीसे, हर इक तारे बिस्तर ख़ारे बिस्तर है।

[११३]

ख़ुदा या, जज़्बए दिलकी मगर तासीर उल्टी है,
कि जितना खेंचता हूँ और खिंचता जाये है मुझसे।
उधर वह बदगुमानी है, इधर यह नातवानी है,
न पूछा जाये है उससे, न बोला जाये है मुझसे।
सँभलने दे मुझे, ऐ नाउमीदी, क्या क़यामत है,
कि दामाने ख़याले यार[3], छूटा जाये है मुझसे,
क़यामत है, कि होवे मुद्दईका हमसफ़र[4], ग़ालिब,
वह काफ़िर, जो खुदाको भी न सौंपा जाये है मुझसे।

[११४]

लाग़र[5] इतना हूँ, कि गर तू बज़्ममें जा दे मुझे,
मेरा जिस्मः, देखकर गर कोई बतलादे मुझे।
मुँह न दिखलावे, न दिखला, पर बअन्दाज़े इताब[6],
खोलकर पर्दः, ज़रा आँखें ही दिखला दे मुझे।

---

१. बेचैनीके तूफानसे भरी एकाकीपनकी विरह-सन्ध्या, २. बिस्तरका प्रत्येक तार प्रलय-प्रभातके सूर्यकी किरणके समान लगता है। ३. प्रियके ध्यानका आँचल, ४. सहयात्री, ५. क्षीण, दुबला, ६. ग़ुस्सेकी अदामें।

[११५]

बाज़ीचःए अत्फ़ाल[1] है दुनिया मेरे आगे,
होता है शबो रोज़[2] तमाशा, मेरे आगे।
मत पूछ कि क्या हाल है मेरा, तेरे पीछे,
तू देख, कि क्या रंग है तेरा मेरे आगे।
ईमाँ मुझे रोके है, तो खेंचे है मुझे कुफ़्[3],
का'बः मेरे पीछे है, कलीसा[4] मेरे आगे।
गो हाथको जुंबिश[5] नहीं, ऑखोंमें तो दम है,
रहने दो अभी साग़रो मीना[6] मेरे आगे।

[११६]

नहीं ज़रीयए राहत, जराहते पैकाँ[7],
वह ज़ख़्मे तेग़ है, जिसको कि दिलकुशा कहिए[8]।
नहीं निगार[9] को उल्फ़त[10], न हो, निगार तो है,
रवानिए रविशो मस्तिए अदा[11] कहिए।
नहीं बहारको फ़ुर्सत, न हो, बहार तो है,
तरावते चमनो ख़ूबिए हवा[12] कहिए।

---

१ बच्चोका खेल, २. रात-दिन, ३.अधर्म, ४. गिर्जाघर, ५. कम्पन, ६. मधुपात्रका और मधुकलश, ७. बाणका घाव चैनका, साधन नही है, ८ दिलको विकसित करनेवाला तो कृपाणका ही घाव है, ९. रूपसी, (प्रियतमा), १० प्रेम, ११ मस्तीसे भरी चालका ढग, १२. पुष्पोद्यान-की शीतलता और हवाकी खूबी।

[११७]

करने गये थे उससे, तग़ाफुल[1] का हम गिला,
की एक ही निगाह, कि बस ख़ाक हो गये।

[११८]

जब तक दहाने ज़ख़्म[2] न पैदा करे कोई,
मुश्किल, कि तुझसे राहे सुख़न वा करे कोई[3]।
सरबर्[4] हुई न वादए सब्रआज़मा[5] से उम्र,
फ़ुर्सत कहाँ, कि तेरी तमन्ना करे कोई।
हुस्ने फ़रोग़े शमए सुख़न[6] दूर है, असद,
पहले दिले गुदाख़्तः[7] पैदा करे कोई।

[११९]

इब्ने मरियम[8] हुआ करे कोई,
मेरे दुखकी दवा करे कोई।
बक रहा हूँ जुनूँमें क्या-क्या कुछ,
कुछ न समझे, खुदा करे कोई।
न सुनो, गर बुरा कहे कोई,
न कहो, गर बुरा करे कोई।

---

१. उपेक्षा, उदासीनता, २. घावका मुँह, ३. तुझसे बातचीतकी राह निकालना मुश्किल है, ४ कर्तव्यमुक्त होना, ५. सन्तोषकी परीक्षा लेनेवाला आश्वासन, ६ काव्य-प्रदीपके प्रकाशका सौन्दर्य, ७. द्रवित हृदय, ८. मरियम-पुत्र (ईसामसीह, जो लोगोंको नीरोग करते फिरते थे)।

रोक लो, गर ग़लत चले कोई,
बख़्श[1] दो, गर खता करे कोई।
कौन है, जो नहीं है हाजतमन्द,
किसकी हाजत रवा करे कोई।
क्या किया खिज्रने सिकन्दरसे[2],
अब किसे रहनुमा करे कोई।
जब तवक़्क़ो[3] ही उठ गयी, ग़ालिब,
क्यों किसीका गिला[4] करे कोई।

[१२०]

हज़ारों ख़्वाहिशें ऐसी, कि हर ख़्वाहिश प दम निकले,
बहुत निकले मेरे अरमान, लेकिन फिर भी कम निकले।
निकलना खुल्द[5] से आदम[6] का सुनते आये थे, लेकिन,
बहुत बे-आबरू होकर तेरे कूचेसे हम निकले।
मुहब्बतमें नहीं है फ़र्क़, जीने और मरनेका,
उसीको देखकर जीते हैं, जिस काफ़िर प दम निकले।

---

१. क्षमा, २ खिज्र—एक पैगम्बर है जो भूले-भटकोको रास्ता बताते है। कहा जाता है कि वह सिकन्दरको अमृतके झरनेपर ले गये और स्वयं अमृत पी लिया। सिकन्दरको वे आदमी दिखाये जो अमृत पीकर अमर हो गये थे। सिकन्दरने उनकी हालत देखी तो अमृत पीनेसे इन्कार कर दिया, ३ आसरा-भरोसा, ४ शिकायत, ५ स्वर्ग, ६ आदि पुरुष जैसे हिन्दुओमें आदि मनु थे वैसे ही बाइबिल और क़ुरानमे आदि पुरुष आदम थे। यह शैतानके बहकावेमे आ गये इसलिए (नारी हव्वा या ईवके साथ) स्वर्गसे निकाल दिये गये। इन्हीकी सन्तान आदमी है।

कहाँ मयख़ानेका दरवाज़ः, ग़ालिब और कहाँ वाइज़,
पर इतना जानते हैं, कल वह जाता था, कि हम निकले।

[१२१]

हूँ मैं भी तमाशाइए नैरंगे तमन्ना[1],
मतलब नहीं कुछ इससे, कि मतलब ही बर आवे।

[१२२]

सियाही जैसे गिर जावे दमे तहरीर काग़ज़पर,
मेरी क़िस्मतमें यों तस्वीर है शबहाए हिज्राँ[2] की।

[१२३]

ख़मोशियोंमें तमाशा अदा निकलती है,
निगाह, दिलसे तेरे, सुर्मःसा[3] निकलती है।
फ़िशारे तंगिए खिल्वत[4] से बनती है शबनम,
सबा जो ग़ुंचे[5] के पर्देमें जा निकलती है।

[१२४]

फूँका है किसने गोशे मुहब्बत[6] में, ऐ खुदा,
अफ़सूने इंतिज़ार[7], तमन्ना कहें जिसे।

[१२५]

ऐ परतवे ख़ुर्शीदे जहाँताब[8], इधर भी,
सायेकी तरह हम प अजब वक़्त पड़ा है।

---

१ कामनाके जादूका दर्शक, २ वियोगकी रातें, ३ सुर्मा-रंजित, ४. एकान्तकी संकीर्णताका दवाव, ५ कली, ६. प्रेमके कान, ७ प्रतीक्षाका जादू, ८. विश्वको प्रकाशित करनेवाले सूर्यकी ज्योति।

नाकर्दः गुनाहों[1] की भी हस्रतकी मिले दाद,
यारब, अगर इन कर्दः गुनाहोंकी सज़ा है।

[१२६]

वाइज़ न तुम पियो, न किसीको पिला सको,
क्या बात है, तुम्हारी शराबे तहूर[2] की।
गो वाँ नहीं, प वाँके निकाले हुए तो हैं,
का'बेसे इन बुतोंको भी निस्बत है दूरकी।
क्या फ़र्ज है, कि सबको मिले एक-सा जवाब,
आओ न, हम भी सैर करें कोहेतूर[3] की।
ग़ालिब, गर इस सफ़रमें मुझे साथ ले चलें,
हजका सवाब[4] नज्र करूँगा हुजूरकी।

[१२७]

कहते हुए साक़ीसे हया आती है, वर्नः,
है यों, कि मुझे दुर्दे तहे जाम[5] बहुत है।
खूँ होके जिगर आँखसे टपका नहीं, ऐ मर्ग,
रहने दे मुझे याँ, कि अभी काम बहुत है।
होगा कोई ऐसा भी, कि ग़ालिबको न जाने,
शाइर तो वह अच्छा है, प बदनाम बहुत है।

---

१ अकृत पाप, जिन पापोको करनेकी लालसा रह गयी। २ स्वर्गकी मदिरा, ३ एक पर्वत जिसपर हजरत मूसा ईश्वरीय ज्योति देखने गये थे, ४ पुण्य, ५ प्यालेकी तलीमे वैठी तलछट।

[१२८]

मुद्दत हुई है यारको मेह्माँ किये हुए,
जोशे क़दह[1] से, बज़्म चरागाँ[2] किये हुए।
करता हूँ जमअ फिर, जिगरे लख़्त-लख़्त[3] को,
अर्सः हुआ है दा'वते मिज़गाँ[4] किये हुए।
फिर वज़ए एहतियात[5] से रुकने लगा है दम,
बरसों हुए हैं चाक गरेबाँ किये हुए।
फिर पुर्सिशे जराहते दिल[6] को चला है इश्क़,
सामाने सद हज़ार नमकदाँ[7] किये हुए।
फिर शौक़ कर रहा है खरीदारकी तलब,
अर्ज़े मताए अक़्लो दिलो जाँ[8] किये हुए।
माँगे है फिर, किसीको लबे बाम[9] पर, हवस,
ज़ुल्फ़े सियाह रुख प परीशाँ किये हुए।
चाहे है फिर किसीको मुक़ाबिल[10] में आरज़ू[11],
सुरमेसे तेज़ दश्नःए मिज़गाँ[12] किये हुए।
इक नौबहारे नाज़[13] को ताके है फिर निगाह,
चेहरः फरोग़े मय[14] से गुलिस्ताँ किये हुए।

---

१ सुरोत्सव, २ दीपालोकित, ३ जिगरके टुकडे-टुकडे, ४. उनकी पलकोंकी (बर्छी) की दावत, ५ सावधानीका ढंग, ६. हृदयके घावोकी पूछ-ताछ, ७ लाखो नमकदानोके साथ, ८ बुद्धि, हृदय और प्राण-धनका समर्पण, ९ छज्जेपर, १० सामने, ११. कामना, अभिलाषा, १२ पलकोकी कटारी, १३ रूपगर्वके नव-वसन्त, १४. मदिराभा।

जी ढूँढता है फिर वही फ़ुर्सत, कि रात-दिन,
बैठे रहें तसव्वुरे जानाँ[1] किये हुए।

[१२९]

वह ज़िन्द: हम हैं, कि हैं रूशनासे खल्क[2], ऐ खिज्र,
न तुम, कि चोर बने उम्रे जाविदाँ[3] के लिए।
बक़द्रे शौक़[4] नहीं, ज़र्फ़े तंगनाए ग़ज़ल[5],
कुछ और चाहिए वसअत[6] मेरे बयाँके लिए।

क़सीदे

[१]

साज़ यक ज़र्र: नही फ़ैज़े चमनसे बेकार,
साय:ए लालए बेदाग़ सुवेदाए बहार[7]।
मस्तिए बादे सबा[8] से है ब अरज़ सब्ज़:,
रेज़ए शीशए मय जौहरे तेग़े कुहसार[9]।
मस्तिए अब्रसे गुलचीने तरब है हस्रत[10],
कि इस आग़ोशमें मुमकिन है दो आलमका फिशार[11]।

---

१ मा'शूकका ध्यान, २ दुनियासे परिचित, ३ अमर-जीवन, ४ उत्सुकताकी मात्राके अनुरूप, ५ गजलका सँकरा क्षेत्र, ६ विस्तार, ७ बहारके हृदयका काला तिल, ८. प्रभात-समीरणकी मस्ती, ९ पहाड़की तलवार अर्थात् पहाडकी चोटीकी हरीतिमा मदिराकी सुराहीका कण बन गयी है। १० बादलोकी मस्तीसे दिलकी अपूर्ण अभिलाषाएँ भी खुशीके फूल चुन रही है, ११. इसके आलिगनमे दोनो जगत् सिमट गये है।

कोहो सहरा हमः मा'मूरिए शौक़े बुलबुल[1],
राहे ख़्वाबीदः[2] हुई खन्दए गुल[3]से बेदार।

दूसरा मतलअ

फ़ैज़से तेरे है ऐ शमए शबिस्ताने बहार[4],
दिले पर्वानः चराग़ाँ परे बुलबुल गुलनार[5]।
शक्ले ताऊस करे आईनः खानः पर्वाज़,
ज़ौक़में जल्वःके तेरे बहवाए दीदार[6]।
दीदः ता दिल असद आईनः यक परतवे शौक़,
फ़ैज़े मानीसे ख़ते साग़रे राक़िम सरशार[7]।

[२]

दह्र जुज़ जलवए यकताइए मा'शूक़ नहीं[8],
हम कहाँ होते, अगर हुस्न न होता ख़ुदबीं[9]।
बे-दिली हाय तमाशा, कि न इब्रत है न ज़ौक़,
बेकसी हाय तमन्ना, कि न दुनिया है न दीं।

---

१. पर्वत एवं वन बुलबुलके शौकसे पूर्ण हैं, २. निद्रित-पथ, ३. फूलों की हँसी, ४. ऐ बहार (वसन्त) के गृहकी शमअ (दीप), ५. पर्वानोके दिल दीपक बन गये है और बुल-बुलके पर गुलनारकी तरह रंगीन हो गये है, ६. तेरी छवि देखनेके लिए आइनः खान (दिल) मोरकी तरह उड़ रहा है, ७. ऐ असद ! आँखसे लेकर दिल तक उत्कण्ठाके प्रकाशका आईनः वन जाता कि अन्तरके औदार्यसे प्रशंसा लिखनेवालेके मधुपात्रकी रेखाएँ मस्त हो जायँ, ८. संसार मा'शूककी अप्रतिम छविके सिवा और कुछ नही है, ९. गर्वित।

मिस्ले मज़मूने वफ़ा, बाद बदस्ते तस्लीम[1],
सूरते नक़्शे क़दम, खाक बफ़र्के तमकीं[2]।
इश्क़ बेरब्तिए शीराज़ए अजज़ाय हवास,
वस्ल ज़िंगारे रुखे आइनए हुस्ने यक़ीं[3]।
किसने देखा नफ़से अह्लेवफ़ा आतशखेज़[4],
किसने पाया असरे नालए दिलहाय हज़ीं[5]?

[३]

हाँ, महे नौ[6]! सुनें हम उसका नाम,
जिसको तू झुकके कर रहा है सलाम।
दो दिन आया है तू नज़र दमे सुब्ह,
यही अन्दाज़ और यही अन्दाम।
बारे दो दिन कहाँ रहा ग़ायब?
"बन्दः आजिज़ है, गर्दिशे अय्याम।
उड़के जाता कहाँ, कि तारोंका,
आसमाँ ने बिछा रखा था दाम[7]।"
जानता हूँ, कि उसके फ़ैज़से तू,
फिर बना चाहता है माह तमाम[8]।

---

१ स्वीकृति (समर्पण) को भी हम वफ़ा (निष्ठा) की भाँति ही परीशान देखते है, २ मर्यादाको चरण-चिह्नकी भाँति धूलमे मिला पाते है, ३. जिस प्रकार बदहवासीमे चेतना विश्रृंखल हो जाती है उसी प्रकार प्रेम भी यहाँ परीशान है। मिलनका विश्वास दर्पण-पटकी भाँति धूमिल है, ४ भक्तोके आग लगानेवाले श्वासको किसने देखा है ? ५ दुखिया दिलो, ६ नवचन्द्र, ७ जाल, ८ पूर्णचन्द्र ।

माह बन, माहताब बन, मैं कौन,
मुझको क्या बाँट देगा तू ईनाम ?
मेरा अपना जुदा मुआमिलः है,
औरके लेन-देनसे क्या काम ?

[४]

सुब्ह दम दरवाज़ए खावर[1] खुला,
मेह्रे आलमताब[2] का मंज़र[3] खुला।
खुसरुवे अंजुम[4] के आया सर्फ़[5] में,
शबको था गंजीनए जौहर[6] खुला।
सत्हे गर्दू[7] पर पड़ा था रातको,
मोतियोंका हर तरफ़ ज़ेवर खुला।
सुब्ह आया जानिबे मशरिक़[8] नज़र,
इक निगारे आतशींरुख़, सरखुला[9]।
थी नज़रबन्दी, किया जब रद्दे सेह्[10],
बादए गुलरंगका साग़र[11] खुला।
लाके साक़ीने सुबूहीके लिए,
रख दिया है एक जामे ज़र खुला[12]।

---

१ प्राची, पूर्व, २. विश्वको प्रकाशित करनेवाला सूर्य, ३ खिडकी ४. तारिकाधिपति (सूर्य), ५. व्यय, ६. मोतियोंका खजाना, ७. गगन, ८. पूर्वकी ओर, ९. ज्वालाके चेहरेवाली प्रियतमा सर खोले हुए आ गयी है, १०. जादूकी काट, ११ फूलों-जैसी रंगीन मदिराका पात्र, १२. या गगनरूपी साकीने प्रभातकालमे पी जानेवाली मदिराके लिए एक सोनहला प्याला लाकर रख दिया है।

देखियो 'ग़ालिब'से गर उलझा कोई,
है वली पोशीदः और काफ़िर खुला[1]।

मस्नवी

आमकी प्रशंसामें

[१]

आमका कौन मर्दे मैदाँ[2] है,
समरो शाख़ गूए चौगाँ है[3]।
न चला जब किसी तरह मक़दूर,
बादए नाब[4] बन गया अंगूर।
यह भी नाचार जीका खोना है,
शर्मसे पानी-पानी होना है।
मुझसे पूछो तुम्हें ख़बर क्या है,
आमके आगे नैशकर[5] क्या है।
न गुल उसमें, न शाख़ोबर्ग न बार,
जब ख़िज़ाँ आये तब हो इसकी बहार।

---

१. अन्दरसे साधु और ऊपरसे खुला काफिर है, २. प्रतिद्वन्द्वी, ३ फल गेंद और शाखाएँ चौगान है, ४ मदिरा, ५. गन्ना।

नज़र आता है यूँ मुझे यह समर,
कि दवाख़ानए अज़लमें मगर[1]।
आतशे गुल पक़न्दका है क़वाम,
शीरःके तारका है रेशः नाम[2]।
या यह होगा कि फ़र्ते राफ़तसे,
बाग़बानोंने बाग़े जन्नतसे।
अंग्बींके बहुक्म रब्बुन्नास,
भरके भेजे हैं सर्बःमुहर गिलास[3]।
या लगाकर ख़िज़्रने शाख़े नबात,
मुद्दतों तक दिया है आबे हयात।
तब हुआ है समरफ़िशाँ यह नख़्ल[4],
हम कहाँ वर्नः और कहाँ यह नख़्ल।
साहबे शाख़ो बर्गोबार[5] है आम,
नाज़ पर्वर्दए बहार[6] है आम।

१–२. ऐसा जान पडता है कि यह आदि सृष्टिके दवाखानेमे बना है। फूलकी आग, गर्मी, पर मिश्रीकी चाश्नी देकर इसे वनाया गया है और इस चाश्नीके तारका नाम रेशा रख दिया गया है, ३ या ऐसा जान पडता है कि नन्दन-काननके मालियोने मनुष्योपर खुश होकर, कृपा-पूर्वक और ईश्वराज्ञासे, पुरस्कारस्वरूप शहदसे भरे हुए गिलास मुँहपर मुहर लगाकर भेज दिये है, ४ या खिज्रने मिश्रीका एक पौधा लगाकर उसे मुद्दतो तक अमृतसे सीचा है तव उस पौधेमे यह फल लगा है, ५. शाखाओ और पत्तोसे युक्त, ६. वहार-द्वारा दुलारसे पाला हुआ।

[२]

चिकनी डली (सुपारी) की प्रशंसामें

[१८७१ ई० की बात है जब नवाब ज़ियाउद्दीन अहमद और ग़ालिब दोनो कलकत्तामे थे। एक दिन बात-चीत चल रही थी कि एक सज्जनने फारसी-कवि फैज़ीकी बड़ी प्रशंसा की। ग़ालिब तो सिवा खुसरोके किसी भारतीय फारसी-कविको मानते ही न थे, इसलिए बोले—ठीक है पर जितनी तारीफ फैज़ीकी होती है उतनेका अधिकारी वह न था। उन सज्जनने फैज़ीकी काव्य-शक्तिकी प्रशंसा करते हुए कहा कि जब फैज़ी पहिली बार अकबरके दरबारमे गया, अवसर आते ही ढाई सौ शेरोका क़सीदः वही बनाकर पढ़ा। ग़ालिब बोले—अब भी ऐसे लोग है जो दो-चार सौ नही तो दो-चार शेर तो तुरन्त बनाकर कह ही सकते है। उन सज्जनने जेबसे एक चिकनी डली (सुपारी) निकाली और कहा—इसपर कुछ कहिए। ग़ालिबने तुरन्त ये पंक्तियाँ सुनाई।]

है जो साहबके क़फ़ेदस्त[1] प यह चिकनी डली,
ज़ेब देता है इसे जिस क़दर अच्छा कहिए।
खामः अंगुश्त बदन्दाँ[2] कि इसे क्या लिखिए,
नातक़ः[3] सर बगिरेबाँ[4] कि इसे क्या कहिए।
मुहे मक्तूबे अज़ीज़ाने गरामी लिखिए[5],
हर्ज़े बाज़ूए[6] शिगर्फ़ाने ख़ुदआरा[7] कहिए।

---

१. हथेली, २ हैरान, ३ वाणी, ४ चिन्तित, ५ सम्मानित प्रिय-जनोंके पत्रोकी मुहर हैं, ६ भुजाकी तावीज, ७. स्वयं शृंगार किये हुए हसीन।

मिस्सीआलूदः सरअंगुश्ते हसीनाँ लिखिए[1],
दाग़े तर्फ़े जिगरे आशिके शैदा[2] कहिए।
अख़्तरे सोख़्तए क़ैस[3] से, निस्बत दीजे,
ख़ाले मुश्कीने रुख़े दिलकशे लैला[4] कहिए।
क्यों इसे क़ुफ़्ले दरे गंजे मुहब्बत[5] लिखिए,
क्यों इसे नुक़्तए परकारे तमन्ना[6] कहिए?
बन्दः परवरके कफ़ेदस्तको दिल कीजिए फ़र्ज़,
और इस चिकनी सुपारीको सुवेदा कहिए।

क़ते

गये वह दिन, कि नादानिस्तः[7] ग़ैरोंकी वफ़ादारी,
किया करते थे तुम तक़्रीर हम ख़ामोश रहते थे।
बस, अब बिगड़े प क्या शर्मिन्दगी, जाने दो, मिल जाओ,
क़सम लो हमसे, गर यह भी कहें "क्यों हम न कहते थे।"

× ×

कलकत्तःका जो ज़िक्र किया तूने हमनशीं!
इक तीर मेरे सीनःमें मारा कि हाय-हाय!

---

१ चाहे इसे रूपसीका मिस्सीसे पूर्ण अँगुलीका सिरा लिख सकते है, २. मोहित प्रेमीके जिगरका दाग, ३ मजनूँका जला हुआ नक्षत्र (भाग्य), ४ लैलाके चित्ताकर्षक मुख (कपोल) का सुगन्धपूर्ण तिल, ५. प्रेम-कोपके द्वारका ताला, ६ कामनाकी परिधिका विन्दु। ७ अनुभवहीन,

वह सब्ज़:ज़ार हाय मुतर्रा[१] कि है ग़ज़ब !
वह नाज़नीं बुताने ख़ुदआरा[२], कि हाय-हाय !
सब्रआज़मा[३] वह उनकी निगाहें, कि हिफ़ नज़र,
ताक़तरुबा[४] वह उनका इशारा, कि हाय-हाय !
वह मेवहाय ताज़ए शीरीं कि वाह-वाह !
वह बादहाय नाबे गवारा[५], कि हाय-हाय !

× ×

न पूछ इसकी हक़ीक़त, हुज़ूरेवालाने,
मुझे जो भेजी है, बेसनकी रोग़नी रोटी ।
न खाते गेहूँ, निकलते न ख़ुल्दसे बाहर,
जो खाते हज़रते आदम यह बेसनी रोटी ।

× ×

इफ़्तारे सूम[६] की कुछ, अगर दस्तगाह[७] हो,
उस शख़्सको ज़रूर है रोज़: रखा करे ।
जिस पास रोज़: खोलके खानेको कुछ न हो,
रोज़: अगर न खाये, तो नाचार क्या करे ।

× ×

क्या इन दिनों बसर हो हमारी, फ़ुराग़[८] में,
कुछ तफ़्रक़:[९] रहा न दिलो दर्दो दाग़में ।

---

१ शीतल (तरावटवाला), २ स्वयसज्जिता रूपसियाँ, ३ धैर्यकी परीक्षा लेनेवाली, ४. शक्ति देनेवाला, ५ बढ़िया, स्वादिष्ट मदिराएँ, ६ रोज़ा खोलना, ७ साधन, ८ विरह, ९ अन्तर ।

चाहा बचश्मे शौक़, जो मूसाने तूरपर,
याँ देखते हैं रोज़ वही, हर चराग़में ।
यह मक़नतो वकार अलाई ! यह वहशतें,
शोरिश है कुछ ज़रूर, तुम्हारे दिमाग़में ।

रुबाइयाँ

शब ज़ुल्फ़ो रुख़े अर्क़फ़िशाँ[1] का गम था,
क्या शरह करूँ, कि तुर्फ़ःतर आलम था ।
रोया मैं हज़ार आँखसे सुबह तलक,
हर कतरए अश्क, दीदः पुरनम था ।

× ×

दिल सख़्त नज़न्द[2] हो गया है गोया,
उससे गिलःमन्द[3] हो गया है गोया ।
पर यारके आगे बोल सकते ही नहीं,
'ग़ालिब' मुँह बन्द हो गया है गोया ।

× ×

दुख जीके पसन्द हो गया है, ग़ालिब,
दिल रुककर बन्द हो गया है, ग़ालिब ।
वल्लाह, कि शबको नींद आती ही नहीं,
सोना सौगन्द हो गया है ग़ालिब ।

× ×

१. द्रवणशील, २. आजिज, परीशान, ३. शिकायत करनेवाला ।

सामाने ख़ूरो ख़्वाब[1] कहाँसे लाऊँ,
आरामके अस्बाव कहाँसे लाऊँ।
रोज़ः मेरा ईमान है, ग़ालिब लेकिन,
खसखानः[2] व बर्फ़आव[3]से कहाँसे लाऊँ।

सेहरा

[फूलो या सुनहरे-रुपहले तारोकी झालर जो विवाहके समय वरके सिरपर बाँधी जाती है। उसकी प्रशंसामे जो काव्य-रचना की जाती है उसे भी सेहरा कहते है। शहजाद. जवान बख़्तका निकाह (विवाह) १ अप्रिल १८५३ को हुआ था। उस समय 'गालिव' ने यह सेहरा कहा था]

[१]

ख़ुश हो ऐ बख़्त ! कि है आज तेरे सर सेहरा,
बाँध शहज़ादः जवाँबख़्तके सरपर सेहरा।
क्या ही इस चाँदसे मुखड़े प भला लगता है,
है तेरे हुस्न दिल अफ़रोज़[4] का ज़ेवर सेहरा।
सर प चढना तुझे फवता है, पर ऐ तर्फ़ेकुलाह[5],
मुझको डर है, कि न छीने तेरा लम्बर चेहरा।
नाव भरकर ही पिरोये गये होंगे मोती,
वर्नः क्यों लाये है कश्तीमें लगाकर सेहरा।
सात दरियाके फ़राहम[6] किये होंगे मोती,
तब बना होगा इस अन्दाज़का गज़भर चेहरा।

---

१ खाने-पीने-सोने, २ शीतल कक्ष, ३ बर्फका पानी, ४. हृदय खिलानेवाला, ५ टोपीकी ओर, ६ संचित।

रुख़ प दूल्हाके जो ग़र्मीसे पसीनः टपका,
है रगे अब्रे गुहरबार[1] सरासर सेहरा।
यह भी एक बेअदबी थी कि क़बा[2] से बढ़ जाय,
रह गया आनके दामनके बराबर सेहरा।
जीमें इतरायें न मोती, कि हमीं हैं इक चीज़,
चाहिए फूलोंका भी एक मुकर्रर[3] सेहरा।
जब कि अपनेमें समावें न ख़ुशीके मारे,
गूँधे फूलोंका भला फिर कोई क्योंकर सेहरा।
रुख़े रौशनकी दमक, गौहरे ग़लताँकी चमक,
क्यों न दिखलाये फरोग़े महो अख़्तर सेहरा।
हम सुख़नफ़ह्म हैं, ग़ालिबके तरफ़दार नहीं,
देखें, इस सेहरेसे कह दे कोई बेहतर सेहरा।

[२]

हम नशीं तारे हैं और चाँद शहाबउद्दीनखाँ,
बज़्मे शादी है फ़लक, काहकशाँ[4] है सेहरा।
इनको लड़ियाँ न कहो, बह्रकी मौजें[5] समझो,
है तो कश्तीमें, वले बह्रे[6] रवाँ है सेहरा।

[३]

चर्ख़ तक धूम है, किस धूमसे आया सेहरा,
चाँदका दायरः ले, ज़ुहरः[7] ने गाया सेहरा।

---

१. मोती बरसानेवाला बादल, २. चोगा (परिच्छद), ३. दोहरा, ४. आकाशगंगा ; ५. समुद्र-तरंग, ६ तरंगित वा गतिमान समुद्र, ७. शुक्र,

रश्कसे लड़ती हैं, आपसमें उलझकर लड़ियाँ,
बाँधनेके लिए जब उसने उठाया सेहरा।

मर्सियः

[शोक-गीत]

हाँ, ऐ नफ़से बादे सेहर[1]! शो'लःफ़िशाँ[2] हो,
ऐ दजलए ख़ूँ! चश्मे मलाइक[3]से रवाँ हो।
ऐ ज़मज़मए क़ुम[4]! लबे ईसा प फ़ुग़ाँ[5] हो।
ऐ मातमयाने शहे मा'सूम कहाँ हो?
बिगड़ी है बहुत, बात बनाये नहीं बनती।
अब घरको बग़ैर आग लगाये नहीं बनती॥
ताबे सुखन व ताक़ते ग़ोग़ा नहीं हमको।
मातममें शहे दींके है, सौदा[6] नही हमको॥
घर फूँकनेमें अपने मुहाबा[7] नही हमको।
ग़र चर्ख़[8] भी जल जाय, तो पर्वा नहीं हमको॥
यह ख़र्गहे नुः पायः[8] जो मुद्दतसे बजा है।
क्या ख़ेमए शब्बीर[9]से रुत्बः में सिवा है॥
कुछ और ही आलम नज़र आता है जहाँका।
कुछ और ही नक्शः, है दिलो चश्मो ज़ुबाँका॥

---

१ प्रात.-समीरके श्वास, २ ज्वालामुखी, ज्वालावर्षी, ३ फरिश्तोकी आँखे, ४. 'उठजा' का राग, ५. ईसाके अधरोपर आर्त्तनाद बनजा, (हजरत ईसा 'उठजा' कहते थे और मुर्दे उठ खडे होते थे।) ६ उन्माद, ७. सकोच, ८. नवपदी रावटी, ९. हजरत इमाम हसन।

कैसा फ़लक और मेहे जहाँताब कहाँका।
होगा दिले बेताब किसी सोख़्तःजाँका॥
अब मेहमें और बर्क़में कुछ बर्क़ नहीं है।
गिरता नहीं इस रूसे कहो बर्क़ नहीं है॥

स्फुट

मयकशीको न समझ बेहासिल,
बादए ग़ालिब अर्क़े बेद नहीं।

× ×

दिल आपका, कि दिलमें है जो कुछ सो आपका,
दिल लीजिए, मगर मेरे अरमाँ निकालके।

× ×

चन्द तस्वीरें बुताँ, चन्द हसीनोंके ख़ुतूत,
बाद मरनेके, मेरे घरसे यह सामाँ निकला।

× ×

देखता हूँ उसे, थी जिसकी तमन्ना मुझको,
आज बेदारीमें है, ख़्वाबे ज़ुलेखा मुझको।

× ×

नियाज़े इश्क़[1], ख़िर्मनसोज़े अस्बाबे हवस बेहतर,
जो हो जावे निसारे बर्क़[2], मुश्ते ख़ारोखस बेहतर।

× ×

---

१. प्रेमकी विनय, २ बिजलीपर निछावर।

जख़्मे दिल तुमने दुखाया है, कि जी जाने है,
ऐसे हँसतेको रुलाया है, कि जी जाने है।

× ×

हम क्या कहें किसीसे, क्या है तरीक़ अपना,
मज़हब नहीं है कोई, मिल्लत नहीं है कोई।

× ×

पीरी[1] में भी कमी न हुई झाँक ताँककी,
रोज़नकी[2] तरह दीदका आज़ार रह गया।
वह मुर्ग़ है खिज़ाँकी सुऊबत[3] से बेख़बर,
आइन्दः सालतक जो गिरफ़्तार रह गया।

चयन

[नुस्ख़ःहमीदियःसे]

[१]

है कहाँ, तमन्नाका दूसरा क़दम; यारब!
हमने दश्ते इम्काँ[4] को, एक नक़्शे पा[5] पाया।
बेदिमाग़े खिजलत[6] हूँ, रश्के इम्तिहाँ ताके,
एक बेकसी, तुझको आलम आशना[7] पाया।

[२]

कारखानेसे जुनूँके भी मैं उरियाँ[8] निकला,
मेरी क़िस्मतका न यक-आध गिरेबाँ निकला।

---

१. वृद्धावस्था, २. छिद्र, ३. कष्ट, व्यथा, ४. सम्भावना-वन, ५ चरण-चिह्न, ६. शर्म, ७. संसारका प्रेमी, ससारको समझनेवाला; ८. नंगा।

साग़रे जल्वए सरशार, है हर ज़र्रए ख़ाक[1],
शौक़े दीदार, बिला आईनः सामाँ निकला।
कुछ खटकता था मेरे सीनःमें, लेकिन आख़िर*,
जिसको दिल कहते थे, सो तीरका पैकाँ निकला।

[३]

वाँ हुजूमे नग्मःहाए साज़े इशरत[2] था 'असद'
नाखुने ग़म, याँ सरे तारे नफ़स मिज़राब[3] था।

[४]

'असद' यह इज़्जो[4] बेसामानिए फ़िरऔन[5] तौअम[6] है,
जिसे तू बन्दगी कहता है, दावा है खुदाईका।

[५]

हमने वहशतकदए बज़्मे जहाँ[7] में ज्यूँ शमअ,
शोलए इश्क़को अपना सरो सामाँ समझा।

---

१. मिट्टीका प्रत्येक कण छविके मधुपात्रसे डूबा हुआ है,२ ऐश्वर्यके वाद्यसे निर्गत स्वरोकी भीड़ थी। ३. श्वासके तारका सिरा मिजराब बन गया था, ४ नम्रता, दीनता, ५. फिरऔनकी दरिद्रता, ६ यमज जुडवॉ, फ़रोआ या फ़िरऔन प्राचीन मिस्रके बादशाहोकी उपाधि थी। इनमेसे एकने खुदाईका दावा किया और मूसा द्वारा पराजित हुआ। उर्दू-फारसी काव्यमे अत्याचार और अभिमानका प्रतीक, ७. ससारकी महफिलके उन्माद कक्षमे।

*शायद 'जिगर' मुरादाबादीका शेर है—

कुछ खटकता तो है पहलूमें मेरे रह-रहकर,
अब खुदा जाने तेरी याद है या दिल मेरा।

[६]

बसूरत तकल्लुफ़[१] ब'मानी तअस्सुफ़[२],
'असद' मैं तबस्सुम हूँ पज़मुर्दगाँका[३] ।

[७]

निगाहे चश्मे हासिद वामले, ऐ ज़ौक़े ख़ुदवीनी[४] !
तमाशाई हूँ वहदतख़ानए आईनए दिलका ।
मुझे राहे सुखनमें ख़ौफ़े गुमराही[५] नहीं 'ग़ालिब',
असाए ख़िज्रे सेहराए सुख़न है ख़ामः 'वेदिल'का[६] ।

[८]

ऐ वाय ! ग़फ़लते निगहे शौक़, वर्नः याँ,
हर पारः संग, लख़्ते दिले कोहे तूर[७] था ।
जन्नत है तेरी तेग़के कुश्तोंकी मुंतज़िर,
जौहर सवादे जल्वए मिज़गाने हूर था ।

[९]

रगे गुल[८] जादए तारे निगहसे हद[९] मुआफ़िक है,
मिलेंगे मंज़िले उल्फ़तमें हम और अन्दलीव[१०] आख़िर ।

---

१. रूपमे बनावट, २ अर्थमे पश्चात्ताप, ३ मै मलिन वदनोकी मुसकान हूँ, ४ ऐ मेरे गर्व (ख़ुदवीनी) की उत्कण्ठा, तू किसी द्वेषीकी दृष्टि उधार ले ले (क्योकि विद्वेषी अपने सिवा किसी औरको देख ही नही सकता, ५. पथभ्रष्ट होनेका भय, ६ वेदिलकी लेखनी काव्यके जंगलमे खिज्रकी लाठी है, ७. पत्थरका हर टुकड़ा तूर पर्वतके हृदयका ही खण्ड था, ८. फूलकी नसे ९ दृष्टिके तार मार्गके अनुकूल है, १० वुलवुल ।

गुरूरे ज़ब्त[1] वक़्ते निज़अ टूटा, बेक़रारानः,
नियाज़े बालअफ़शानी[2] हुआ सब्रो शकेब आख़िर।

[१०]

तमाशाए गुल्शन, तमन्नाए चीदन[3],
बहार आफ़रीनां[4], गुनहगार हैं हम।
न ज़ौक़े गिरेबाँ, न पर्वाए दामाँ,
निगह आश्नाए गुलोखार[5] हैं हम।
'असद' शिकवः कुफ़्रो दुआ नासिपासी[6]
हुजूमे तमन्नासे नाचार हैं हम।

[११]

पाँवमें जब वह हिना बाँधते हैं,
मेरे हाथोंको जुदा बाँधते हैं।
शेख़जी, का'बःका जाना मालूम,
आप मस्जिदमें गधा बाँधते हैं।

[१२]

फिर हल्क़ए काकुलमें पड़ीं दीदकी राहें,
जूँ दूद[7] फ़राहम[8] हुई रौज़न[9]में निगाहें।
दैरो हरम, आईनए तक़रारे तमन्ना[10],
वामाँदगिए शौक़[11] तराशे है पनाहें।[12]

---

१. आत्म-नियन्त्रणका अभिमान, २ तड़प, ३ (फूल) चुननेकी कामना, ४. बहारके बनानेवाले, ५ फूलो और काटोकी आँखे पहचाननेवाले, ६ अकृतज्ञता, ७. धुवाँ, ८. एकत्र, ९. छिद्र, १०. कामनाकी पुनरावृत्तिका प्रमाण, ११. रुचिकी थकान, १२ शरण ढूँढ़ती है।

[१३]

दौराने सरसे गर्दिशे साग़र है मुत्तसिल,
ख़ुमखानए जुनूँमें दिमाग़ो रसीदः हूँ[१]।
की मुत्तसिल[२] सितारः शुमारी[३] में उम्र सर्फ़[४],
तस्बीहे अश्कहाय ज़मिज़्गाँ चकीदः हूँ[५]।
हूँ गर्मिए निशाते तसव्वुरसे नग़्मःसंज[६],
मैं अन्दलीबे गुलशने नाआफ़रीदः हूँ[७]।
देता हूँ कुश्तगाँको, सुख़नसे सरे तपिश,
मिज़राब तारहाय गुलूए वुरीदः हूँ[८]।

[१४]

है तिलिस्मे देह्[९] में, सद हश्रे पादाशे अमल[१०],
आगही ग़ाफ़िल, कि यक इमरोज़ बेफ़र्दा नहीं[११]।

---

१ सिरके चक्करके कारण निरन्तर यह मालूम हो रहा है कि मैं मधुपात्रके चक्रमे सम्मिलित हूँ (और प्यालेपर प्याला चढाता जा रहा हूँ), मानो मैं उन्मादके मदिरालयमे एक ऐसा दिमाग हूँ जो नशेसे आप्लावित है, २ लगातार ३ तारे गिनना, ४. व्यय, ५. पलकोसे टपके हुए आँसुओकी तस्वीह (माला) हूँ, ६. उनके ध्यानके आनन्दके उत्तापसे स्वरालाप कर रहा हूँ, ७. मै अनजाई पुष्पवाटिकाका वुलवुल हूँ, ८. मैं मरनेवालोको अपने काव्यसे उत्तप्त करता अर्थात् तड़पाता हूँ, मानो कटे-हुए गलेके तारोपर मिजरावके तुल्य झकार पैदा करनेवाला हूँ, ९ ससारके इन्द्रजाल, १० दुनियाके तिलिस्ममे कर्मके प्रतिकारके सैकड़ो प्रलय उठते रहते है, ११ ऐ गाफिल सावधान हो कि आजका कोई भी दिन अपने जोड़के बिना (अकेला) नही है।

[१५]

कब तलक फेरे 'असद' लबहाय तुफ़्तः[1] पर ज़ुबाँ,
ताक़ते लब तश्नगी, ऐ साक़िए कौसर[2] नहीं।

[१६]

'असद' उठना क़यामत क़ामतोंका[3], वक़्ते आराइश[4],
लिबासे नज़्म[5] में, बालीदने मज़्मूने आली[6] है।

[१७]

ज़िबस[7] दोशे रमे आहू[8] प है महमिल तमन्ना[9] का,
जुनूने क़ैससे भी शोख़िए लैला नुमायाँ है।
'असद' बन्दे क़बाए यार है फ़िर्दौसका ग़ुंचः[10],
अगर वा[11] हो, तो दिखला दूँ कि यक आलम गुलिस्ताँ है।

[१८]

चश्मे ख़ूबाँ, मयफ़रोशे नशःए सूज़ारे नाज़ है,
सुर्मः गोया मौजे दूदे शोलए आवाज़[12] है।

[१९]

जो कुछ है महे शोख़िए अब्रूए यार है,
आँखोंको रखके ताक़ प देखा करे कोई।

---

१. सूखे ओठो, २ स्वर्गकुण्डके जलको पिलानेवाले, ३ जिनकी यष्टि प्रलय ढाती है, ४. शृंगारके समय, ५. काव्यका परिच्छद, ६. उच्च विषयका विकास, ७. अत्यधिक, स्पष्ट, ८. दौडते हिरनोके कन्धोपर, ९. कामनाका महमिल (पालकी जिसमे लैला चलती थी ।), १०. स्वर्गकी कली, ११. खुला, १२. सुर्म. मानो वाणीकी ज्वालाकी धूम्र-तरंग है ।

[२०]

रुख़सारे[1] यारकी ख़ुली जो जल्वःगुस्तरी[2],
ज़ुल्फ़े सियाह[3] भी शबे महताब[4] हो गयी।
'ग़ालिब' ज़िबस कि सूख गये चश्ममें सरश्क[5],
आँसूकी बूँद गौहरे नायाब[6] हो गयी।

[२१]

ख़बर निगहको निगह चश्मको उदू[7] जाने,
वह जल्वः कर, कि न मैं जानूँ और न तू जाने।

[२२]

आज़ूए ख़ान:आबादीने वीरॉंतर किया,
क्या करूँ गर सायए दीवार सैलाबी करे[8]।
सुबहदम वह जल्वःरेज़े बे-नक़ाबी हो अगर,
रंगे 'रुखसारे गुले ख़ुर्शीद महताबी[9] करे।
बादशाहीका जहाँ यह हाल हो, 'ग़ालिब', तो फिर,
क्यों न दिल्लीमें हर इक नाचीज़ नव्वाबी करे।

---

१ प्रियके कपोल, २ छवि फैलना, ३. काली अलकें, ४ चाँदनी रात, ५ आँसू, ६ दुर्लभ मोती, ७ शत्रु, ८ यदि अपनी दीवारकी छाया ही बाढ ला दे, ९ यदि वह मुँह खोलकर सुबहके वक्त अपनी छवि दिखावे तो उसके कपोलोके गुलाबी रगके आगे सूर्य चाँद बन जाय, (दूसरा अर्थ—सूर्य उसके कपोलोके गुलाबी रंगको चन्द्रिका तुल्य कर दे)।

[२३]

सुबह़से मा'लूम, आसारे ज़ाहूरे शाम[1] है,
ग़ाफ़िलाँ ! आग़ाज़ेकार, आईनए अंजाम है।
बस कि तेरे जल्वए दीदारका है इश्तियाक़[2],
हर बुते .खुर्शीद तलअत[3], आफ़ताबे बाम है।

[२४]

तोड़ बैठे जबकि हम जामो सुबू[4], .फिर हमको क्या ?
आस्माँसे बादए गुलफाम[5] गर बरसा करे।

[२५]

रेहने ज़ब्त है आईनःबंदिए गौहर[6]
वगर्नः बह्रमें हर क़तरः चश्मे पुरनम[7] है।

[२६]

.खुद नामः बनके जाइए, उस आशनाके पास,
क्या फ़ायदः कि मन्नते बेगानः खींचिए।

[२७]

चमन-चमन गुले आईनः[8] दर किनारे हवस[9],
उमीद महवे तमाशाय गुलिस्ताँ[10] तुझसे।

---

१. सन्ध्या प्रगट होनेके लक्षण, २. उत्कण्ठा, ३. सूर्यमुखी, ४. मधुपात्र एवं मधुघट, ५. गुलाबी शराब, ६ मोतीकी सजावटके संयम एवं नियन्त्रणकी अश्रु अपेक्षा है, ७. अन्यथा सागरमे तो प्रत्येक बूँद अश्रुपूर्ण आँख है। ८ दर्पणोके फूल, ९ लालसाकी गोदमे (लालसाकी गोदमे दर्पणोके फूलसे तूने चमन भर दिये है),१०. आशाको तूने पुष्पोद्यान-का दृश्य देखनेमे लीन कर दिया है।

नियाज़[1], पर्दए इज़हारे .खुदपरस्ती[2] है,
जबीने सिज्दःफ़िशाँ[3] तुझसे, आस्ताँ[4] तुझसे।
'असद' ! बमौसिमें गुल[5] दर तिलिस्में कुंजे[6] क़फ़स
ख़राम[7] तुझसे, सबा[8] तुझसे, गुलिस्ताँ[9] तुझसे।

[२८]

वह तश्नए सरशारे तमन्ना हूँ कि जिसको,
हर ज़र्रः बकैफ़ीयते साग़र नज़र आवे[10]।

अप्रकाशित काव्य

[जो पाण्डुलिपियोमे या फुटकर मिलता है पर संग्रहोंमे अप्रकाशित है।]

बदतर अज़ वीरानः[11] है फ़स्ले खिज़ाँ में सह्ने बाग़,
ख़ानए बुलबुल बग़ैर अज़ ख़न्दए गुल बेचिराग़[12]।

× ×

---

१ श्रद्धा, २. आत्मपूजाकी अभिव्यक्तिका पर्दा है (आड़) है, ३. सिज्दः (नमन) करनेवाला माथा, ४ चौखट, (श्रद्धा भी वस्तुतः अपनी ही पूजा या अहंकारपर एक पर्दा है अर्थात् जिसे श्रद्धा कहते है उसकी आड़मे भी अहंकार है नही तो श्रद्धानत यह ललाट और यह चौखट सब तो तेरे ही कारण है।), ५ इस फूलोकी ऋतु—वसन्त–मे, ६. कफस—कारागृह—के तिलिस्ममे फँसा हुआ हूँ, ७. गति, चाल, ८. मन्द समीर, पुरवैया, ९. पुष्पोद्यान; (जब यह चाल, यह ठंडी हवा, यह पुष्प-वाटिका तेरे ही कारण है तब बेचारा असद कारागृहके मायाजालमे क्यो फँसा पडा है ?) १० मै कामनाओकी बाढका वह प्यासा हूँ कि जिसे प्रत्येक कण मधुपात्र-सा दिखता है, ११. उजड़ेसे भी बुरा, १२. बुलबुलका कक्ष फूलकी मुसकान बिना दीपहीन-सा है।

करम ही कुछ सबबेलुत्फ़ो इल्तिफ़ात नहीं[1]
उन्हें हँसाके रुलाना भी कोई बात नहीं।

× ×

जूँ शमअ हम इक सोख़्तः[2] सामाने वफ़ा हैं,
और इसके सिवा कुछ नहीं मालूम कि क्या हैं ?

× ×

हुस्न बेपर्वा गिरफ़्तारे ख़ुद आराई[3] न हो,
गर कमींगाहे[4] नज़रमें दिल तमाशाई न हो।

× ×

वफ़ा जफ़ाकी तलबगार होती आई है,
अज़लके दिनसे यह ऐ यार होती आई है।

× ×

किसकी बर्क़े शोख़िए रफ़्तार[5] का दिलदादः[6] है,
ज़र्रः-ज़र्रः इस जहाँका इज़्तराब आमादः[7] है।

× ×

दश्ते वहशत[8] में न पाया किसी सूरतसे सुराग़[9],
गर्दे जौलाने जुनूँ[10] तकने पुकारा हमको।

× ×

---

१. कुछ कृपा ही आनन्द एवं प्रणय-कटाक्षका कारण नही है, २. दग्ध, ३. स्वयं शृंगार करना, ४. जहाँ छिपकर किसीकी घातमे बैठा जाय, (यदि दिल दृष्टिके गोप्य स्थानमे देखनेवाला न हो तो बेपर्वा हुस्न अपना शृगार भी न करे।), ५. गतिकी चंचलताकी बिजली, ६. मुग्ध, ७. बेचैनीकी ओर उन्मुख, ८. उन्माद-वन, ९. पता, १०. उन्माद-अश्वकी धूल।

नमूदे आलमे अस्बाब क्या है लफ़्ज़े बे-मानी,
कि हस्तीकी तरह मुझको अदम[१] में भी तअम्मुल[२] है।

× ×

दर्द हो दिलमें तो दवा कीजे,
दिल ही जब दर्द हो तो क्या कीजे।
हमको फ़रियाद करनी आती है,
आप सुनते नहीं तो क्या कीजे।
दुश्मनी हो चुकी बक़दर वफ़ा,
अब हक़्के दोस्ती अदा कीजे।

× ×

मौत फिर ज़ीस्त न हो जाय, यह डर है 'ग़ालिब',
वह मेरी क़ब्र प अंगुश्त बदंदाँ होंगे।[३]

---

१. अनस्तित्व, परलोक, २. शंका, ३ मेरी मृत्युपर उन्हे अफसोस होगा, वह मेरी कब्रपर आयेगे, मुझे डर है कि उनके आनेसे मेरी मृत्यु जीवन न बन जाय और उन्हे मुँहमे उँगली देनी पडे।

परिशिष्ट भाग

परिशिष्ट १

गालिबके कुछ शागिर्द

गालिबके शिष्योंकी संख्या बहुत अधिक थी और उसमे सब धर्मो और सम्प्रदायोंके लोग थे। यही नही, उनकी विचार तथा काव्य-शैलीमे भी भिन्नता पाई जाती है। इससे गालिबके व्यक्तित्वकी विशालता तथा उनकी उदारतापर प्रकाश पडता है। उनके शिष्योमे बहुत ही कम ऐसे है जिन्होने उनका रग अपनाया। बात यह है कि गालिबने कभी किसी शिष्यकी शैली बदलनेकी कोशिश नही की। उनकी विशेषता यही थी कि वह हर एकको उसीके तर्जपर बनाने-सँवारनेकी कोशिश करते थे जिससे उसके व्यक्तित्वकी छाप उसके काव्यपर बनी रहे। वह कभी अपनी प्रवृत्तियोको उनपर लादनेकी कोशिश नही करते थे। इसीलिए गालिबके शागिर्दोमे तुफ्तः, हाली, साक़िब, जकी, सालिक, शेफ्तः जैसे विभिन्न शैलियोवाले शाइर मिलते है।

यह गालिबकी लोकप्रियता और उदारताका प्रमाण है कि उनके शिष्योकी संख्या सैकड़ो तक पहुँच गयी थी। जनाब आफाक हुसेन 'आफाक' ने अपनी पुस्तक 'नादिराते गालिब' मे गालिबके ९३ शिष्योपर संक्षिप्त टिप्पणियाँ दी है। मालकरामजीने 'तलामज ए गालिब'मे खोज करके अनेक नये शिष्योके नाम-धाम दिये है; इनकी कुल संख्या १४६ तक पहुँच गयी है। इनके अतिरिक्त विभिन्न संकलनो एवं तजकिरोमे कुछ नाम और भी मिलते है जो विवादास्पद है। मालकरामजीके अनुसार गालिबके शिष्योकी नामावली निम्नलिखित है—

१. 'आराम'	: मुंशी शिवनरायन अकबराबादी
२. 'आज़र'	: नवाब जुल्फिकारअलीख़ाँ देहलवी
३. 'आगाह'	: सय्यद मुहम्मदरज़ा देहलवी उर्फ अहमद मिर्ज़ा
४. 'एहसान'	: हाजी एहसान अलीख़ाँ देहरादूनी
५. 'अहसन'	: मुफ्ती मुहम्मद सुलतान हसन खाँ
६. 'अहसन'	: हकीम मजहर अहसनख़ाँ रामपुरी
७ 'अख़गर'	: हकीम फतहयाबख़ाँ रामपुरी
८. 'अख़गर'	: मौलवी फर्जन्दअली अजीमाबादी
९ 'अदीब'	: मौलवी मुहम्मद सैफुलहक देहलवी
१०. 'इस्माइल'	: मौलाना मुहम्मद इस्माइल मेरठी
११. 'अनवर'	: सय्यद शुजाउद्दीन उर्फ उमराव मिर्ज़ा देहलवी
१२ 'बाकर'	: शाह बाक़रअली बिहारी
१३. 'बिस्मिल'	: मुशी शाकिरअली मेरठी
१४. 'बेताब'	: साहिबजाद. अब्बास अलीख़ाँ रामपुरी
१५. 'बेदिल'	: मौलवी अब्दुल समीअ रामपुरी
१६. 'बेदिल'	: मौलवी मुहम्मद हबीबुलरहमान अंसारी सहारनपुरी
१७ 'बेसब्र'	: मुंशी बालमुकुन्द सिकन्दराबादी
१८ 'बेसब्र'	: श्री ऐनुलहक काठवी
१९ 'बीमार'	: हकीम मुहम्मद मुरादअली
२० 'पीरजी'	: श्री कमरुद्दीन देहलवी
२१. 'तपिश'	: मौलवी गुलाम मुहम्मदख़ाँ देहलवी
२२ 'तपिश'	: सय्यद मदद अली अकबराबादी
२३ 'तहसीन'	: काजी अब्दुलरहमान पानीपती
२४. 'तुफ्त.'	: मुशी हरगोपाल सिकन्दराबादी
२५. 'तमन्ना'	: मौलवी अहमद हुसेन मिर्ज़ापुरी

२६. 'तमन्ना' : मौलवी मुहम्मद हुसेन मुरादाबादी
२७. 'तौफ़ीक़' : शाहजाद. बशीरउद्दीन मैसूरी
२८. 'साकिब' : मीरर्जा शहाबउद्दीन अहमदखाँ देहलवी
२९. 'जम' : सय्यद मुहम्मद जमशेदअलीख़ाँ मुरादाबादी
३०. 'जुनूँ' : काजी अब्दुल जमील बरेलवी
३१. 'जौहर' : मुशी जवाहरसिह देहलवी
३२. 'जौहर' : हकीम मुहम्मद मा'शूकअली ख़ॉ शाहजहॉपुरी
३३. 'हाली' : मौलाना अल्ताफहुसेन अंसारी पानीपती
३४. 'हुबाब' : पण्डित उमराव सिह लाहौरी
३५. 'हजी' : मीर बहादुरअली बरेलवी
३६. 'हिसाम' : ख़लीफ. हिसामउद्दीन अहमद
३७. 'हसीन' : खुर्शीद साहब देहलवी
३८. 'हकीर' : मुंशी नबी बख़्श अकबराबादी
३९. 'हैदर' : आगा हैदरअली बेग देहलवी
४०. 'ख़ावर' : मीरजा मुहम्मद अकबर ख़ॉ किजिलवाश
४१. 'ख़लील' व 'फ़ौक' : श्री मुहम्मद इब्राहीम आर्वी
४२ 'खिज्र : मीरजा खिज्र सुलतान देहलवी
४३. 'खुर्शीद' : श्री खुर्शीद अहमद देहलवी
४४. 'दर्द' : मुंशी हीरासिंह देहलवी
४५. 'जका' : मौलवी मुहम्मद हबीबुल्ला मद्रासी
४६ 'जकी' : हकीम अशफाक हुसेन मारहर्वी
४७. 'राबित' : मीरजा हसन रजा खाँ देहलवी
४८. 'राजी' : दीवान जानी बिहारीलाल अकबराबादी
४९. 'राकिम' : मीरजा क़मरउद्दीन ख़ाँ देहलवी
५०. 'रुस्वा' : शेख मुहम्मद अब्दुल हमीद गाजीपुरी
५१. 'रश्की' : नवाब मुहम्मद अली ख़ाँ जहाॅगीराबादी

५२. 'रश्की' : काजी मुहम्मद इनायत हुसेन बदायूँनी
५३. 'रिज्वाँ' : मीरजा शमशाद अलीबेग देहलवी
५४. 'रिज्वाँ' : नवाब मुहम्मद रिज्वाँ अली खाँ मुरादाबादी
५५. 'रफअत' व 'सुरूर' · मौलाना मुहम्मद अब्बास शर्वानी
५६. 'रम्ज' : मीरजा गुलाम फख्रुउद्दीन उर्फ मिर्जा फ़ख्रू देहलवी
५७. 'रज' व 'तबीब' : हकीम मुहम्मद फमीहउद्दीन मेरठी
५८. 'रिन्द' : जानी बाँकेलालजी
५९. 'जकी' : सय्यद मुहम्मद जिक्रिया खाँ देहलवी
६०. 'सालिक' . मीरजा कुरबान अलीबेग देहलवी
६१. 'सालम' : मीर अहमद हुसेन
६२. 'सज्जाद' : सय्यद सज्जाद मिर्जा देहलवी
६३. 'सुख़न' : ख्वाज फख्रुउद्दीन हुसेन खाँ देहलवी
६४. 'सुरूर' : श्री देवी परशाद देहलवी
६५. 'सुरूर' . चौधरी अब्दुल गफूर मारहर्वी
६६. 'सुरूर' : मुहम्मद अमीर अल्ला अकबराबादी
६७. 'सरोश' . साहिबजाद अब्दुलवहाबख़ाँ रामपुरी
६८ 'सोजाँ' · हसीबउद्दीन अहमद असारी सहारनपुरी
६९. 'सोजाँ' व 'मद्दाह' : मुहम्मद सादिकअली गढमुक्तेसरी
७०. 'सय्याह' : मियाँ दाद खाँ औरङ्गाबादी
७१ 'शादाँ' · मीरजाहुसेन अली खाँ देहलवी
७२ 'शाकिर' : मौलवी मुहम्मद अब्दुलरज्जाक मछलीशहरी
७३ 'शाह' : अनवरअली अजीमाबादी
७४. 'शायक' : सय्यद शाह आलम मारहर्वी
७५. 'शायक' . ख्वाजा फ़ैजउद्दीन उर्फ हैदरजान जहाँगीरनगरी
७६ 'शफक' : नवाब मुहम्मद सैदुद्दीन खाँ बहादुर

७७. 'शोख़ी' : नादिरशाह रामपुरी
७८. 'शौकत' : नवाब यार मुहम्मद खाँ भूपाली
७९. 'शहाब' : शहाबउद्दीन खॉ रामपुरी
८०. 'शहीर' : हाफिज खानमुहम्मद खाँ रामपुरी
८१. 'शेर' : सय्यद मुहम्मद शेर ख़ाँ बिहारी
८२. 'शेफ़्त' व 'हस्रती' : नवाब मुहम्मद मुस्तफा ख़ॉ देहलवी
८३. 'साहिब' : नवाब शेरजमाँ ख़ॉ देहलवी
८४. 'साहिब' : मुहम्मद हुसेन बरेलवी
८५ 'सादिक' : मुहम्मद अजीजउद्दीन बदायूनी
८६. 'सफ़ीर' : सय्यद फर्जन्द अहमद बिलग्रामी
८७. 'सूफी' : शाह फर्जन्द अली मनेरी
८८. 'सूफी' : मुहम्मद अली नजीबाबादी
८९. 'तालिब' : सरदार मुहम्मद ख़ॉ
९०. 'तालिब' : मीरजा सईदउद्दीन अहमद खाँ देहलवी
९१. 'तालिब' : सय्यद शेर मुहम्मद ख़ॉ देहलवी
९२ 'तालिब' : डाक्टर मुहम्मद हफीजउल्ला अकबराबादी
९३. 'तालिब' : मुहम्मद रियाजउद्दीन
९४. 'तर्रार' : सरफराज हुसेन देहलवी
९५. 'तर्जी' : कुतुबउद्दीन दिलावर अली जा'फ़री
९६. 'जफर' : अबूजफर सिराजउद्दीन मुहम्मद बहादुरशाह
९७. 'जहीर' : मुंशी प्यारेलाल देहलवी
९८. 'आरिफ' : मीरजा जैनुलआब्दीन ख़ॉ देहलवी
९९. 'आशिक' : शकरदयाल अकबराबादी
१००. 'आशिक' : मुहम्मद इकबाल हुसेन देहलवी
१०१. आशिक' : मुहम्मद आशिक़ हुसेन ख़ाँ अकबराबादी
१०२. 'आकिल' : सय्यद मुहम्मद सुलतान देहलवी

१०३ 'अर्शी' : सय्यद अहमद हुसेन कन्नौजी
१०४ 'अजीज' : मुहम्मद विलायतअली ख़ाँ सफीपुरी
१०५ 'अजीज' : मिर्जा यूसुफअली खाँ वनारसी
१०६. 'अता' : अता हुसेन मारहर्वी
१०७ 'अलाई' : नवाव अलाउद्दीन अहमद ख़ाँ देहलवी
१०८ 'फिदा' : मुहम्मद फिदाअली खाँ रामपुरी
१०९ 'फिगार' : मीर हुसेन देहलवी
११० 'फ़ना' व 'जमाली' : सय्यद अहमद हुसेन सहवानी
१११ 'फौक' : डाक्टर मुहम्मद जान अकवरावादी
११२ 'कद्र' : गुलाम हुसेन विलग्रामी
११३ 'काशिफ' : वद्रुद्दीन अहमद उर्फ फकीर देहलवी
११४ 'कोकब' : मुंशी तफज्जुल हुसेन ख़ाँ देहलवी
११५. 'लतीफ' . लतीफ अहमद उस्मानी
११६. 'माइल' : मीर आलम अली ख़ाँ सहवानी
११७. 'मजरूह' : मीर मेहदी हुसेन देहलवी
११८ 'महशर' : अव्दुल्ला ख़ाँ रामपुरी
११९. 'महमूद' : मुहम्मद हुसेन देहलवी
१२०. 'महमूद' : मुहम्मद महमूदुलहक देहलवी
१२१ 'महो' : नवाब गुलाम हसन ख़ाँ देहलवी
१२२ 'मदहोश' : सख़ावत हुसेन वदायूनी
१२३ 'मुश्ताक' : बिहारीलाल देहलवी
१२४ 'मग्लूब' : इफ्तिख़ारउद्दीन रामपुरी
१२५ 'मफ्तूँ' : लछमीनरायन फर्रुख़ाबादी
१२६. 'मकसूद' : मकसूद आलम रिज्वी पहानवी
१२७ 'मंसूर' : मुसल्लह उद्दीन अकवरावादी
१२८. 'यूनिस' : पण्डित शिवराम देहलवी

१२९. 'मैकश' : अहमद हुसेन देहलवी
१३०. 'मैकश' व 'महवी' : इर्शाद अहमद देहलवी
१३१. 'मीना' : अहमद हुसेन मिर्जापुरी
१३२. 'नादिम' : फख्रउद्दीन रामपुरी
१३३. 'नासिर' : नासिर उद्दीन हैदर खाँ उर्फ यूसुफ मिर्जा लखनवी
१३४. 'नाज़िम' : नवाब मुहम्मद यूसुफ अली ख़ाँ बहादुर रामपुरी
१३५. 'नामी' : मुहम्मद अली ख़ाँ मुँगेरी
१३६. 'निशात' : बाबू हरगोविन्द सहाय अकबराबादी
१३७. 'निजाम' : नवाब मुहम्मद मर्दान अली ख़ाँ मुरादाबादी
१३८. 'नय्यर' व 'रख़्शाँ' : नवाब जियाउद्दीन अहमद ख़ाँ बहादुर देहलवी
१३९. 'नय्यर' : हकीम मुहिब अली काकोरवी
१४०. 'वहीद' : वहीद उद्दीन अहमद ख़ाँ देहलवी
१४१. 'वफा' व 'तालिब' : मीर इब्राहीम अली ख़ाँ सहसवानी
१४२. 'वफा' व 'अख़्तर' : ख़्वाजा अब्दुल गफ़्फार जहाँगीरनगरी
१४३. 'वकील' : मुंशी शकूर अहमद पानीपती
१४४. 'वली' : मौलवी अम्मू-जान देहलवी
१४५. 'होशियार' : केवल राम देहलवी
१४६ 'यकता' : ख़्वाजा मुईनुद्दीन ख़ाँ देहलवी

इनके अतिरिक्त 'नादिराते गालिब'की नामावलीमे निम्नलिखित नाम और है.—

१. 'आशोब' : रायबहादुर प्यारेलाल टण्डन देहलवी
२. 'राना' : नवाब मुराद अली अकबराबादी
३. 'रंजूर' : नवाब अलीबख़्श ख़ाँ देहलवी
४. 'करामत' : सय्यद शाह करामत गयावी

यह तो सम्भव नही कि इस ग्रन्थमे उनके सब शिष्योंका परिचय दिया जा सके। परन्तु उनमे जो प्रसिद्ध हुए या गालिबके विशेष प्रिय थे, उनका संक्षिप्त परिचय दे देना भी उचित होगा।

'आराम' :

रायबहादुर मुशी शिवनरायन अकबराबादी माथुर कायस्थ थे। इनके परदादा राय उजागरचन्द निर्वासन कालमे राजा चेतसिहके वज़ीर थे। दादा और पिता भी उच्च पदोपर थे। मुंशी शिवनारायणका जन्म १० सितम्बर १८३३को आगरेमे हुआ। इन्होने उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। प्रसिद्ध कोशकार डा० फेलन आगरा कालेजमें इनके अंग्रेजीके अध्यापक थे। पढाई समाप्त करनेके अनन्तर अनेक नौकरियाँ की, परन्तु नाम आगरा म्युनिसपिलिटीके सेक्रेटरीकी हैसियतसे कमाया। जन-सेवामे लगे रहते थे। इतने लोकप्रिय हो गये थे कि कुम्हार इनकी मिट्टीकी मूर्तियाँ बनाकर बेचते थे। उन्होने प्रकाशन-कार्यके लिए 'मतबअ मुफीदुल खलायक' कायम किया जिससे गालिबकी दो पुस्तकें 'दस्तम्बो' (१८५८) तथा 'दीवाने-उर्दू' (१८६३ ई०) प्रकाशित हुई। एक मासिक (मफीदुल ख़लायक) और दूसरा पाक्षिक (गुलदस्त मय्यारुश्शुअरा) पत्र भी सम्पादित एव प्रकाशित करते थे। १८५८ मे 'रिसाला बगावते हिन्द' नामक मासिक भी निकाला जिसके सम्पादक उनके मित्र डा० मुकुन्दलाल थे। मुशी शिवनारायणकी मृत्यु ४ सितम्बर १८९८ को हुई।

इनका काव्य बहुत कम पाया जाता है। उसपर तसव्वुफका रंग है। नमूना यह है—

यह दुनिया इक सरा है, इसको आखिर छोड़ जाना है,
अगर दो-चार दिन आकर यहाँ ठैरे तो क्या ठैरे।

क़याम[1] अपना हो इस मेहनत सराए देह[2] में क्योंकर,
जहाँ आफ़त ही आफ़त हो वहाँ 'आराम' क्या ठैरे।

'आगाह' :

नवाब सय्यद मुहम्मद रजा देहलवी। जन्म १८३९ ई०, मृत्यु १९१७ ई०। काव्यके उदाहरण लीजिए—

यह भी इक रंग है मुहब्बतका
रोयें हम और हँसा करे कोई।

× ×

जो निगाहें उठ न सकती थीं ख़ुदाया शर्मसे,
बेहिजाबान[3] : वह क्योंकर दिलमें पैकां हो गयीं।
शुक्र हो किससे अदा, क़ातिलकी तेग़े तेज़का,
मौतकी दुश्वारियाँ[4] दम-भरमें आसाँ हो गयीं।

'अदीब' :

मौलवी मुहम्मद सैफुलहक देहलवी। जन्म १८४६ ई०, मृत्यु १८९१ ई०।

उच्च वंशके थे। दादा खाँ बहादुर इकराम उद्दीन देहलीके सदर अमीन थे। सैफुलहककी शिक्षा अच्छी हुई। कई नोकरियाँ की। कोहे-नूर', 'शफीके हिन्द' इत्यादि कई पत्रोका संपादन किया। फिर हैदराबादमे साढ़े चार सौ रुपये मासिकपर रिपोर्टर हो गये थे। भाषा-विज्ञानकी ओर रुचि थी, उदार हास्यप्रिय व्यक्ति थे; बोलते भी अच्छे थे। इनके कलाममे देहलीके मुहाविरोका अच्छा प्रयोग मिलता है।

---

१ निवास, २ संसारकी श्रमशाला, ३ विना लज्जाके, ४ कठिनाइयाँ।

ख़ाली खयाले यारसे दिल, एक दम नहीं,
रहते हैं अपने घरमें भी, इक मेहमाँसे हम।
सब कुछ अदीब ! इश्क़ने जीसे भुला दिया,
जाना कहाँ है और थे आये कहाँसे हम।

× ×

ग़ैर तक पूछते हैं—"हो गयी हालत कैसी ?"
डाल दी आपने, हमपर यह मुसीबत कैसी।
कह दिया उसने, कि "अब यह भी न देखोगे कभी"
जब कहा मैने, कि "मुँह देखेकी उल्फत कैसी ?"

'इस्माइल' :

मौलाना मुहम्मद इस्माइल मेरठी। जन्म १२ नवम्बर १८४४ : मृत्यु १ नवम्बर १९१७। इन्होने उर्दू एवं फ़ारसी गद्य-पद्यमे बहुत कुछ लिखा है। बच्चोके लिए लिखी इनकी कविताएँ हमलोगोके बचपनमे बड़ी लोकप्रिय थी। इनके काव्यमे नीति और दर्शनका गहरा पुट है। इस्माइल साहब उन लोगोमे थे जिन्होने उर्दू काव्यको नये विषय दिये, नई भूमिकाएँ प्रदान की। काव्यके कुछ उदाहरण दिये जाते है—

मैं बेक़रार, मंज़िले मक़सूद[1] बेनिशाँ[2]
रस्तेकी इन्तिहा[3], न ठिकाना मुक़ामका[4]।

× ×

---

१ उद्दिष्टस्थल, लक्ष्य स्थान, २ चिह्न-रहित, ३ अन्त, ४. ठहरनेका स्थान।

हिजाबे शाहिदे मुतलक़[1] न उट्ठा है न उट्ठेगा,
जिसे हम लामकाँ समझे थे, वह भी इक मकाँ निकला।

× ×

कैसी तलब ! कहाँकी तलब, किसलिए तलब !
हम हैं, तो वह नहीं है, वह है, तो हम नहीं।

× ×

बज़्मे ईजाद[2] में बेपर्दः कोई साज़ नहीं,
है यह तेरी ही सदा, ग़ैरकी आवाज़ नहीं।

'अनवर' :

सय्यद शुजाअ उद्दीन उर्फ उमराव मिर्जा। जन्म १८४७ ई० : मृत्यु १८८५ ई०।

इनका एक दीवान मिलता है जो रिफ़ाहे आम प्रेस लाहौरसे छपा था। इनके कलाममे रोजमर्र. तथा व्यगकी बहार है।

वह आंखें नहीं हाय क्या हो गया,
वह काफ़िर तो अब कुछ नया हो गया।
तुम्हें यां तक आना क़यामत सही,
हमें जीसे जानेमें क्या हो गया ?

× ×

यह मस्तियोंका रंग है जोशे शबाब[3] में,
गोया कि वह नहाये हुए हैं शराबमें।

---

१. एक मात्र द्रष्टा (ईश्वर) का घूँघट या पर्दा, २. आविष्कारोकी महफ़िल, ३. जवानीका जोश, यौवन-प्राबल्य।

कुछ तो मिल जाये लबे शीरी[1] से,
ज़ह्न खानेकी इजाज़त ही सही।

× ×

कह्र हैं मस्तीमें, वह अँगड़ाइयाँ,
ख़ाली हाथों लड़ते हैं तलवारसे।

'बेसब्र' :

मुंशी बालमुन्द सिकन्दराबादी। जन्म १८२० ई० · मृत्यु १८९० ई०। भटनागर कायस्थ थे। फारसी, अरबी और संस्कृतके ज्ञाता थे। ज्योतिषमें अच्छी गति थी। उर्दू फारसी दोनोमे शेर कहते थे। एक मस्नवी 'लख्ते जिगर' और एक दीवान प्रकाशित मिलता है। चन्द शेर नीचे दिये जाते है—

ग़ैरको देखना बचश्मे[2] इताब,
देखनेका बहाना तो देखो।

सोजे जिगर[3] यह अपना नहीं ख़ुद-बखुद, ज़रूर,
यह आग तो किसीकी लगाई हुई-सी है।
बूटा सा क़द, छरेरा सा तन, चम्पई-सा रंग,
भोली-सी सूरत, आँख लजाई हुई-सी है।

× ×

रुख़सत वह हुआ अश्क[4] हमारे निकल आये,
खुर्शीद[5] के छुपते ही सितारे निकल आये।

---

१ मधुराधर, २ क्रोधान्वित आँखोसे, ३ दिलकी जलन, ४. आँसू, ५. सूर्य।

'तुफ़्तः' :

मुंशी हरगोपाल। जन्म १८०० ई० : मृत्यु २ सितम्बर १८७९ ई०। भटनागर कायस्थ। ग़ालिबके परम-प्रिय शिष्योमे थे। एक पत्रमे ग़ालिब लिखते है—

"मै तुमको अपने फ़र्जन्दकी जगह समझता हूँ।" जिन्दगी भर गालिब इन्हे मानते रहे; उनके सबसे ज्यादा पत्र भी इन्हीके नाम है। इन्होने गालिबकी रचनाओके सम्पादनमे सदा सहायताकी। फारसीमे ही लिखते थे। फारसीके चार दीवान है और किसीमे भी बारह-तेरह हजार शेरसे कम नही।

ईं अगर गोयम, करा आयद यक़ीं,
क़स्दे जानम, यारे जानी मी कुनद।
दिल कि बायर्ग आशनाई दाश्तः सत,
ज़िन्दगानी, जाविदानी मी कुनद।

× ×

आशिकां गर्मेतमाशा, चूँ शुदन्द अज़ फ़र्ते शौक़,
बर रुख़े माशूक़ दीदन्द आंचः हायल, सोख़्तन्द।

'साक़िब' :

मीरजा शहाबउद्दीन अहमदखाँ। जन्म १८४० ई०। मृत्यु १९ एप्रिल १८६६ ई०।

नवाब जियाउद्दीन अहमदखाँ 'नय्यर' व 'रख़्शाँ'के बड़े पुत्र और ससुरालके सम्बन्धसे गालिबके भतीजे थे। कलाममे दर्द है। जबान साफ है। काव्यमे प्रेमोद्वेगके साथ तसव्वुफकी चाशनी भी है।

घर बयाबाँमें बनाया नहीं हमने लेकिन,
जिसको घर समझे हुए थे, वह बयावाँ निकला।

× ×

रंजिशसे गर कहा हो, तो ईमाँ न हो नसीब,
काफ़िर बुतोंको कहते हैं उश्शाक़ प्यारसे।

× ×

कल मैंने कहा कि बन्दः पर्वर,
चेहरेसे निक़ाब आप उठायें।
कहते हैं अदाशनास[2] बाहम[3],
"अच्छा हो जो रुख़, तो क्यों छुपायें।
बोले रुदादे[4] मूसा व तूर,
सुन ली हो, तो देखनेको आयें।
बिस्मिल्ला! हम उठायें पर्दः,
पर उनसे कहो कि ताब[5] लायें।"

'हाली':

शम्सुलउलमा मौलाना अल्ताफ़ हुसेन अंसारी। जन्म १८३६ ई० : मृत्यु ३१ दिसम्बर १९१४ ई०।

शेफ्त.के संसर्गसे साहित्य एव काव्यकी सेवाका शौक पैदा हुआ।

इन्होने सबसे पहिले 'गालिब' पर किताब (यादगारे गालिब) लिखी। गालिबके शिष्य होकर यह 'मीर'के अनुयायी थे, जैसा स्वयं ही कहा है—

---

१. प्रेमीगण (आशिकका बहुवचन), २. अदा (हाव-भाव) को पहिचाननेवाले, ३. परस्पर, ४ वृत्तान्त, ५. देखनेका साहस।

'हाली' सुख़नमें शेफ़्तःसे मुस्तफ़ीज़[1] हूँ,
शागिर्द मीरज़ाका मुक़ल्लिद[2] हूँ मीरका।

हालीने उर्दूमे नेचुरल शाइरीकी बुनियाद डाली और सामाजिक समस्याओंकी ओर उसे मोड़ा तथा नई डगरपर डाल दिया। मुसद्दस हाली, मनाजात बेवामे उर्दूने एक नये तर्जकी अँगड़ाई ली है। गद्यमें हयाते सादी, यादगारे गालिब और हयाते जावेद अमर ग्रन्थ है। 'मुकदमः शेरो शाइरी' तथा 'यादगारे गालिब'मे इनकी समीक्षाशक्तिके भी दर्शन होते है। उर्दूके अलावा अरबी-फ़ारसीमे भी कविता करते थे। इनकी गणना उर्दूकी प्रथम पंक्तिके शाइरोंमे होती है।

इश्क़ सुनते थे जिसे हम, वह यही है शायद,
ख़ुद ब ख़ुद दिलमें है इक शख़्स समाया जाता।
तुमको हज़ार शर्म सही, मुझको लाख ज़ब्त,
उल्फ़त[3] वह राज़[4] है, कि छुपाया न जायगा।

दिखाना पड़ेगा मुझे ज़ख़्मे दिल,
अगर तीर उसका ख़ता[5] हो गया।*
नहीं भूलता उसकी रुख़्सतका वक़्त,
वह रो-रोके मिलना बला हो गया।

---

१. लाभ उठानेवाला, २. अनुकरणकारी, ३. प्रेम, ४. रहस्य, ५. लक्ष्यभ्रष्ट।

*'जिगर' मुरादाबादीका प्रारम्भिक शेर है—

गिने जा रहे है मेरे ज़ख़्मे दिल,
कोई तीर शायद ख़ता हो गया।

गो मय है तुन्दो तल्ख[1], प साक़ी है दिलरुबा,
ऐ शेख ! बन पड़ेगी न कुछ, हाँ कहे बग़ैर ।
हम जिस प मर रहे हैं वह है बात ही कुछ और,
आलममें तुमसे लाख सही, तुम मगर कहाँ ?

'हक़ीर' :

मुंशी नबी बख़्श अकबराबादी । मृत्यु १८६० ई० ।

गालिब इनकी समीक्षाशक्तिमे बडा विश्वास रखते थे और उनसे बराबर सलाह-मश्विरा लेते रहते थे । उनके नाम गालिबके अनेक पत्र 'नादिराते ग़ालिब' मे सग्रहीत है ।

ज़ख़्मके मुँहमें भर आया पानी,
जब कि पैकाँ[2] का मज़ा याद आया ।
ख़त जो ग़ैरोंके किये उसने रक़म,
हमको क़िस्मतका लिखा याद आया ।
बस कि मसनूअ[3] है सानअ[4]की सिफ़त,
बुतको देखा तो ख़ुदा याद आया ।

'रम्ज़' :

मीरजा फ़तहुल्मुल्क बहादुर गुलाम फख़्रुद्दीन उर्फ मिर्जा फखरू । जन्म १८१२ ई०, मृत्यु १०-७-१८५६ ई० । बहादुर शाह ज़फरके चौथे बेटे थे । कविताके अतिरिक्त संगीत और नृत्यका भी शौक था ।

आखें तो उसको देखके होती हैं बेक़रार,
बिन देखे दिल तड़पने लगा इसको क्या हुआ ।

× ×

---

१ तीक्ष्ण और कटु, २ वाणकी नोक, ३. निर्मित, ४ निर्माता ।

दर्द क्या, जिसमें कुछ न हो तासीर,
बात क्या, जिसमें कुछ मज़ा न हुआ।
वह तो मिलता, पर ऐ दिले कमज़र्फ़[1] !
तुझको मिलनेका हौसला न हुआ।
तुम रहो और मजमए अग़ियार,
मेरा क्या है, हुआ, हुआ, न हुआ।

'रंज' व 'तबीब' :

हकीम मुहम्मद फसीह उद्दीन। जन्म १८३६ ई० : मृत्यु ३१ मार्च १८८५। मेरठके प्रसिद्ध चिकित्सकोमे थे।

देखता था मैं निगाहोंसे हर इक जा तुझको,
और उन्हींमें तू निहाँ था, मुझे मालूम न था।

× ×

लाखों बनाव, एक तग़ाफ़ुल[2] में आपकी,
लाखों बिगाड़, एक मेरे इज़्तिराबमें।*

'ज़की' :

नवाब सय्यद मुहम्मद जिक्रिया ख़ाँ। जन्म १८३९ई० : मृत्यु १९०३ई०। अच्छे कवि थे।

---

१. क्षुद्र, २. उदासीनता।

*गालिबका शेर है—

लाखों लगाव एक चुराना निगाहका,
लाखों बनाव एक बिगड़ना इताबमें।

तेरी राह किसने बताई, न पूछ,
दिले मुज़्तरब[1], राहबर[2] हो गया।

× ×

यह शर्मगीं निगह[3], यह तबस्सुम[4] निक़ाबमें,
क्या वे हिजाबियाँ हैं तुम्हारे हिजाबमें[5]

'सालिक' :

मीरजा क़ुर्बान अली बेग हैदराबादी। जन्म १८२४ ई० : मृत्यु १८८१ ई०।

इनमे बचपनसे ही काव्यकी ओर रुचि थी। पन्द्रह वर्षके थे तभीसे शेर कहने लगे थे। उर्दू फारसी दोनोमे कहते थे। पहिले मोमिन, बादमे गालिबके शिष्य हुए इसलिए इनके कलाममे दोनोका रग—पहिलेकी शोखी और दूसरेकी गहराई है—

तुम आ गये तो होश कहाँ, मेज़बाँ हो कौन,
आज आप अपने घरमें हैं कुछ मेहाँ से हम।

× ×

रग-रगमें नेशे इश्क़[6] है, ऐ चारःगर[7] मेरे,
यह दर्द वह नहीं, कि कहीं हो, कहीं न हो।

× ×

---

१. आकुल हृदय, २. पथदर्शक, ३. लज्जासे झुकी आँख, ४ मुस्कान, ५. तुम्हारी लज्जामे भी कैसी लज्जाहीनता है, ६. प्रेमका डंक, ७. उपचारक,

ज़बाँ कट जाये, गर लब[1] से तुम्हारा कुछ गिला[2] निकले,
मगर यह तो कहूँगा, तुमको क्या समझा था, क्या निकले ?

'शादाँ' व 'ख़्याली' :

मीरजा हुसेन अलीखाँ । जन्म १८५० ई० मृत्यु ७ सितम्बर १८८० ई० 'आरिफ' के छोटे लड़के थे और माँकी मृत्युके बाद गालिबकी बीवी उमराव बेगमके पास पले ।

तेरी हर अदा प मरता, तेरे हर सुखन प जीता,
मुझे मौत ज़िन्दगीपर, अगर इख़्तियार होता ।

× ×

आलम न मुझसे पूछिए मेरे ख़यालका,
आईनः बन गया हूँ, किसीके जमालका ।

× ×

बेख़ुदी काम आ गयी आख़िर, कि उन्हें मुझसे कुछ हिजाब नहीं,
ख़ैर हो आज बज़्मकी शादाँ ! कि वह आते हैं और निकाब नहीं ।

× ×

शर्माते हो, कि नींदका आँखोंमें है खुमार,
कलकी-सी बात ही नहीं, तर्ज़े निगाहमें ।

शेफ़्ता :

नवाब मुहम्मद मुस्तफा ख़ाँ । जन्म १८०६ ई० : मृत्यु १८६९ ई० । नवाब मुर्त्तजा खाँके पुत्र थे । पिताने इनके लिए जहाँगीराबाद (मेरठ)

---

१. अधर, २ शिकायत ।

का इलाका ख़रीद लिया था। बचपन और जवानीमे रँगरलियाँ कीं पर बादमे परहेज़गार हो गये। अरबी फारसीके आलिम थे। १८५७ के विद्रोहमे यह भी घसीट लिये गये और इनकी जायदाद ज़ब्त कर ली गयी तथा कारावासका दण्ड भी मिला। बादमे नवाब भूपाल तथा अन्य प्रभावशाली मित्रोकी सिफारिशपर छोड़ दिये गये और आधी जायदाद भी मिल गयी। गालिबसे इनकी खूब पटती थी। उर्दू-फारसी दोनोमे शेर कहते थे। समीक्षक भी अच्छे थे। उर्दू शाइरोका मशहूर फ़ारसी तज़किरा 'गुलशन बेख़ार' इन्हीकी रचना है। इनका काव्य सच्चे रससे परिपूर्ण है :—

एक दिन शाम हमारी भी सेहर[1] कर देगा,
वही जो शामको हर रोज़ सेहर[2] करता है।

× ×

शायद इसीका नाम मुहब्बत है शेफ़्तः !
है आग-सी जो सीनेके अन्दर लगी हुई।

× ×

हाय वह शेफ़्तःकी बेताबी,
थाम लेना वह तेरे महमिलको।

× ×

'तालिब' :

मीरजा सईद उद्दीन अहमद ख़ाँ। जन्म १८५२ ई० : मृत्यु १ सितम्बर १९२५।

साकिबके छोटे भाई थे। कविताकी ओर बचपनसे रुचि थी। इनकी भाषा साफ-सुथरी तथा मुहाविरेदार है।

---

१ प्रभात, २ जादू।

उठाया जो रुख़से बज़्ममें, उसने निक़ाबको,
शोख़ीने कुछ बढ़ा दिया लुत्फ़े हिजाब[1]को।

× ×

यहाँ तो वहीकी वही सूझती है,
ज़मानेको क्योंकर नई सूझती है।
क़यामतके वादों प तुम जी रहे हो,
तुम्हें ज़ाहिदो ! दूरकी सूझती है।

× ×

'ज़फ़र' :

अबूजफरसिराजउद्दीन मुहम्मद बहादुरशाह। जन्म : २४।१०।१७७५। मृत्यु : ७ नवम्बर १८६२ ई०।

मुगल वशके अन्तिम सम्राट्। गदरके अभिनेता। गदरके बाद इन पर अंग्रेजोने मुकदमा चलाया और इन्हे रंगूनमे निर्वासित कर दिया। वही बड़ी दुरवस्थामे मृत्यु हुई। दर्दमन्द तबीयत पाई थी। उर्दू और हिन्दी (व्रजभाषा) दोनोमे कविता करते थे। जमानेकी रविश और बेवफाईने दिलके दर्दको और गहरा कर दिया था और यह तसव्वुफकी ओर झुक गये थे। मिजाजमे दरवेशी आ गयी थी। इनके काव्यमे करुणाका गहरा रंग है।

पसे मर्ग[2] मेरी मज़ारपर जो दिया किसीने जला दिया,
उसे आह दामने बाद[3]ने सरेशाम ही से बुझा दिया।
शबेवस्ल[4] यूँ ही गुज़र गयी जो अकेला पाया था यारको,
कभी पा दबाके सुला दिया कभी बोसः लेके जगा दिया।

---

१. लज्जाका सौन्दर्य, २. मृत्युके बाद, ३. वायुके आँचलकी आह, ४. मिलनरात्रि।

पये मग़फ़िरत[१] मेरे क्या 'ज़फ़र' पढे फ़ातिहा कोई आनकर,
वह जो टूटी क़ब्रका था निशाँ उसे ठोकरोंसे मिटा दिया ।

'आरिफ़' :

मीरजा जैनुल आबदीन खाँ । जन्म १८१७ ई० . मृत्यु १८५२ ई० ।

गालिबके साढू भाई नवाब गुलाम हुसेनके बेटे थे । गालिब इन्हे पुत्रवत् स्नेह करते थे और इन्हीकी मृत्युपर उन्होने वह मृत्युगीत लिखा जो उर्दूकाव्यमे अमर हो गया है । इनके बेटोको अपने यहाँ लाकर रखा और पाला । आरिफमे बड़ी प्रतिभा थी और गालिब कहा करते थे कि यह मेरा सच्चा उत्तराधिकारी होगा पर भरी जवानीमे मर गये ।

जो का'ब:में है, है वही बुतखान:में जल्व[२]:,
इक पर्द: है सो शेख़ो हरम उठ नहीं सकता ।
इक देखना है, कहिए तो उसको भी छोड़ दें,
रखते नहीं है आपसे, इसके सिवा ग़रज़ ।
उठता क़दम जो आगेको, ऐ नाम:बर नहीं,
पीछे तो छोड़ आये कहीं उसका घर नहीं ।

'आशिक़' :

मुंशी मुहम्मद एकबाल हुसेन । उस्तादोंकी गजलपर गजल लिखते थे । गद्य-पद्यमे समान गति थी । उर्दूके तीन दीवान प्रकाशित है । कलामके चन्द नमूने यहाँ दिये जाते है .—

हाय किस नाज़से कहते है वह मुझसे हरदम,
"अपनी सूरतको तो देखो, तुम्हें चाहें क्योंकर ?"

× ×

---

१. मुक्तिके लिए । २. छवि ।

उन्हें ग़ुस्सः, कि मेरी बज़्ममें यह किसलिए आया,
मुझे यह ग़म, कि वह पहलूमें क्यों दुश्मनके बैठे हैं।

× ×

वह दिल है ख़ाक, जिसमें तेरी आर्ज़ू न हो,
वह गुल है ख़ार, जिसमें मुहब्बतकी बू न हो।

× ×

तोबः तो कर चुका हूँ, मगर कुछ-कुछ इन दिनों,
देती है दम बहारकी आबोहवा मुझे।

'अज़ीज़':

मौलाना मुहम्मद विलायतअलीखाँ। जन्म ८ मार्च १८४३ ई० : मृत्यु २ जुलाई १९२८ ई०।

फ़ारसी और उर्दूमे कहते थे। फारसीमे चार और उर्दूमे तीन दीवान है। उर्दू क़लामका रग देखिए—

[१]

हमने इक आलम[1] को छोड़ा इश्क़में,
लेकिन उनका और ही आलम[2] रहा।
जान दी मैंने तो पाई मरके जान,
दममें जबतक दम रहा बेदम रहा।
का'बः कैसा! सिज्दः[3] क्या! कैसी नमाज़!
उम्र-भर सर उनके दरपर ख़म रहा[4]।

---

१. दुनिया, २. हाल, ३ उपासना, ४. झुका।

उल्फ़ते ज़िन्दगी नहीं जाती,
जान बेइश्क़ दी नहीं जाती।
जान जाये तो आर्ज़ू जाये,
यह बला जीते जी नहीं जाती।
होश जाते हैं, जब वह आते है*,
दिलकी हालत कही नहीं जाती।
क्या कहूँ, तुर्फ़ः[1] माजरा है, अज़ीज़!
दिल गया, बेखुदी नहीं जाती।

'अज़ीज़' :

मीरजा यूसुफ अली खाँ। मर्सिय गोईका बड़ा शौक था। अच्छा शेर कहते थे।

नासह[2] की, नातवानी[3] में हम सुनके क्या करें,
सर उनके आस्ताँ[4] से उठाया न जायगा।

× ×

हम यह, कि अपनी मर्गको, तुम बिन तलब करें,
तुम वह, कि हमको तुमसे बुलाया न जायगा।

× ×

---

* मीर कहते हैं—

होश जाता नहीं रहा लेकिन,
जब वह आता है, तब नहीं आता।

१ अजीब, २. उपदेशक, ३ दुर्वलता, क्षीणता, ४. चौखट स्थान।

क्या कहूँ, कूचए क़ातिलमें क्या किया जाकर,
हमनशीं ! ख़ाकमें मिलना था मुझे, मिल आया ।

× ×

'अलाई' :

नवाब अलाउद्दीन अहमद ख़ाँ । जन्म २५ अप्रिल १८३३ : मृत्यु ३१ अक्तूबर १८८४ । नवाब अमीन उद्दीन खाँ के पुत्र थे । इनकी शिक्षा शुरूसे गालिबकी देख-रेखमे हुई और गालिबने उन्हे एक समयमे अपने बाद फ़ारसी और उर्दू दोनोमे अपना खलीफ और उत्तराधिकारी नियुक्त किया था । उर्दू-फारसी दोनोमे शेर कहते थे ।

मुश्ते ख़ाकस्तर है वह बुलबुल, कि गुलशनमें नहीं,
दाग़ है वह दिल, कि ख़ूँके साथ दामनमें नहीं ।

× ×

अल्ला री बेसबातिए उम्रे फ़नापसन्द[1],
बुझता है यह चिराग़ पलककी हवाके साथ ।

× ×

रखियो सँभलके पाँव जो बीना[2] हो चश्मे दिल[3],
कीजो समझके काम जो रोशन दिमाग़ है ।

× ×

'फ़ौक़' :

डाक्टर मीरजा मुहम्मद जान अकबराबादी । कलामका नमूना देखिए ·

---

१. विनाशप्रिय आयुकी अस्थिरता, २ दृष्टिशक्ति युक्त, ३ हृदयकी आँख ।

सर पटकता हूँ एक मुद्दतसे,
दारुए दर्दे सर नहीं मिलती।
सुबहसे शामतक है ग़श इतना,
नब्ज दो-दो पहर नहीं मिलती।
देखते वह है, किन आँखियोंसे,
क्यों नजरसे नज़र नहीं मिलती।

'क़द्र' :

मीर गुलाम हुसेन बिलग्रामी। जन्म १८३३ ई० . मृत्यु १४ सितम्बर १८८४ ई०।

कलामका नमूना—

वह मुझे देखके हँस देते हैं,
आँख छुपती नहीं है यारीकी।

× ×

अभी था वस्लका क़रार, और अभी इन्कार,
चलो हटो, इन्हीं बातोंसे 'क़द्र' जलते है।

× ×

तू मेरे बोसः लेने प, इतना ख़फ़ा हुआ!
बोस: भी कोई चीज़ है, तू सौ बार ले।

'मज़रूह' :

मीर मेहदी हुसेन। जन्म १८३३ : मृत्यु १५ मई १९०३ ई०।

गालिबके अत्यन्त प्रिय शिष्योमे थे। इनके नाम लिखे गालिबके अनेक महत्त्वपूर्ण पत्र मिलते है। कलाम दिल्लीकी निखरी जबानमे है—

यह जो चुपकेसे आये बैठे हैं,
लाख फ़ितने[1] उठाये बैठे हैं।
यह भी कुछ जीमें आ गई होगी,
क्या वह मेरे बिठाये बैठे हैं।

× ×

दिलमें क़ूवत, जिगरमें ताब कहाँ,
अब वह पहला-सा इज़्तिराव[2] कहाँ ?
वह समाये हुए हैं नज़रोंमें,
अपनी आँखोंमें जाये ख़्वाब[3] कहाँ ?
दरे मयख़ानः यह रहा, मजरूह !
आप जाते हैं, ऐ जनाब, कहाँ ?

× ×

मेरी टूटी हुई तोबःके टुकड़े,
कोई ला दे दरे पीरे मुग़ाँ[4] से।
कि उनको जोड़कर मैं तोड़ डालूँ,
फिर इक जामे शराबे अर्ग़वाँ[5] से।

'नाज़िम' :

नवाब मुहम्मद यूसुफ अलीखाँ, नवाब रामपुर। जन्म ५ मार्च १८१६ ई० : मृत्यु २१ एप्रिल १८६५ ई०।

---

१. उपद्रव, माशूकका नटखटपन, २. व्याकुलता, ३. स्वप्नकी जगह, ४. मद्यशालाका बूढ़ा प्रबन्धक, ५. रक्तिम मदिरा।

है यह साक़ीकी करामत, कि नहीं जामके पाँव,
और फिर बज़्ममें सबने उसे चलते देखा।

× ×

इससे क्या बहस, कि होगी शबे फ़ुरक़त कैसी,
मौत इसमें नहीं आती, यह मुसीबत कैसी।

× ×

होते ही दर्दे दिलका क्यों उठ खड़े हुए,
यानी यह ऐसे हैं, कि न इनसे सुना गया।

परिशिष्ट २

ग़दर और बादके ज़मानेकी दिल्ली

गालिबने अपने मित्रों तथा शिष्योको १८५७ तथा बादमे जो पत्र लिखे है उनसे उस जमानेकी दिल्लीकी हालतपर प्रकाश पड़ता है। इन पत्रोसे कुछ अंश यहाँ दिये जाते है।

पत्र १ : दिसम्बर १८५७ :

"अपने घरमे बैठा हूँ। दर्वाजेसे बाहर नही निकल सकता। सवार होना और कही जाना तो बड़ी बात है। रहा यह कि कोई मेरे पास आवे ! शहरमे है कौन जो आवे ? घरके घर बेचिराग पडे है।"

पत्र २ : ५ दिसम्बर १८५७ :

"खुदाकी क़सम ! ढूँढनेपर मुसल्मान इस शहरमे नही मिलता, क्या अमीर, क्या गरीब, क्या कारीगर अगर कुछ है तो बाहरके है। हिन्दू जरूर कुछ बस गये है। अभी देखना चाहिए, मुसलमानोंकी आबादीका हुक्म होता है या नही।"

पत्र ३ : ५ दिसम्बर १८५७ :

"तुम हर्गिज यहाँ आनेका इराद: न करना। अमीर गरीब सब निकल गये। जो रह गये थे वह निकाले गये, जागीरदार, पेशनदार वगैर: कोई भी नही है। मुफस्सिल हाल लिखते हुए डरता हूँ। किलअके नौकरोपर कडी नजर है। इन लोगोकी पूछ कुछ ज्याद: है और इनकी धर-पकड़ हो

रही है। फौजी इन्तिजाम ११ मईसे आज यानी ५ दिसम्बर तक बराबर जारी है।''

पत्र ४ : ५ दिसम्बर १८५७ :

''साहब, कैसी बच्चोकी-सी बाते करते हो। दिल्लीको वैसी ही बसी हुई जानते हो जैसी पहले थी। कासिमजानकी गली, मीर खैरातीके फाटकसे फतहउल्ला खाँके फाटक तक बेचिराग है। हाँ, अगर आबादी है तो यह है कि गुलाम हुसेन खाँकी हवेली अस्पताल है और ज़ियाउद्दीन खाँके कमरेमे डाक्टर साहब रहते है। जियाउद्दीन खाँ और उनके भाई अपने बाल-बच्चे समेत लोहारूमे जा बसे। लालकुएँके मुहल्लेमे धूल उडती है। आदमीका नाम नही। तुम्हारे मकानमे जो छोटी बेगम फिरंगी की बीवी रहती थी उसके पास इस इश्तहारको भेजा था। मालूम हुआ वह लाहौरको गयी है। खेमीकी दुकानमे कुत्ते लोटते है। मुफ्ती सदरउद्दीन साहब लाहौर गये है।''

पत्र ५ : १८५८ ई० :

''एक मजेदार बात परसोकी सुनो। हाफिज मम्मू बेगुनाह साबित हो चुके। छूट चुके। हाकिमके सामने हाजिर हुआ करते है। अपनी जायदाद माँगते है। उनके हकका सुबूत गुजर चुका है। सिर्फ हुक्मकी देरी थी। परसो वह हाज़िर हुए थे। मिस्ल पेश हुई। हाकिमने पूछा—''हाफ़िज मुहम्मद बख्श कौन ?'' अर्ज किया कि—''मै। अस्ल नाम मेरा मुहम्मद बख्श है। मम्मू मशहूर हूँ।'' कहा—''यह क्या ! हाफिज मुहम्मद बख्श भी तुम और हाफिज मम्मू भी तुम, सारा जहान भी तुम, जो कुछ दुनियामे है वह भी तुम। हम मकान किसको दे ?'' मिस्ल दफ्तरमे दाखिल हुई। मियाँ मम्मू अपने घर चले आये।''

पत्र ६ : ५ मार्च १८५८ ई० :

"तुम्हारे उस खतका जवाब न लिख सका। जवाब तो लिख सकता था लेकिन कल्यानका पैर सूज गया था। वह चल नही सकता था। मुसलमान आदमी शहरमे सड़कपर बिला टिकट नही चल सकता। इसी मजबूरीसे तुमको खत न भेज सका। कई दिनके बाद जब कहार अच्छा हुआ तब मै तुमको आगर. मे समझकर सिकन्दराबाद ख़त न भेज सका।"

पत्र ६ : १८६० ई० :

"बड़ी भारी आफत यह है कि कारीका कुवॉ बन्द हो गया। लाल-डिग्गीके कुएँ बिलकुल बन्द हो गये। ख़ैर खारी ही पानी पीते। गर्म पानी निकलता है। परसो मै सवार होकर कुवोंका हाल जानने गया था। जामअ मस्जिद होता हुआ राजघाट दरवाजेको चला। मस्जिद जामअसे राजघाट दरवाजे तक बेशक एक सुनसान जगल हो गया है। ईटोंके जो ढेर पडे है अगर वह उठ जाये तो वह भयानक जगह हो जाये। याद करो, मिर्जा गौहरके बागीच.के इस तरफ कई बॉस नीचा था। अब वह बग़ीचः ऑगनके मानिन्द हो गया। यहॉ तक कि राजघाटका दरवाजः बन्द हो गया। चहारदीवारीके कंगूरे खुले हुए है। पानी सब लुट गया। काश्मीरी दरवाजः का हाल तुम देख गये हो। अब लोहेकी सड़क (रेलवे लाइन) के लिए कलकत्ता दरवाज़ से काबुली दरवाजः तक मैदान हो गया है। पजाबी कटरः, धोबीबाड., रामजीगज, सआदत ख़ॉका कटरः, जरनैलकी बीवीकी हवेली, रामजीदास गोदामवालेके घर, साहब रामबाग व हवेली इनमेसे किसीका पता नही मिलता। पूरा शहर जंगल हो गया।"

पत्र ७ : १८६० ई०

"यहॉ शहर ढह रहा है। बडे-बड़े नामी बाजार, ख़ास बाजार और उर्दू बाजार और ख़ानमका बाज़ार जो कि इनमेसे हर एक-एक शहर था अब पतः भी नही कि कहाँ थे। घर व दूकानके मालिक यह नही बता

सकते कि हमारा घर कहाँ था और हमारी दूकान कहाँ थी। वरसातमे भी पानी नही बरसता। अब वसूल : व फावड़ : के वाड़ से घर गिर गये। नाज मँहगा है। मौत सस्ती है। फलके भाव अनाज विकता हैं। उर्दकी दाल आठ सेर, बाजर . १४ सेर, चना १६ सेर, घी डेढ सेर, तरकारी मँहगी। इन सव बातोसे बढकर वात यह है कि कुँआरका महीनः जिसे जाडेका दरबाज कहते है, मे पानी गर्म, धूप तेज़, और लू चलती है, जेठ आसाढकी-सी गर्मी पड़ती है।"

पत्र ८ : २६ जुलाई १८६१ ई० :

"एक जङ्ग कालोकी, एक मुसीवत गोरोकी। एक दुश्वारी घरोके गिराये जानेकी। एक आफत हैज़: की बीमारीकी। एक कयामत कालकी। अव यह वरसात सब मुसीवतोसे भरी है। आज इक्कीसवाँ दिन है, सूरज इस तरह देखनेमे आता है जैसे विजली चमक जाती है। रातको कभी-कभी अगर तारे दिखाई देते है तो लोग उनको जुगनू समझ लेते है। अँधेरी रातोमे चोरोकी वन आई है। कोई दिन नही कि दो-चार घरोकी चोरीका हाल न सुना जाय। मुबालग : न समझना, हजारो घर गिर गये, सैंकड़ो आदमी इधर-उधर मर गये, गली-गली नदी बह रही है। कही वह अनकाल था कि पानी नही वरसा, अनाज नही पैदा हुआ। यह पनकाल है। पानी ऐसा वरसा कि बोये हुए दाने बह गये। जिन्होने अभी नही बोया था वह वोनेसे रह गये। सुन लिया दिल्लीका हाल? इसके सिवा कोई नई बात नही है।"

पत्र ६ : १६ फरवरी १८६२ ई० :

"ऐ मेरी जान! यह वह दिल्ली नही है जिसमे तुम पैदा हुए हो। यह वह दिल्ली नही है जिसमे तुमने तालीम हासिल की है। यह वह दिल्ली नही है जिसमे तुम शाहानवेगकी हवेलीमे मुझसे पढने आते थे, यह वह

दिल्ली नही है जिसमे सात-सालकी उम्रसे मै आता-जाता हूँ। यह वह दिल्ली नहो है जिसमे इक्यावन सालसे ठहरा हुआ हूँ। एक कैम्प है।

"बर्खास्तशुद : बादशाहके घरानेके लोग जो बचे है वह पाँच-पॉच रुपय: महीन: पाते है। बडे-बड़े मुसलमानोमे-से मरनेवालोको गिनो—हसन अली ख़ाँ बहुत बड़े बापका बेटा, सौ रुपय: रोजका पेशनदार सौ रुपय: महीन: की नौकरीवाला बनकर मर गया! अमीर नासिरउद्दीन वालिदकी जानिबसे आली ख़ान्दान और नाना व नानीकी जानिबसे बहुत बड़ा अमीर था। वह बेगुनाह मारा गया! आगा सुल्तान, बख़्शी मुहम्मद अली ख़ाँका लड़का जो ख़ुद भी बख़्शी हो चुका है, बीमार पड़ा। दवा न गिजा! आख़िरमे मर गया! तुम्हारे चचाके जरिय: मरनेवालेका आख़री काम अंजाम दिया गया। जिन्द. लोगोंको पूछो। नाजिर हुसेन मिर्ज़ा, जिसका बडा भाई मारा गया था, उसके पास एक पैस: नही, टकेकी आमदनी नही। मकान हालाँकि रहनेको मिल गया है लेकिन देखिए छुटा रहेगा या जब्त हो जाये। बुड्ढे साहब सब जायदाद बेचकर और सब कुछ खा-पीकर सीधे भरतपुर चले गये। जियाउद्दौलाकी पॉच सौ रुपय: किरायेकी जायदाद छुट-छाटकर फिर कुर्क हो गयी। बुरी हालतमे लाहौर गया। वहाँ पड़ा हुआ है। देखिए क्या होता है। किल:, भ्रज्जर, बहादुरगढ, वल्लभगढ़ और फर्रुखनगर करीब-करीब तीस लाख रुपय. की रियासते मिट गयी। शहरके अमीर मिट्टीमे मिल गये........।"

—ऐजाज जावेदके लेख ('नया दौर' अगस्त १९५७) से।